भारतीय सरकार एवं राजनीति

Copyright © 2003, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय सूची

अध्याय 1	भारतीय संविधान का निर्माण	5
अध्याय 2	भारतीय संविधान के स्रोत्र	12
अध्याय 3	संविधान की विशेषताएं	21
अध्याय 4	संविधान की प्रस्तावना	26
अध्याय 5	मौलिक अधिकार	31
अध्याय 6	मौलिक कर्त्तव्य	38
अध्याय 7	राज्य–नीति के निर्देशक तत्व	44
अध्याय 8	राष्ट्रपति	54
अध्याय 9	भारतीय संसद तथा उसका कार्यकरण	68
अध्याय 10	भारतीय प्रशासन में मंत्रिमण्डल की भूमिका	88
अध्याय 11	प्रधानमंत्री	92
अध्याय 12	केन्द्र–राज्य सम्बन्ध	99
अध्याय 13	उच्चतम न्यायालय तथा न्यायिक पुनरावलोकन	114
अध्याय 14	राजनैतिक दलः राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दल	129
अध्याय 15	भारत में चुनाव सुधार	172
अध्याय 16	जातिवाद	184
अध्याय 17	धर्म एवं साम्प्रदायिकता	193
अध्याय 18	भारतीय राजनीति में भाषा	202
अध्याय 19	क्षेत्रीयतावाद	207
अध्याय 20	गरीबी उल्मूलन	214
अध्याय 21	वस्तुनिष्ठ प्रश्न	229
अध्याय 22	लघुत्तरीय प्रश्न	254

SYLLABUS AND COURSES OF READING
wef 2003-2004
B.A. IInd Year Political Science

Paper : Indian Government and Politics

Max. Marks : 100
Time : 3 Hours

Note : Total 10 questions will be set : Four each from Part-A and Part-B and two from Part-C. Candidates will have to attempt five questions in all, selecting at least one question from each Part.

Part-A

. The making of India's Constitution and its sources.

Basic features of India's Constitution.

Preamble, Fundamental Rights and Duties and the Directive Principles of State Policy.

Union Government: President, Parliament, Cabinet and Prime Minister.

Part-B

Centre-State Relation.

Supreme Court and the Constitutional Process.

Political Parties: National and Regional Parties, Electoral Reform.

Major issues in India Politics; Caste, Religion, Language, Region, Poverty Alleviation.

Part-C

Short answer questions, at least five, Spread over the entire Syallabus. Objectives Type (Multiple choice) questions spread over the Whole Syllabus.

अध्याय-1
भारतीय संविधान का निर्माण
(Making of Indian Constitution)

भारतीय संविधान निर्माण की माँग सर्वप्रथम कांग्रेस ने 1934 में की जिसे शिमला सम्मेलन 1945 में पुनः दोहराया गया। आखिरकार द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात अंग्रेजी सरकार ने इस माँग को स्वीकार कर लिया और संसदीय डेलीगेशन की सिफारिश में कैबिनेट मिशन को भारत भेजा गया।

कैबिनेट मिशन 24 मार्च 1946 को दिल्ली पहुँचा। लार्ड पैथिक लारेंस सर स्टेफर्ड क्रिप्स और ए. बी. एलेक्जैण्डर मिशन के सदस्य थे। मिशन ने भारत के विभिन्न नेताओं से बातचीत शुरू की और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को विश्वास दिलाया कि वार्तालाप के बाद ही किसी योजना को अन्तिम रूप दिया जाएगा। परन्तु कांग्रेस अटूट भारत चाहती थी जबकि मुस्लिम लीग पाकिस्तान बनाने का मन बना चुकी थी। इसलिए मिशन ने अपनी ही ओर से एक योजना बनाई जिसके तहत राज्यों का संघ, संघ तथा राज्यों में शक्तियों का विभाजन आदि शामिल थे।

इस योजना के तहत भारत को तीन अनुभागों में बांटा गयाः

अनुभाग ए

प्रान्त	सामान्य	मुस्लिम	कुल
मद्रास	45	4	49
बम्बई	19	2	21
उत्तर प्रदेशश	47	8	55
बिहार	31	5	36
(केंद्रीय प्रान्त) सी. पी.	16	1	17
उड़ीसा	9	0	9
कुल	167	20	187

अनुभाग बी

प्रान्त	सामान्य	सिक्ख	मुस्लिम	कुल
पंजाब	8	4	16	28
उत्तरी–पश्चिमी सीमा प्रान्त	0	0	3	3
सिंध	10	3	4	17
कुल	9	4	22	35

अनुभाग सी

प्रान्त	सामान्य	मुस्लिम	कुल
बंगाल	27	33	60
आसाम	7	3	10
कुल	34	36	70

स्रोतः जे. आर. सिवाच, भारतीय सरकार एवं राजनीति के आयाम

अनुभाग ए. में शामिल प्रान्तों में हिन्दू बहुमत, बी. में मुस्लिम बहुमत तथा सी. में पुनः हिन्दू बहुमत था।

इस योजना के अतिरिक्त मिशन ने संविधान निर्माण के लिए संविधान–सभा का प्रस्ताव भी रखा। इसके लिए :–

i) प्रत्येक प्रान्त को उसकी जनसंख्या के आधार पर संविधान–सभा में स्थान दिया जाए। लगभग 10 लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि निर्वाचित हो।

ii) संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष हो। सदस्यों का चुनाव प्रान्तीय विधानसभाओं द्वारा किया जाए।

iii) प्रत्येक प्रान्त के स्थान उस प्रान्त की विभिन्न जातियों की जनसंख्या के आधार पर दिए जाए।

iv) केवल तीन मतदाता संघ बनाए जाए :

a) साधारण

b) मुस्लिम

c) सिक्ख (केवल पंजाब में)

v) संविधान का निर्माण होने तक देश का शासन अन्तरिम सरकार द्वारा चलाया जाए।

इस प्रकार कैबिनेट मिशन की प्रस्तावित योजना के अनुरूप जुलाई 1946 में संविधान सभा का चुनाव हुआ जिसमें मुख्य मुकाबला कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग में था। कुल 232 सीटों में से 212 सीटें कांग्रेस और इसके समर्थकों ने जीती। मुस्लिम लीग को केवल 73 सीटे प्राप्त हुई।

संविधान सभा की दल–गत रूप संरचना इस प्रकार थी :–

दल	हिन्दू	अनुसूचित जाति	मुस्लिम	एंग्लो इंडियन	फारसी	पिछडे कबीले	ईसाई	कुल
कांग्रेस	156	29	4	3	3	4	6	205
मुस्लिम	–	–	73	–	–	–	–	73
यूनियनिस्ट	1	1	1	–	–	–	–	3
कषक प्रजा	–	–	1	–	–	–	–	1
साहिद जीरगा	–	–	1	–	–	–	–	1
अनुसूचित जाति	–	1	–	–	–	–	–	1
संघ	–	–	–	–	–	–	–	
सिक्ख (रिक्त)	–	–	–	–	2	–	2	
साम्यवादी	1	–	–	–	–	–	–	1
जंमीदार	3	–	–	–	–	–	–	3
वाणिज्य एवं उद्योग	2	–	–	–	–	–	–	2
कुल	163	31	80	3	6	6	292+4 Sikh	296

स्रोतः जे. आर. सिवाचः भारतीय सरकार एवं राजनीति

संविधान सभा में कांग्रेस के अधिपत्य को देखते हुए जिन्हा ने 29 जुलाई 1946 को अपनी स्वीकति वापिस ले ली। परन्तु इसके बहिष्कार के बाद भी संविधान सभा ने अपना कार्य आरम्भ किया।

पहली सभा

संविधान सभा का पहला सम्मेलन 9 सितम्बर 1946 को हुआ जिसमें कुल 296 सदस्यों में से 211 सदस्यों ने भाग लिया।

सचिदानन्द सिन्हा को सभा का अस्थाई प्रधान चुना गया 13 सितम्बर 1946 को संविधान सभा ने एक "उद्देश्य प्रस्ताव" पारित किया जिसमें मुख्य बातें ये थीं :–

(a) भारत में स्वतन्त्र एवं सार्वभौम गणराज्य स्थापित किया जाए।

(b) सभी व्यक्तियों को राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समानता दी जाए।

(c) सभी व्यक्तियों को कोई भी व्यवसाय अपनाने, भाषण एवं लिखने, किसी भी धर्म एवं मत को अपनाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति तथा पिछड़े वर्गों के हितों की सुरक्षा के लिए आवश्यक प्रयत्न होना चाहिए।

समितियों की नियुक्ति

उद्देश्य प्रस्ताव को पारित करने के बाद संविधान सभा ने कुछ समितियाँ नियुक्त की ताकि वे संविधान के विभिन्न पहलुओं पर गहन विचार करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

मसौदा समिति की नियुक्ति

विभिन्न समितियों की रिपोर्ट के आधार पर संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए 29 अगस्त, 1947 को संविधान सभा ने बी. आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में सात सदस्यों की मसौदा समिति का गठन किया। इस समिति ने 21 फरवरी 1948 को संविधान का पहला मसौदा प्रस्तुत किया जिसमें 243 धाराएँ और 13 सूचियाँ शामिल थीं। इसे जनता की राय जानने के लिए भेजा गया। जब इस मसौदे की अत्यधिक आलोचना हुई तो मसौदा समिति ने दूसरा मसौदा तैयार किया जिसमें 315 धाराएँ और नौ सूचियाँ थी। इसे संविधान सभा के सामने 21 फरवरी 1948 को रखा गया। अन्तिम प्रारूप में 395 धाराएँ और 8 सूचिया रखी गई कुल मिलाकर संविधान सभा सत्र बुलाए जिनमें 167 दिन लगे। इस प्रकार संविधान निर्माण में 2 वर्ष ग्यारह महीने और अठारह दिन लगे।

संविधान सभा की कार्य प्रणाली

संविधान सभा ने अपना कार्य 20 से भी ज्यादा समितियों के माध्यम से किया। इनमें से ज्यादातर स्थाई समितियाँ थीं। परन्तु मसौदा समिति ने संविधान निर्माण के अन्तिम क्षणों तक कार्य किया। इस समिति में ज्यादातर वकील लोग शामिल थे। संविधान सभा में विधानपालिका के समरूप कार्य प्रक्रिया अपनाई गई। संवैधानिक प्रावधानों को एक बिल के भाग ही माना गया और तीन वाचन एवं समितियों के माध्यम से पारित किया गया। किन्तु वास्तव में निर्णय, निर्माण की शक्तियाँ कांग्रेस नेताओं में निहित थी। कांग्रेस–कार्य–समिति द्वारा ही मसौदा समिति के सभी अहम–निर्णयों को हरी झण्डी दिखाई गई।

प्रजातान्त्रिक कार्य प्रणाली

संविधान सभा ने प्रजातान्त्रिक तरीके से अपना कार्य किया। इसके सदस्यों द्वारा 7635 संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए जिनमें से 2473 पर सभा में वाद–विवाद किया गया। इसीलिए इसने 2 वर्ष 11 महीनों में और 18 दिन का समय लिया जबकि अमेरिका का संविधान 4 महीनें बनकर तैयार हो गया था। कनाड़ा में 2 वर्ष का समय लगा। वहाँ पर अधिक संशोधन प्रस्तावों की समस्या नहीं थी। भारतीय संविधान सभा में सदस्यों की अधिक संख्या और लम्बी एवं खुली बहस के परिणामस्वरूप संविधान बनाने में अधिक समय लगा। इसके निर्माण पर 64 मिलियन रूपये की लागत आई।

सर्वसम्मति से निर्णय
(Decision-making by Consensus)

संविधान सभा का दष्टिकोण सर्वसम्मति के सिद्धान्त पर आधारित था। सर्वसम्मति का अर्थ है जो भी निर्णय लिए जायें वे सर्वसम्मति से या लगभग सर्वसम्मति से लिए जाएँ। ग्रेनविल आस्टिन का कहना है, "सर्वसम्मति इस तथ्य को मान्यता देती है कि बहुमत का शासन यदि नैतिक दष्टि से अन्यायपूर्ण नहीं है तो भी राजनीतिक विवादों में राजनीतिक दष्टि से ठीक नहीं है; क्योंकि उनमें मानवीय भावनाएँ पड़ी होती हैं।" (Consensus is the recognition of the fact that majority rule if not morally unjust would be politically unwise in political conflicts in which human emotions are very deeply involved.) के. जी. मशरूवाला (K.G.Mashruwala) का मत था कि "49 के विरुद्ध 51 के बहुमत से लिया गया निर्णय एक उपयुक्त निर्णय नहीं माना जाएगा।" पं. जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा के सदस्यों से कहा था, "आप जल्दबाजी न करें और जहाँ तक सम्भव हो एक राय से निर्णय करें।" इसी भावना से प्रेरित होकर संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद बहस को स्थगित

करके समझौते के लिए समय दिया करते थे, ताकि किसी पर जबरदस्ती कोई निर्णय न लादा जाए। संविधान निर्माता अच्छी तरह से समझते थे कि वहीं संविधान टिकाऊ हो सकता है जो सर्वसम्मति या लगभग सर्वसम्मति पर आधारित हो।

सर्वसम्मति के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न तरीके अपनाए गए। प्रथम, कांग्रेस विधानमण्डल दल की बैठकों में, संविधान दल की बैठकों में संविधान की प्रत्येक धारा पर खुल कर विचार होता था। इन बैठकों में डॉ. अम्बेडकर, अय्यर और आयंगर जैसे गैर–कांग्रेसी भी सम्मलित होते थे। द्वितीय, संविधान निर्माण से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण समितियों में विभिन्न समुदायों, वर्गों तथा हितों को प्रतिनिधित्त्व दिया गया था। संविधान सभा की सबसे महत्त्वपूर्ण समिति प्रारूप समिति (Draft Committee) थी और इसके 9 सदस्यों में से केवल एक सदस्य श्री मुन्शी कांग्रेसी थे। इस समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर थे जो कांग्रेस के कटु आलोचक थे। संविधान सभा की समिति में पहले विचार होता था और सर्वसम्मति से निर्णय लेने का प्रयास किया जाता था। जब किसी सदस्य के संशोधन प्रस्ताव या सुझाव को अस्वीकार किया जाता था तो उस सदस्य को समझाने का प्रयास किया जाता था ताकि वह सदस्य यह न समझे कि बहुमत ने उसके सुझाव का निरादर किया। ततीय, संविधान सभा में शक्ति के केन्द्र पं. नेहरू और पटेल अपने मतभेदों को दूर कर लेते थे तो संविधान सभा मे सर्वसम्मति से निर्णय लेना आसान हो जाता था। पं. नेहरू और पटेल अपने मतभेदों को आपसी बातचीत से दूर करने का प्रयास किया करते थे। चौथे, सर्वसम्मति से निर्णय लेने के लिए कई बार कांग्रेस पार्टी व्हिप (Whips) जारी किया करती थी। जब व्हिप जारी किया जाता था तब मतों पर नियन्त्रण होता था। आस्टिन का कहना है कि, "संविधान की भाषा सम्बन्धी धाराओं पर सर्वसम्मति बनाने के लिए व्हिप का सहारा लेना पड़ा था!"

एम. वी. पायली (M.V. Pylee) ने लिखा है, "संविधान सभा में वाद–विवाद को पूरा प्रोत्साहन मिला, आलोचना के प्रति सहनशीलता प्रकट की गई, लम्बे वाद–विवाद के प्रति असन्तोष नहीं दिखाया गया, अपने विचार दूसरों पर लादने एवं शीघ्रता से कार्य समाप्त करने का प्रयास नहीं किया। यह एक पूर्ण लोकतान्त्रिक प्रक्रिया थी, जिस पर भारतीय लोग गर्व कर सकते हैं।" ग्रेनविल आस्टिन के अनुसार तीन तत्त्वों ने सर्वसम्मति से निर्णय लेने में सहायता प्रदान की – एकता का वातावरण, आदर्शवाद का वातावरण और राष्ट्रीय उद्देश्य का वातावरण।

संविधान सभा में सर्वसम्मति से निर्णय लिए जाने के मुख्य उदाहरण हैं–संघीय व्यवस्था, भाषायी प्रावधान और अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ आदि।

(1) **संघीय व्यवस्थाः** संविधान सभा ने भारत की संघीय व्यवस्था पर फरवरी, 1974 में विचार प्रारम्भ किया और नवम्बर, 1949 तक वाद–विवाद होता रहा। संघीय व्यवस्था से सम्बन्धित प्रावधानों को इस प्रकार निश्चित करना था, ताकि संघ के प्रतिनिधियों और प्रान्तीय सरकारों के प्रतिनिधियों को सन्तुष्ट किया जा सके। ऐसी व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया कि न तो कोई प्रान्त संघ से अलग हो सके और न ही संघ को बनाएँ रखने के लिए दमन शक्ति का प्रयोग करना पड़े। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 'संघीय शक्ति समिति' (Union Powers Committee) तथा प्रान्तीय संविधान समिति में प्रान्तों के महत्त्वपूर्ण नेताओं (मिन्तर, वी. टी. कष्णामाचारी और रामास्वामी मुदालियर) को सम्मिलित किया गया था। संघीय प्रारूप समिति, संघीय शक्ति समिति, संघीय कैबिनेट के सदस्य, प्रान्तीय मुख्यमंत्रियों तथा शिक्षा और वित्तमन्त्रियों के बीच बैठकें होती रहती थीं। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि संघीय व्यवस्था पर सर्वसम्मति होने का महत्त्वपूर्ण कारण भारत का विभाजन था। भारत के विभाजन के बाद शक्तिशाली केन्द्र के लिए लगभग सर्वसम्मति थी और इसलिए संघीय व्यवस्था के साथ शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था सर्वसम्मति से की जा सकी।

(2) **भाषा से सम्बन्धित प्रावधानः** भाषा से सम्बन्धित प्रावधान भी सर्वसम्मति से निर्णय के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। भाषा की समस्या का ऐसा हल ढूँढने का प्रयास किया गया, जिसे सभी सामान्य रूप से स्वीकार कर लें और यह प्रयास तीन वर्षों तक किया गया। संविधान सभा की अन्तिम बैठक के प्रारम्भ में सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि वह भाषायी प्रावधानों को मतदान के लिए नहीं रखेंगे क्योंकि यदि कोई निर्णय समस्त देश को स्वीकार न हुआ तो उसको लागू करना कठिन होगा। लम्बे वाद–विवाद के बाद भाषा की समस्या पर निर्णय लिए गए।

(3) **अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित प्रावधानः** अल्पसंख्यकों की समस्याओं को हल करने के लिए लम्बे वाद–विवाद के बाद सर्वसम्मति से निर्णय लिए।

(4) **प्रस्तावनाः** संविधान सभा ने प्रस्तावना और उद्देश्य–प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार किया।

(5) **संसद से सम्बन्धित प्रावधानः** संसद के संगठन, कार्यों एवं शक्तियों पर खुले रूप से विचार किया गया और अन्त में सर्वसम्मति से निर्णय लिए गए।

(6) **समायोजन का सिद्धान्त (Principle of Accommodation):** आस्टिन के मतानुसार भारत के संविधान निर्माण में मौलिक योगदान समायोजन का सिद्धान्त है। ग्रेनविल आस्टिन ने समायोजन की परिभाषा इस प्रकार दी हैः "समायोजन दो विरोधी धारणाओं में समझौता व सामंजस्य करने की योग्यता और तत्त्वों को परिवर्तित किए बिना उसको संचालित करना है, समायोजन ऐसे दो सिद्धान्तों का मेल है। जो गैर–भारतीयों को और विशेष रूप से यूरोपीय और अमरीकी पर्यवेक्षकों को विरोधी दिखाई देते हैं।"

(Accommodation is the ability to reconcile, to harmonise and to make work without changing their content, apparently incompatible concepts, at least concepts that appear conflicting to the non-Indian and specially to European or American observer.) वास्तव में संविधान सभा के सदस्यों ने व्यावहारिक दष्टिकोण को अपनाते हुए समायोजन के सिद्धान्तों को अपनाया। समायोजन के सिद्धान्त के कुछ प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं :

(1) **संघात्मक और एकात्मक व्यवस्था के बीच समन्वयः** साधारणतया संघात्मक और एकात्मक व्यवस्था को परस्पर विरोधी माना जाता है। एक अमरीकी या इंग्लिश संविधानवेत्ता यह कहेगा कि या तो एकात्मक शासन प्रणाली को अपनाया जा सकता है या फिर संघात्मक शासन प्रणाली को। इंग्लैंड में एकात्मक शासन प्रणाली पाई जाती है, जबकि अमरीका में संघात्मक शासन प्रणाली पाई जाती है। परन्तु भारतीय संविधान संघात्मक भी है और एकात्मक भी। हमारे संविधान निर्माताओं ने संघात्मक व्यवस्था के साथ–साथ केन्द्र को इतना शक्तिशाली बनाया है, ताकि किसी भी स्थिति का सामना किया जा सके।

(2) **गणतन्त्रीय व्यवस्था के साथ राष्ट्रमण्डल की सदस्यताः** 1947 ई. तक यही समझा जाता था कि गणतन्त्रीय राज्य राष्ट्रमण्डल का सदस्य नहीं बन सकता, क्योंकि गणतन्त्रीय व्यवस्था और राष्ट्रमण्डल की सदस्यता को परस्पर विरोधी माना जाता था। भारतीय संविधान सभा ने 1946 ई. में निर्णय लिया कि भारत गणतन्त्रीय राज्य होगा और काफी वाद–विवाद के पश्चात् 1949 ई. में संविधान सभा ने यह निर्णय लिया कि भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य होगा। भारत के कहने पर ही ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की सदस्यता भी स्वीकार की। संविधान सभा में बी. एन. राव ने कहा था, "राष्ट्रमण्डल की धारणा का स्पष्टतया विकास होता जा रहा है और यह अब इस स्तर पर पहुँच चुका है जिसमें गणतन्त्रात्मक संविधान वाले राज्य भी अपना स्थान पा सकते हैं।"

(3) **केन्द्रीकरण और पंचायती राज के बीच समन्वयः** संविधान सभा के कुछ सदस्य पंचायती राज के समर्थक थे, जबकि कुछ शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में थे। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद तथा कुछ अन्य पंचायती व्यवस्था को अपनाने के प्रबल समर्थक थे। उनका मत था कि वयस्क मताधिकार और प्रत्यक्ष चुनाव के आधार पर ग्राम पंचायतों और नगरपालिका बोर्डों का स्थापना की जाए। पंचायतें और बोर्ड अपने प्रतिनिधि चुनकर उच्चतम संस्थाओं में भेजें और इस प्रकार संसद का निर्माण किया जाए। परन्तु दूसरी ओर पं. जवाहर लाल नेहरू तथा संविधान सभा के अधिकांश सदस्य शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के पक्ष में थे। अन्त मे समायोजन के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए शक्तिशाली केन्द्र और पंचायती व्यवस्था के बीच समन्वय किया गया। संघ तथा प्रान्तीय सरकारों के सम्बन्ध में केन्द्रीकरण के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया और प्रत्यक्ष निर्वाचन व्यवस्था को अपनाया गया। प्रान्तीय सरकारों से नीचे के स्तर पर विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था को स्वीकार किया गया और इस सम्बन्ध में व्यवस्था का कार्य प्रान्तीय व्यवस्थापालिकाओं के क्षेत्राधिकार में रखा गया तथा दूसरी ओर राज्यनीति के निदेशक सिद्धान्तों मे पंचायती राज की स्थापना की बात कही गई।

(4) **मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित प्रावधानः** संविधान सभा में मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में दो दष्टिकोण पाये जाते थे। एक दष्टिकोण यह था कि जितने अधिक अधिकारों का समावेश संविधान में हो सके, किया जाना चाहिए। इन अधिकारों को सीधे न्यायालयों द्वारा लागू किया जाए। परंतु दूसरे दष्टिकोण के अनुसार कुछ मौलिक अधिकारों का ही अर्थात मुख्य अधिकारों का ही संविधान में समावेश किया जाना चाहिए। इन दोनों दष्टिकोणों पर बहुत वाद–विवाद हुआ, अन्त में समायोजन के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए बीच का मार्ग खोज लिया गया। मुआवज़े की व्यवस्था में भी बहुत वाद–विवाद हुआ और इस समस्या का भी समायोजन द्वारा हल कर लिया गया।

(5) **राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध मेंः** संविधान सभा में राष्ट्रपति के चुनाव पर बड़ा विवाद हुआ। संविधान सभा के कुछ सदस्यों का विचार था कि राष्ट्रपति का चुनाव संसद द्वारा होना चाहिए। अन्त में दोनों में समन्वय किया गया और राष्ट्रपति

का चुनाव एक निर्वाचन–मण्डल द्वारा किया जाता है जिसमें संसद के निर्वाचित सदस्यों तथा राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य होते हैं।

डॉ. ओ. पी. गोयल (O.P. Goyal) के मतानुसार, संविधान सभा के सदस्यों ने समायोजन के सिद्धान्त का प्रयोग उतना नहीं किया है जितना कि ग्रेनविल आस्टिन ने बताया है। जिन सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है वे हैं– समझौते (Compromise), अनुकूलन (Adaptation) और समक्षता (Confrontation) के सिद्धान्त। संविधान सभा के सदस्यों में परस्पर समक्षता (Confrontation) भी थी, विशेषकर सम्पति के अधिकार पर।

(3) **परिवर्तन के साथ चयन की कला (The Art of Selection with Modification) :** संविधान सभा का दष्टिकोण 'परिवर्तन के साथ चयन' के सिद्धान्त पर आधारित था। संविधान सभा के सदस्यों का दष्टिकोण संकीर्ण न होकर उदारवादी था। संविधान निर्माताओं का यह विचार था कि भारत के लिए एक उत्तम तथा व्यावहारिक संविधान बनाया जाए जो सुचारू ढंग से कार्य कर सके और देश की प्रगति के लिए सजीव साधन सिद्ध हो। अतः संविधान निर्माताओं ने पश्चिम का अन्धानुकरण नहीं किया, बल्कि उन्होंने उन्हीं बातों को लिया जो भारतीय स्थिति व आवश्यकताओं के अनुकूल थीं। उदाहरणस्वरूप संविधान सभा ने इंग्लैंड से संसदीय शासन प्रणाली ली, परन्तु इंग्लैंड की एकात्मक व्यवस्था त्याग दिया तथा भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए संघात्मक व्यवस्था का अपनाया जो अमेरीका के संविधान की देन है, पर इसके साथ ही अमरीका के संविधान की अध्यक्षात्मक प्रणाली का त्याग किया। संविधान सभा ने भविष्य को ध्यान में रखकर संविधान का निर्माण किया। संविधान की संशोधन प्रणाली 'परिवर्तन के साथ चयन' के सिद्धान्त का एक सुन्दर उदाहरण है। भाषा सम्बन्धी मामले नये राज्यों की स्थापना, राज्यों के क्षेत्रों में परिवर्तन और उनका विलय आदि संसद के हाथों में रखकर संविधान सभा ने दूरदर्शिता का परिचय दिया।

संविधान सभा की समस्याएँ

संविधान निर्माण के समय सभा को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जो इस प्रकार हैं:

(i) **भारत की विशालता तथा अनेकता:** संविधान के निर्माण के समय भारत की जनगणना 36 करोड़ थी। इसमें विभिन्न धर्म, जाति, संस्कति और भाषाओं के लोग शामिल थे। ऐसे में सभी को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधना कठिन कार्य था

(ii) **रियासतों की समस्या:** 600 रियासतों के नवाब सत्ता छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे और प्रजातन्त्र के विरोधी थे। उन्हें एक संघ के नीचे लाना कठिन कार्य था।

(iii) **साम्प्रदायिकता की समस्या:** आजादी से पहले यह एक प्रमुख समस्या थी जिसके कारण देश का विभाजन हुआ। परन्तु संविधान निर्माण करते समय साम्प्रदायिकता प्रतिनिधित्त्व जैसी समस्या के उचित समाधान के लिए प्रावधानों की जरूरत थी जिसके लिए धर्म निरपेक्ष व्यवस्था को अपनाया गया लेकिन यह समस्या आज तक बनी हुई है।

(iv) **राजभाषा की समस्या:** देश के लिए राजभाषा की समस्या पैदा हुई। बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी को मान्यता दी गई परन्तु यह भी निर्णय लिया गया कि संक्रान्तिकाल में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग जारी रहेगा।

इसके अतिरिक्त कुछ मौलिक प्रश्नों पर मतभेद सामने आए जैसे :–

(a) केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का बँटवारा

(b) संविधान की व्याख्या करने में न्यायालय की भूमिका

(c) नागरिकों के अधिकारों और राष्ट्रीय सुरक्षा में सामंजस्य स्थापित करना।

(d) निजी सम्पति के अधिकारों को सामाजिक न्याय से जोड़ना

(e) सत्ता का विकेन्द्रीकरण

संविधान निर्माण की आलोचना

संविधान निर्मात्री सभा में कुछ कमियाँ थी जैसे :–

(i) **यह सर्व-प्रतिनिधि संस्था नहीं थीः** इसमें नियुक्त किए गए सदस्यों की संख्या अधिक थी। चुने हुए सदस्य प्रत्यक्ष रूप से जनता के प्रतिनिधि नहीं थे। चुनाव साम्प्रदायिक आधार पर हुए। जनसंख्या के करीब 28 प्रतिशत व्यक्तियों को मतदान का अधिकार था। सभी व्यक्तियों को वोट डालने का अधिकार नहीं था।

(ii) **कांग्रेस का अधिपत्यः** कुल सदस्यों में 205 कांग्रेस से सम्बन्धित थे। संविधान सभा चुनाव में भी कांग्रेस कार्य समिति के इशारे से कुछ व्यक्ति चुने गए। भारत के विभाजन के बाद कांग्रेस का अधिपत्य 82 प्रतिशत हो गया था। सिब्बन लाल सक्सेना ने शिकायत की है कि इस अधिपत्य के कारण संविधान को नुकसान ही पहुँचा है क्योंकि कांग्रेस कार्यसमिति की सभा की कार्यवाही को संविधान सभा की कार्यवाही के रूप में सूचीबद्ध किया गया हैं।

(iii) **हिन्दुओं का अधिपत्यः** संविधान सभा के 296 सदस्यों में से 163 तो हिन्दु थे। अन्य वर्गों का प्रतिनिधित्त्व नाम मात्र का ही था। इसलिए संविधान निर्माण में हिन्दुओं के हितों का ही ध्यान रखा गया।

(iv) **वकीलों का अधिपत्यः** भारत के संविधान को वकीलों के लिए स्वर्ग कहा जाता है। कारण है संविधान सभा में वकीलों का अधिपत्य। संविधान को कानूनी प्रक्रिया प्रदान की गई है। यह जनता को अपनी शिकायतों को न्यायालय में ले जाने के लिए प्रेरित करता है और वकीलों के लिए ढ़ेर सारा कार्य जुटाता है। कानूनी प्रकति के कारण एक साधारण व्यक्ति के लिए संविधान के प्रावधानों को समझना कठिन है।

(v) **संविधान का बहुत बड़ा आकारः** मूलभूत संविधान में 22 भाग, 395 धाराएँ तथा 8 सूचियाँ शामिल थीं। इसके अतिरिक्त इनके साथ ढेर सारे उप–प्रावधान, योग्यताए, सीमाएँ आदि भी जुड़ी हुई है। संविधानिक विशेषज्ञों का मानना है कि संविधान का आकार छोटा एवं स्पष्ट होना चाहिए इसकी भाषा उस देश की आम जनता की समझ से परे नहीं होनी चाहिए।

(vi) **संविधान निर्माण में लम्बा समयः** नजीरूद्दीन अहमद ने मसौदा समिति में बोलते हुए कहा था कि समिति के टालमटोल रवैये के कारण संविधान निर्माण में काफी समय लगा है क्योंकि यह समिति दोष पूर्ण संशोधनों को भी ईमानदारी एवं हिम्मत से वापिस नहीं करवा सकी और न ही उनके विकल्प ढूंढ सकी। इसलिए काफी लम्बा समय लगा। जबकि दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में एक वर्ष, कनाड़ा के संविधान में 2 वर्ष का समय ही लगा।

(vii) **यह स्वदेशी कम विदेशी अधिक हैः** भारतीय संविधान स्वदेशी कम और विदेशी अधिक है। इसीलिए इसे उधार लिया गया थैला भी कहा जाता है। परन्तु फिर भी कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान कर्म–योग्य है, लचीला है और इस कदर मजबूत है कि सारे देश को एक सूत्र में बाँधे रख सकता है। इसमें आवश्यकता पड़ने पर संशोधन किए जा सकते हैं अब तक इसमें 93 संशोधन हो चुके हैं।

(6) **1950 का संविधान (Constitution of 1950):** भारतीय शासन प्रणाली का पता हमें मुख्य रूप से उस संविधान या प्रलेख से लगता है जो संविधान सभा द्वारा बनाया गया था और जो 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ था। यह संविधान हमारी संवैधानिक व्यवस्था का मुख्य आधार है।

(7) **संशोधन (Amendments):** भारतीय संविधान के लागू होने के बाद आज तक 84 संशोधन हो चुके हैं और इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन संशोधनों द्वारा 1950 ई. के संविधान में काफी परिवर्तन हुआ है। इसमें बहुत–सी बातों की वद्धि हुई है। प्रथम संशोधन द्वारा नागरिकों की स्वन्त्रताओं पर उचित प्रतिबन्ध लगाए जाने की व्यवस्था की गई। सातवें संशोधन द्वारा राज्यों का पुनर्गठन (Re-organisation) हुआ और उच्च न्यायालयों के सेवा–निवत जजों को वकालात करने का अधिकार दिया गया (परन्तु जिस उच्च न्यायालय से सेवानिवत हुए हों उसी में नहीं)। आठवें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों के लिए विशेष अधिकारों को 1960 से 1970 तक बढ़ाया गया था। 13वें संशोधन द्वारा नागालैंड (Nagaland) राज्य की व्यवस्था की गई। 15 वें संशोधन द्वारा उच्च न्यायालयों के जजों की पदावधि 60 से बढ़ाकर 62 वर्ष कर दी गई। 19वें संशोधन द्वारा चुनाव सम्बन्धी अपीलों को चुनाव न्यायाधिकरण के स्थान पर उच्च न्यायालयों को भेजे जाने की व्यवस्था की गई। 21 वें संशोधन द्वारा सिन्धी भाषा को भारतीय भाषाओं की सूची में जोड़ा गया और 22 वें संशोधन द्वारा असम राज्य में एक पहाड़ी स्वायत्त राज्य के बनाए जाने की व्यवस्था की गई जो अन्त में 'मेघालय' (Meghalya) के नाम बन चुका है। 23 वें संशोधन के अनुसार अनुसूचित जातियों व कबीलों के लिए विशेष अधिकारों की अवधि 1980 तक बढ़ा दी गई है। 24 वें संशोधन के अनुसार संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह संविधान के किसी भाग को, जिनमें मौलिक अधिकारों का भाग भी शामिल है, शोध सकती है। 25वें संशोधन के अनुसार राजा–महाराजाओं के प्रिवी पर्सो (Prity Purses) तथा विशेषधिकारों का सामाप्त किया गया है। 27वें संशोधनों द्वारा संविधान में परिवर्तन भी हुआ है और बढ़ोतरी भी । इनके अध्ययन के बिना संविधान का पूर्ण अध्ययन नहीं हो सकता।

26 अप्रैल, 1975 को संविधान के 36 वें संशोधन द्वारा सिक्किम को भारत का 22वां राज्य बनाया गया। 1976 में 42 वां संशोधन किया गया। इस संशोधन में 59 धाराएँ हैं और इसके द्वारा संविधान में बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं। 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में संशोधन करके भारत को प्रभुत्त्वसम्पन्न, समाजवादी, धर्म–निरपेक्ष, प्रजातन्त्रीय गणराज्य घोषित किया गया है, मौलिक कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है, राजनीति के निर्देशक सिद्धान्तों को मौलिक अधिकारों की अपेक्षा प्रधानता दी गई है, उच्च न्यायालयों की शक्तियों को सीमित किया गया है, इत्यादि। 43 वें संशोधन के द्वारा अनुच्छेदों 32A, 131A, 144A, 226A तथा 228A को हटाया गया है ताकि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को वही अधिकार पुनः दिया जा सके जो उनके पास 42वें संशोधन से पूर्व था। 44 वें संशोधन का उद्देश्य आपातकाल में 42 वें संशोधन द्वारा लाई गई विकतियों को दूर करना है। 45 वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों के लिए विशेष अधिकारों की अवधि 1990 तक बढ़ा दी गई। 52वें संशोधन द्वारा दल–बदल की बुराई को समाप्त करने का प्रयास किया गया है। 61 वें संशोधन द्वारा मताधिकार की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है 62 वें संशोधन द्वारा अनुसूचित जातियों व कबीलों के लिए विशेष अधिकारों की अवधि 2000 ई. तक बढ़ा दी गई 63वें संशोधन द्वारा 59 वे संवैधानिक संशोधन को रद्द किया गया है। 64वें संशोधन द्वारा राज्यों के 55 भूमि सुधार और भूमि सीमा कानूनों का संविधान की नौवीं अनुसूची में शामिल किया गया। 67वें तथा 68वें संशोधन द्वारा 6–6 महीने के लिए पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाई गई। 69 वें संशोधन द्वारा संघीय क्षेत्र दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (National Capital Territory) घोषित किया गया। इस संशोधन के अन्तर्गत दिल्ली के लिए विधान सभा, मुख्यमंत्री तथा मन्त्रिपरिषद् की व्यवस्था की गई है। 71 वें संशोधन द्वारा नेपाली, मणिपुर तथा कोंकणी को आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। 72 वें संशोधन द्वारा त्रिपुरा की विधानसभा में अनुसूचित कबीलों के लिए 20 सीटें सुरक्षित रखी गई हैं। तथा 74वें संशोधनों द्वारा पंचायती राज–संस्थाओं तथा नगरपालिका संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया है। इन संस्थाओं की अवधि 5 वर्ष निश्चित की गई है। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें सुरक्षित रखी गई हैं। 75वें संशोधन द्वारा राज्य स्तर पर 'Rent Tribunal' की व्यवस्था की गई। 76वें संशोधन द्वारा तमिलनाडु में 69 प्रतिशत आरक्षण लागू करने सम्बन्धी व्यवस्था की गई। 77वें संशोधन द्वारा सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति व जनजाति के लोगों के लिए पदोन्नति के मामले में भी आरक्षण की व्यवस्था की गई। 78वें संशोधन द्वारा राज्यों के कुछ भूमि सुधार कानून संविधान की नौंवी अनुसूची में शामिल किए गए। 79वें संशोधन द्वारा

स्वतन्त्र न्यायपालिका का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य नागरिकों के मूल अधिकारों की सुरक्षा करना है।

(vii) **सार्वभौम वयस्क मताधिकारः** संविधान की धारा 326 के तहत बिना किसी शैक्षणिक योग्यता, लिंग–भेद सम्पति, भाषा एवं जाति के भेदभाव के बिना सभी वयस्क व्यक्तियों को मतदान का अधिकार दिया गया है। ऐसा भारत की ज्यादातर जनता का अशिक्षित एवं गरीब होने के कारण किया गया। भारत में वयस्क मताधिकार इंग्लैंड और अमेरिका से ज्यादा व्यापक है। यहाँ जनता को सम्प्रभु माना गया है और वे ही सत्ता का स्रोत है और उन्हें सरकार के प्रतिनिधि चुनने का अधिकार सौंपा गया है। अनुसूचित जाति एव जनजातियों के लिए विधानमण्डलों में स्थान आरक्षित किए गए हैं। आजादी से पहले प्रचलित साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्त्व व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया है।

(viii) **धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापनाः** 42वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द जोड़ दिया गया है जिसका अर्थ है कि राज्य का अपना कोई धर्म–विशेष नहीं है। दूसरे शब्दों में जनता को किसी भी धर्म को अपनाने और उपासना करने की स्वतन्त्रता है। धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव संविधान की धारा 15 के तहत् प्रतिबन्धित है। इसके ठीक विपरीत पाकिस्तान समेत कई अरब देशों ने अपने आप को इस्लामिक धर्म–पंथी घोषित कर दिया है। एलगजैन्डरोविज के अनुसार "भारत एक धर्म–निरपेक्ष राज्य है जहाँ सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई है।" धार्मिक रूप से अल्पसंख्यकों को अपनी इच्छानुसार शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार दिया गया है।

परन्तु यह स्पष्ट किया गया है कि कोई भी व्यक्ति अपने धर्म पालन के नाम पर दूसरों के धर्म का विरोध या अनादर न करे। वर्तमान एन. डी. ए. सरकार किसी न किसी स्वरूप में हिन्दुत्त्व का पक्ष लेकर धर्म निरपेक्षता पर प्रश्न चिन्ह लगा रही है। अब इसे एक राजनैतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

(ix) **संकटकालीन प्रावधानों की व्यवस्थाः** संकटकालीन परिस्थितियों का सामना करने के लिए संविधान में कुछ शक्तियों का वर्णन किया है जो भारत के राष्ट्रपति में निहित हैं। ये तीन प्रकार की हैं :–

(a) ***राष्ट्रीय आपातकालः*** जब देश को युद्ध, बाहरी आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह का खतरा हो तो संविधान की धारा 352 के तहत राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की जा सकती है।

(b) ***राज्यों मे संवैधानिक संकटः*** जब राज्यों की संवैधानिक मशीनरी फेल हो जाए अर्थात् राज्य का प्रशासन असंवैधानिक गतिविधियों से चलाया जाए तो धारा 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है।

(c) ***वित्तीय आपातकालः*** जब किसी राज्य में दिन प्रतिदिन के प्रशासनिक संचालन के लिए वित्त संकट आ जाए तो संविधान की धारा 360 के तहत आपातकाल की घोषणा की जा सकती है।

(x) **संविधान पर विदेशी प्रभाव की छापः** संविधान का निर्माण करते समय सभी श्रेष्ठ संविधानों से सहायता ली गई और उनसे लिए गए प्रावधानों को भारतीय परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार ढालने की कोशिश की गई। हमने मुख्यतया ब्रिटेन, अमेरिका, कनाड़ा, आस्ट्रेलिया, स्विटजरलैंड, आयरलैंड एवं दक्षिणी अफ्रीका के संविधानों से काफी प्रावधान उधार लिए।

संविधान का संसदीय स्वरूप और क्रियान्वयन नियम हमने ब्रिटेन के संविधान से लिए हैं। संविधान की प्रस्तावना, मूलाधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, संशोधन प्रक्रिया आदि पर अमेरिकी संविधान की छाप है। राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त, राष्ट्रपति के चुनाव के लिए निर्वाचक मण्डल आदि पर आयरलैंड के संविधान का प्रभाव है। कनाड़ा के संविधान का असर 'संघ' शब्द तथा अवशेष शक्तियों का केंद्र तथा राज्यों के विवादों का निपटारा करने की व्यवस्था बहुत कुछ आस्ट्रेलिया के संविधान से मिलती है। राष्ट्रपति की संकटकालीन शाक्तियाँ जर्मन संविधान की देन हैं।

(xi) **एकल नागरिकताः** हमारी नागरिकता केवल भारतीय है न कि राज्य स्तर पर कोई अलग नागरिकता है। अमेरिका में दोहरी नागरिकता प्रदान की गई है। लेकिन भारत में देश की एकता एवं अखण्डता के परिपेक्ष में एक समान–शासन व्यवस्था का निरूपण किया गया है। नागरिकता का विनियमन किया गया है। नागरिकता का विनियमन करने का अधिकार केवल संघीय संसद को है, राज्यों को नह।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त समय परिवर्तन एवं जनता की आवश्यकता के अनुसार संविधान अतिरिक्त विशेषताएँ ग्रहण कर सकता है।

अध्याय-4
संविधान की प्रस्तावना
(Introduction to the Constitution)

प्रत्येक देश के संविधान की अपनी एक प्रस्तावना होती है जिसके द्वारा संविधान निर्माण के उद्देश्य, समाज की आवश्यकताओं और सरकार की विचारधारा का पता चलता है। सी. जे. फ्रेडरिक ने कहा है कि प्रस्तावना के द्वारा जनमत प्रतिबिम्बित होता है और इसी से संविधान अपनी सत्ता को प्राप्त करता है। के. एम. मुन्शी ने प्रस्तावना को राजनीतिक जन्मपत्री का नाम दिया है। संविधान का निर्माण प्रस्ताव के साथ शुरू करना एक सर्वमान्य प्रथा बन गई है। यहाँ तक सयुक्त राष्ट्र संघ के संविधान में भी प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं होती परन्तु जब संविधान की कोई धारा संदिग्ध है और उसका अर्थ स्पष्ट नहीं तो न्यायालय इसकी व्याख्या करते समय प्रस्तावना की सहायता ले सकते हैं। परन्तु केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने बेरूबारि मामले में दिये गए निर्णय को उत्तर दिया और कहा कि प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है और संविधान के उपबन्धों के निर्वाचन में इसका बड़ा महत्त्व है।

प्रस्तावना का अर्थ

इसका अर्थ प्रारम्भिक कथन से है जो किसी भी अधिनियम के मुख्य उद्देश्यों एवं जरूरतों को अभिव्यक्त करता है। सी. जे. अय्यर ने कहा है कि प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के मन की कुंजी है कि वे क्या करना चाहते थे। भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश गजेन्द्र गाडकर का कहना है कि प्रस्तावना संविधान के बुनियादी दर्शन का दस्तावेज है।

प्रस्तावना की ऐतिहासिकता

13 सितम्बर 1946 को जवाहर लाल नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया जिसमें घोषणा की गई कि–

(i) संविधान सभा भारत को सर्वप्रथम सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणतन्त्र बनाना चाहती है और इसका शासन चलाने के लिए एक संविधान बनाना चाहती है।

(ii) भारत एक 'संघ' होगा

(iii) केन्द्र तथा राज्यों का कार्य–क्षेत्राधिकार परिभाषित किया जाएगा।

(iv) केन्द्र तथा राज्य अपनी शक्ति आम जनता से प्राप्त करेंगे।

(v) देश के सभी व्यक्तियों को सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक न्याय, समान स्तर, अभिव्यक्ति, धार्मिक, व्यवसाय, संघ निर्माण आदि की स्वतन्त्रता होगी।

(vi) अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्गों एवं जनजातियों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जाएगी।

(vii) देश की एकता एवं अखण्डता को कायम करने का प्रयास किया जाएगा।

इस प्रकार उद्देश्य प्रस्ताव के प्रकाश में ही संविधान प्रस्तावना का निर्माण किया गया।

जो 1976 में 42वें संशोधन के पश्चात् इस प्रकार पढ़ी जा सकती है :–

"हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुसत्ता सम्पन्न समाजवादी, धर्म–निरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उनके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म अैर उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्रदान करने के लिए तथा व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता

सुनिश्चित करने, बन्धुत्व को बढ़ाने के लिए दढ–संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में 26 नवम्बर 1949 को इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

महत्त्व

प्रस्तावना को संविधान की 'आत्मा' माना गया है। सर अर्नेस्ट बार्कर ने प्रस्तावना को देश की सामाजिक और राजनैतिक विचारधारा का नाम दिया है।

डी. डी. बसु के अनुसार 'प्रस्तावना में संविधान के आदर्श और आकांक्षाएँ निहित हैं' संविधान सभा के सदस्य ठाकुर दास भार्गव ने प्रस्तावना की प्रशंसा करते हुए कहा है कि 'यह संविधान का सबसे मूल्यवान अंग है, संविधान की आत्मा और संविधान का रत्न है' एम. बी. पायली ने कहा है कि 'प्रस्तावना भारतीयों के दढ–संकल्प का प्रतीक है जिसमें न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व के विषय प्रमुख हैं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना स्पष्ट रूप से तीन बातों पर प्रकाश डालती हैः–

1. संवैधानिक शक्ति का स्रोत्र क्या है ?
2. भारतीय शासन व्यवस्था कैसी है ?
3. संविधान के उद्देश्य या लक्ष्य क्या है ?

1. **संवैधानिक शक्ति का स्रोतः** प्रस्तावना इन शब्दों से आरम्भ होती है "हम भारत के लोग इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित तथा आत्मार्यित करते हैं।" इन शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय जनता ने अपनी सम्प्रभुता, इच्छा को इस संविधान के माध्यम से व्यक्त किया है। मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में प्रस्तावना पर अपने विचार प्रकट करते समय ये शब्द कहे थे, "इस प्रस्तावना में सदन के प्रत्येक सदस्य की यह इच्छा निहित है कि संविधान अपना आधार, अपनी शक्ति और अपनी प्रभुसत्ता लोगों से प्राप्त करे।"

   किन्तु केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने बेरूबारी के मामले में दिये गये निर्णय को उलट दिया और यह निर्धारित किया कि कुछ आलोचकों का कहना है कि भारत के संविधान को लोगों का संविधान नहीं कह सकते। इसको न तो भारतीय जनता ने बनाया है और न ही स्वीकार किया था। संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं हुआ था और न ही ये प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा चुने गए थे। इसके अतिरिक्त संविधान सभा द्वारा बनाए गए संविधान को जनमत संग्रह द्वारा जनता ने स्वीकार नहीं किया था।

   निःसंदेह आलोचकों के तर्कों में सच्चाई कुछ ही है, परन्तु इसे अधिक महत्त्व देना ठीक नहीं है। क्योंकि जिन परिस्थितियों में संविधान का निर्माण हुआ था उस समय न तो वयस्क मताधिकार था और न ही जनमत संग्रह (।) संविधान के बनने के दो वर्ष बाद ही संसद तथा राज्यों की विधानमण्डलों के सदस्यों का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ था। संविधान सभा के लगभग सभी सदस्य चुने गए थे। यदि जनता के इन चुने हुए प्रतिनिधियों को यह संविधान स्वीकार न होता तो वे अवश्य ही नया संविधान तैयार करते। जनता भी नए संविधान की माँग कर सकती थी, परन्तु उन्होंने ऐसी कोई माँग नहीं की। इस प्रकार प्रस्तावना यह संकेत है कि भारत का संविधान लोगों का संविधान है, बिल्कुल सही है। संवैधानिक शाक्तियों का स्रोत्र लोग हैं।

2. **भारतीय शासन व्यवस्था का स्वरूपः** संविधान की प्रस्तावना में हमें भारत की शासन व्यवस्था के स्वरूप का भी पता चलता है। प्रस्तावना में भारत को प्रभुत्व–सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाए जाने की घोषणा की गई है। 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में समाजवादी व धर्मनिरपेक्ष शब्दों को अंकित किया गया है, अतः भारतीय शासन व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ हैंः–

   (i) ***सम्प्रभु राज्यः***–प्रस्तावना में भारत को सम्प्रभु राज्य घोषित किया गया है। इसका अर्थ भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है अर्थात् वह किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं है। यह सम्प्रभुता भारत की जनता में निहित है।

   भारत 15 अगस्त, 1947 से पहले विदेशी सत्ता के अधीन था। लेकिन आज भारत को स्वतन्त्र हुए 54 वर्ष बीत गए हैं। जब से लेकर अब तक लोगों ने फिर भी कुछ सुधार किए हैं। लेकिन आज किसी भी विदेशी शक्ति को इसकी विदेश–नीति तथा गह–नीतियों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं हैं। यह ठीक है कि भारत आज भी राष्ट्रमण्डल

का सदस्य है, परन्तु इसकी सदस्यता स्वतन्त्रता पर कोई बन्धन नहीं है। वैसे राष्ट्रमण्डल स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक ऐच्छिक समुदाय है, जो पारस्परिक सहयोग तथा सहायता द्वारा अपनी सामान्य समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते है। प. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "भारत को क्षण के लिए भी राष्ट्रमण्डल में रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। हम अपनी इच्छा से राष्ट्रमण्डल के सदस्य बने हैं तथा इच्छानुसार उसे त्याग सकते हैं। कोई भी शक्ति हमें अपनी इच्छा के विपरीत उसका सदस्य बने रहने के लिए बाध्य नहीं कर सकती।"

(ii) ***इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत प्रभुत्व सम्पन्न देश है:*** 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में समाजवादी शब्दों को जोड़ा गया था। प्रस्तावना में समाजवादी शब्द अंकित करने से सामाजिक तथा आर्थिक तत्त्व दढ़ हो गए हैं। समाजवाद जीवन की एक विधि है जिसको हमारे देश ने ग्रहण किया है। 42वें संशोधन द्वारा राज्यनीति के निर्देशक सिद्धान्तों में कुछ समाजवादी सिद्धान्त सम्मिलित किए हैं। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 39 (f) में यह लिखा गया है कि "राज्य विशेष रूप से ऐसी नीति का निर्माण करें जिसके द्वारा–बच्चों को स्वतन्त्रता तथा गौरव की अवस्थाओं में समग्र रूप से विकसित होने के लिए अवसर तथा सुविधाएँ प्राप्त हो सकें तथा बच्चों तथा युवकों की रक्षा हो सके।" 39ए द्वारा निःशुल्क कानूनी सहायता की व्यवस्था की गई है।

श्रीमती इन्दिरा गांधी ने समाजवादी समाज की स्थापना के लिए 20 सूत्रीय कार्यक्रम अपनाया और इसे लागू करने के लिए राज्यों को कड़े निर्देश दिए गए। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने एक भाषण में कहा था कि "हम एक ऐसे समाज का निर्माण करने के लिए यत्न कर रहे हैं जिसमें लोगों को राजनीतिक निर्णय करने तथा आर्थिक विकास में भाग लेने के पूर्ण अवसर प्राप्त होंगे। हम चाहेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति को गणना का एक अंक नहीं बल्कि एक विशेष व्यक्तित्त्व समझा जाए।" इस प्रकार सरकार ने गरीबों व बेरोजगारों की समस्याओं को हल करने के लिए अनेक कदम उठाए।

(iii) ***भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है:*** 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्ष शब्द अंकित किया गया। धर्मनिरपेक्ष की धारणा संविधान में "विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता" की पदावली में निहित थी। लेकिन अब किसी भी धर्म को विशेष नहीं माना जाना चाहिए। भारत बहुधर्मी राष्ट्र हैं। किसी को भी धर्म मानने का अधिकार है, कोई किसी भी धर्म को मान सकता है और न किसी दूसरे धर्म की आलोचना कर सकता है। लेकिन राज्य धर्म में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

(iv) ***भारत एक प्रजातान्त्रिक राज्य:*** संविधान के Preamble में भारत को लोकतन्त्रीय राज्य घोषित किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि शासन शक्ति किसी व्यक्ति विशेष या वर्ग विशेष के हाथों में नहीं बल्कि समस्त जनता के पास है। लोग शासन चलाने के लिए अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं और ये प्रतिनिधि अपने कार्यों के लिए समस्त जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। भारत के प्रत्येक नागरिक को चाहे वह किसी भी धर्म, सम्प्रदाय तथा जाति से सम्बन्धित क्यों न हो सबको समान अधिकार प्राप्त हैं।

(v) ***भारत एक गणराज्य:*** प्रस्तावना में भारत को लोकतन्त्र के साथ–साथ गणराज्य भी घोषित किया गया है। कुछ लोग कहते हैं कि लोकतन्त्र घोषित करने के बाद गणराज्य घोषित करना उचित नहीं है। लेकिन ये गलत है क्योंकि एक राज्य लोकतन्त्रीय तो हो सकता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह गणराज्य भी है। उदाहरणतया, इंग्लैंड और जापान प्रजातन्त्रीय राज्य तो हैं, परन्तु वे गणराज्य नहीं हैं। गणराज्य की प्रमुख विशेषता यह होती है कि राज्य का मुखिया कोई पैतक राजा या रानी नहीं होता बल्कि जनता द्वारा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में चुना जाता है। इस प्रकार भारत गणराज्य है।

न्याय

संविधान का उद्देश्य है कि भारत के सभी नागरिकों को न्याय मिले और जीवन के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक किसी भी क्षेत्र में नागरिकों के साथ अन्याय न हो। इस बहुमुखी न्याय से दो नागरिकों के जीवन का पूर्ण विकास सम्भव है और इसकी प्राप्ति लोकतन्त्रात्मक ढाँचे से ही हो सकती है।

(i) ***आर्थिक न्याय***–इससे अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आजीविका कमाने के समान अवसर प्राप्त हो तथा उसके कार्य के लिए उचित वेतन प्राप्त हो।

(ii) ***सामाजिक न्याय***–इसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए।

(iii) ***राजनीतिक न्यायः***– सभी व्यक्तियों को धर्म, जाति, लिंग, आदि के भेदभाव के बिना राजनीतिक अधिकार प्राप्त हों अर्थात् चुनाव लड़ने का अधिकार आदि।

(2) **स्वतन्त्रताः**– संविधान के अनुसार सभी नागरिकों को स्वतन्त्रताएँ प्रदान की हैं। सभी व्यक्तियों को अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता, अपनी इच्छा तथा बुद्धि के अनुसार किसी भी बात में विश्वास रखने की स्वतन्त्रता सभी को ये अधिकार प्राप्त हैं।

(3) **समानताः**– समानता प्रजातन्त्र का मूल आधार है। समानता के बिना स्वतन्त्रता एक धोखा है। समानता और स्वतन्त्रता एक दूसरे की पूरक हैं तथा लोकतंत्र में साथ साथ चलती हैं। सभी व्यक्तियों को समान अधिकार प्राप्त हैं। धर्म, जाति, लिंग, और रंग–रूप के आधार पर कोई भेदभाव नहीं है। सब समान हैं। अनुच्छेद 14 में सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समानता तथा सुरक्षा प्रदान की गई है। अनुच्छेद 15 में राज्य किसी भी नागरिक के साथ रंग, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। अनुच्छेद 16 में सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्रदान की गई है। अनुच्छेद 17 में छुआछूत को समाप्त कर दिया गया। अनुच्छेद 18 में शिक्षा तथा सैनिक उपाधियों को छोड़कर अन्य उपाधियाँ समाप्त कर दी गई हैं।

(4) **बन्धुत्त्वः**– भारतीय संविधान की प्रस्तावना में बन्धुत्त्व की भावना को विकसित करने पर बल दिया गया है। साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयवाद, भाषावाद आदि सभी बुराईयों को समाप्त करना है। "न्याय, स्वतन्त्रता और समानता के आधार पर निर्मित नए राष्ट्र का उद्देश्य यह था कि सभी यह अनुभव करें कि वे एक ही धरती के बच्चे हैं, उनकी मातभूमि एक है तथा उनका एक ही भ्रातभाव है।"

(5) **व्यक्तिगत गौरव को स्थापित करने का विश्वासः**– Preamble में व्यक्ति के गौरव को बनाए रखने की घोषणा की गई है। स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेजों ने भारतीयों के गौरव को मान्यता नहीं दी थी और भारतीयों के गौरव को समाप्त करने के लिए हर संभव प्रयास किया था। स्वतन्त्रता के पश्चात्, भारतीयों में गौरव बनाए रखने के लिए प्रस्ताव में इस बात की घोषणा की गई। क्योंकि संविधान–निर्माता अच्छी तरह इस बात को समझते थे कि बिना गौरव अनुभव किए कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता, इसलिए सभी व्यक्तियों को मौलिक अधिकार समान रूप से दिए गए हैं।

(6) **राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता की स्थापनाः**– अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति के कारण भारत का विभाजन हुआ था, इसलिए संविधान निर्माता भारत की एकता को बनाए रखने के बड़े इच्छुक थे, अतः संविधान की प्रस्तावना में राष्ट्र की एकता बनाए रखने की घोषणा की गई। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारत को धर्म–निरपेक्ष राज्य बनाया गया, सभी नागरिकों को भारत की नागरिकता प्रदान की गई। भारत के संविधान 18 में भारतीय भाषाओं को मान्यता दी गई। 42वें संशोधन द्वारा राष्ट्र की एकता के साथ अखण्डता शब्द जोड़ा गया।

प्रस्तावना में संशोधन

गोपालन बनाम मद्रास राज्य मामले में यह कहा गया कि प्रस्तावना जो भारत को एक प्रजातान्त्रिक संविधान प्रदान करती है, कानूनों की व्याख्या करते समय निर्देशित मान लेना चाहिए और धारा 21 के तहत बना कोई भी कानून यदि प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन करता है तो उसे अवैध करार दे दिया जाए। परन्तु उच्चतम न्यायालय के जजों की बहुमत पीठ ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि धारा 21 के तहत बने कानून को प्रस्तावना का वास्ता देकर संशोधित नहीं किया जा सकता है।

परन्तु गोपालन के मामले के बाद उच्चतम न्यायालय ने केशवानन्द बदली और खण्डपीठ के बहुमत जजों ने कहा कि प्रस्तावना को ध्यान में रखना चाहिए और धारा 368 के तहत संसद को संविधान के मौलिक ढाँचे को संशोधित करने का अधिकार नहीं मिल पाया है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तावना को संविधान का अंग माना और कहा कि इसके साथ खिलवाड़ नहीं किया जाना चाहिए।

सारांशः– इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना सर्वोत्तम रूप से लिखी गई है। यह संसार के अन्य संविधानों से बेहतर है। जहाँ तक आदर्शों की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, इसमें संविधान की आत्मा निवास करती है और

भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँधने का निश्चय किया ताकि एक नए भारत का निर्माण किया जा सके। हमारे देश में न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्त्व सर्वोपरि रहे हैं। संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने प्रस्तावना को संविधान का अमूल्य भाग माना है। इस प्रकार संविधान की प्रस्तावना समानता, राजनैतिक, नैतिक व धार्मिक मूल्यों का स्पष्टीकरण करती है जिन्हें संविधान प्रोत्साहित करता है।

अध्याय-5
मौलिक अधिकार
(Fundamental Rights)

किसी भी लोकतन्त्रीय देश का मुख्य उद्देश्य नागरिकों के व्यक्तित्त्व का उच्चतम विकास करना है और ऐसा करने के लिए आवश्यक है उन्हें अधिक से अधिक अधिकार एवं सुविधाएँ दी जाएँ। लास्की ने कहा है कि किसी भी राज्य की पहचान उसके द्वारा नागरिकों को दिए गए अधिकारों से की जा सकती है क्योंकि ये मानवीय जीवन का अभिन्न अंग होते हैं। ये किसी भी देश में सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति का कारण बनते हैं। 1215 में इंग्लैंड में जनता ने राजा जॉन को विवश किया कि वे 'मैगना कार्टा' पर हस्ताक्षर करें जिससे उनकी स्वतंत्रताएँ पुनः बहाल हो सकें। इसी प्रकार फ्राँस में 1789 में व्यक्ति के अधिकारों की घोषणा की गई। परन्तु अमेरिका पहला राष्ट्र था जिसने सर्वप्रथम अपने संविधान में मौलिक अधिकारों को शामिल किया।

भारत में अधिकारों की उत्पत्ति

सर्वप्रथम लास्की ने अधिकारों की अवधारणा को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है पहली बार भारतीय संविधान बिल, 1895 में अधिकारों की माँग की गई। इसके बाद 1917 और 1919 में कांग्रेस ने कई प्रस्ताव पारित किए और अंग्रेजों के समान नागरिक अधिकार एवं स्तर की माँग की। श्रीमती ऐनी बैसन्ट ने भारत के कॉमन वैल्थ बिल, 1925 के माध्यम से और मोती लाल नेहरू समिति ने अपनी रिपोर्ट, 1928 में सिफारिश की कि भारतीयों को कुछ विशेष मौलिक अधिकार दिए जाएँ। परन्तु साईमन आयोग, 1930 ने इन्हें स्वीकार नहीं किया।

इसके पश्चात कांग्रेस ने अपने कराची सत्र, 1930 में और गाँधी ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में इन अधिकारों की माँग पुनः की। लेकिन संयुक्त संसदीय समिति 1934 ने इस माँग को फिर रद्द कर दिया और कहा कि ऐसा प्रावधान अभी किसी भी अधिनियम में विराजमान नहीं है। द्वितीय विश्वयुद्ध के शुरु होते ही सभी बड़े कांग्रेस नेताओं को जल में डाल दिया गया। इसके बाद 1945 में 'सपरू रिपोर्ट' प्रकाशित हुई जिसमें सिफारिश की गई कि भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों को शामिल कर लिया जाए। इसके बाद संविधान सभा ने मौलिक एवं अल्प संख्यक अधिकारों के बारे में सिफारिश देने के लिए एक सलाहकार समिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष सरदार पटेल थे। इस समिति ने एक उपसमिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष जे० बी० कृपलानी थे। इस समिति द्वारा अधिकारों की सूची तैयार करते समय अमेरिका के 'अधिकार पत्र' (बिल ऑफ राइटस) का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया और इसी कारण भारत के संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार अमेरिका के अधिकारों से काफी मिलते जुलते हैं।

परिभाषा एवं उद्देश्य

संविधान में मौलिक अधिकारों की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। परन्तु यदि इसका शाब्दिक अर्थ लिया जाए तो इन्हें 'मौलिक' इसलिए कहा जाता है कि इन्हें देश के मौलिक कानून अथवा संविधान में शामिल किया गया है, ये न्यायसंगत हैं, जिन्हें न्यायालय लागू कर सकते हैं, ये सभी नागरिको को प्राप्त हैं। ये मौलिक इसलिए भी हैं कि सभी सार्वजनिक सत्ताएँः—केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय सरकार उन्हें मानने के लिए बाध्य हैं। सुभाष कश्यप ने अपनी पुस्तक राजनीति कोष में कहा है कि इन अधिकारों को आसानी से संशोधित नहीं किया जा सकता।

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के मामले में इन अधिकारों को नैसर्गिक और अप्रतिक्षेय माना है। इस मत की पुष्टि मेनका गाँधी मामले में भी की गई है।

इस प्रकार मूल अधिकार वे आधारभूत अधिकार हैं जो नागरिकों के बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक ही नह वरन् अपरिहार्य हैं। इन अधिकारों के अभाव में व्यक्ति का बहुमुखी विकास संभव नहीं है।

संविधान में मूल अधिकारों के समावेश का उद्देश्य उन मूल्यों का सरंक्षण है जो एक स्वतंत्र समाज के लिए अपरिहार्य हैं। न्यायमूर्ति सप्रू ने इन अधिकारों के उद्देश्यों की व्याख्या इस प्रकार की हैः–

1. भारत में रहने वाले नागरिकों को अधिकारों की सुरक्षा और समानता प्रदान करना।
2. नागरिकों के व्यवहार, न्याय और निष्पक्षता का एक निश्चित मापदण्ड निर्धारित करना।
3. विशेषाधिकारों को समाप्त करना।

इनके अन्य उद्देश्य इस प्रकार हैंः–

1. मूल राजकीय सत्ता के विरुद्ध व्यक्ति के हितों की रक्षा करना।
2. व्यक्ति की प्रतिष्ठा बनाए रखने वाली परिस्थितियों को उत्पन्न करना।
3. व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में सामंजस्य स्थापित करना।

संविधान द्वारा स्वतः निर्धारण

भारत में अमेरिका की भाँति मूल अधिकारों पर निर्बन्धनों के निर्धारण का कार्य न्यायपालिका पर नहीं छोड़ा गया है बल्कि ये स्वयं संविधान में ही निहित है। संविधान जहाँ अधिकारों के उपयोग की बात करता है वह उनके उपयोग की सीमा भी निर्धारित करता है। प्रत्येक अनुच्छेद में उन आधारों का उल्लेख किया गया है जिनमें मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाए गए हैं।

मूल अधिकारों के विशिष्ट लक्षण

1. ये न्याय संगत हैं।
2. ये अधिकार पूर्णतः निरपेक्ष नहीं हैं।
3. इन अधिकारों के उपयोग के सम्बन्ध में नागरिकों और विदेशियों में अन्तर किया गया है।

जैसे कानून के समक्ष समानता, धार्मिक स्वतंत्रता आदि अधिकार नागरिकों और विदेशियों के लिए समान हैं जबकि भाषण और सम्मेलन की स्वतंत्रता के साथ सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार केवल नागरिकों के लिए हैं।

4. ये निलम्बित किए जा सकते हैं।
5. इनमें संशोधन किया जा सकता है।
6. नागरिक स्वतंत्रताओं पर अधिक जोर दिया गया है।
7. ये अधिकार प्राकृतिक नह हैं।
8. डी० डी० बसु के अनुसार सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये व्यक्तिगत अधिकारों और सामूहिक हितों में सन्तुलन स्थापित करने की लिखित गारन्टी देते हैं।
9. सीमित सरकार की स्थापना पर बल दिया गया है।

विभिन्न मूल अधिकार

भारतीय संविधान में मूल अधिकारों का वर्णन इसके तीसरे भाग में धारा 12 से 35 तक किया गया है। विभिन्न संवैधानिक संशोधनों के परिणामस्वरूप इनमें अन्य उपधाराएँ भी जोड़ी गई हैं। 44वें संशोधन द्वारा धारा 31 को निकाल दिया गया है जो निजी सम्पत्ति के अधिकार से सम्बन्धित थी। इस प्रकार 7 की बजाए 6 मूल अधिकार बाकी बचे हैं। जो इस प्रकार हैंः–

1. समानता का अधिकार (धारा 14 से 18)
2. स्वतंत्रता का अधिकार (धारा 19 से 22)
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (धारा 23 से 24)

4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (धारा 25 से 28)
5. सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (धारा 29 से 30)
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (धारा 32)

समानता का अधिकार (14-18)

श्री निवासन के अनुसार इस अधिकार का उद्देश्य नागरिकों को राज्य द्वारा प्रशासनिक और वैधानिक क्षेत्रों में किए जाने वाले भेदभाव पूर्ण व्यवहार से सुरक्षित करना है और सामाजिक असमानता के असंस्कृत रूप को कम करना है। इस अधिकार के माध्यम से भारतीय सीमा में रह रहे सभी व्यक्तियों को कानून के सामने समान माना गया है। इसकी उत्पत्ति इंग्लैंड में हुई जिसका अर्थ है कि किसी व्यक्ति को विशेषाधिकार न देना। कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है। भारत ने यह अधिकार आयरलैंड के संविधान से लिया है।

धारा 14 के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए भारत के उच्चतम न्यायलय में निम्न सिद्धान्तों की स्थापना की गई हैंः–

1. समान सुरक्षा का अर्थ है कि समान परिस्थितियों में सबके साथ समान व्यवहार किया जाए और समान कानून लागू हों।
2. कानून बनाने के लिए राज्य तर्क संगत श्रेणियाँ बना सकता है।
3. कानून को चुनौती देने वाले का उत्तरदायित्त्व है कि वह प्रमाण सहित इसे साबित करे।

धारा 15 के तहत सामाजिक भेदभाव करने की मनाही की गई है। एम.बी.पायली ने कहा है कि धारा 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव की मनाही करता है परन्तु ये अधिकार धारा 14 से भिन्न केवल भारतीय नागरिकों को ही दिए गए हैं। नागरिकों के दुकानों, होटलों तथा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों पर प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा। कुओं, तालाबों, स्नानघरों, सड़कों एवं सैर के स्थानों जिनकी राज्य कानून द्वारा अंशतः या पूर्णतया देखभाल की जाती है, किसी भी नागरिक के प्रवेश को अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता।

परन्तु यह धारा राज्य को स्त्रियों, बच्चों, पिछड़ी हुई जातियों के लिए विशेष प्रबन्ध से नहीं रोकती। उदाहरणतया यदि सरकार बच्चों एवं स्त्रियों के लिए अलग पार्क बनाती है और उसमें पुरुषों के प्रवेश पर रोक लगाती है तो इसे अनुचित भेदभाव नहीं माना जाएगा। संविधान सभा के सदस्य के० टी० शाह इस प्रावधान के कट्टर समर्थक थे।

धारा 16 के अनुसार सरकारी नौकरियों में सभी के लिए समान अवसर होंगे परन्तु सरकार निवास सम्बन्धी शर्तें लगा सकती है। पिछड़े वर्गों के लिए स्थान आरक्षित रख सकती है।

धारा 17 में अस्पश्यता को समाप्त करने का प्रावधान रखा गया है। किसी भी व्यक्ति को अछूत समझना या व्यवहार करना कानूनी अपराध है। इसलिए 1955 में छूआछूत अपराध अधिनियम पास किया गया जिसके तहत ऐसे अपराध करने वाले व्यक्ति को छः महीने का कारावास या 500 रु० जुर्माना हो सकता है। 1976 में इसे संशोधित करके इन प्रावधानों को और कड़ा बना दिया गया है और इस अधिनियम का नाम बदल कर नागरिक अधिकार सुरक्षा अधिनियम रखा गया है। दण्ड प्राप्त व्यक्ति कोई भी चुनाव लड़ने के अयोग्य माना जाता है।

धारा 18 के तहत उपाधियों का उन्मूलन कर दिया गया है ताकि जनता में कृत्रिम भेदभाव फैलाने की परिस्थितियों के ऊपर अंकुश रहे।

धारा 18 (1) के अनुसार सेना या विद्या सम्बन्धी उपाधि के सिवाय और कोई खिताब राज्य प्रदान नहीं करेगा। 18(2) के अनुसार भारत का नागरिक किसी विदेशी राज्य से खिताब प्राप्त नहीं करेगा। 18 (3) में प्रावधान है कि कोई भी विदेशी व्यक्ति जो भारत में किसी लाभ या विश्वास के पद नियुक्त है, भारत के राष्ट्रपति की स्वीकृति के बिना कोई उपाधि प्राप्त नहीं करेगा।

इस प्रकार धारा 18 निदेशात्मक है आदेशात्मक नह, क्योंकि इस की अवहेलना करने वाले व्यक्ति के खिलाफ संविधान में किसी दण्ड व्यवस्था का प्रावधान नहीं किया गया है यह कार्य संसद पर छोड़ दिया गया है। भारत में दी जाने वाली उपाधियों के खिलाफ नवम्बर 1970 में संसद में एक बिल पेश किया गया जो पास नह हो सका। परन्तु 1977 में राष्ट्रपति के अध्यादेश द्वारा इन उपाधियों को बन्द कर दिया गया।

स्वतन्त्रता का अधिकार (धारा 19-22)

पायली के अनुसार स्वतंत्रता का अधिकार मौलिक अधिकारों में सर्वोच्च स्थान रखता है और उन्हें 'स्वतंत्रता के अधिकार पत्र' कहा जाता है। 19 का अनुच्छेद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके तहत निम्नलिखित व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं का वर्णन हैः–

1. विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
2. सभा करने की स्वतंत्रता।
3. संघ बनाने की स्वतंत्रता।
4. भ्रमण करने की स्वतंत्रता।
5. आवास की स्वतंत्रता।
6. व्यापार, व्यवसाय, पेशा करने की स्वतंत्रता।

सातवीं स्वतंत्रता जो सम्पत्ति के अधिकार से सम्बन्धित थी उसे 44वें संविधान संशोधन द्वारा 1978 से निरस्त कर दिया गया है।

परन्तु इन स्वतंत्रताओं के प्रयोग पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए गए हैं, जैसे भाषण देते समय राज्य में शान्ति एवं सुरक्षा, प्रभुसत्ता एवं अखण्डता, विदेशी के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध आदि को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार एवं नैतिकता, न्यायालय का सम्मान आदि भी मद्देनजर रखे जाने चाहिएँ। किसी भी व्यक्ति को मानहानि एवं हिंसा को प्रोत्साहन देने की छूट नहीं दी जा सकती। किसी सभा के आयोजन में यह आवश्यक है कि यह शान्तिपूर्ण एवं निशस्त्र हो।

धारा 20 के तहत अपराध की दोष–सिद्धि के विषय में संरक्षण दिया गया है। (1) किसी भी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए तब तक दण्डित नहीं किया जा सकता जब तक यह सिद्ध नहीं किया जाए कि उसने अपराध करते समय किसी प्रचलित कानून का उल्लंघन किया है। (2) अपराध करने वाले व्यक्ति को उतने से अधिक दण्ड नहीं दिया जाएगा जो अपराध करने के समय प्रवत्त कानून के अधीन प्रावधान है, (3) कोई भी व्यक्ति एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दण्डित नहीं किया जा सकता। (4) किसी भी अपराध में कोई अभियुक्त स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

धारा 21 के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जीवन की सुरक्षा का प्रावधान है। किसी भी व्यक्ति को उसके प्राण और दैहिक स्वाधीनता से वांछित नहीं किया जा सकता।

मेनका गाँधी मामला 1978 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि जीवन का अर्थ है 'गौरवपूर्ण जीवन' न कि केवल 'अस्तित्व'। कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का अर्थ है कि यह तर्क संगत और उचित भी होनी चाहिए। इस मामले में अमेरिका में प्रचलित 'कानून की उचित प्रक्रिया' को भी मद्देनजर रखा गया और मेनका गाँधी के पासपोर्ट को बिना वजह जब्त करने को अवैध ठहराया गया। 1993 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस धारा में शिक्षा का अधिकार भी शामिल किया क्योंकि इसके माध्यम से गौरवर्पूण जीवन संभव हो सकता है।

धारा 22 में बन्दीकरण तथा नजरबन्दी से बचाव की व्यवस्था की गई है। इसके अन्तर्गत बन्दी व्यक्ति को कुछ संवैधानिक अधिकार दिए गए हैं और निवारक नजरबन्दी (□□□□□□□□□□ □□□□□□□□□)के बारे में व्यवस्था है। जैसे (1) किसी भी गिरफ्तार व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के कारण से यथाशीघ्र अवगत किए बिना बन्दी बना कर नह रखा जा सकता है (2) उसे अपनी पसन्द के वकील से परामर्श करने तथा उससे अपने पक्ष की सफाई दिलवाने के अधिकार से वांछित नहीं रखा जाएगा। (3) उसे गिरफ्तारी के 24 घंटे के अन्दर नजदीक के न्यायाधीश के सामने पेश किया जाएगा। (4) उसे न्यायालय की आज्ञा के बिना 24 घंटे से अधिक हिरासत में नहीं रखा जाएगा।

परन्तु ये अधिकार उन बन्दियों पर लागू नहीं होंगे जो विदेशी शत्रु राष्ट्र के साथ मिले हुए हैं और जिन्हें निवारक नजरबन्दी के तहत गिरफ्तार किया गया है।

निवारक (निरोध): धारा 22 जो बन्दीकरण तथा नजरबन्दी के बचाव का प्रावधान करती है वही उपधारा (4) में निवारक निरोध का प्रावधान भी प्रदान करती है। इसके तहत विधानमंडल को शक्ति दी गई है कि वह राज्य की सुरक्षा के कारणों से सम्बन्धित मामलों के लिए निवारक निरोध का कानून बना सकती है। भारतीय संविधान में इसकी कोई परिभाषा नहीं दी गई है। निवारक

गिरफ्तारी दण्डात्मक गिरफ्तारी से भिन्न है क्योंकि इसका उद्देश्य व्यक्ति को अपराध करने से रोकना या विरुद्ध करना है और इसमें किसी भी व्यक्ति को सन्देह के आधार पर गिरफ्तार किया जा सकता है। अमेरिका एवं इंग्लैंड में ऐसा कोई प्रावधान संविधान में शामिल नहीं किया गया है।

भारत में 1950 में निवारक निरोध अधिनियम बनाया गया। देश में अराजकतावादी तत्त्वों का जोर होने के कारण 1971 में राष्ट्रपति ने 'आन्तरिक सुरक्षा कानून (MISA) का अध्यादेश जारी किया। जनता सरकार ने 1979 में आवश्यक वस्तु पूर्ति एवं काला बाजारी निरोध अध्यादेश जारी किया। इंदिरा सरकार ने 1983 में राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (NSA) अध्यादेश जारी किया। बाद में टाडा कानून घोषित किया गया। अभी हाल में ही राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक मोर्चा सरकार ने पोटा (POTA) अधिनियम, 2002 बनाया है जिसे लेकर राज्यों में काफी मतभेद एवं विरोध है।

लेकिन निवारक निरोध कानून के अन्तर्गत विरुद्ध किए गए व्यक्ति को 44वे संविधान संशोधन, 1978 द्वारा कुछ संरक्षण प्रदान किए गए हैं जैसेः–

(1) गिरफ्तारी का कारण जानने एवं अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अधिकार।

(2) एक सलाहकार बोर्ड द्वारा निवारक निरोधित व्यक्ति के मामले का पुनर्विलोकन करना।

(3) शोषण के विरुद्ध अधिकार (23–24)

धारा 23 के तहत सभी प्रकार के बलात् श्रम और व्यक्तियों की खरीद–फरोक्त को निषिद्ध किया गया है। किसी भी व्यक्ति से उसकी इच्छा के अनुसार कार्य करवाने की मनाही है।

धारा 24 के तहत 14 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को किसी भी कारखाने या खान में नौकर न रखने और किसी अन्य संकटमय नौकरी में न लगाने का प्रावधान है।

परन्तु राज्य को जनता के हितों के लिए अपने नागरिकों से आवश्यक सेवा करवाने पर पाबन्दी नह है। राज्य सैनिक, विद्या तथा सामाजिक सेवा की व्यवस्था कर सकता है पर ऐसा करते हुए वह धर्म, मूलवंश, जाति अथवा श्रेणी के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

धर्म स्वातंत्रय का अधिकार (25-28)

धारा 25 के तहत अन्तकरण तथा धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता दी गई है। परन्तु राज्य किसी भी धर्म को मानव बलि देने की आज्ञा नहीं दे सकता। धारा 26 के तहत धार्मिक मामलों का प्रबन्ध करने की स्वतंत्रता दी गई है परन्तु ऐसा करते समय सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, तथा स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाएगा।

धारा 27 में किसी भी व्यक्ति को कोई ऐसा कर अदा करने के लिए विवश नह किया जा सकता जिसको इकट्ठा करके किसी धर्म विशेष के विकास एवं संचालन हेतु व्यय किया जाए या किसी धार्मिक वर्ग विशेष के लिए खर्च किया जाए।

धारा 28 में सरकारी शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा पर रोक का प्रावधान है।

संविधान के ये सभी प्रावधान धर्मनिरपेक्ष राज्य की ओर इशारा करते हैं परन्तु विभिन्न राजनैतिक दलों और समूहों ने धर्मनिरपेक्ष शब्द की व्याख्या अपनी–अपनी सुविधानुसार की है। परन्तु भारत के सर्वोच्च न्यायलय ने बम्बई मामले 1994 में कहा कि : राज्य को किसी धर्म के प्रति आक्रामक नहीं होना बल्कि सभी धर्मों के प्रति तटस्थ होना है, धर्म का सरकार एवं राजनैतिक दलों द्वारा राजनैतिक प्रयोग न करना। सर्वोच्च न्यायालय ने 1995 में बाबरी मस्जिद मामले में पुनः कहा कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं इसलिए उसके लिए सभी धर्म समान है।

परन्तु नरसिम्हाराव सरकार द्वारा 'नम्र हिन्दुत्त्व' और वाजपेयी सरकार द्वारा 'हिन्दुत्त्व' या हिन्दू राष्ट्र का कार्ड चुनावों में पेश करना उचित नहीं है।

सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (29-30)

इसके तहत अल्पसंख्यकों को हितों के संरक्षण तथा शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने का मूल अधिकार प्रदान किया गया है।

धारा 29 के तहत अल्पसंख्यक नागरिकों के सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक हितों के संरक्षण की दो व्यवस्थाएँ हैंः–(1) भारत के राज्य क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों को अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार

है। (2) राज्य द्वारा घोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाले किसी भी शिक्षा संस्थान में प्रवेश में धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता।

धारा 30 शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं संचालन में अल्पसंख्यकों के अधिकारों के बारे में निम्न व्यवस्थाएँ करती हैः–

(1) धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना और संचालन का अधिकार होगा।

(2) शिक्षा संस्थाओं को सहायता देते समय सरकार किसी भी संस्था से धर्म या भाषा के आधार पर भेदभाव नहीं करेगी।

1974 में सर्वोच्च न्यायालय ने गुजरात सरकार द्वारा अल्पसंख्यकों के शिक्षण–संस्थाओं पर प्रतिबन्धों को नकारते हुए कहा कि इन वर्गों को शिक्षण संस्थान स्थापित एवं संचालन करने का पूरा अधिकार है। 1928 में 44वें संविधान संशोधन द्वारा सम्पत्ति का मौलिक अधिकार समाप्त किए जाने पर धारा 30 में भी संशोधन किया गया ताकि अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं की सम्पत्ति को अनिवार्य रूप से लेने के लिए कानून का निर्माण करते समय राज्य इस बात का ध्यान रखेगा कि इससे अल्पसंख्यकों के अधिकार पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार (32-35)

यह भारतीय संविधान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अम्बेडकर ने इस अधिकार को संविधान की आत्मा तथा हृदय बताया है और इसके बिना संविधान शून्य हो जाएगा। यह अधिकार मौलिक अधिकारों के प्रवर्त्तन की बात करता है। देश का कोई भी नागरिक अपने मौलिक अधिकारों के हनन के मामले में धारा 226 के तहत राज्य के उच्च न्यायालय में इसे चुनौती दे सकता है। इस उद्देश्य के लिए विभिन्न उपचारों का प्रावधान किया गया हैं। जैसेः–

1 बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका

2 परमादेश याचिका

3 प्रतिषेध याचिका

4 अधिकार–पच्छा याचिका

5 उत्प्रेषण याचिका

(1) **बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिकाः**– इसका शाब्दिक अर्थ है कि बन्दी बनाए गए व्यक्ति को न्यायालय में पेश करना ताकि कानूनी प्रक्रिया के हिसाब से उसके मामले का निपटारा किया जा सके। ऐसा हिरासत में लेने के 24 घंटे के अन्दर–अन्दर किया जाना चाहिए वरना यह अवैध मानी जाएगी।

(2) **परमादेश याचिकाः**– इसका अर्थ है कि किसी अधिकारी को कुछ करने का आदेश देना। यह आदेश उच्चतम न्यायालय अथवा न्यायालय द्वारा दिया जा सकता है। उदाहरणतया यदि किसी व्यक्ति को सभी योग्यताएँ पूरी करने पर भर्ती कर लिया गया है तो उसे नियुक्ति पत्र दिया जाना चाहिए। यदि सम्बन्धित अधिकारी ऐसा नहीं करता तो वह व्यक्ति इस याचिका के माध्यम से न्यायालय में जा सकता है।

(3) **प्रतिषेध याचिकाः**–इसका अर्थ है रोकना अथवा मनाही करना। यह याचिका उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय द्वारा निम्न न्यायालय को जारी की जाती है कि वह अमुक मामले की कार्यवाही बन्द करे जो उसके क्षेत्राधिकार से बाहर है।

(4) **अधिकार-पच्छा याचिकाः** –इसका अर्थ है किसके आदेश से अथवा किस अधिकार से इसके तहत न्यायालय इस बात की जाँच करता है कि कोई भी व्यक्ति किसी सरकारी पद पर अवैध रूप से तो नहीं बैठा है। यदि ऐसा है तो उसे वहाँ से हटाया जा सकता है।

(5) **उत्प्रेषण याचिकाः**–इसका अर्थ है अच्छी प्रकार सूचित करें। यह आदेश वरिष्ठ न्यायालय द्वारा निम्न न्यायालय को देता है कि वह किसी अमुक अभियोग को उसे हस्तातंरित करे। ऐसा क्षेत्राधिकार की कमी और दुरुपयोग के मामले में किया जाता है।

धारा 33 सेना के सदस्यों के प्रति और धारा 34 मार्शल लॉ लागू होने की स्थिति में धारा 32 के अपवाद हैं। धारा 35 में संविधान के मूल्य अधिकारों वाले भाग 3 के उपबन्धों को प्रभावी करने के लिए प्रावधानों का वर्णन किया गया हैं।

मूल्याँकन

मौलिक अधिकारों ने हमारे देश में राजनैतिक और सामाजिक जनतंत्र की स्थापना की है। नागरिकों को प्रदान की गई स्वतंत्रताएँ उनके व्यक्तित्त्व के विकास में मील का पत्थर साबित हुई हैं। फिर भी इन अधिकारों की कुछ कारणों से आलोचना की गई हैं जैसेः–

(1) ये अधिकार आर्थिक पक्ष पर जोर नहीं देते।

(2) ये अधिकार एक हाथ से दिए गए हैं तो दूसरे हाथ से वापिस ले लिए गए हैं।

(3) निवारक निरोध की व्यवस्था से इन अधिकारों का सार समाप्त होता जा रहा है।

(4) मौलिक अधिकारों की भाषा बड़ी जटिल एवं कठिन है और यह आम नागरिकों जो कि ज्यादातर अशिक्षित है, की समझ से बाहर है।

(5) समानता का अधिकार होते हुए भी राष्ट्रपति, मन्त्रियों, विधानमंडल के सदस्यों और राजदूतों के पास विशेषाधिकार हैं।

अन्त में कहा जा सकता है कि इस अधिकारों के होते हुए भी समाज में मूलभूत परिवर्तन नहीं हो पाए हैं। आज जाति, धर्म, लिंग के आधार पर खुले आम भेदभाव किया जाता है। महिलाओं को द्वितीय दर्जे का नागरिक माना जाता है। आजादी के 55 साल बाद भी अछूतों की हालत बहुत दयनीय है। देश की एक–तिहाई जनता गरीबी की रेखा पर बसर करती है। लगभग 2 करोड़ बच्चे बाल मजदूरी करते हैं। धार्मिक एवं जातिगत हिंसा बढ़ रही है।

इन सबका कारण है कि मौलिक अधिकारों को व्यवहार में लाने के लिए नागरिकों को शिक्षा एवं प्रशिक्षण चाहिए। धन का एकत्रण कुछ निजी हाथों में नहीं होने देना चाहिए। सत्ता में धनी लोग बैठे हैं जो अपने हितों को बढ़ावा देते हैं। जरूरत है 'अवसर' की जब स्वतंत्रता को वास्तविक जामा पहनाया जाए और ऐसी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संस्थाएँ स्थापित की जाएँ जो मजदूर एवं किसान को गरीबी, अज्ञानता एवं बीमारी से लड़ने में मदद करें।

रखा गया है। यदि इनको मूल संविधान में रखा जाता तो लोगों में अधिक कर्त्तव्य–परायणता की भावना पैदा हो जाती।

4. **कर्त्तव्यों का अस्पष्ट होना (Duties are Vague)**—मौलिक कर्त्तव्यों में कुछ कर्त्तव्य ही अस्पष्ट हैं जिसके कारण साधारण लोग उनको नही समझ सकते। उदाहरण के लिए, संविधान में आदर्शों के प्रति आदर करना एक कर्त्तव्य है। परन्तु संविधान के क्या आदर्श हैं और किस प्रकार उनका आदर किया जाए—यह स्पष्ट नहीं किया गया। इसी प्रकार दष्टिकोण में वैज्ञानिकता, सुधार की भावना का विकास करना आदि ऐसे कर्त्तव्य हैं जिनका अर्थ लोग भिन्न–भिन्न लगा सकते हैं। इससे कर्त्तव्यों की अस्पष्टता ज्ञात होती है।

5. **मौलिक कर्त्तव्यों में कुछ कर्त्तव्यों का अभाव (Absence of Some Duties)**—संसद के सदनों में जब 42वें संशोधनों के मौलिक कर्त्तव्यों के अनुच्छेद के विषय में वाद–विवाद हो रहा था तो संसद सदस्यों ने सुझाव दिया था कि अनिवार्य मत, अनिवार्य शिक्षा, परिवार नियोजन आदि अन्य विषयों को भी मूल कर्त्तव्यों में निश्चित किया जाए। इस प्रकार मौलिक कर्त्तव्य अपूर्ण दिखाई देते हैं।

6. **मौलिक कर्त्तव्यों को मौलिक अधिकारों के अध्याय में न रखना (No Inclusion of Fundamental Duties with Fundamental Rights)**—आलोचकों ने मौलिक कर्त्तव्यों की इस आधार पर भी आलोचना की है कि इनको मौलिक अधिकारों के साथ रखना चाहिए था जबकि वे राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों के साथ रखे गए हैं। चौथे अध्याय में रखने का औचित्य यह भी हो सकता है कि मौलिक कर्त्तव्य भी राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धान्तों की तरह न्याय संगत नहीं हैं।

स्पष्ट है कि मौलिक कर्त्तव्य भले ही नैतिक नियम हो परन्तु उनका भी अपना महत्त्व है।

मौलिक कर्त्तव्यों का महत्त्व
(Importance of Fundamental Duties)

संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों के निरूपण की, जो 42वें संशोधन, 1976 के अनुसार 51—A अनुच्छेद द्वारा किया गया है, संवैधानिक विद्वानों ने कटु आलोचना की है। आलोचना का मुख्य आधार यह है कि मौलिक कर्त्तव्यों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है। परन्तु मौलिक कर्त्तव्यों का अपना महत्त्व है। इसका वर्णन निम्नलिखित है:

1. **भारतीय लोकतंत्र के लिए आवश्यक (Essential for the Indian Democracy)**–विद्वानों का विचार है कि जिन मौलिक कर्त्तव्यों को संविधान में रखा गया है, उनको अपनाने से लोकतन्त्रीय व्यवस्था मजबूत होती है। उदाहरण के लिए, पर्यावरण का सुरक्षा सम्बन्धी कर्त्तव्य जहाँ वातावरण को दूषित होने से बचाने के लिए लाभदायक है वहाँ इसको अपनाने से व्यक्ति का भी अपना हित है।

2. **नैतिक आदर्श (Moral Ideals)**—संविधान में वर्णित मौलिक कर्त्तव्य एक प्रकार के नैतिक आदर्श हैं। व्यक्ति जिस प्रकार नैतिक आदर्शों को सामाजिक जीवन में अपनाता है उसी प्रकार वह मौलिक कर्त्तव्यों को भी अपनाएगा। मौलिक कर्त्तव्यों से उसे ज्ञान होता है कि उसे किन उद्देश्यों की प्राप्ति करनी है और किन आदशो ं के पालन करने से राष्ट्र का विकास होता है। संसद के संशोधन द्वारा मौलिक अधिकारों के पीछे जो कानूनी व्यवस्था नहीं की गई वह अच्छा ही किया गया क्योंकि इनके पीछे कानूनी शक्ति से नागरिक एक बोझ महसूस करता। अब वह अपनी इच्छा से इन मौलिक अधिकारों का अनुसरण करेगा।

3. **मौलिक कर्त्तव्य स्पष्ट दें (Fundamental Duties are Clear)**— कुछ आलोचकों ने मौलिक कर्त्तव्यों की इस आधार पर आलोचना की है कि ये कर्त्तव्य अस्पष्ट हैं। परन्तु कई कर्त्तव्य जैसे संविधान और उसकी संस्थाओं का सम्मान करना, राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा करना, महिलाओं का सम्मान करना आदि बड़े ही स्पष्ट है इनका किसी नागरिक को अनुसरण करना कोई कठिन कार्य नहीं है।

4. **अधिकार और कर्त्तव्य आपस में सम्बन्धित हैं। (Rights and Duties are Corelated)**—अधिकार और कर्त्तव्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का बड़े ही विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। उचित तो यह था कि संविधान–निर्माण के समय ही मौलिक अधिकारों के साथ मौलिक कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया गया होता। 42वें संशोधन के द्वारा कर्त्तव्यों को संविधान में अंकित करके एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

अध्याय-7
राज्य-नीति के निर्देशक तत्त्व
(Directive Principles of State Policy)

राज्य–नीति के निदेशक तत्त्व हमारे संविधान की संजीवनी व्यवस्थाएँ हैं। इन सिद्धांतों में हमारे संविधान का और उसके सामाजिक न्याय दर्शन का वास्तविक तत्त्व निहित है। ये तत्त्व हमारे संविधान की प्रतिज्ञाओं और आकांक्षाओं को वाणी प्रदान करते हैं। संविधान निदेशक सिद्धान्तों का मार्ग प्रशस्त करता है और निदेशक सिद्धांत एवं उनका क्रियान्वयन संविधान को सामाजिक शक्ति से अभिसंचित करता है। निदेशक सिद्धांतों का प्रयोजन शान्तिपूर्ण तरीकों से सामाजिक क्रान्ति का पथ–प्रशस्त कर कुछ सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को तत्काल सिद्ध करना है। इस प्रकार की सामाजिक क्रान्ति के माध्यम से संविधान सामान्य व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं की पूति करना और हमारे समाज की संरचना में परिवर्तन करना चाहता है। संविधान के भाग चतुर्थ का, जिसमें राज्य–नीति के निदेशक तत्त्वों का विवेचन किया गया है, उद्देश्य उस सामाजिक और आर्थिक–क्रान्ति को मूर्त रूप प्रदान करना है, जिसे स्वाधीनता के पश्चात् पूरा करना बाकी रह गया था। भारतीय संविधान में इन्हें अपनाने की प्रेरणा आयरलैंड से प्राप्त हुई।

निर्देशक तत्त्वों का अर्थ और उद्देश्य
(Meaning and Objectives of Directive Principles)

संविधान के चतुर्थ भाग में अनुच्छेद 36 से 51 तक निदेशक तत्त्वों का उल्लेख किया गया है। राज्य–नीति के निदेशक सिद्धांत देश की विभिन्न सरकारों और सरकारी अभिकरणों के नाम जारी किए गए निर्देश हैं जो देश की शासन–व्यवस्था के मौलिक तत्त्व हैं। दूसरे शब्दों में, निदेशक कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को दिए गए ऐसे निदेश हैं जिनके अनुसार उन्हें अपने अधिकारों का प्रयोग इस प्रकार करना होता है कि इन सिद्धांतों का पूरा और उचित रूप से पालन हो। ये सिद्धांत ऊँचे–ऊँचे आदर्शों की घोषणाएं हैं।"[1] सिद्धांत पथ–प्रदर्शन तथा ऊँची–ऊँची आकांक्षाओं के घोषणा–पत्र हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, "राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों का उद्देश्य जनता के कल्याण को प्रोत्साहित करने वाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है।" इन निदेशक तत्त्वों की प्रकृति के सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 37 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "इस भाग (4) में दिए गए उपबन्धों को किसी भी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेगी, किन्तु फिर भी इसमें दिए हुए तत्त्व देश के शासन में मुलभूत हैं और विधि निर्माण में इन तत्त्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।" संविधान की प्रस्तावना में जिन उद्देश्यों को प्रकट किया गया है उन्हें व्यावहारिक रूप देने के लिए राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों का स्थान दिया गया है। जिस प्रकार 1935 के भारत सरकार अधिनियम में गवर्नर जनरल तथा गवर्नरों के लिए अनुदेश–पत्र जारी किए थे, उसी तरह नए संविधान में निदेशक सिद्धांत हमारे शासनकर्त्ताओं के लिए हिदायतें या अनुदेश हैं। ये सिद्धांत कार्यपालिका तथा विधानमण्डल के लिए निदेश हैं कि उन्हें किस तरह शासन संचालन करना है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, "राज्य के नीति के निदेश सिद्धांत सन् 1935 के अधिनियम में जारी किए गए अनुदेश–पत्रों के समान ही हैं। बस अन्तर केवल यही है कि अधिनियम में गवर्नर–जनरल तथा गवर्नरों को निर्देशन दिए गए थे जबकि इस संविधान में कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को निदेश दिए गए हैं।" सर आइवर जैनिंग्स के अनुसार, "भारतीय संविधान का यह भाग फेवियन समाजवाद की ही स्थापना करता है, जबकि 'समाजवाद' शब्द का उल्लेख नहीं मिला है।" प्रो. पायली के अनुसार, "निदेशक तत्त्व भारतीय प्रशासकों के आचरण के सिद्धांत हैं।" जी.एन.जोशी के शब्दों में, "इन निदेशक तत्त्वों को विधानमण्डलों को कानून बनाते समय और कार्यपालिका को इन तत्त्वों को लागू करते समय ध्यान में रखना चाहिए। ये उस नीति की ओर संकेत करते हैं, जिसका अनुसरण संघ और राज्यों को करना चाहिए।" न्यायाधीश केनिया के अनुसार, "निदेशक तत्त्वों में राष्ट्र की बुद्धिमतापूर्ण स्वीकृति बोल रही है, जो संविधान

सभा के माध्यम से अभिव्यक्त हुई थी।" संक्षेप में ये सिद्धांत शासन की नीतियों को निर्दिष्ट करने के लिए विधान में निहित किए गए हैं। डॉ. पायली ने इसे "आधुनिक संवैधानिक प्रशासन की एक नवीन विशेषता बतलाया है, जिसकी प्रेरणा हमें आयरिश संविधान से ही मिली है। ये सिद्धांत प्रजातन्त्रामक भारत का शिलान्यास करते हैं। जब भारत सरकार इन्हें कार्यरूप में परिणत कर सकेगी तो भारत एक सच्चा लोककल्याणकारी राज्य कहला सकेगा।"

निदेशक सिद्धांतों को संविधान का अंग बनाने में संविधान– निर्माताओं का उद्देश्य क्या था? इन आधारभूत सिद्धांतों का उद्देश्य कल्याणकारी राज्य स्थापित करना है। सामूहिक रूप से ये सिद्धांत भारत में आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र की रचना करते हैं। निदेशक सिद्धांत का वास्तविक महत्त्व इस बात का है कि ये नागरिकों के प्रति राज्य के दायित्त्व के द्योतक हैं। संविधान की प्रस्तावना में जिन आदर्शों की प्राप्ति की इच्छा प्रकट की गई है, ये उन आदर्शों की ओर बढ़ाने के लिए पथ–प्रदर्शन का कार्य करते हैं। जिन आदर्शों की प्राप्ति भारतीय राज्य का लक्ष्य है, ये उन आदर्शों की गणना है।

निर्देशक सिद्धांतों का सार तत्त्व

निर्देशक सिद्धांतों का सार तत्त्व संविधान के अनुच्छेद 38 में दिया गया है जिसमें संविधान की प्रस्तावना की प्रतिध्वनि सुनाई देती है—

"राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था थी, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, भरसक कार्यसाधक के रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक–कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।"

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संविधान के भाग 4 में विभिन्न उपबन्ध निर्धारित किए गए हैं। "संविधान ने राज्य को यह सुनिश्चित करने की आज्ञा दी है कि नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो जिससे कि आर्थिक प्रणाली का संचालन और देश के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण सामान्य जन के अधीन हो; मजदूरों को न केवल निर्वाह–योग्य मजदूरी प्राप्त हो, बल्कि वह इतनी हो जिससे वे अपने बच्चों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखें और उसमें सुधार कर सकें, देश के उपयोगी नागरिक बनने के लिए आगामी पीढ़ी को शिक्षित कर सकें, और अपने जीवन की संध्या में सेवा–निवत्त होकर आराम से रह सकें और उस समय का तथा अन्य सामाजिक और सांस्कृतिक अवसरों का आनन्द लाभ कर सकें; स्त्रियों और बच्चों का विशेष ध्यान रखा जाए और जनता के दुर्बल वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष रूप से संवर्द्धित किया जाए। राज्य के प्राथमिक कर्त्तव्यों में से एक लोगों के सामान्य जीवन–स्तर और घोषणा के स्तर को ऊपर उठाना है। अनुच्छेद 45 में यह आशा व्यक्त की गई है कि 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य और प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी। अन्य निदेशक सिद्धांतों में कृषि, पशुपालन को सुनिश्चित करने का संकल्प निहित है। इस प्रकार ये सिद्धांत राज्य के ऊपर यह ठोस जिम्मेदारी डालते हैं कि वह देश में लोकतंत्र के लिए सदढ़ आधार का निर्माण करे।"

वस्तुतः संविधान के भाग 4 अर्थात् राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों का उद्देश्य देश में उस सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति को मूर्त रूप प्रदान करता है जिससे देश के सभी नागरिकों को सामाजिक और आर्थिक न्याय प्राप्त हो सके, शोषणकारी तत्त्वों की समाप्ति हो, समाज का प्रत्येक सदस्य संयत् स्वतंत्रताओं का उपयोग कर सके, अधिकारों के अविभाज्य अंग के रूप में कर्त्तव्यों की गंगा बहे और देशवासियों में उस दष्टिकोण का विकास हो जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा को बल प्रदान करे। निदेशक सिद्धांत व्यक्तिगत अधिकारों और सामाजिक आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायक होते हैं। इसके समुचित कार्यान्वयन पर आदर्श लोकतंत्र की इमारत खड़ी की जा सकती है। नीति–निदेशक तत्त्व हमारे संविधान के भाग 3 में है। उनकी जड़ें भारतीय संस्कृति के अतीत के साथ जुड़ी हुई हैं। "ये भारत के भविष्य, वर्तमान और भूत को एक–दूसरे से सम्बन्धित करते हैं और हमारे महान प्राचीन देश में सामाजिक क्रान्ति का अलख जगाते हैं।" निसन्देह नीति–निदेशक सिद्धांत देश में लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना करते हैं।

नीति निर्देशक तत्त्वों का महत्त्व
(Importance of Directive Principles)

नीति निदेशक तत्त्वों की जो आलोचना की गई है उसका यह तात्पर्य नहीं लिया जाना चाहिए कि वे बिल्कुल व्यर्थ और महत्त्वहीन हैं। वास्तव में, संवैधानिक और व्यावहारिक दष्टिकोण से नीति निदेशक तत्त्वों का बहुत अधिक महत्त्व है। न्यायमूर्ति हेगड़े के अनुसार, यदि हमारे संविधान के कई भाग ऐसे हैं जिन पर सावधानी और गहराई से विचार करने की आवश्यकता है तो वे हैं–भाग तीन और चार। उनमें हमारे संविधान का दर्शन निहित है और एक लेखक के शब्दों में, "वे हमारे संविधान की अन्तरात्मा

हैं।" डॉ. पायली के अनुसार, "इन निदेशक तत्त्वों का महत्त्व इस बात में है कि ये नागरिकों के प्रति राज्य के सकारात्मक दायित्त्व हैं। " इन तत्त्वों के महत्त्व का अध्ययन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता हैं।

(1) **असंगत तथा असामयिक होने के तर्क गलत (Directive Principles are neither Inconsistent nor out of date)**—नीति निदेशक तत्त्वों के सम्बन्ध में प्रो. जैनिंग्ज और श्रीनिवासन जैसे व्यक्तियों की यह आलोचना नितान्त अनुचित है कि तत्त्व असंगत तथा असामयिक हैं। वास्तव में ये विचार केवल विदेशी नहीं हैं वरन् इस अध्याय के अनेक उपबन्ध पूर्णरूप में भारतीय हैं। यद्यपि 21 वीं सदी में यह सिद्धांत पुराने पड़ जाएंगे और अव्यावहारिक हो जाएंगे, लेकिन कम—से—कम 20वीं सदी के भारत मे ये सिद्धांत उपयोगी तथा व्यावहारिक प्रतीत होते हैं। पुनः प्रो. एम.बी.पायली के शब्दों में, "यदि कभी ये सिद्धांत पुराने पड़ जाएंगे तो इनका आवश्यकतानुसार संशोधन किया जा सकता है क्योंकि संशोधन प्रक्रिया अत्यन्त सरल है। जब तक इनके संशोधन करने का समय आएगा, तब तक भारत इनका पूरा लाभ उठा चुका होगा और भारत भूमि में आर्थिक लोकतंत्र की जड़ें गहरी हो चुकी होंगी। संविधान का निर्माण वर्तमान समस्याओं को सुलझाने के लिए होता है। यदि हम वर्तमान का निर्माण सुदढ़ नींव पर करें तो भविष्य की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।"

(2) **निदेशक तत्त्वों के पीछे जनमत की शक्ति (Power of Public Opinion behind the Principles)**—यद्यपि इन निदेशक तत्त्वों को न्यायालय द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता, लेकिन इसके पीछे जनमत की सत्ता होती है, जो प्रजातंत्र का सबसे बड़ा न्यायालय है। अतः जनता के प्रति उत्तरदायी कोई भी सरकार इनकी अवहेलना का साहस नहीं कर सकती। शासन द्वारा किया गया इनका बार—बार उल्लंघन देश में शक्तिशाली विरोध को जन्म देगा। व्यवस्थापिका के भीतर शासन को विरोधी दल के प्रहारों का सामना करना पड़ेगा और व्यवस्थापिका के बाहर इसे निर्वाचन के समय निर्वाचकों को जवाब देना होगा। निदेशक तत्त्वों के पीछे जनमत की इस शक्ति के कारण शासक दल को इनकी क्रियान्विति के प्रति पर्याप्त उत्साह का परिचय देना होगा। प्रो. पायली के अनुसार, "ये निदेशक तत्त्व राष्ट्रीय चेतना के आधारभूत स्तर का निर्माण करते हैं और जिनके द्वारा इन तत्त्वों का उल्लंघन किया जाता है, वे ऐसा कार्य उत्तरदायित्त्व की स्थिति से अलग होने के जोखिम पर ही करते हैं।" आलोचक राघवाचारी भी स्वीकार करते हैं कि "जो शासन सत्ता पर आधिपत्य बना, उसे इस अनुदेश—पत्र का आदर करना ही होगा.... आगामी आम चुनाव में उसे इस सम्बन्ध में निर्वाचकों को जवाब देना ही पड़ता है।" ऐसी स्थिति में श्री अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर ने संविधान सभा में ठीक ही कहा था कि "कोई लोकप्रिय मन्त्रिमंडल संविधान के चतुर्थ भाग के सम्बन्धों के उल्लंघन का साहस नहीं कर सकता है।"

(3) **चरम सीमाओं से रक्षा (An Insurance Against Extremes)**—हमारे संविधान निर्माता इस तथ्य से पूर्णतया परिचित थे कि प्रजातान्त्रिक राज्य में परिवर्तनशील जनमत के परिणामस्वरूप विभिन्न समयों में विभिन्न राजनीतिक दल सत्तारूढ़ हो सकते हैं। कभी दक्षिणपंथी दल शासन सत्ता पर अधिकार कर सकता है और कभी कोई वामपंथी दल। निदेशक तत्त्व दोनों प्रकार की सरकारों को मर्यादित रखेंगे तथा उन्हें किसी प्रकार का एक तरफ झुकाव रखने से रोकेंगे। श्री अमरनन्दी के अनुसार, "संविधान के निदेशक तत्त्व इस बात का आश्वासन देते हैं कि अनुदार दल अपनी नीति के निर्धारण में इन तत्त्वों की पूर्ण अवहेलना नहीं कर सकेगा और एक उग्रवादी दल अपने दल के आर्थिक या अन्य कार्यक्रम को पूरा करने के लिए संविधान का अंत करना आवश्यक नहीं समझेगा। इस प्रकार निदेशक तत्त्व वाम और दक्षिण पन्थ की चरम सीमाओं से सुरक्षा प्रदान करते हैं।"

(4) **नैतिक आदर्शों के रूप में महत्त्व (Importance as Moral Ideals)**—यदि निदेशक तत्त्वों को केवल नैतिक धारणाएँ ही मान लिया जाए, तो इस रूप में भी उनका अपार महत्त्व है। ब्रिटेन में मेग्ना कार्टा, फ्रांस में मानवीय तथा नागरिक अधिकारों की घोषणा तथा अमरीकी संविधान की प्रस्तावना को कोई कानूनी अनुशक्ति प्राप्त नहीं, फिर भी इन देशों के इतिहास पर इसका प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार उचित रूप में यह आशा की जा सकती है। कि ये निदेशक तत्त्व भारतीय शासन की नीति को निर्देशित और प्रभावित करेंगे। एलेन ग्लेडहिन के शब्दों में "अनगिनत व्यक्तियों के जीवन नैतिक आदर्शों के फलस्वरूप सुधरे हैं और ऐसे उदाहरण भी मिलने कठिन नहीं है जबकि उच्च आदर्शों का राष्ट्रों के इतिहास पर प्रभाव पड़ा हो।"

(5) **संविधान की व्याख्या में सहायक (Helpful in the Interpretation of the Constitution)**—संविधान के अनुसार निदेशक तत्त्व देश के शासन में मूलभूत हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि देश के प्रशासन के लिए उत्तरदायी सभी सत्ताएँ

उनके द्वारा निर्देशित होंगी। न्यायपालिका भी शासन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। इस कारण यह आशा की जा सकती है कि भारत में न्यायालय संविधान की व्याख्या के कार्य में निदेशक तत्त्वों को उचित महत्त्व देंगे। प्रो. एलेक्जेण्ड्रोविच का मत है, "चूंकि निदेशक सिद्धांतों में संविधान सभा की आर्थिक और सामाजिक नीति बोल रही है और क्योंकि उसमें हमारे संविधान–निर्माताओं की इच्छा की अभिव्यक्ति है, इसलिए हमारे न्यायालयों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे मौलिक अधिकारों सम्बन्धी उपबन्धों की व्याख्या करते समय राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों पर पूरा–पूरा ध्यान दें। भारतीय न्यायालयों ने कई बार मौलिक अधिकार सम्बन्धी विवादों में निर्णय देते समय निदेशक सिद्धांतों से मार्गदर्शन लिया है। बम्बई राज्य बनाम एफ.एम. बालसराय वाले विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 47 के आधार पर निर्णय दिया कि शासन ने मादक द्रव्य निषेध अधिनियम पास करके उचित प्रतिबन्ध ही लगाया था। पुनः न्यायालय ने बिहार राज्य बनाम कामेश्वरसिंह वाले विवाद में अनुच्छेद 39 के प्रकाश में यह निर्णय दिया था कि जमींदारी के अंत का उद्देश्य वास्तविक जनहित ही था। इसी प्रकार विजय वस्त्र उद्योग बनाम अजमेर राज्य के विवाद में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्देद 43 के प्रकाश में न्यूनतम पारिश्रमिक अधिनियम को उचित ठहराया। श्री एम.सी. सीतलवाड़ के शब्दों में, "राज्य–नीति के इन मूलभूत सिद्धांतों को वैधानिक प्रभाव प्राप्त न होते हुए भी इनके द्वारा न्यायालयों के लिए उपयोग प्रकाश–स्तंभ का कार्य किया जाता है।"

(6) **शासन के मूल्याँकन का आधार (Basis of the Evaluation of Government)**–नीति निदेशक तत्त्वों द्वारा जनता को शासन की सफलता व असफलता की जाँच करने का मापदण्ड भी प्रदान किया जाता है। शासक दल द्वारा अपने मतदाताओं को निदेशक सिद्धांतों के संदर्भ में अपनी सफलताएं बतानी होंगी और शासन शक्ति पर अधिकार करने के इच्छुक राजनीतिक दल को इन तत्त्वों की क्रियान्विति के प्रति अपनी तत्परता और उत्साह दिखाना होगा। इस प्रकार निदेशक तत्त्व जनता को विभिन्न दलों की तुलनात्मक जांच करने योग्य बना देंगे।

(7) **कार्यपालिका प्रधान इनका दुरूपयोग नहीं कर सकते हैं (Executive Head cannot Exploit Provisions)**–निदेशक तत्त्व के पक्ष में अन्तिम बात यही कही जा सकती है कि यद्यपि विधानसभा के सदस्यों तथा कुछ संविधान–वेताओं ने यह भय प्रकट किया है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल इस आधार पर किसी विधेयक पर अपनी सम्मति देने से इन्कार कर सकते हैं कि वह निदेशक तत्त्वों के प्रतिकूल है, लेकिन व्यवहार में ऐसी घटना की सम्भावना कम है, क्योंकि संसदात्मक शासन प्रणाली में नाममात्र का कार्यपालिका प्रधान लोकप्रिय मन्त्रिपरिषद् द्वारा पारित विधि को अस्वीकृत करने का दुस्साहस नहीं कर सकता है। डॉ. अम्बेडकर के शब्दो में, "विधायिका द्वारा पारित विधि को अस्वीकृत करने के लिए राष्ट्रपति या राज्यपाल निदेशक तत्त्वों का प्रयोग नहीं कर सकते।"

वास्तव में, निदेशक तत्त्व भारतीय शासन के सर्वोच्च सिद्धांत है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री केनिया ने 'गोपालन बनाम मद्रास राज्य' के विवाद पर निर्णय देते हुए कहा था, "क्योंकि राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व संविधान में शामिल हैं, इसलिए वे बहुमत दल के अस्थाई आदेश मात्र ही नही हैं, वरन् उनमें राष्ट्र की बुद्धिमतापूर्ण स्वीकृति बोल रही है जो संविधान सभा के माध्यम से व्यक्त हुई थी।"

निर्देशक सिद्धांतों का वर्गीकरण
(Classification of Directive Principles)

संविधान के अनुच्छेद 36 में 'राज्य' की परिभाषा दी गई है। तदनुसार 'राज्य' के अन्तर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यों में से प्रत्येक की सरकार और विधान–मण्डल तथा भारत राज्य–क्षेत्र के भीतर अथवा भारत सरकार के नियन्त्रण के अधीन अवस्थानीय और अन्य प्राधिकार भी हैं। अनुच्छेद 37 के अनुसार निदेशक तत्त्व न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होने पर भी देश के शासन में मूलभूत हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 38 से 51 में राज्य–नीति के निदेशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। ये निदेशक सिद्धांत अथवा तत्त्व संविधान में किसी युक्तियुक्त योजना के अनुसार नहीं गिनाए गए हैं। अतः उनका वर्गीकरण करना कठिन है। तथापि, अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें निम्नलिखित वर्गों में बांटना उपयुक्त होगा–

(क) आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी निदेशक तत्त्व,

(ख) सामाजिक हित सम्बन्धी निदेशक तत्त्व,

(ग) न्याय, शिक्षा लोकतंत्र एवं प्राचीन स्मारकों की रक्षा से सम्बन्धित निदेशक तत्त्व, एवं

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्त्व।

(क) आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी निर्देशक तत्त्व

संविधान–निर्माता देश में लोक–कल्याणकारी राज्य स्थापित करना चाहते थे। अतः उन्होंने अधिकांश निर्देशक तत्त्वों द्वारा आर्थिक सुरक्षा तथा आर्थिक न्याय की स्थापना करने की व्यवस्था की। संविधान में इस प्रकार के निम्नलिखित निर्देशक तत्त्व हैं –

1. अनुच्छेद 38 के अनुसार राज्य लोक–कल्याण की उन्नति के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा अनुच्छेद 38 में एक नया खण्ड जोड़कर एक नया निर्देशक तत्त्व जोड़ा गया है। यह नया खण्ड यह उपबन्धित करता है कि राज्य इस बात का प्रयास करेगा कि विशेष रूप से व्यक्तियों की आय में असमानता कम हो, और पद, सुविधाओं और अवसरों के सम्बन्ध में केवल व्यक्तियों में ही नहीं वरन् विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले या विभिन्न व्यवसाय में लगे सभी वर्ग के लोगों में असमानता दूर हो।
2. राज्य देश के नर और नारी सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्रदान करने का प्रयत्न करेगा। (अनुच्छेद 39–क)
3. राज्य समाज की भौतिक सम्पत्ति के स्वामित्व और नियन्त्रण की ऐसी व्यवस्था करेगा जिससे अधिकाधिक सार्वजनिक हित हो सके। (अनुच्छेद 39–ख)
4. राज्य आर्थिक व्यवस्था को इस प्रकार से चलाने का प्रयत्न करेगा जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिए हितकारी केन्द्रीयकरण हो। (अनुच्छेद 39–ग)
5. राज्य पुरूषों और स्त्रियों, दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था करेगा। (अनुच्छेद 39–घ)
6. राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा कि श्रमिक पुरूषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य तथा शक्ति का और बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो। राज्य यह देखेगा कि आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु के अनुकूल न हों। (अनुच्छेद 39–ड.)
7. मूल संविधान के अनुच्छेद 39 (च) में कहा गया है कि राज्य "बच्चों और युवकों को शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण देगा।" 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद को संशोधित करते हुए कहा गया है कि – "राज्य के द्वारा बच्चों को स्वस्थ विकास के लिए अवसर और सुविधाएँ प्रदान की जाएंगी, उन्हें स्वतंत्रता और सम्मान की स्थिति प्राप्त होगी, बच्चों तथा युवकों की शोषण से और आर्थिक या नैतिक परित्याग से रक्षा की जाएगी।"
8. राज्य अपने आर्थिक साधनों के अनुसार तथा विकास की सीमाओं के भीतर यह प्रयत्न करेगा कि सभी नागरिकों को योग्यतानुसार काम मिल सके, वे शिक्षा पा सकें और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा अंगहीनता आदि की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पा सकें। (अनुच्छेद 41)
9. राज्य काम की यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए तथा प्रसूति सहायता के लिए उपबन्ध करेगा। (अनुच्छेद 42)
10. राज्य श्रमिकों के लिए काम, निर्वाह–मजदूरी, शिष्ट जीवन–स्तर, समुचित अवकाश तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्रदान कराने का प्रयास करेगा। राज्य विशेष रूप से गांवों में कुटीर उद्योगों को व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयत्न करेगा। (अनुच्छेद 43)
11. राज्य वैज्ञानिक आधार पर कृषि और पशु–पालन का संचालन करेगा। (अनुच्छेद 48)

42 वें संविधान संशोधन में आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी दो और निर्देशक तत्त्व जोड़े गए हैं जो कमजोर वर्गों के लिए निःशुल्क कानूनी सहायता और औद्योगिक प्रतिष्ठानों के प्रबन्ध में कर्मचारियों को भागीदार बनाने की व्यवस्था से सम्बन्धित, हैं। ये तत्त्व अनुच्छेद 39 के उपखण्डों के रूप में जोड़े गए हैं। 44 वें संशोधन द्वारा एक और निर्देशक तत्त्व जोड़ा गया है जिसमें कहा गया है कि– "राज्य न केवल व्यक्तियों की आय और उनके सामाजिक स्तर, सुविधाओं तथा अवसरों सम्बन्धी भेदभाव को कम–से–कम करने का प्रयत्न करेगा बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले और विभिन्न व्यवसायों में

लगे व्यक्तियों के समुदायों के बीच विद्यमान आय, सामाजिक स्तर, सुविधाओं एवं अवसरों सम्बन्धी भेदभाव को भी कम–से–कम करने का प्रयत्न करेगा।" इस तरह से उन तत्त्वों में आर्थिक–लोकतंत्र की स्थापना का स्वर निहित है।

(ख) सामाजिक हित सम्बन्धी निर्देशक तत्व

इस सम्बन्ध में राज्य के निम्नलिखित कर्त्तव्य निश्चित किए गए हैं:–

1. भारत भर में नागरिकों के लिए एक समान व्यवहार–संहिता प्राप्त कराने का प्रयत्न करना। (अनुच्छेद 44)
2. जनता के दुर्बलतर अंगों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ–सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी–से उन्नति करना और सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करना। (अनुच्छेद 46)
3. अपने लोगों के आहार–पुष्टि–तल और जीवन स्तर को ऊँचा करना तथा लोक–स्वास्थ्य को सुधारना राज्य का एक प्राथमिक कर्त्तव्य होगा। राज्य विशेष रूप से मादक पेयों और अस्वास्थ्यकर औषधियों के उपभोग पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न करेगा। (औषधीय प्रयोजनों से अतिरिक्त अनुच्छेद 47)

(ग) न्याय, शिक्षा, लोकतंत्र एवं प्राचीन स्मारकों की रक्षा से सम्बन्धित निर्देशक तत्त्व

1. राज्य न्यायपालिका को कार्यपालिका से पथक् रखने का प्रयत्न करेगा। (अनुच्छेद 50)
2. राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर होगा। वह उनको ऐसी शक्तियाँ तथा अधिकार प्रदान करेगा कि वे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें। (अनुच्छेद 49)
3. राज्य संविधान लागू होने से दस वर्ष की अवधिक के भीतर 14 वर्ष के सब बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करेगा। (अनुच्छेद 45)
4. राज्य संसद द्वारा कानून बनाकर राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों, ऐतिहासिक स्थानों और चीजों का संरक्षण करेगा। (अनुच्छेद 49)
5. संविधान के 42 वें संशोधन द्वारा देश के पर्यावरण (Environment) की रक्षा को भी निर्देशक तत्त्वों में शामिल किया गया है। 48वें अनुच्छेद के बाद अनुच्छेद 48 (क) जोड़ कर कहा गया है कि "राज्य देश के पर्यावरण की रक्षा तथा उसमें सुधार का प्रयत्न करेगा। राज्य द्वारा वनों और वन्य जीवन की सुरक्षा का भी प्रयत्न किया जाएगा।"

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा सम्बन्धी तत्त्व

संविधान–निर्माता भारत के परम्परागत आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'जियो और जीने दो' से प्रभावित थे। इसी आदर्श को ध्यान में रखते हुए संविधान के अन्तिम निर्देशक तत्त्व 51 में कहा गया है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में निम्नलिखित बातों का प्रयत्न करेगा।

(क) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा में वद्धि करने का,

(ख) राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने का

(ग) संगठित लोगों के एक–दूसरे के व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि–बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का तथा

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों की मध्यस्थता द्वारा निबटारे के लिए प्रोत्साहन देने का।

स्पष्ट है कि राज्य के नीति–निदेशक सिद्धांतों द्वारा राज्य का यह कर्त्तव्य बनाया गया है कि वह देश में वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना करे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता, समता और न्याय प्राप्त हो सके।

नीति-निर्देशक तत्त्वों और मूल अधिकारों में अन्तर
(Distinction between Fundamental Rights and Directive Principles)

यद्यपि नीति–निर्देशक तत्त्व और मूल अधिकार एक–दूसरे के पूरक हैं और दोनों हमारे संविधान की अन्तरात्मा है, साथ ही दोनों में एक कार्य–पद्धति का निर्णय करते हुए देश के लिए एक उज्जवल भविष्य का स्वप्न संजोया गया है तथा दोनों में निम्नलिखित रूप से आधारभूत अन्तर हैं –

1. मूल अधिकार नकारात्मक स्वरूप लिए हैं जबकि निर्देशक तत्त्व सकारात्मक। मूल अधिकार नकारात्मक इसलिए है क्योंकि वे राज्य पर कुछ प्रतिबन्ध लगाते हैं। निर्देशक तत्त्व सकारात्मक इसलिए हैं कि ये राज्य को किन्हीं निश्चित कार्यों को करने का निर्देश देते हैं।
2. मूल अधिकार वाद–योग्य अथवा न्याय–योग्य (Justiciable) हैं, निर्देशक तत्त्व वाद–योग्य अथवा न्याय–योग्य नहीं है। अनुच्छेद 37 स्पष्ट रूप से कहता है कि निर्देशक तत्त्वों को किसी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेगी, तथापि ये तत्त्व देश के शासन के मूलभूत आधार हैं और विधि–निर्माण में इन तत्त्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य है। दूसरी ओर मूल अधिकार न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं अर्थात् न्यायालय मूल अधिकार से किसी असंगत कानून को अवैध घोषित कर सकते हैं। लेकिन कोई भी विधि इस आधार पर अवैध घोषित नहीं की जा सकती है कि वह निर्देशक तत्त्वों के विरोध में है और न ही न्यायालय सरकार को इन तत्त्वों को कार्यान्वित करने के लिए कोई आदेश दे सकते हैं। उदाहरणार्थ, एक अवैध रूप से गिरफ्तार किया हुआ व्यक्ति न्यायालय से बन्दी प्रत्यक्षीकरण का लेख प्राप्त कर सकता है लेकिन यदि सरकार निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास नहीं करती तो इसके लिए व्यक्ति न्यायालय से कोई उपचार प्राप्त नहीं कर सकता है।
3. मूल अधिकारों का विषय व्यक्ति है, लेकिन निर्देशक तत्त्व राज्य के लिए हैं।
4. मूल अधिकार नागरिकों को संविधान द्वारा प्रत्यक्ष रूप से दिए गए हैं जबकि निर्देशक तत्त्वों का उपभोग नागरिक तभी कर सकते हैं। जब राज्य विधि द्वारा इन्हें कार्यान्वित करे।
5. निर्देशक तत्त्वों का क्षेत्र मूल अधिकारों के क्षेत्र से कहीं अधिक व्यापक है। मूल अधिकारों का क्षेत्र भारत–राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत है जबकि निर्देशक तत्त्वों में अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के सिद्धांत भी सम्मिलित है।

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि चाहे नीति–निर्देशक तत्त्व न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय न हों, पर उनकी संवैधानिक महत्ता और पवित्रता के बारे में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है।

निर्देशक तत्त्वों का क्रियान्वयन और उपलब्धियाँ
(Implementation and Achievements with Regard to Directive Principles)

नीति निदेशक तत्त्वों के क्रियान्वयन की समस्या पुलिस राज्य को कल्याणकारी राज्य और संविधान द्वारा स्थापित राजनीतिक लोकतंत्र को आर्थिक लोकतंत्र में परिवर्तन करने की समस्या है। यह कार्य इतना बड़ा है कि इसे तुरन्त सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इसे पूरा करने के लिए दीर्घकालीन प्रयत्न, प्रचुर धन और तीव्र गति से आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास आवश्यक है।

परन्तु राज्य ने यह कार्य प्रारम्भ कर दिया है और इस दिशा में कई महत्त्वपूर्ण बातें की गई हैं : प्रथमतः नौ वीं पंचवर्षीय योजनाओं के आधार पर कृषि और उद्योगों की उन्नति, शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं का प्रसार, नौकरी व कार्य के साधनों में वद्धि, राष्ट्रीय आय व लोगों के रहन–सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयत्न किए गए हैं। द्वितीय, युवक वर्ग व बालकों की शोषण से रक्षा करने के लिए अनेक कानून पास किए गए हैं, बीमारी और दुर्घटना के विरूद्ध सुरक्षा के लिए कुछ सीमा तक मजदूर वर्ग में बीमा योजना लागू की गई है बेरोजगारी बीमा योजना को लागू करने और रोजगार की सुविधाएँ बढ़ाने के प्रयास किए जा रहे हैं। राज्य सामाजिक कल्याण की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है। ततीय, हिन्दू कोड बिल के कई अंशों जैसे हिन्दू विवाह अधिनियम 1955ः हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956ः आदि को पारित करके देश के सभी वर्गों के लिए समान विधि संहिता प्राप्त करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। चतुर्थ, अस्पश्यता निवारण के लिए और अनुसूचित तथा पिछड़ी हुई जातियों के बालकों को उदारतापूर्वक छात्रवत्ति और अन्य सुविधाओं द्वारा शिक्षित करने का कार्य भी हुआ है। पंचम, यद्यपि अब भी निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा और सबके लिए पर्याप्त स्वास्थ्य सेवा का प्रबन्ध अधूरा ही है, तथापि इन दिशाओं में भी महत्त्वपूर्ण प्रगति हई है। अन्तिम स्थान में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास योजनाओं द्वारा ग्राम पंचायतों को अधिक सशक्त बनाने का प्रयास किया जा चुका है। गरीबों को 'मुफ्त कानूनी सहायता' प्रदान करने के लिए न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। कई राज्यों ने वद्ध और असहाय लोगों के लिए पेंशन (Old age Pension) की व्यवस्था की है। सामाजिक सुरक्षा पेंशन के लिए सातवें वित्त आयोग (1979-84) ने राज्यों को 264.08 करोड़

रुपए दिए जाने का प्रावधान किया। बाल श्रमिकों के हितों के संरक्षण हेतु केन्द्रीय बाल श्रमिक बोर्ड का गठन किया गया है तथा राज्यों से कहा गया कि वे जिला स्तर पर ऐसे ही बोर्ड़ों का गठन करें।

1969 के बाद ही राजनीति में तत्कालीन शासक वर्ग द्वारा निरन्तर संकल्प व्यक्त किया गया कि निदेशक तत्त्वों को अधिक तीव्र गति के साथ क्रियान्वित किया जाएगा। 1970 से 976 के वर्षों में इस पुष्टि से कुछ कार्य भी दिए गए, यथा – 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण, राजाओं के प्रिवीपर्स की समाप्ति, सम्पत्ति के मौलिक अधिकार को सीमित करने हेतु संविधान में 24वां, 25वां, 29वां और 44वां संशोधन और तस्कर व्यापार विरोधी कार्यवाहियाँ, आदि। 1976 में ही संसद के द्वारा 'शहरी भूमि सीमाकरण कानून' पारित किया गया, जिसके अनुसार चार श्रेणी के शहरो में भूमि की सीमा 500 वर्गमीटर से 2,000 वर्गमीटर निश्चित की गई। 1971 के लोकसभा चुनावों से ही 'गरीबी, बेरोजगारी और असमानता' दूर करने का नारा भी जोर–शोर से लगाया गया, लेकिन इस सम्बन्ध में जैसा ठोस कार्य अपेक्षित था, वैसा नहीं किया गया।

1977 से भारत की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है। 1977 में सत्तारूढ़ जनता पार्टी द्वारा अपने चुनाव घोषणा–पत्र में 'सम्पत्ति के मूल अधिकार' को समाप्त करने और समस्त जनता को 'रोजी–रोटी का अधिकार' प्रदान करने की बात कही गई थी। 'सम्पत्ति के मूल अधिकार' को सामाजिक–आर्थिक समानता के मार्ग में बाधक मानकर 44 वें संवैधानिक संशोधन द्वारा 'सम्पत्ति के मूल अधिकार' को समाप्त कर दिया गया। निदेशक तत्त्वों की क्रियान्विति की दिशा में अभी हाल ही में कुछ ठोस कार्य भी हुआ है, जैसे पश्चिमी बंगाल और केरल की सरकारों द्वारा बेरोजगार लोगों के लिए बेरोजगारी भत्ते की व्यवस्था करना, लेकिन यह व्यवस्था बहुत सीमित रूप से ही की जा सकी है।

निदेशक तत्त्वों की क्रियान्विति पर जब हम विचार करें, तब हमारे द्वारा इस तथ्य को दष्टि में रखा जाना चाहिए कि सर्वाधिक प्रमुख निदेशक तत्त्वों का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 39 में किया गया है और ये निदेशक तत्त्व 'आर्थिक तथा सामाजिक न्याय' से सम्बन्धित हैं। 'संविधान सभा वाद–विवाद' (C.A.D.) के अध्ययन से भी स्पष्ट है कि 'निदेशक तत्त्वों का उद्देश्य' आर्थिक तथा सामाजिक असमानता एवं अन्याय को दूर कर आर्थिक–सामाजिक न्याय, दूसरे शब्दों में अधिकाधिक संभव सीमा तक आर्थिक–सामाजिक समानता की स्थापना करना है। जब हम इस दष्टि से आज की स्थिति पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि निर्देशक तत्त्वों की क्रियान्विति के सम्बन्ध में स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। सामाजिक समानता स्थापित करने की दिशा में थोड़ा कार्य भले ही हुआ हो, लेकिन आर्थिक समानता स्थापित करने की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई है। आर्थिक असमानता का जो अनुपात संविधान लागू किए जाने के समय था आज उसमें थोड़ी भी कमी होने के बजाय बहुत अधिक वद्धि हुई है। 'समाजवादी ढाँचे का समाज, समाजवाद, लोक–कल्याणकारी राज्य, भारतीय समाजवाद' समय–समय पर ऐसे कई नारे पूर्व और वर्तमान शासक वर्ग के द्वारा लगाए गए हैं, लेकिन एक तरफ भीषण गरीबी और दूसरी तरह अन्तहीन विलासिता, निरन्तर बढ़ती हुई बेरोजगारी और अशिक्षा की जो स्थिति देखी जाती है, वह इस प्रश्न को जन्म देती है कि क्या शासक वर्ग की निदेशक तत्त्वों में, दूसरे शब्दों में आर्थिक तथा सामाजिक न्याय में कोई आस्था है?

देश में आर्थिक विषमता बढ़ रही है क्योंकि मात्र 10% लोग राष्ट्रीय उत्पादन का अधिकांश हिस्सा हजम कर जाते हैं और इसी कारण से देश में कुछ परिवारों का राष्ट्रीय उत्पादन पर एकाधिकार बढ़ गया है। आज भी देश की 34 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही है। देश में 2 करोड़ 33 लाख आवास मकानों की कमी है। प्रतिवर्ष मात्र 4 लाख मकान बनते हैं। जबकि आवश्यकता प्रतिवर्ष 50 लाख मकानों की होती है। 2 प्रतिशत जनसंख्या के पास आवश्यक शौचालय (sanitation facilities) हैं, 6 लाख लोग प्रतिवर्ष तपेदिक से मरते हैं, 25 लाख लोग कोढ़ से ग्रसित हैं, 90 लाख लोग अन्धे और प्रति 17,600 लोगों पर एक डॉक्टर की सुविधा उपलब्ध है। लाखों बच्चे जोखिम भरे स्थानों पर श्रम करते हैं। वर्तमान में साक्षरता का प्रतिशत केवल 65.38 है।

दिसम्बर 1997 में जारी यूनीसेफ की रिपोर्ट 'दुनिया भर में बच्चों की स्थिति' बताती है कि दुनिया में कुपोषण के शिकार बच्चों में आधे भारतीय हैं, यह भी कि जहाँ दुनिया भर में पाँच वर्ष से कम उम्र के कुपोषित बच्चों का प्रतिशत 37 हैं, वहीं भारत में यह 52 है। इसी तरह, दुनिया भर में इस आयु वर्ग के बच्चों की मत्यु दर 88 है। भारत में 13 करोड़ लोग सुरक्षित पेयजल और 72 करोड़ लोग स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित हैं।

जून 1999 में जारी विश्व बैंक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 1980 के दशक के अन्तिम वर्षों में गरीबों की संख्या 30 करोड़ थी जो 1997 में बढ़कर 34 करोड़ हो गई।

172 राष्ट्रों के लिए मानव विकास सूचकांक का आंकलन संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की वर्ष 1999 की 'मानव विकास' रिपोर्ट में किया गया है। इनमें सबसे प्रमुख मानव विकास सूचकांक है जो जीवन प्रत्याशा, शैक्षणिक उपलब्धि तथा वास्तविक प्रति व्यक्ति आय पर आधारित है। इसमें भारत का 132वां स्थान है।

इन आंकड़ों से यह प्रकट होता है कि पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से निदेशक सिद्धांतों के क्रियान्वयन हेतु अभी बहुत कुछ करना शेष है। कितने आश्चर्य की बात है कि भारत दुनिया के प्रथम पन्द्रह औद्योगिक देशों में स्थान रखता है और तकनीकी दष्टि से प्रशिक्षित मानव शक्ति वाले राष्ट्रों में हमारा तीसरा स्थान है, हमारे यहाँ दुनिया की सबसे बड़ी शिक्षा–व्यवस्था है तथापित विश्व बैंक के सर्वे के आधार पर हम दुनिया के सबसे निर्धनतम दस देशों में से एक हैं।

निर्देशक तत्त्वों की आलोचना और उनका मूल्याँकन

राज्य–नीति के निर्देशक तत्त्वों की आलोचना प्रायः होती रही है। संविधान सभा में भी इन पर खुलकर चर्चा हुई थी। संविधान सभा में भी प्रो. के.टी. शाह ने कहा था — "राज्य–नीति के ये निर्देशक तत्त्व एक ऐसे चैक समान है जिनका भुगतान बैंक की इच्छा पर छोड़ दिया गया है।" कई आलोचकों ने इन सिद्धांतों को संविधान–निर्माताओं की पवित्र भावनाओं और आकांक्षाओं पर संग्रह–मात्र कहा है। कतिपय आलोचकों ने इन्हें 'थोथे वचनों' की संज्ञा दी है। आलोचना के मुख्य आधार प्रायः ये रहें हैं–

1. ये तत्त्व वाद–योग्य नहीं हैं, अतः इनके पीछे कोई बाध्यता भी नहीं है। यह राज्य की इच्छा पर है कि वह इन्हें कहाँ तक लागू करता है। इस प्रकार ये राजनीतिक घोषणा मात्र हैं। न्यायिक बाध्यता के अभाव के कारण इनकी शक्ति बहुत ही कमजोर हो गई है।
2. इन तत्त्वों में वर्णित अनेक तथ्य बड़े अनिश्चित और अस्पष्ट हैं। उदाहरणार्थ, समाजवादी सिद्धांतों में श्रमिकों और मालिकों के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में कोई निश्चित व्यवस्था नहीं है और न ही राष्ट्रीय योजनाओं को कोई स्पष्ट विवरण दिया गया है।
3. कुछ ऐसे तत्त्व भी गिना दिए गए हैं जिनका पालन व्यवहार में असम्भव–सा है, जैसे मद्य–निषेध। इस प्रकार के तत्त्वों या सिद्धांतों का अनुपालन न होने से अन्य सिद्धांतों के प्रति भी जन–साधारण की निष्ठा कम हो जाती है।
4. निर्देशक तत्त्वों को लागू करने का बढ़ा–चढ़ा अथवा मिथ्या आश्वासन देकर चुनाव–युद्ध जीतने की चाल खेली जाती है।
5. संविधान में कुछ निर्देशक तत्त्व इस प्रकार के हैं जिन्हें एक निश्चित अवधि में पूरा किया जाना था। उदाहरणार्थ, संविधान लागू होने के 10 वर्ष के भीतर 14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करनी थी, किन्तु ऐसा पिछले 42 वर्षों में भी सभी राज्यों में संभव नहीं हो पाया है। इसी प्रकार उत्पादन और वितरण के साधनों की न्यायपूर्ण व्यवस्था भी आज तक सम्पादित नहीं हो सकी है।
6. कुछ क्षेत्रों में यह भी कहा गया है कि निर्देशक तत्त्वों का संविधान में समावेश कुछ निहित राजनीतिक स्वार्थों के कारण किया गया था। राज्यों की यह माँग थी कि संविधान में शिक्षा सम्बन्धी, विश्राम सम्बन्धी और बेकारी सम्बन्धी अधिकारों को सम्मिलित कर लिया जाए तथा यथासम्भव उन्हीं मौलिक अधिकारों को अध्याय में स्थान दिए जाएँ। ऐसे लोगों के राजनीतिक सन्तोष के लिए अथवा उनकी इच्छा–पूर्ति के लिए भी निर्देशक सिद्धांतों की व्यवस्था की गई।
7. कुछ निर्देशक तत्त्वों को मूल, अधिकारों के अध्याय में गिनाया जाना उचित था, यथा—काम करने का अधिकार, आर्थिक सुरक्षा आदि।
8. संविधान–सभा में कांग्रेस दल का ही प्रचण्ड बहुमत था। अतः निर्देशक तत्त्वों पर कांग्रेस की छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।
9. मूल अधिकारों और निर्देशक तत्त्वों में द्वन्द्व की स्थिति बनी रही है। न्यायिक निर्णय जब तक बदलते रहे हैं और फलस्वरूप नौकरशाही तथा जनता के बीच तनाव के बिन्दु पनपते रहे हैं।
10. निर्देशक तत्त्वों के अध्याय में केवल लक्ष्यों की चर्चा है, लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधनों की नहीं।
11. आइवर जेनिंग्स का मत है कि निर्देशक तत्त्व किसी निश्चित और संगतपूर्ण दर्शन पर आधारित नहीं है अस्पष्ट हैं, न समुचित रूप से क्रमबद्ध है और न ठीक ढंग से वर्गीकृत।

12. निर्देशक तत्त्वों की कार्यन्विति की प्रगति इतनी धीमी अथवा 'कछुवा चाल' रही है कि संविधान में इन्हें स्थान देने की उपयोगिता ही सन्देहास्पद हो जाती है।

लेकिन निर्देशक तत्त्वों की उपर्युक्त आलोचनाएँ अतिरंजित हैं। इन तत्त्वों की उपयोगिता संवैधानिक महत्ता और पवित्रता के बारे में पिछले पष्ठों में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। उपुर्यक्त आलोचनाओं को ठोस जवाब निम्न रूप से दिया जा सकता है।

(क) ये तत्त्व देश में सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति लाने के लिए राज्य के मार्गदर्शक हैं। हथेली पर सरसों नहीं जमा करती, सदियों की गुलामी और शोषण के बाद देश आजाद हुआ अतः आर्थिक और सामाजिक समद्धि लाने में कुछ दशाब्दियों का लग जाना सर्वथा स्वाभाविक है।

(ख) निर्देशक तत्त्वों की कार्यान्विति के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा निरन्तर प्रयत्न किए जा रहे हैं। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सम्पादित किए गए जन–हितकारी कार्य, इसका ठोस प्रमाण हैं। पंचायती राज्य की स्थापना, धन के केन्द्रीयकरण की रोकथाम के कदम, अनेक उद्योग–धन्धों और बैंकों का राष्ट्रीयकरण, जमींदारी उन्मूलन, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए कल्याणकारी कार्य, न्यायपालिका और कार्यपालिका का काफी हद तक पथक्करण, न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण, भूमिहीनों में भूमि का वितरण, सामुदायिक विकास योजनाओं द्वारा ग्रामीणों को ऊँचा उठाने के प्रयत्न, राजाओं के प्रिवीवर्स की समाप्ति, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति और सुरक्षा की नीति— ये सब बातें नीति–निर्देशक तत्त्वों की क्रियान्विति की दिशा में ठोस प्रगति की सूचक है।

(ग) संविधान के पच्चीसवें संशोधन के बाद मूल अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों में द्वन्द्व प्रायः समाप्त हो गया है।

(घ) निर्देशक तत्त्वों पर 'कांग्रेस की छाप' का आरोप वजन नहीं रखता है। ये तत्त्व समूचे देश के कल्याण के लिए हैं। ये तत्त्व प्रगतिशीलता के प्रतीक हैं और कट्टर देशभक्त संविधान–निर्माताओं पर 'अविश्वास का लेबल' लगाना छिछलापन ही कहलायेगा।

(ड.) काम करने के अधिकार, आर्थिक सुरक्षा आदि के निर्देशक तत्त्वों को मूल अधिकारों में गिनाया जाना इसलिए उचित नहीं था कि तत्कालीन समय में भारत की आर्थिक स्थिति इसके लिए इजाजत नहीं देती थी। इसके अतिरिक्त, अमेरिका और ब्रिटेन जैसे महान लोकतान्त्रिक संविधानों में भी काम करने के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची में नहीं रखा गया है। वास्तव में यह तो प्रत्येक सरकार का निश्चित कर्त्तव्य ही है कि वह देश में रोजगार की समुचित व्यवस्था के लिए प्रयत्न करे। अतः मार्ग–निर्देशक सिद्धांत के रूप में इसे संविधान में रखा जाना सर्वथा उपयुक्त है।

(च) नीति–निर्देशक तत्त्वों के महत्त्व को केवल उपलब्धि के रूप में ही नहीं मापना चाहिए। उनका महत्त्व प्रेरणा के स्रोत और मार्गदर्शक प्रकाश–स्तम्भ के रूप में भी है।

किसी भी लोकतंत्र की सुरक्षा नागरिकों की सतत् जागरूकता पर निर्भर है। टी.के.टोपी के इस कथन से असहमत होना कठिन है कि "यदि भारतीय जनता और विधान–मण्डलों में उनके प्रतिनिधि कार्यकारिणी की गतिविधियों की अच्छी प्रकार निगरानी करें तो निर्देशक तत्त्व अवश्य ही सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सुधारों के लिए एक प्रभावशाली साधन प्रमाणित हो सकते हैं।"

वस्तुतः ये निर्देशक सत्तारूढ़ दल के लिए व्यवहार की नियमावली (Code of Conduct) है। जो इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि चाहे कोई भी राजनीतिक दल सत्तारूढ़ क्यों न हो, वह जनता के कल्याण के लिए इन सिद्धांतों के अनुरूप अपनी नीति का निर्धारण करेगा। किसी भी दल द्वारा इन सिद्धांतों की अवहेलना करना दुर्भाग्यपूर्ण होगा। संविधान के अन्तर्गत इन सिद्धांतों को निहित कर देने से यह तय हो गया है कि "भारत के प्रशासकों को इन्हें अपने व्यवहार का विधान मानना होगा और शासन–प्रबन्ध में इन्हें उचित महत्त्व देना होगा।" यद्यपि यह सत्य है कि सत्तारूढ़ दल को कानूनी तौर पर इन सिद्धांतों के अनुसार शासन चलाने के लिए विवश नहीं किया जा सकता और न्यायालयों को भी इस सम्बन्ध में कोई शक्ति प्राप्त नहीं है, तथापि यह भी सम्भव नहीं है कि कोई भी उत्तरदायी सरकार इन सिद्धांतों की अवहेलना करके इनके पीछे निहित जनमत की शक्ति को ठुकराने का साहस करे। यदि कोई सरकार अपने शासन में इन सिद्धांतों की अवहेलना करेगी तो उसे न केवल विधान–मण्डलों में, वरन् सम्पूर्ण देश में प्रबल विरोध का सामना करना पड़ेगा और उसके लिए सत्तारूढ़ बने रहना कठिन हो जाएगा। इस सम्बन्ध में श्री एम.वी.पायली ने ठीक ही लिखा है कि "इन हानिकारक परिणामों से डरते हुए कोई सत्तारूढ़ दल निर्देशक सिद्धांतों की उपेक्षा नहीं कर सकता, ये उनके व्यवहार की नियमावली है।"

अध्याय-8
राष्ट्रपति
(President)

भारतीय संविधान द्वारा देश में लोकतन्त्रात्मक प्रभुसत्ता सम्पन्न समाजवादी धर्म–निरेपक्ष गणराज्य की स्थापना की गई है। गणराज्य के सिद्धान्त अनुसार संघीय स्तर पर राजनैतिक कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति तथा प्रधानमन्त्री के दो महत्त्वपूर्ण पद हमारे संविधान निर्माताओं ने सजित किये हैं। भारत में भी इंग्लैंड के समान शासन प्रणाली के रूप में संसदीय शासन पद्धति को अपनाया गया है, जिसके अन्तर्गत संवैधानिक कार्यपालिका के रूप में राष्ट्रपति होता है जिसे राष्ट्र–अध्यक्ष का गौरव प्राप्त है। अम्बेडकर के कथानानुसार हमारा राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रतिनिधित्त्व करता है, किन्तु शासन नहीं करता। वह राष्ट्र का प्रतीक है। उसका शासन में यह स्थान है कि उसके नाम पर राष्ट्र के निर्णय घोषित किये जाते हैं। इस प्रकार राष्ट्रपति राज्य–शक्ति का प्रतीक अवश्य है, परन्तु वास्तविक शासक नहीं। संविधान की धारा 53 के अनुसार, "भारतीय संघ की कार्यपालिका शक्तियाँ भारत के राष्ट्रपति में निहित होंगी तथा वह इनका प्रयोग संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करेगा।" तथा धारा 74 के अनुसार, "राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् है, जिसका नेतत्त्व प्रधानमन्त्री करता है और जो सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है।

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति पद का विशेष महत्व है। इसके चार प्रमुख कारण हैं। प्रथम, राष्ट्रपति ऐसे समूह द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं जिसमें सम्पूर्ण देश के प्रतिनिधित्त्व का समावेश होता है। इसमें राज्यों के विधानमण्डलों के सदस्यों के अतिरिक्त संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को सम्मिलित किया जाता है। द्वितीय, राष्ट्रपति के द्वारा जो शपथ ली जाती है वह संविधान की रक्षा के रूप में होती है। तीसरा, राष्ट्रपति के विरूद्ध संविधान में महाभियोग की व्यवस्था की गई है। चौथा, देश के प्रतिरक्षा बलों के प्रधान के रूप में राष्ट्रपति का महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

राष्ट्रपति पद के लिए योग्यताएँ

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) उसकी आयु 35 वर्ष से कम न हो।

(3) उसमें वे सभी योग्यताएं होनी चाहिए जो लोकसभा के सदस्य बनने के लिए आवश्यक हैं।

(4) वह किसी लाभ पद पर न हो, लेकिन इस नियम में कुछ अपवाद कर दिए गए हैं:

  (a) संघीय अथवा राज्य सरकार में मन्त्री होना।

  (b) राज्य का गवर्नर होना।

  (c) संघ का उप–राष्ट्रपति होना।

  (d) संघ का राष्ट्रपति यदि पुनः निर्वाचन में खड़ा हो।

  (e) संसद या विधानमण्डल का सदस्य चुनाव तो लड़ सकता है, लेकिन चुने जाने के बाद वह संसद या विधानमण्डल का सदस्य नहीं रह सकता। 1 फरवरी 1974 में संसद ने एक कानून पारित करके जिसके द्वारा राष्ट्रपति के लिए चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को 2500 रू0 जमानत के रूप में जमा करवाने आवश्यक थे। इसके अलावा इस कानून के अन्तर्गत राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार का नाम निर्वाचक मण्डल के 10 सदस्यों द्वारा प्रस्तावित और 10 सदस्यों द्वारा अनुमोदित होना जरूरी था। 5 जून, 1997 में राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए

अध्यादेश के अनुसार राष्ट्रपति के चुनाव के लिए जमानत की राशि 2500 से बढ़ाकर 15000 रू0 कर दी गई। इसके अतिरक्ति राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार का नाम कम से कम 50 सदस्यों द्वारा प्रस्तावित तथा 50 सदस्यों द्वारा अनुमोदित होना आवश्यक कर दिया गया।

- राष्ट्रपति का चुनाव
- कार्यकाल
- वेतन तथा भत्ते
- विशेषाधिकार
- कार्य तथा शक्तियां
- महाभियोग
- वास्तविक स्थिति

राष्ट्रपति का कार्यकाल

राष्ट्रपति का कार्यकाल 5 वर्ष है। वह पुनः भी चुना जा सकता है। संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति बार–बार निर्वाचित हो सकता है। इसके विपरीत अमेरिका के संविधान में राष्ट्रपति केवल दो बार ही इस पद पर रह सकता है। भारत के राष्ट्रपति का पद केवल तीन कारणों से रिक्त हो सकता है।

(1) यदि वह स्वयं त्याग पत्र दे दे।

(2) दुर्भाग्यवश उसका देहान्त हो जाए।

(3) उसे महाभियोग के द्वारा पद से हटा दिया जाए।

ऐसी स्थिति में उपराष्ट्रपति इस पद को ग्रहण कर लेता है। लेकिन 6 माह में नये राष्ट्रपति का चुनाव होना आवश्यक है। अगर नये राष्ट्रपति का चुनाव किसी कारणवश न हो सके तो पहले वाला राष्ट्रपति उस समय तक अपने पद पर बना रहेगा, जब तक उसका उत्तराधिकारी पद न संभाल ले। राष्ट्रपति को अपना त्याग पत्र लिखकर उपराष्ट्रपति को भेजना होता है। तथा उपराष्ट्रपति को इसकी सूचना तुरन्त लोकसभा के स्पीकर को देनी पड़ती है।

वेतन तथा भत्ते

वर्तमान समय में भारत के राष्ट्रपति को 50000 रूपए मासिक वेतन दिया जाता है। इसके अलावा रहने के लिए निवास स्थान तथा कई भत्ते भी मिलते हैं। सेवा निवत होने के बाद उसे 3 लाख रूपये वार्षिक पेंशन भी मिलती है। तथा निःशुल्क आवास स्थान, कार, टेलीफोन, बिजली–पानी और सचिवालय की सुविधा भी प्रदान की जाती हैं। राष्ट्रपति का वेतन तथा सभी भत्ते संचित निधि से प्राप्त होते हैं, जिन्हें उसके कार्यकाल में कम नहीं किया जा सकता। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद तथा डॉ0 राधाकृष्णन केवल 2500 रू0 मासिक वेतन लेते थे। श्री नीलम संजीवा रेड्डी 3000 रू0 मासिक वेतन लेते थे।

विशेषाधिकार

संविधान के अनुच्छेद 361 के अनुसार राष्ट्रपति को अपने अधिकारों तथा शक्तियों के प्रयोग के लिए किसी भी न्यायालय के प्रति उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। उसके कार्यकाल में उसको गिरफ्तार अथवा बन्दी नहीं बनाया जा सकता तथा उसके विरूद्ध फौजदारी कार्यवाही भी नहीं की जा सकती।

राष्ट्रपति के निजी कार्यों के लिए भी कोई दीवानी कार्यवाही या मुकदमा उसके विरूद्ध कम से कम दो महीने पहले नोटिस दिए बिना नहीं चलाया जा सकता।

राष्ट्रपति पर महाभियोग

`इस विधि का वर्णन संविधान की धारा 61 में किया गया है। इस विधि के अन्तगर्त संसद के दोनों सदनों में से जो सदन आरोप लगाना चाहता है, उसको ¼ सदस्यों के हस्ताक्षरों सहित इस प्रस्ताव को राष्ट्रपति के पास 14 दिन पूर्व भेजना पड़ता है। जब

सदन में महाभियोग विषय पर चर्चा चल रही होती है, तो राष्ट्रपति ऐसे समय पर स्वयं उपस्थित होकर या किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा आरोपों का जवाब दे सकता है। यदि वह 2/3 बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे तो दूसरा सदन उन आरोपों की जाँच करता है। यदि दूसरा सदन भी 2/3 बहुमत से उन आरोपों को सही मान ले, तो राष्ट्रपति को अपना पद रिक्त करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति का कार्यभार सम्भालता है। यदि उपराष्ट्रपति भी त्यागपत्र दे देता है या उसकी मत्यु हो जाए तो सर्वोच्च न्यायालय का सर्वोच्च न्यायाधीश कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है। जैसे सन् 1969 में राष्ट्रपति जाकिर हुसैन की मत्यु पर उपराष्ट्रपति वी 0वी0 गिरि के त्यागपत्र देने के कारण सर्वोच्च न्यायालय के सर्वोच्च न्यायाधीश श्री हिदायतुल्ला ने कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य किया। लेकिन 6 महीने के अन्दर नए राष्ट्रपति का निर्वाचन अनिवार्य है। भारत में अभी तक किसी भी राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग प्रस्ताव नहीं लाया गया है। सन् 1970 में उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन के विवाद में राष्ट्रपति वी0वी0 गिरि के विरूद्ध विपक्षी नेता मधु लिमये ने महाभियोग प्रस्ताव लाने का प्रयास किया था।

राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया

भारत के राष्ट्रपति के चुनाव के लिए संवैधानिक सभा के सामने कई प्रस्ताव रखे गए। पहला प्रस्ताव था कि चुनाव जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप में किया जाए। इस पर विस्तार से विचार किया गया। यह देखने से तो लोकतान्त्रिक था, लेकिन कुद समस्याएँ थीं। जैसे इतने बड़े देश में जनता द्वारा चुनाव करवाना कठिन था। इसके लिए बहुत से कार्यकर्त्ता और धन की आवश्यकता पड़ती थी, जो भारत सरकार के लिए कठिन था। दूसरी बात, भारत में संसदीय–प्रणाली है। इसलिए इसका राज्याध्यक्ष नाममात्र का होता है। जनता द्वारा निर्वाचित होने वाले अध्यक्ष को नाममात्र का अध्यक्ष रखना कुछ अजीब सा लगता है।

अतः वाद–विवाद और विचार–विमर्श के बाद यह निश्चित किया गया कि राष्ट्रपति का चुनाव अप्रत्यक्ष ढ़ग से ही होगा। यह चुनाव एक निर्वाचक मण्डल के द्वारा किया जाएगा। जिसमें संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य और राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों को भाग लेने का अधिकार है।

संविधान के दो अनुच्छेदों 54 और 55 में राष्ट्रपति के चुनाव की व्यवस्था की गई है। संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि भारत का राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष रूप में एक चुनाव मण्डल, जिसमें केन्द्रीय संसद तथा प्रान्तीय विधानपालिकाओं के चुने हुए सदस्य हैं। उनके द्वारा एकल संक्रमणीय मत–प्रणाली द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्त्व के आधार पर गुप्त मतदान द्वारा चुना जाता है।"

(1) **मतों का मूल्यः** निर्वाचन में भाग लेने वाले सदस्यों की वोटों को निश्चित करने के लिए सूत्र अपनाए गए हैं वे इस प्रकार हैं–

$$\text{एम०एल०ए० की वोट की कीमत} = \frac{\text{राज्य की जनसंख्या}}{\text{विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या}} \div 1000$$

उदाहरणः अगर किसी एक राज्य की जनसंख्या 300,00,000 है तथा उसके विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 300 है तो उस राज्य की विधानसभा के वोट का मूल्य होगा–

$$\frac{300,00,000}{300} \div 1000 = 100$$

इस राज्य में प्रत्येक M.L.A के वोट की कीमत 100 होगी तथा राज्य की वोटों की कीमत $300 \times 100 = 30,000$ होगी। इसी प्रकार अन्य राज्यों में विधानसभा के सदस्यों के वोटों का मूल्य निकाल लिया जाता है।

संसद के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य की वोट की कीमत इस प्रकार होगी–

$$\frac{\text{राज्य विधानसभाओं के सदस्यों के मतों का योग}}{\text{संसद के दोनों सदनों के चुने हुए सदस्य}}$$

उदाहरणः मान लो राज्यों की विधानसभाओं के सदस्यों के मतों की कुल संख्या 549511 तथा संसद के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 776 है तो प्रत्येक संसद सदस्य के वोट की कीमत होगी–

$$\frac{549511}{776} = 708$$

(2) **एकल संक्रमणीय मत-प्रणालीः** मतों की कीमत निश्चित करने के बाद चुनाव गुप्त पत्र द्वारा एकल संक्रमणीय मत प्रणाली के आधार पर किया जाता है। इस प्रणाली में निम्न बातें होती हैं–

(i) प्रत्येक मतदाता को एक वोट देने का अधिकार है, लेकिन उसे उतनी प्राथमिकताएं देने का अधिकार है जितने व्यक्ति चुनाव लड़ रहे हैं।

(ii) चुनाव में जीतने वाले उम्मीदवार को स्पष्ट (बहुमत) कोटा प्राप्त करना होता है। बहुमत (कोटा) निकालने की विधि इस प्रकार है।

$$\frac{\text{डाले गए कुल मतों की संख्या}}{\text{सीटों की संख्या} +1} +1$$

उदाहरणः अगर कुल मत 10,000 है तो कोटा होगा।

$$\frac{10000}{1+1} + 1 = 5001$$

मतों की गणना

सबसे पहले उम्मीदवारों की पहली पसंदों के वोट को गिना जाता है। जो उम्मीदवार पहली बार निश्चित कोटा प्राप्त कर लेता है, उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। यदि कोई उम्मीदवार निश्चित कोटा प्राप्त नहीं करता तो सबसे कम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को चुनाव से बाहर कर दिया जाता है। और उसके वोटों को वोटरों की दूसरी पसंद के अनुसार बाकी उम्मीदवारों को बाट दिया जाता है। यह तब तक चलता है जब तक एक उम्मीदवार को निश्चित कोटा नहीं मिल जाता।

अब तक हुए 12 राष्ट्रपति के चुनावों में से केवल एक बार ही वोटों का हस्तान्तर करना पड़ा है। ऐसा सन् 1969 में हुआ था। जब श्री देशमुख की वोटों के वितरण से श्री गिरी को स्पष्ट बहुमत मिला।

मतदान पूरी तरह गुप्त होता है। संसद सदस्य दिल्ली में या अपने राज्यों की राजधानी में वहां के विधानसभा के सदस्यों के साथ मतदान कर सकते हैं।

राष्ट्रपति पद के लिए पिछला चुनाव (12 वां) जुलाई, 2002 को हुआ। इस चुनाव में इलैक्ट्राल कॉलेज की कुल सदस्य संख्या 4896 थी, और कुल 4785 वोट डाले गए जिनमें से वर्तमान राष्ट्रपति डॉ0 अब्दुल कलाम को 4152 वोट मिले, जिनकी प्रतिशत संख्या 89.58% थी। इस चुनाव में हारने वाले प्रत्याशी (लक्ष्मी सहगल) को 459 (10.42%) वोट मिले। इस चुनाव में इलैक्ट्राल कॉलेज के मतों का कुल मूल्य 1,07,366 था। इस चुनाव में 174 वोट अवैध पाए गए जिसमें 42 वोट संसद से थे।

राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवाद

मूल संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों को सुनने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया था। चुनाव में प्रत्याशी रहा कोई भी उम्मीदवार अथवा कम से कम दस निर्वाचकों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में राष्ट्रपति के चुनाव को चुनौती दी जा सकती है। जिस प्रकार 1974 में राष्ट्रपति चुनाव से पहले गुजरात विधानसभा भंग हो चुकी थी। इस स्थिति में राष्ट्रपति ने 29 अप्रैल, 1974 को अनुच्छेद 143 के तहत सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांगा कि गुजरात विधानसभा भंग रहते, क्या राष्ट्रपति का चुनाव हो सकता है? मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में सात सदस्यीय संवैधानिक पीठ में इस प्रश्न पर विचार किया और 5 जून को व्यक्त विचार में कहा कि "राष्ट्रपति के चुनाव वर्तमान राष्ट्रपति का कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व होने चाहिए और एक राज्य की विधानसभा भंग होते हुए भी ये चुनाव हो सकते है।" परन्तु सन् 1975 में पास हुए संविधान के 39वें संशोधन द्वारा इस स्थिति में परिवर्तन किया गया कि राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों का फैसला सर्वोच्च न्यायालय की बजाय संसद कानून द्वारा किसी संस्था अथवा समिति की स्थापना करके करेगी। इसमें यह भी व्यवस्था की गई कि इस संस्था द्वारा दिया गया निर्णय अन्तिम होगा और उसे किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। परन्तु 44वें संविधान संशोधन द्वारा फिर इस बारे में परिवर्तन किया गया कि राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी संदेहों तथा विवादों की जाँच और निर्णय

सर्वोच्च न्यायालय करेगा और उसका निर्णय अन्तिम होगा। इसी आधार पर डॉ० जाकिर हुसैन तथा वी०वी० गिरि के चुनावों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी। परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने उनके चुनावों को वैध घोषित करते हुए याचिकाओं को रद्द कर दिया था।

राष्ट्रपति की चुनाव प्रणाली के दोष

(i) राष्ट्रपति के चुनाव की विधि अप्रजातान्त्रिक है, क्योंकि इसमें राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष तौर पर जनता द्वारा नहीं होता।

(ii) आम (साधारण) व्यक्ति के लिए यह चुनाव प्रणाली उसकी समझ से बाहर है। उचित यह होता कि इसको अधिक सरल व सहज रखा जाता।

(iii) राष्ट्रपति की चुनाव–प्रणाली के लिए 'अनुपातिक प्रतिनिधित्त्व' तथा 'एकल संक्रमणीय मत' शब्दावली का प्रयोग किया गया है जो गलत है। यह प्रणाली वहां अपनाई जाती है जहाँ बहुल सदस्य निर्वाचित करने हों। संविधान सभा में सर्वश्री महावीर त्यागी, नजीरूद्दीन तथा बेगम अजीज रसूल ने इस चुनाव प्रणाली को आनुपातिक प्रतिनिधित्त्व का नाम देने पर भी आपत्ति जताई थी। एम०पी० शर्मा के अनुसार इस चुनाव प्रणाली का नाम वैकल्पिक या वरीयता प्रणाली होना चाहिए।

(iv) इस प्रणाली का यह दोष भी है कि यदि उम्मीदवार दो से अधिक हों और मतदाता केवल एक ही पसन्द का प्रयोग करे। इस प्रकार यदि किसी को पहली पसंद में बहुमत ना मिले तो चुनाव किस प्रकार होगा? उचित तो यह होता कि राष्ट्रपति पद के लिए तीन या इससे अधिक उम्मीदवार हों और संविधान निर्माता कम–से–कम तीन पसन्दों को देना अनिवार्य कर देते।

राष्ट्रपति द्वारा शपथ ग्रहण करना

अपना पद ग्रहण करने से पहले भारत के राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायाधीश के समक्ष शपथ लेनी पड़ती है जिसका उल्लेख संविधान की धारा 60 में इस प्रकार किया गया है:–

"मैं ईश्वर की शपथ लेता हूँ। सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं श्रद्धापूर्वक भारत के राष्ट्रपति पद का कार्य–पालन करूँगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, सरंक्षण तथा प्रतिरक्षण करूँगा और मैं भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूँगा।"

राष्ट्रपति की शक्तियाँ एवं कार्य

विधिशास्त्रियों के अनुसार भारतीय राष्ट्रपति सर्वशक्तिमान है जबकि राजनीति शस्त्रियों का कहना है कि केवल वह संवैधानिक अध्यक्ष है जो शक्ति की बजाय प्रभाव का प्रयोग करता है। संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार, "संघ की कार्यपालिका–शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी, जिसका प्रयोग वह स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा करेगा।" संविधान के प्रावधानों के अनुसार भारत के राष्ट्रपति को दो प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त है:–

(1) साधारण परिस्थितियों में प्रयुक्त शान्तिकालीन शक्तियाँ, एवं

(2) असाधारण परिस्थितियों में प्रयुक्त आपातकालीन शक्तियां।

साधारण परिस्थितियों की शक्तियों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है:–

विधायी शक्तियाँ: भारत का राष्ट्रपति किसी भी सदन का सदस्य होते हुए भी इसका अभिन्न अंग है राष्ट्रपति की विधायी शक्तियाँ निम्नलिखित हैं:–

(i) ***संसद का अधिवेशन बुलाना तथा सत्रावसान करना:*** संविधान के अनुच्छेद 58 (1), (2) के अर्न्तगत राष्ट्रपति संसद का अधिवेशन बुलाता है तथा समाप्त करता है। राष्ट्रपति संसद के अधिवेशनों का सत्रावसान कर सकता है। किन्तु दो सत्रों के मध्य छः माह से अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए।

(ii) ***संसद में अधिवेशनों का उद्घाटन और संशोधन:*** लोकसभा चुनावों के बाद गठित सरकार तथा प्रतिवर्ष बजट सत्र के दौरान राष्ट्रपति संसद में अभिभाषण देता है जो सम्बन्धित सरकार की नीतियों का दर्पण होता है।

(iii) ***सयुक्त अधिवेशन बुलाना:*** यदि सदन के दोनों सदन किसी विषय पर असहमति प्रकट करें तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की सयुंक्त बैठक बुला सकता है।

(iv) राष्ट्रपति संसद के किसी भी सदन को संदेश भेज सकता है।

(v) राष्ट्रपति, लोकसभा में दो एंग्लोइन्डियन व्यक्तियों को मनोनीत कर सकता है यदि उन्हें आम चुनाव के दौरान संसद में प्रर्याप्त प्रतिनिधित्त्व नहीं मिला हो। इसी प्रकार राज्यसभा में भी राष्ट्रपति 12 ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत कर सकता है जो साहित्य, कला, विज्ञान, सामाजिक जीवन या शिक्षा आदि क्षेत्रों में विशेष ज्ञान का अनुभव रखते हों।

(vi) आपातकाल में राष्ट्रपति लोकसभा की अवधि एक वर्ष बढ़ा सकता है।

(vii) ***अध्यादेश जारी करने की शक्तिः*** अनुच्छेद 123 के अनुसार जब संसद के दोनों सदनों की बैठक न हो रही हो तथा किसी विषय पर तत्काल निर्णय लेना हो तो राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है जो संसद की अगली बैठक के छः सप्ताह के दौरान अनुमोदित अथवा इसके पश्चात् निरस्त हो जाएगा। ये अध्यादेश मूल अधिकारों के हनन से सम्बन्धित नहीं हो सकते हैं। राष्ट्रपति के व्यक्तिक समाधान पर आधारित इन अध्यादेशों को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है। अगर संसद इसे स्वीकृति दे देती है तो यह अध्यादेश कानून बन जाता है। जैसे अटल बिहारी सरकार में राष्ट्रपति द्वारा आतंकवाद के खिलाफ आतंकवादी निरोधक अध्यादेश (POTO) जारी किया था जो बाद में कानून में बदल गया (POTA)। आलोचकों के अनुसार सत्तारूढ़ दल राष्ट्रपति की इस शक्ति या दुरूपयोग करते हैं; जैसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बारे में जो अध्यादेश जारी किया गया था वह संसद के अधिवेशन के शुरू होने से 2-3 दिन पूर्व किया गया था, जो न्याय संगत नहीं था। ए0बी0 लाल के अनुसार, "किसी भी देश में जहां लिखित संविधान तथा संसदीय प्रणाली की सरकार हो, राज्याध्यक्ष को ऐसी वैधानिक शक्ति प्राप्त नहीं हैं।"

(viii) ***लोकसभा को भंग करने की शक्तिः*** भारत का राष्ट्रपति जब चाहे संसद के निचले सदन को भंग कर सकता है, लेकिन वास्तव में वह इस शक्ति का प्रयोग प्रधानमन्त्री की सलाह से ही करता है। उदाहरण के लिए सन् 1970 में राष्ट्रपति श्री वी0वी0 गिरि ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सलाह पर लोकसभा को भंग किया था। 18 जनवरी, 1970 को राष्ट्रपति श्री फरवरूद्दीन अली अहमद ने श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सलाह पर 22 अगस्त, 1979 को राष्ट्रपति श्री संजीवा रेड्डी ने चौ0 चरण सिंह की सलाह पर लोकसभा को भंग किया था। सन् 1996 के लोकसभा चुनाव में किसी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलने के कारण सबसे पहले राष्ट्रपति ने भाजपा के शीर्ष नेता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया परन्तु लोकसभा में बहुमत सिद्ध न करने पर और त्याग–पत्र देने पर श्री एच0डी0 देवेगौड़ा को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया परन्तु कुछ समय पश्चात् संयुक्त मोर्चा में फूट के कारण श्री इन्द्रकुमार गुजराल को नेता चुना गया। संयुक्त मोर्चा से काँग्रेस द्वारा समर्थन वापिस लिए जाने के कारण सरकार गिर गई और राष्ट्रपति ने लोकसभा भंग कर दी।

(ix) ***संसद द्वारा पास किए गए बिलों पर स्वीकृतिः*** संसद में बिलों के पास होने के बाद राष्ट्रपति की स्वीकृति लेना आवश्यक है। यदि वह किसी बिल को स्वीकृति न दे, तो वह उस (धन–विधेयक के अतिरिक्त) बिल को पुनः विचार के लिए संसद के पास वापिस भेज सकता है। यदि वह विधेयक संसद के दोनों सदनों मे पास होकर पुनः राष्ट्रपति के पास चला जाए तो राष्ट्रपति को उस पर अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है। जैसे राष्ट्रपति आर0के0 नारायणन ने अक्टूबर 1997 तथा सितम्बर 1998 में दो बार उत्तर प्रदेश तथा बिहार के खिलाफ राष्ट्रपति शासन लागु करने के विधेयकों को पुनर्विचार के लिए मन्त्रिमण्डल के पास भेजा था। इसी प्रकार अगस्त 2002 में राष्ट्रपति ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम द्वारा जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) बिल, 2002 को पुनर्विचार के लिए भेजा, परन्तु मन्त्रिमण्डल ने बिना किसी फेरबदल के उसी बिल को वापिस राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया और राष्ट्रपति को उस पर स्वीकृति देनी पड़ी।

(x) धन विधेयक, नये राज्यों के निर्माण (जैसे–छत्तीसगढ़, उत्तरांचल तथा झारखण्ड) तथा वर्तमान राज्यों की सीमा में परिवर्तन, राज्यों के वित्तीय संसाधनों तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इत्यादि को प्रभावित करने वाले विषयों से सम्बन्धित विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बाद ही सदन में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(xi) राज्य विधानमण्डलों द्वारा राष्ट्रपति को भेजे गए विधेयकों को राष्ट्रपति पुनर्विचार हेतु लौटा सकता है तथा दोबारा आने पर तार्किक आधार पर अपनी स्वीकृति पूर्णतः रोक (वीटो) भी सकता है जो संसद के विधेयकों के सम्बन्ध में अंशतः ही लागू होती है।

कार्यपालिका शक्तियाँः भारतीय संघ की समस्त कार्य–पालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। संविधान के अनुच्छेद 53 के अनुसार संघ की कार्यकारी शक्ति राष्ट्रपति में निहित है और वह इसका प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों द्वारा करता है। सारे देश का शासन राष्ट्रपति के नाम पर ही चलाया जाता है। इसकी कार्यपालिका शक्तियाँ निम्नलिखित हैंः–

(i) प्रधानमन्त्री की नियुक्ति तथा प्रधानमन्त्री के परामर्श पर मन्त्रिपरिषद् में अन्य मन्त्रियों की नियुक्तियाँ करना;

(ii) प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रिपरिषद् को पद से हटना;

(iii) राष्ट्रीय नीतियों तथा कार्यक्रमों में सहमति प्रकट करना तथा प्रधानमन्त्री से सूचना माँगना;

(iv) देश के संचालन तथा मार्गदर्शन में सहयोग करना,

(v) सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करना;

(vi) भारत के महान्यायविद (अटार्नी जनरल) की नियुक्ति, नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति, राज्यों में राज्यपालों की नियुक्ति, केन्द्र शासित प्रदेशों में आयुक्तों की नियुक्ति, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति, निर्वाचन आयोग मुख्य चुनाव आयुक्त तथा चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति, राजदूतों तथा अन्य मिशनों में नियुक्ति, अन्तर्राज्यीय परिषद्, राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद्, वित्त आयोग, भाषा आयोग, केन्द्रीय सतर्कता आयोग इत्यादि में नियुक्तियाँ करना राष्ट्रपति के क्षेत्राधिकार में है।

(vii) राष्ट्रपति अनेक पुरस्कारों, अलंकारों तथा सम्मान पत्रों इत्यादि का वितरण करता है।

वस्तुतः राष्ट्रपति अपनी सभी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रिपरिषद् के परामर्श पर करता है अर्थात् वास्तविक रूप से ये शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित न होकर मन्त्रिपरिषद् में निहित हैं।

सैनिक शक्तियाँः तीनों भारतीय सेनाओं की सर्वोच्च कमान राष्ट्रपति के हाथ में है, परन्तु वह इस शक्ति को विधि के अनुसार ही प्रयोग कर सकता है। वस्तुतः युद्ध और शान्ति के समय कानून बनाने का अधिकार पूर्णरूप से संसद को प्राप्त है और बिना संसद की स्वीकृति के, वह न तो युद्ध की घोषणा कर सकता है और न ही सेनाओं को युद्ध लड़ने के लिए भेज सकता है।

न्यायिक शक्तियाँः संविधान के अनुच्छेद 72 के अनुसार राष्ट्रपति को क्षमादान का अधिकार दिया गया है। वह दण्ड को पूर्णरूप से क्षमा कर सकता है, स्थगित कर सकता है अथवा दण्ड में परिवर्तन कर सकता है। इस अधिकार का प्रयोग केवल तीन प्रकार के दण्डों पर कर सकते हैं–(i) यदि दण्ड किसी सैनिक न्यायालय द्वारा दिया गया हो; (ii) यदि दण्ड ऐसे मामलों में दिया गया हो जो केन्द्रीय कार्यपालिका के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आते हों; और (iii) यदि अपराधी को मत्यु दण्ड दिया गया हो। व्यवहार में राष्ट्रपति इन अधिकारों का प्रयोग मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही करेगा।

वित्तीय शक्तियाँः राष्ट्रपति के नाम से ही प्रतिवर्ष बजट वित्तमन्त्री द्वारा संसद में पेश किया जाता है। उनकी अनुमति बिना कोई धन विधेयक लोकसभा में पेश नहीं किया जा सकता। राष्ट्रपति प्रतिवर्ष लेखा परीक्षक रिपोर्ट, वित्त आयोग की सिफारिशें आदि संसद के सम्मुख प्रस्तुत करवाता है। राष्ट्रपति संसद से पूरक, अतिरिक्त तथा अपवादभूत अनुदानों की माँग भी कर सकता है। भारत की आकस्मिक विधि पर उसका पूर्ण नियन्त्रण रहता है। वह सरकार की इस निधि में से संसद की अनुमति के बिना ही अचानक आ पड़ने वाले खर्च को दे सकता है।

आपातकालीन शक्तियाँः जर्मनी के वाईमर संविधान की भाँति भारत के संविधान द्वारा भी राष्ट्रपति को आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। हमारे संविधान के 18वें भाग में इन शक्तियों का उल्लेख किया गया है। आपातकालीन समस्या के समाधान के लिए शक्तियों का कुछ केन्द्रीकरण आवश्यक हो जाता है। जिससे यह भी सम्भव है कि कार्य–पालिका निरंकुश रूप धारण करने का प्रयत्न कर सकती है। संविधान में इस संदर्भ में प्रायः कुछ 'विशेष रक्षक प्रावधान' समावेशित किए हैं जो कार्य पालिका की निरंकुश बनने की प्रवत्ति पर अवरोध लगाते हैं। 49वें संविधान संशोधन के तहत आपातकालीन प्रावधानों को सुरक्षा कवच पहनाया गया है और अब आपातकालीन शक्तियों के प्रावधान इस प्रकार हैं–

(1) **युद्ध, बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह से उत्पन्न संकटः** मूल संविधान के अनुच्छेद 352 में व्यवस्था है कि यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाये कि युद्ध, बाह्य आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति के कारण भारत या उसके किसी भाग की शान्ति व्यवस्था के नष्ट होने की आंशका है या यथार्थ रूप में इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर राष्ट्रपति संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता था। संसद की स्वीकृति के बिना भी यह दो माह तक लागू रहती थी और संसद से स्वीकृत हो जाने पर शासन जब तक उसे लागू रखना चाहता तो लागू रख सकता था। अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत

चार बार आपातकाल की घोषणा की गई है–1962, 1965, 1971 (बाह्य आक्रमण) तथा 1975 (आन्तरिक अव्यवस्था के कारण)। संकटकाल के दौरान शक्तियों का दुरूपयोग किया गया, विशेषकर 1975 में। अतः इन आपातकालीन शक्तियों का दुरूपयोग न किया जाए इसलिए 44वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों पर काफी प्रतिबन्ध लगा दिए गए हैं, जो इस प्रकार हैं–

(i) अनुच्छेद 352 में "आन्तरिक अशान्ति" के स्थान पर "सशस्त्र विद्रोह" शब्दावली का प्रयोग किया गया है, जिससे राष्ट्रपति आन्तरिक अशान्ति की स्थिति में तभी आपात–उद्घोषणा कर सकेगा जब देश के किसी भाग में "सशस्त्र विद्रोह" प्रारम्भ हो गया हो।

(ii) राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की घोषणा तभी की जा सकेगी जब केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल लिखित रूप से राष्ट्रपति को ऐसा परामर्श दे।

(iii) राष्ट्रपति द्वारा घोषणा किए जाने के एक माह के अन्दर संसद के विशेष बहुमत (पथक–पथक संसद के दोनों सदनों के कुल बहुमत एवं उपस्थिति और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत) से इसकी स्वीकृति आवश्यक है तथा लागू रखने के लिए प्रति छः माह बाद संसद की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है।

(iv) संसद के साधारण बहुमत द्वारा संकटकाल की घोषणा समाप्त की जा सकती है।

यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि 44वें संविधान संशोधन द्वारा भारतीय संविधान में किए गए 38वें संवैधानिक संशोधन को भी रद्द कर दिया गया है जिसमें यह प्रावधान था कि राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत की गई संकटकालीन घोषणा को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस प्रकार अब राष्ट्रपति द्वारा लागू की गई आपातकालीन घोषणा को न्याय योग्य बना दिया गया है। अब इस प्रकार की घोषणा को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

आपात उद्घोषणा के प्रभावः संक्षेप मे आपात उद्घोषणा के संवैधानिक प्रभाव निम्नलिखित हैः

(i) संसद को सम्पूर्ण देश अथवा उसके किसी क्षेत्र के लिए सभी विषयों अथवा राज्य सूची में दिए गए विषयों पर भी कानून बनाने की शाक्ति प्राप्त हो जायेगी। राज्य–सूची के सम्बन्ध में संघ द्वारा निर्मित ये कानून उद्घोषणा की समाप्ति के छह माह बाद प्रभावी नहीं रहेगें।

(ii) संघ की कार्यपालिका को राज्यों की कार्यपालिकाओं को यह निर्देश देने का अधिकार हो जाता है कि किस प्रकार शक्ति का प्रयोग करें।

(iii) राष्ट्रपति यह आदेश दे सकता है कि संघ और राज्यों के बीच आय–वितरण सम्बन्धी सभी या कोई भी उपबन्ध चालू वित्तीय वर्ष में उसके निर्देशानुसार संशोधित होते रहेंगें, परन्तु ऐसा आदेश यथाशीघ्र ससंद के दोनों सदनों के सामने रखा जाएगा।

(iv) आपातकालीन घोषणा के लागू रहने के समय में 19 वें अनुच्छेद द्वारा नागरिकों को प्राप्त स्वतन्त्रताएँ स्थगित हो जाएगी और राज्य के द्वारा इन स्वतन्त्रताओं को स्थगित करने वाले कानूनों का निर्माण किया जा सकेगा। 44 वें संविधान संशोधन में प्रावधान किया गया है कि यदि आपात–स्थिति सशस्त्र विद्रोह के कारण लागू की गयी है, तो अनुच्छेद 19 की व्यवस्थाओं को स्थगित नहीं किया जा सकता। आपात–स्थिति की समाप्ति के बाद ऐसे कानून तत्काल समाप्त हो जाएँगे।

(v) मूल संविधान में व्यवस्था थी कि राष्ट्रपति के आदेश द्वारा अनुच्छेद 32 में वर्णित संवैधानिक उपचारों (न्यायालय की शरण) के अधिकारों को भी स्थगित कर सकता है। 44 वें संशोधन के आधार पर यह व्यवस्था की गई कि आपातकाल में भी जीवन और शारीरिक स्वाधीनता के अधिकार को समाप्त या सीमित नहीं किया जा सकेगा। लेकिन इसके अतिरिक्त अन्य अधिकारों के लिए नागरिक न्यायालय की शरण ले सकेंगे।

(2) **राज्यों में संवैधानिक तन्त्र के असफल होने से उत्पन्न संकटः**

संविधान के अनुच्छेद 356 के अनुसार अगर राष्ट्रपति को राज्यपाल के प्रतिवेदन पर या किसी अन्य प्रकार से यह विश्वास हो जाए कि ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं कि किसी राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है तो व सकंटकाल की घोषणाकर सकता है।

ऐसा आपातकाल घोषित करने की विधि वही है जो प्रथम प्रकार के सकंट के लिए है। मूल संविधान में संकट की समयावधि छह माह थी। 42 वें संशोधन द्वारा इस अवधि को एक वर्ष कर दिया गया था, परन्तु 44 वें संशोधन द्वारा इस अवधि को पुनः छह माह कर दिया गया है। 44 वें संशोधन के पूर्व राज्य में राष्ट्रपति शासन की अधिकतम अवधि तीन वर्ष थी, लेकिन अब इस व्यवस्था में परिवर्तन किया गया है कि राज्य में राष्ट्रपति शासन के एक वर्ष की अवधि के बाद इसे और अधिक समय के लिए जारी रखने का प्रस्ताव संसद तभी पारित कर सकेगी, जबकि इस प्रकार का प्रस्ताव पारित किए जाने के समय अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकाल लागू हो और चुनाव आयोग यह प्रमाणित कर दे कि राज्य में चुनाव कराना सम्भव नहीं है।

घोषणा के संवैधानिक प्रभावः इस प्रकार की घोषणा के परिणाम निम्नलिखित होंगे।

(i) राष्ट्रपति किसी भी राज्य अधिकारी का कोई भी कार्यपालिका सम्बन्धित कार्य स्वयं ग्रहण कर सकता है।

(ii) राष्ट्रपति राज्य के विधान मण्डल की शक्तियाँ ससंद को हस्तान्तरित कर सकेगा और ससंद को यह अधिकार होगा कि वह उन विधायी शाक्तियों को राष्ट्रपति को सौंप दें अथवा राष्ट्रपति को यह अधिकार दे कि वह उन्हें किसी अन्य अधिकारी को सौंप दे।

(iii) यदि लोकसभा का सत्र नहीं चल रहा हो, तो राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि में से आवश्यक खर्च की स्वीकृति दे सकता है।

(iv) राष्ट्रपति उद्घोषणा की पूर्ति के लिए उच्च न्यायालय की शक्ति को छोड़कर अन्य समस्त शक्तियाँ अपने हाथ में ले सकता है।

संविधान के इन उपबन्धों का अब तक लगभग 115 से भी अधिक बाद प्रयोग किया जा चुका है। पहली बार 1951 में पंजाब में भार्गव मंत्रिमण्डल के पतन के कारण ऐसी उद्घोषणा की गई थी। उसके बाद 1952 में पेप्सू राज्य में, 1954 में आंध्रप्रदेश में, 1956 में ट्रावनकोर कोचीन, 1959 में केरल, 1961 में उड़ीसा, 1966 में पजांब, 1967 में राजस्थान और इसके बाद पश्चिमी बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, कर्नाटक और गुजरात में सकंटकालीन घोषणा लागू की गई, 1973 में उड़ीसा तथ उत्तर प्रदेश, 1974 में पांडिचेरी, 1975 में नागालैण्ड, 1976 में तमिलनाडु और गुजरात, 1977 में जम्मू कश्मीर, मिजोरम तथा 9 राज्यों की विधान सभा भंग कर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। इस स्थिति की पुनरावति तब हुई जब 1980 में केन्द्र सरकार द्वारा 9 राज्यों की विधान सभाएँ भंग कर इन राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया।

पंजाब राज्य में कानून–व्यवस्था के सम्बन्ध में असन्तोषजनक स्थिति के कारण अक्टूबर 1983 में वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू किया गया, मार्च 1984 तथा पुनः अगस्त 1984 में संविधान में संशोधन कर पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि बढ़ाई गई और दिसम्बर 1985 तक पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू रहा। पंजाब में राष्ट्रपति शासन की अवधि बार–बार बढ़ाई गई और 11 मई, 1987 से चला आ रहा राष्ट्रपति शासन 25 फरवरी, 1992 को हटाया गया। 1989 में नागालैण्ड और कर्नाटक, 1990 में असम में, 1991 में तमिलनाडु, 1992 में नागालैण्ड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा राजस्थान में आपत्तिपूर्ण राष्ट्रपति शासन लगाया गया क्योंकि वहाँ पर भाजपा सरकार कायम थी और वहां की विधान सभाओं को बहुमत प्राप्त था और संवैधानिक तन्त्र असफल नहीं हुआ था। अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में 18 अक्टूबर 1995, 1996 को राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। इसके बाद 1996 में ही गुजरात, 1997 में फिर उत्तर प्रदेश विधान सभा में विश्वास मत प्राप्त करने के बावजूद राज्यपाल रोमेश भण्डारी की रिपोर्ट पर केन्द्रीय मंत्रिमण्डल नें अनुच्छेद 356 के तहत् विधानसभा भंग करके राष्ट्रपति शासन लागू करने की सिफारिश की, परन्तु राष्ट्रपति के0 आर0 नारायणन् ने इसे पुनर्विचार के लिए मंत्रिमण्डल के पास भेज दिया। इसी प्रकार 1998 में राष्ट्रपति के0 आर0 नारायणन ने बिहार में राष्ट्रपति शासन लगाने से इन्कार कर दिया। फरवरी 1999 में देश के दो राज्य गोओं व बिहार राष्ट्रपति शासन के अधीन आ गए। सरकारिया आयोग ने इस मुद्दे पर विचार करते हुए पाया कि मंत्रिमण्डल को विधान सभा में बहुमत प्राप्त होने के बावजूद 13 मामलों में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया, ऐसे 15 मामलों में, जिनमें मंत्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया था और 26 मामलों में ही राष्ट्रपति शासन लागू करने को अपरिहार्य माना है।

श्री महेश्वरी के शब्दों में, "अनुच्छेद 356 देश की राजनीतिक और प्रशासनिक प्रक्रिया का एक अन्तरंग भाग, सम्भवतया इसका मानस बन गया है।" अनुच्छेद के इतने अधिक प्रयोग को उचित नहीं कहा जा सकता।

(3) **आर्थिक आपातकालः**

धारा 360 के अन्तर्गत यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि भारत या उसके किसी राज्य के किसी भाग का वित्तीय स्थायित्व संकट में हैं, तो वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। यदि यह घोषणा संसद 2 माह के अन्दर नहीं करती तो यह अपने आप समाप्त हो जाती है। ऐसा आपातकाल भारत में अभी तक नहीं आया है।

ऐसी घोषणा के प्रभावः

(i) वित्तीय संकट की अवस्था में राष्ट्रपति राज्यों को ऐसे निर्देश दे सकता है जो उसकी दष्टि में वित्तीय साख बनाये रखने के लिए आवश्यक हों।

(ii) ऐसे समय में सरकारी कर्मचारियों के वेतन कम कर सकता है।

(iii) वह आदेश दे सकता है कि प्रत्येक धन बिल उसकी स्वीकृति के लिए भेजा जाए।

(iv) वह संघ और राज्यों के बीच राजस्व के बटवारे के विषय में आवश्यक बदलाव कर सकता है।

(v) वित्तीय साख को बचाने के लिए कोई भी कदम उठा सकता है। हमारे देश में इसकी संकट घोषणा नहीं की गई है।

संकटकालीन शक्तियों की आलोचनाः

1. मौलिक अधिकार अर्थहीन हो जाएंगे इन शक्तियों के आधार पर वह 6 मौलिक स्वतन्त्रताओं को निलंबित कर सकता है। तथा उस समय न्यायालय में भी इसको चुनौती नहीं दी जा सकती। ऐसे समय में राष्ट्रपति तानाशाह बन सकता है।
२. संकट काल में राष्ट्रपति राज्यों के आर्थिक मामलों में दखल दे सकता है। जिससे राज्यों की वित्तीय स्वतन्त्रताओं को बड़ा आघात पहुँचता है।
3. इससे राज्यों मे विरोधी दलों की सरकारों का दमन किया जा सकता है। क्योंकि सत्ताधारी दल अन्य दलों पर भारी पड़ने का प्रयास कर सकता है।
4. संकट काल में न्यायपालिका के अधिकारों को सीमित किया जाना ठीक नहीं। संविधान की धारा 352 तथा 356 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा की गई आपातकालीन घोषणाओं के औचित्यों को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती लेकिन अब 44 वें संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति की घोषणा को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।
5. संकटकालीन स्थिति का फैसला करने का अधिकार राष्ट्रपति का है। लेकिन वह न तो जनता का प्रतिनिधित्व करता है और न ही अपनी शक्तियों के प्रयोग के लिए किसी के प्रति उत्तरदायी है। वह एक अनुत्तरदायी मुखिया की भूमिका वहन करता है।
6. संघीय ढांचा संकटकाल में एकात्मक सरकार में बदल जाता है। जिससे राज्यों की सरकार समाप्त हो जाती है।
7. वित्तीय संकटकाल में राष्ट्रपति न्यायाधीशों के वेतन कम कर उनकी स्वतन्त्रता को हानि पहुँचा सकता है।

आपातकालीन शक्तियों का औचित्यः

1. हमारा इतिहास इस बात का गवाह है कि केन्द्र सरकार कमजोर होने पर हमें हानि उठानी पड़ी हैं। जिसके कारण केन्द्र सरकार का शक्तिशाली होना आवश्यक हो जाता है।
2. देश की रक्षा और सुरक्षा का उत्तरदायित्त्व केन्द्र सरकार का ही होता है। इसलिए संघीय रूप इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी राष्ट्रीय सुरक्षा।
3. महाभियोग ऐसा शस्त्र है जिससे राष्ट्रपति को तानाशाह बनने से रोका जाता है।

4. राष्ट्रपति संवैधानिक मुखिया है। उसे सारे कार्य प्रधानमंत्री और मंत्रिमण्डल की सलाह पर ही करने होते हैं। जिससे वह स्वविवेक का प्रयोग करके देश का शासन संभाल नही सकता।

5. संकट काल की घोषणा तभी कि जा सकती है जब ससंद के दोनों सदन इसकी स्वीकृति दे देते हैं। यदि वह स्वीकृति प्रदान न करे तो संकटकाल की घोषणा उसी समय समाप्त हो जाती है जैसे बिहार में श्री अटल बिहारी सरकार के काल में लगाई गई आपातकाल घोषणा राज्यसभा में स्वीकृति न मिलने के कारण रद्द हो गई थी। 44 वें संशोधन के अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि लोकसभा एक प्रस्ताव पास करके किसी भी समय आपातकालीन घोषणा को समाप्त कर सकती है।

6. मौलिक अधिकारों का स्थगन अवैध नहीं है। क्योंकि मौलिक अधिकार तभी सुरक्षित होते हैं जब देश सुरक्षित होता है। इसलिए इनसे अधिक आवश्यक राष्ट्रीय सुरक्षा है।

7. वित्तीय संकटकाल का प्रावधान करना आवश्यक तथा उचित है क्योंकि वित्त के बिना शासन नहीं चलाया जा सकता। यदि वित्त व्यवस्था ही सही नहीं हो तो शासन मतक होता है। इसलिए संविधान निर्माताओं ने दूरदर्शिता का परिचय दिया।

राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति

राष्ट्रपति की विभिन्न शक्तियों से यह प्रतीत होता है कि वह देश का वास्तविक तथा संवैधानिक मुखिया है परन्तु उसकी वास्तविक स्थिति को देखा जाए तो ऐसा नहीं है। इसलिए भारतीय राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति का निर्धारण एक अत्यधिक विवादग्रस्त प्रश्न है। संविधान के अनुच्छेद 53 के द्वारा राष्ट्रपति को जो शक्तियां दी गई हैं व्यवहार में वह स्वयं के विवेक के आधार पर इन शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 74(1) में निहित शक्तियों के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं होगा और वह चाहे तो वास्तविक शासक बन सकता है। डी० एन० बनर्जी के अनुसार, "क्या राष्ट्रपति को अनुच्छेद 74(1) के उपबन्ध मानने के लिए बाध्य किया जा सकता है? क्या राष्ट्रपति हर स्थिति में अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा मानने को बाध्य है? मैं तो कहता हूँ कि ऐसी नहीं है।" प्रारूप समिति के वैधानिक सलाहाकार श्री बी० एन० राव लिखते हैं कि "संविधान राष्ट्रपति का कोई ऐसा वैधानिक उत्तरदायित्त्व निश्चित नहीं करता है कि वह मन्त्रियों की मन्त्रणा के आधार पर कार्य करेगा। क्या वह और किसी सीमा तक ऐसा करने के लिए बाध्य होगा, परम्परा का विषय है।" संविधान सभा के अध्ययक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद का भी यही मत था कि "अनुच्छेद 74(1) यह नहीं कहता कि राष्ट्रपति को मन्त्रियों की मन्त्रणा माननी ही होगी।"

18 सितम्बर, 1951 को प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने एक नोट भेजा कि किसी भी बिल की स्वीकृति के समय, संसद को संदेश भेजते समय तथा बिलों को पुनर्विचार के लिए भेजते समय वह अपने विवेक से कार्य करेगा न कि मंत्रिपरिषद् की सलाह पर। इसके बाद प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रपति के विचारों को मद्रास में ए० के० अय्यर तथा अटार्नी जनरल एम०सी० सटालवद के पास उनकी सलाह के लिए भेजा, तो दोनों ने राष्ट्रपति के विचारों के खिलाफ राय दी और कहा कि इससे पूरे संविधान का ढाँचा हिल जाएगा और राष्ट्रपति एक तानाशाह बन सकता है।

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने 28 नवम्बर, 1960 को 'भारतीय विधि संस्थान में भाषण के दौरान इस आवश्यकता पर बल दिया कि "वैज्ञानिक पद्धति से इस सन्दर्भ में अध्ययन और परीक्षण होना चाहिए, जिससे राष्ट्रपति के कार्यो एवं शक्तियों की सीमाओं का आभास हो सके।"

डा० जे० आर० सिवाच ने अपने शोध ग्रंथों में विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि "भारत में राष्ट्रपति की स्थिति वैसी नहीं है जैसी ब्रिटेन में सम्राट की है। कुछ मामलों में राष्ट्रपति के द्वारा मंत्रिपरिषद् के परामर्श की अवहेलना करते हुए भी अपने व्यक्तिगत निर्णय का प्रयोग किया जाना चाहिए, यदि वह अपनी शपथ के प्रति निष्ठा रखता है।"

सन् 1967 में राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार सुब्बाराव तथा समर्थकों के द्वारा 'स्वतन्त्र राष्ट्रपति' धारणा के बारे में कहा था कि "राष्ट्रपति केवल एक संवैधानिक प्रधान नहीं है और उस पर संविधान की व्यवस्थाओं को क्रियान्वित करने का विशेष भार है।"

अतः इस पक्ष के समर्थकों के अनुसार यदि राष्ट्रपति को संवैधानिक प्रधान ही बनाना था, तो उसको कुछ ऐसी शक्तियाँ क्यों दी गई जो अध्यक्षात्मक प्रणाली में पाई जाती है। उनके अनुसार भारतीय राष्ट्रपति सभी परिस्थितियों में मंत्रिपरिषद् की मन्त्रणायों मानने के लिए बाध्य नहीं होगा।

भारतीय राष्ट्रपतियों की भूमिका के सम्बन्ध में तुलनात्मक अध्ययनः

1950 से 2003 तक भारतीय प्रशासन में राष्ट्रपति की भूमिका का तुलनात्मक अध्ययन करना एक महत्त्वपूर्ण पहलू है और यह अध्ययन राष्ट्रपति के व्यक्तित्त्व, तत्कालीन परिस्थिति तथा प्रशासन में उनकी स्थिति पर निर्भर करता है।

सर्वप्रथम डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा प० जवाहर लाल नेहरू के बीच हिन्दू कोड बिल के सम्बन्ध में मतभेद उत्पन्न हुए। तिब्बत को चीन के अंग के रूप में स्वीकार करने के शासन के दष्टिकोण से भी डॉ० प्रसाद सहमत नहीं थे। केरल के साम्यवादी शासन के विरूद्ध कांग्रेसी आन्दोलन (1959) को राष्ट्रपति नितान्त अनुचित मानते थे। डा० प्रसाद द्वारा सोमनाथ मन्दिर के उत्सव की अध्यक्षता, दिसम्बर, 1950 में पटेल की शवयात्रा में भाग लेने और 1952 में बनारस यात्रा के अवसर पर श्रद्धावश पण्डितों के पैर धोने के सम्बन्ध में नेहरू के विरोध को अस्वीकार करते हुए अपने विवेक के अनुसार कार्य किया। सौभाग्यवश इन मतभेदों को सार्वजनिक रूप से व्यक्त नहीं किया गया।

दूसरे राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन प्रशासन में स्वतन्त्र रूप से भूमिका निभाने की आकांक्षा रखते थे। जैसे जनरल थापर के त्यागपत्र देने पर जनरल चौधरी की नियुक्ति करना राधाकृष्णन के परामर्श का ही परिणाम था जबकि नेहरू जनरल कौल को इस पद पर नियुक्त करना चाहते थे। पंजाब के मुख्यमंत्री प्रतापसिंह कैरों के विरूद्ध जांच आयोग बैठाने का कार्य भी नेहरू ने अपनी इच्छा के विरूद्ध और डा० राधाकष्णन के आग्रह पर ही किया था। नेहरू की मत्यु के पश्चात् वरिष्ठतम केबिनेट सदस्य को कार्यवाहक प्रधानमंत्री बनाने का निर्णय भी डा० राधाकृष्णन ने ही लिया था।

डा० जाकिर हुसैन के राष्ट्रपति काल में बदली हुई दलीय स्थिति के कारण उनकी केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों में भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण हो सकती थी, परन्तु राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की पसंद के उमीदवार होने के कारण दोनों में इस प्रकार का कोई मतभेद नहीं हुआ इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति जाकिर हुसैन पूर्ण रूप से प्रधानमंत्री के कार्यो से सहमत रहते थे।

श्री वी० वी० गिरि तथा प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के सम्बन्ध सन् 1972 के अंत तक मधुर रहे, परन्तु 1973 के आरम्भ में राष्ट्रपति शासन को परामर्श देने, चेतावनी देने तथा भर्त्सना करने का कार्य करने लगा। सन् 1974 में रेलवे हड़ताल के सम्बन्ध में और गुजरात विधान सभा भंग किए जाने के सम्बन्ध में उनके विचार प्रधानमंत्री से मेल नहीं खाते थे।

1974 में राष्ट्रपति पद के लिए यह धारणा अपनाई गई कि 'राष्ट्रपति प्रधानमंत्री का आदमी हो' और फखरूद्दीन अली अहमद को राष्ट्रपति चुना गया। राष्ट्रपति अहमद के द्वारा 24 जून,1975 की रात्रि को आपालकालीन उद्घोषणा पर यह जानते हुए हस्ताक्षर किए कि मंत्रिमण्डल ने इस विषय पर विचार नहीं किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय राष्ट्रपति एक रबड़ की मोहर के रूप में कार्यरत है।

सन् 1977 में भारत के संवैधानिक इतिहास में पहली बार किसी महत्त्वपूर्ण संवैधानिक प्रश्न पर प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के बीच मतभेद 9 राज्यों की विधान सभाएं भंग किए जाने पर देखा गया। बी० डी० जत्ती ने स्थिति का अध्ययन करने के नाम पर 24 घण्टे से भी अधिक समय तक मंत्रिमण्डल के निर्णय पर अपनी स्वीकृति नहीं दी, परन्तु बाद में मंत्रिमण्डल के परामर्श को स्वीकार कर लिया गया। नीलम संजीव रेड्डी का राष्ट्रपति पद पर (जुलाई, 1977) सर्वसम्मत निर्वाचन हुआ और इससे राष्ट्रपति पद तथा पदधारी की प्रतिष्ठा में वद्धि हुई। 15 जुलाई, 1979 को असामान्य परिस्थितियों में मोरारजी देसाई के पद त्याग तथा यशवन्त राव चौहान द्वारा सरकार बनाने में असमर्थता व्यक्त किए जाने के बाद राष्ट्रपति द्वारा मोरारजी देसाई और चरणसिंह से प्रधानमंत्री पद के लिए अपने दावे प्रस्तुत करने को कहा और दावे प्रस्तुत किए जाने पर चरणसिंह को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया गया। इसके साथ एक माह के अन्दर उनके द्वारा लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त किए जाने का आदेश दिया। चरणसिंह सरकार वस्तुतः राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सरकार थी क्योंकि उसने लोकसभा में कभी विश्वास प्राप्त नहीं किया। चरणसिंह सरकार द्वारा प्रस्तावित नजरबन्दी अध्यादेश पर हस्ताक्षर करने से पूर्व राष्ट्रपति रेड्डी द्वारा सरकार से कुछ स्पष्टीकरण माँगे गए।

सन् 1980 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के पुनः सत्ता में आने पर राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री के मध्य पुनः मतभेद उभरे। सोवियत रूस की यात्रा के लिए श्री संजीव रेड्डी तैयार नहीं थे, परन्तु इसके लिए उन्हें बाध्य किया गया। जब राष्ट्रपति श्री लंका की यात्रा पर जाना चाहते थे तो श्रीमती गाँधी इसके लिए सहमत नहीं हुई और इस प्रकार से ऐसी स्थिति आ गई थी कि देश–विदेश की स्थिति से सम्बन्धित ज्ञान राष्ट्रपति को केवल समाचार पत्रों से ही हो पाता था न कि प्रधानमंत्री द्वारा।

सन् 1982 में ज्ञानी जैलसिंह के राष्ट्रपति के रूप में चुने जाने के बाद, भारतीय संविधान में यह पहला मौका था कि राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री के बीच बहुत गहरे मतभेद हो गए जो कि आम जनता के समक्ष भी खुलकर आ गये थे। लगभग दो वर्षो तक केबिनेट का कोई भी मंत्री राष्ट्रपति के बुलाने पर भी कामकाज के लिए राष्ट्रपति के पास नहीं पहुँचा। इसलिए राष्ट्रपति ने विवादास्पद भारतीय डाकघर (संशोधन) विधेयक पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया, सरकार से न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए स्पष्ट नीति न अपनाने के बारे में जवाब माँगा दूरदर्शन के एक तरफा प्रसारण पर ऐतराज उठाया, मुख्य चुनाव आयुक्त को बुलाकर हरियाणा में अन्य राज्यों के साथ चुनाव न कराए जाने का कारण पूछा, आन्ध्र प्रदेश की तत्कालीन राज्यपाल कुमुदबेन जोशी को दायरे से बाहर जाने पर फटकारते हुए सरकार से पूछा कि राष्ट्र के नाम उनके संदेश को सेंसर क्यों किया गया ? प्रधानमंत्री ने प्रोटोकाल की अनदेखी करते हुए राष्ट्रपति को अपनी यात्राओं के बारे में बताना बन्द कर दिया और राष्ट्रपति की जगह उपराष्ट्रपति को विदेश यात्राओं पर भेजना शुरू कर दिया। इन्दिरा कांग्रेस के एक सांसद और केन्द्रीय मंत्री के० के० तिवारी द्वारा 1986 के बजट सत्र में राष्ट्रपति पर उग्रवादियों को प्रश्रय देने का आरोप तक लगा डाला था। राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री को लिखे एक पत्र में कहा कि असम, पंजाब और मिजोरम के बारे में समझौते करते समय उनको किसी भी स्तर की कोई जानकारी नहीं दी गई। संक्षेप में, राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह और प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के सम्बन्ध आपस में संविधान की रूपरेखा से बाहर रहे। लेकिन इन सबके लिए प्रधानमंत्री ही जिम्मेदार थे।

25 जुलाई, 1987 को श्री आर० वेकटरमण को राष्ट्रपति चुने जाने के बाद उनके सामने कई मुद्दे थे, जैसे विवादास्पद डाक विधेयक, राष्ट्रपति का सूचना प्राप्त करने का अधिकार जो कि पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह के समय में मुख्य विवाद रहा और प्रधान मंत्री पर मुकद्दमा चलाने की याचिकाओं पर अनुमति देने से सम्बन्धित आदि। राष्ट्रपति आर० वेंकटरमण का कार्यकाल ठीक–ठाक चला, केवल अक्टूबर 1987 में केंद्र सरकार को थोड़ी परेशानी तब हुई जब राष्ट्रपति ने राज्यपालों को चिट्ठी लिखी कि वे राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना राज्य से बाहर न जाएँ।

25, जुलाई 1992 को डा० शंकर दयाल शर्मा को राष्ट्रपति चुना गया। राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री पी० वी० नरसिंह राव के बीच केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त पद पर श्री एस० वी० गिरि की नियुक्ति को लेकर मतभेद हुए थे। राष्ट्रपति द्वारा 14 अगस्त, 1995 के भाषण में आर्थिक सुधारों पर आलोचनात्मक टिप्पणी की गई थी। इन मतभेदों के बावजूद उनका कार्यकाल समरूपता से चला कोई असंवैधानिक विवाद नहीं उभरा।

25, जुलाई 1997 को राष्ट्रपति पद संभालने के तीन महीने के अन्दर श्री के० आर० नारायणन ने वो स्थान प्राप्त किया जो इससे पूर्व किसी राष्ट्रपति ने नहीं किया था। 21 अक्टूबर, 1997 को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की उत्तर प्रदेश में राष्ट्रपति शासन करने की सिफारिश को इन्कार कर राज्य की वैध सरकार को बचाया और संविधान के रक्षक के रूप में उदाहरण पेश किया। इससे पहले किसी भी राष्ट्रपति ने केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के गलत फैसलों को इस तरह नहीं फटकारा था। फरवरी 1998 में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भण्डारी को लेकर राष्ट्रपति एवं गुजराल मंत्रिमण्डल के बीच विवाद उत्पन्न हो गया था। परन्तु गुजराल मंत्रिमण्डल ने न तो राज्यपाल को हटाने की सलाह दी और न ही इस मुद्दे को एजेण्डे में विचार के लिए शामिल किया गया।

सितम्बर, 1998 में राष्ट्रपति ने बिहार में राष्ट्रपति शासन लागू करने की प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी के मंत्रिमण्डल की सिफारिश को पुनर्विचार के लिए लौटाकर भी अपनी सूझबूझ का परिचय दिया। 27 जनवरी, 2000 को भारतीय गणतन्त्र की 50 वीं वर्षगाँठ पर एक समारोह में राष्ट्रपति ने जनतांत्रिक गठबन्धन को संविधान के साथ छेड़–छाड़ को लेकर सचेत किया। राष्ट्रपति के शब्दों में "आज जबकि संविधान की समीक्षा किए जाने और यहाँ तक कि एक नया संविधान लिखे जाने की बातें की जा रही हैं, हमें इस बात पर विचार करना होगा कि हम संविधान की वजह से विफल हुए हैं या संविधान को हमने विफल किया है।" सरकारी कर्मचारियों के राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की गतिविधियों में भाग लेने के मुद्दे को लेकर राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर स्पष्टीकरण देने को कहा। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जो कि विवादों से बचना चाहते हैं, राष्ट्रपति

को बताया कि उनकी सरकार राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ को राजनैतिक सगंठन नहीं मानती और यह बात न्यायालयों द्वारा प्रमाणित हो चुकी है।

25 जुलाई, 2002 को डा० ए० पी० जे० अब्दुल कलाम को राष्ट्रपति की शपथ दिलाई गयी। राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने भी पूर्व राष्ट्रपति के० आर० नारायणन् की तरफ से अगस्त 2002 को जन प्रतिनिधित्त्व (संशोधन) बिल, 2002 को पुनर्विचार के लिए अटल बिहारी मंत्रिमण्डल को भेजकर अपनी सूझबूझ का परिचय दिया। और उनका कार्यकाल अब स्थिरता से चल रहा है।

समस्त विवेचन के आधार पर राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में निम्न बातें कही जा सकती हैं:—

1. **राष्ट्रपति औपचारिक प्रधान है**: भारत में संसदात्मक शासन व्यवस्था है और इस शासन में कार्यपालिका दो भागों में विभक्त होती है— नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका। राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका है। राष्ट्रपति को राज्य का प्रतीक और औपचारिक अध्यक्ष कहा जा सकता है। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार "हमारे राष्ट्रपति की वही स्थिति है जो ब्रिटिश संविधान में सम्राट की है। वह राज्य का प्रधान है, किन्तु कार्यपालिका का नहीं। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्त्व करता है, किन्तु राष्ट्र पर शासन नहीं करता है। प्रशासन में उसका वही स्थान है जो औपचारिक व्यवस्था द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को प्रदान किया जाता है जो राष्ट्र के प्रत्येक निर्णय को मोहर लगाकर अपने नाम से राष्ट्र के समक्ष घोषित करता है।"
2. **राष्ट्रपति की स्थिति ब्रिटिश सम्राट के समान है**: संविधान के अनुसार हमारी शासन पद्धति ब्रिटिश की संसदीय व्यवस्था पर आधारित है। इसके अनुसार सम्राट नाममात्र का ही प्रधान है। उसे दो अधिकार मिले हुए है वे मंत्रिमण्डल द्वारा प्रयोग किये जाते हैं। यही स्थिति भारत में राष्ट्रपति की है जो केवल संवैधानिक राज्याध्यक्ष है। संविधान सभा में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था, "हमने ब्रिटेन के सम्राट की भाँति यहाँ राष्ट्रपति का पद बनाया है। उसकी स्थिति संवैधानिक राष्ट्रपति की है। यद्यपि संविधान में इस आशय का कोई उपबंध नहीं है कि राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों के परामर्श पर कार्य करना होता है, उसी प्रकार यही परम्परा यहाँ भी अपनायी गई है। इस तरह भारत का राष्ट्रपति सभी मामलों में संवैधानिक राष्ट्रपति बन जाएगा।"
3. **राष्ट्रपति संविधान का गौरवपूर्ण अंश**: राष्ट्रपति राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है। देशभक्ति तथा प्रेरक तथा सामाजिक उत्सवों का आकर्षण है। उसका जीवन और गतिविधियाँ व्यापक सार्वजनिक प्रचार प्राप्त करती हैं। वह जनता के लिए गौरव और प्रतिष्ठा का मूर्त रूप है। वह राष्ट्रीय उत्सवों का उद्घाटन व राष्ट्रीय समारोहों की अध्यक्षता करता है। गणतंत्र दिवस पर परेड की सलामी लेकर राष्ट्रपति राष्ट्र की शोभा बढ़ाता है। श्री जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा में कहा था, "हमने अपने राष्ट्रपति को वास्तविक शक्ति नहीं दी है। वरन् हमने पद को सत्ता और प्रतिष्ठा से विभूषित किया है।
4. **राष्ट्रपति परामर्शदाता और मित्र के रूप में**: राष्ट्रपति केवल नाममात्र का अध्यक्ष नहीं है। वह परोक्ष रूप से कार्य करते हुए अपने मंत्रियों से कार्य करने का आग्रह करता है। उसे मंत्रियों को परामर्श देने, प्रोत्साहित करने तथा चेतावनी देने की तीन शक्तियाँ प्राप्त हैं। उसकी गरिमामय स्थिति तथा उसका निष्पक्ष स्वरूप इस तथ्य को निश्चित कर देता है कि उसके द्वारा दिया गया परामर्श अत्याधिक सम्माननीय होगा। यदि राष्ट्रपति बुद्धिमान, पराक्रमी तथा चतुर हो तो उसकी उपेक्षा करना प्रधानमंत्री के लिए असम्भव है।
5. **वैदेशिक मामलों को प्रभावित करना**: राष्ट्रपति भारत की राजधानी में आने वाले विदेशी अतिथियों का स्वागत करता है। उनकी विदेश यात्राएँ विदेशों में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाती हैं। राष्ट्रपति की विदेश यात्राएँ विदेशी राष्ट्रध्यक्षों पर एक मधुरिम प्रेरणा की छाप छोड़ती हैं।

निष्कर्ष

भारत में राष्ट्रपति की स्थिति वैधानिक अध्यक्ष की है। फिर भी शासन में राष्ट्रपति का पद एक ऐसी धुरी है। जो संकट के समय संवैधानिक यन्त्र को सन्तुलित करता है। वस्तुतः राष्ट्रपति राज्य के अध्यक्ष के रूप में ही नहीं बल्कि भारत की स्वतंत्र आवाज के रूप में भी कार्य करता है। इसलिए राष्ट्रपति के पद की हमारी संवैधानिक व्यवस्था के रूप में एक श्रेष्ठ सामाजिक संस्था और एक वैधानिक जरूरत है।

ch-09

अध्याय-9
भारतीय संसद तथा उसका कार्यकरण
(The Indian Parliament and its Working)

संसदीय संस्थाएं भारतीय शासन–तन्त्र के सदा घूमते रहने वाले पहिए हैं । इन संस्थाओं के कार्य–परिणामों का लेखा–जोखा हमारे नूतन गणराज्य में जनतन्त्रात्मक उद्यम के लिए महत्व का दस्तावेज है । हमारे संविधान के अन्तर्गत केन्द्रीय विधान–मण्डल को संसद की संज्ञा दी गई है और यह संसद द्विसदनात्मक सिद्धान्त के आधार पर संगठित की गई है। संविधान के अनुच्छेद् 76 में लिखा है, ''संघ के लिए एक संसद होगी जो राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनेगी, जिनके नाम क्रमशः राज्यसभा और लोकसभा होंगे।'' भारत में संसदात्मक लोकतन्त्र को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का समन्वय करना सिद्धान्ततः आवश्यक था, अतः राष्ट्रपति को भी संसद का अभिन्न भाग बनाया गया है।

भारतीय संसद की संवैधानिक स्थिति (क्या संसद सम्प्रभु है?)
(Constitutional Position of Indian Parliament (Is Indian Parliament a Sovereign Body?))

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, ''जनतन्त्रात्मक प्रणाली का केन्द्रबिन्दु राष्ट्र की संसद है । प्रशासन की बागडोर चाहे किसी दल या वर्ग के हाथ में हो, जब तक संसद के अधिकार अक्षुण्ण हैं कार्यक्षेत्र तथा कार्य संचालन की दष्टि से उसका स्वरूप सम्प्रभु है वह राष्ट्र बड़े–से–बड़े संकट का सामना कर सकता है ।'' संसद की सम्प्रभुता पर विचार ब्रिटिश संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है । जैसा कि सर एडवर्ड कोक का मत है, ''संसद की शक्ति और अधिकारक्षेत्र इतना सर्वोपरि और पूर्ण है कि इसकी कोई सीमाएं नहीं बांधी जा सकतीं । डी लोमे ने तो ब्रिटिश संसद के बारे में यहां तक कह डाला है कि ''संसद सभी कुछ कर सकती है, सिवाय स्त्री को पुरूष और पुरूष को स्त्री नहीं बना सकती है। '' वस्तुतः ब्रिटिश संसद को जो अप्रतिबन्धित शाक्तियां प्राप्त हैं इसे ही 'संसदीय सार्वभौमिकता या सम्प्रभुता' कहा गया है। संसद जो कुछ चाहे, जिस किसी भी रूप में चाहे, विधि निर्माण कर सकती है तथा ब्रिटिश संसद जो कुछ विधि स्वीकत करेगी वह देश का कानून होगा ।

भारत में संसदीय ढांचे की शासन पद्धति को अपनाया गया है जो बहुत कुछ ब्रिटिश नमूने पर आधारित है, किन्तु फिर भी हमारी शासन–व्यवस्था नितान्त संसदीय नहीं है। भारतीय संविधान का स्वरूप किसी विदेशी संविधान का अनुकरण मात्र न होकर अपने में एक अनुपम और नवीन प्रयोग है। हमारे संविधान–निर्माता इस तथ्य से परिचित थे कि ब्रिटिश ढंग की संसदीय प्रभुत्ता स्वीकार करने में अनेक संस्थानात्मक कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती है । वे तो भारत के लिए व्यावहारिक शासन व्यवस्था चाहते थे जो कि भारतीय वातावरण में पोषित हो सके । इसी कारण भारतीय संसद को ब्रिटिश संसद की भांति सम्प्रभु नहीं बनाया गया।

भारतीय संसद की सम्प्रभुता का प्रश्न अनेक अवसरों पर वाद–विवाद का कारण बना है । केशवानन्द भारती के मामले में श्री पालकीवाला ने इसी प्रश्न को उठाते हुए संसद की शक्तियों को मर्यादित बतलाया । उनके अनुसार संसद के क्षणिक बहुमत द्वारा बुनियादी मानव स्वतन्त्रता का हरण नहीं किया जा सकता एवं संसद संविधान के अनिवार्य और स्थायी तत्वों को संशोधित नहीं कर सकती। महान्यायवादी नीरेन डे का मत था कि संसद के संविधान संशोधन के अधिकार पर कोई सीमा नहीं लगाई जा सकती। प्रायः भारतीय संसद की स्थिति की तुलना ब्रिटिश संसद से की जाती है जो उचित नहीं है क्योंकि ब्रिटेन का कोई लिखित संविधान नहीं है और विधि की दष्टि से संसद को सार्वभौम प्रभुत्ता प्राप्त है। डॉ. सुभाष कश्यप के अनुसार, ''भारत में प्रभुत्ता केवल जनता में निहित है, संसद के अधिकार संविधान निर्दिष्ट मात्र है।'' नारमन डी. पामर ने लिखा है, ''भारतीय संसद विस्तत शक्तियों का प्रयोग करती हैं तथा महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती है । यद्यपि इसका मुख्य कार्य भारत राज्य–क्षेत्र के लिए विधियों का निर्माण करना है तथापि इस दष्टि से इसके–कार्यो का सम्पादन करती है । यद्यपि इसका मुख्य कार्य भारत राज्य–क्षेत्र के लिए विधियों का निर्माण करना है तथापि इस दष्टि से इसके–कार्यो पर अनेक सीमाएं हैं ।

संघीय प्रणाली तथा संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति प्रदान करने से इनकी शक्तियां सीमित हो गई हैं । इसी प्रकार प्रधानमन्त्री की वास्तविक शक्तियों तथा कांग्रेस दल के प्रचण्ड–बहुमत के कारण भी संसद की शक्तियां सीमित हो गई है।'' संक्षेप में, भारतीय संसद की सार्वभौमिकता पर कतिपय मर्यादाएं इस प्रकार हैं :

(1) **लिखित संविधान**– संसद देश के लिखित संविधान की शिशु है। संसद की सार्वभौमिकता हमारे लिखित संविधान के विभिन्न प्रावधानों के अनुच्छेद् 2451 द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि व्यवस्थापन शक्तियों का उपयोग संसद संविधान के अनुसार करेगी । अमरीकी शासन–प्रक्रिया के सदश्य भारतीय प्रणाली में भी दो प्रकार के कानूनों में अन्तर पाया जाता है। ये दो प्रकार के कानून 'साधारण कानून' और संवैधानिक कानून के नाम से जाने जाते हैं । साधारण कानून का निर्माण संवैधानिक कानून के अन्तर्गत स्थापित विभिन्न व्यवस्थापिकाओं द्वारा किया जाता है। अतः यह स्वाभाविक है कि संविधान द्वारा स्थापित व्यवस्थापिकाएं संविधान के विरूद्ध कानून का निर्माण नहीं कर सकतीं।

(2) **संघवाद सम्बन्धी प्रावधान**–भारत में संघात्मक शासन–व्यवस्था होने के कारण राज्य सूची के विषयों पर संसद की कानून बनाने की शक्ति सीमित हो गई है। प्रो. टी. के. टोपे ने लिखा है कि ''भारतीय संसद एक संघीय संविधान के अन्तर्गत विधायिका है। ब्रिटिश संसद के तुल्य इसकी शक्तियां असीमित नहीं है।''

(3) **संविधान में संशोधन**–संविधान के कतिपय अनुच्छेदों के संशोधनों हेतु संसद को राज्य विधानमण्डल के पुष्टिकरण पर निर्भर रहना पड़ता है। संविधान के वे अनुच्छेद जिनका सम्बन्ध केन्द्र–राज्य सम्बन्धों से हैं, यदि उनमें कोई संशोधन करना हो तो संसद को कम–से–कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों का समर्थन प्राप्त करना पड़ता है।

(4) **न्यायिक पुनर्विलोकन**– संसद द्वारा पारित संविधान–विरूद्ध विधि को भारत का सर्वोच्च न्यायालय अवैद्य घोषित कर सकता है। संसदीय विधियों को हमारे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मान्यता देना आवश्यक है । बी.के. मुखर्जी के अनुसार, ''यह निर्णय करना न्यायपालिका का काम है कि अमुक कानून वैधानिक है या नहीं।'' न्यायालय के इस अधिकार को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति कहते हैं। यह सर्वविदित है कि गोपालन वनाम मद्रास राज्य, गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य, केशवानन्द भारती, आदि मामलों में सर्वोच्च न्यायालय ने संसद द्वारा निर्मित कानूनों को अवैध घोषित किया अथवा संसद की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाए।

(5) **राजनीतिक परिसीमाएं**–राजनीतिक दष्टि से भी संसद लोकमत के प्रतिकूल विधियों का निर्माण नहीं कर सकती। उसे अन्तर्राष्ट्रीय कानून का भी समुचित सम्मान करना होता है। संसद पर प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल का भी नियन्त्रण रहता है। प्रधानमन्त्री संसद के निम्न सदन का विघटन करवा सकता है।

यह सत्य है कि हमारी संसद की शक्तियों का क्षेत्र लिखित संविधान एवं सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार द्वारा प्रतिबन्धित किया गया है, किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि संसद केवल अनुमोदन करने वाली एंव प्रचार करने वाली संस्था मात्र बन गई है। वस्तुतः भारत में संसद वह नींव है जिस पर हमारे लोकतन्त्र की भव्य इमारत खड़ी है। संसद वह स्रोतस्विनी है, जो अपनी अविरल, निर्मल और उन्मुक्त धारा से भारतीय लोकतन्त्र के हर खेत को सींचती है, जिससे राष्ट्र को पोषण मिलता है। संसद हमारे देश का ऐसा केन्द्र–बिन्दु है, जहां जनता की आत्मा का वास है । डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में, ''संसद एक दल की नहीं, एक बल की नहीं, किन्तु सभी की है और इसलिए वह सार्वभौम है।''

यदि तुलनात्मक दष्टि से देखा जाए तो भारतीय संसद की शक्तियां अन्य संघीय व्यवस्थापिकाओं से अधिक हैं। अमरीकी कांग्रेस तथा आस्ट्रेलियन संसद राज्य सम्बन्धी विषयों पर कानून निर्माण नहीं कर सकती है, जबकि भारतीय संसद को विशिष्ट परिस्थितियों में राज्यों के लिए कानून निर्माण करने का अधिकार है। निष्कर्षतः कार्य एवं शक्ति के दष्टिकोण से भारतीय संसद की स्थिति 'संसदीय प्रभुत्ता' तथा न्यायिक सर्वोच्चता के मध्य की है । दोनों ही प्रकार की अतियों से संविधान निर्माताओं ने संसद की स्थिति की सुरक्षा की है । डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, ''संसद की असली सम्प्रभुता इसी में निहित है कि वह अपने और जनता के अधिकारों के बीच भेद न करो। यदि प्रजातन्त्र को अस्थिर और सफल बनाना है, तो संसद को अपने अधिकारों की रक्षा के साथ–साथ प्रजा की आवाज सुनने को भी सदा तैयार रहना चाहिए।''

भारतीय संसद के कार्य एवं शक्तियां
(Powers and Functions of the Parliament)

भारतीय संसद सम्प्रभु नहीं है, किन्तु यह विस्तत शक्तियों का प्रयोग करती है तथा महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती है। इसकी शक्तियों का उल्लेख निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है :

(1) **व्यवस्थापन सम्बन्धी शक्तियां**– संसद को संघीय–सूची के सभी विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है । इसके

अतिरिक्त, सभी संघीय क्षेत्रों के लिए संसद को सदैव ही सभी विषयों पर संसद काननू बना सकती है। जब कभी दो या अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास करके संसद से किसी विषय के बारे में कानून बनाने की प्रार्थना करें तो संसद कानून बना सकती है। इसी प्रकार जब राज्यसभा दो–तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके राष्ट्रीय हित में संसद को राज्य–सूची के किसी विषय पर कानून बनाने का अनुरोध करे तो संसद कानून बना सकती है।

(2) **वितीय शक्तियां**–संविधान द्वारा संसद को संघीय वित्त पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त है। सभी कर सम्बन्धी प्रस्ताव तथा अनुदानों की मांगें संसद द्वारा स्वीकत होने पर ही प्रभावी होती है। क्योंकि संविधान के अनुसार विधि के प्राधिकार के बिना न तो कर लगाया जाएगा और न एकत्रित किया जाएगा। संसद ही प्राक्कलन और लोक–लेखा समिति को नियुक्त करती है तथा नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन पर विचार कर उचित कार्यवाही करती है। संसद की स्वीकति के बिना सरकार को राष्ट्रीय वित्त में से खर्च का अधिकार नहीं होता है।

(3) **कार्यपालिका शक्तियां**–भारत में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई है। अतः मन्त्रिमण्डल संसद के प्रति उत्तरदायी है। मन्त्रिमण्डल केवल उसी समय तक सत्तारूढ़ रह सकता है जब तक कि उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो। संसद अनेक तरीकों से कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखती है। संसद के सदस्य 'अविश्वास के प्रस्ताव', 'निन्दा प्रस्ताव' एवं 'स्थगन प्रस्ताव' द्वारा सरकार पर नियन्त्रण रखते हैं तथा उसे उत्तरदायी बनाए रखते हैं। संसद के सदस्य मन्त्रियों से सरकारी नीतियों के सम्बन्ध में प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं तथा सरकार की आलोचना कर सकते हैं। संसद सदस्य बजट को अस्वीकार करके, मन्त्रियों के वेतन में कटौती का प्रस्ताव स्वीकत करके और सरकारी विधेयक में संशोधन करके अपना विरोध प्रदर्शित कर सकते हैं।

(4) **राज्यों से सम्बन्धित शक्तियां**–संविधान में संसद को यह अधिकार दिया गया है कि राज्यों की इच्छा के बिना भी वह उनकी सीमाओं तथा नामों में परिवर्तन कर सकती है, नवीन राज्य का निर्माण कर सकती है तथा किसी राज्य का अस्तित्व समाप्त कर सकती है । संसद को भारतीय नागरिकता के निर्धारण का भी अधिकार है।

(5) **संविधान संशोधन से सम्बन्धित शक्तियां**–संविधान के अनुसार संसद को यह अधिकार है कि वह संविधान में भी संशोधन कर सकती है। यहां तक कि संविधान के संशोधन की जो प्रक्रिया है उसको भी संसद संशोधित कर सकती है।

(6) **निर्वाचन सम्बन्धी कार्य**–संविधान के अनुच्छेद 54 के अनुसार संसद को कुछ निर्वाचन सम्बन्धी शक्तियां प्रदान की गई हैं। संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए गठित निर्वाचक मण्डल के अंश हैं। अनुच्छेद 66 के अनुसार, संसद सदस्य उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करते हैं।

(7) **महाभियोग का अधिकार**–संसद के दोनों सदनों द्वारा निर्धारित विशेष प्रक्रिया के आधार पर राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाया जा सकता है। इसी प्रकार उच्चतम तथा न्यायालय के न्यायाधीशों पर महाभियोग लगाने तथा उन्हें पदच्युत करने का प्रस्ताव भी संसद पारित कर सकती हैं।

इस प्रकार संसद की उपरोक्त शक्तियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारतीय–संसद की शक्तियां एवं कार्य विस्तत हैं । संसद सार्वजनिक विवाद–स्थल का कार्य करती है, इस दष्टि से संसद लोकप्रिय भावना के दर्पण तथा शिक्षक के रूप में कार्य करती हैं।" परन्तु यह बात महत्वपूर्ण है कि संसद को लिखित संविधान के अन्तर्गत ही अपनी कार्यवाहियां चलानी पड़ती हैं। जब भी संविधान के जरिए संसद के कार्य में रूकावट पैदा होती है संसद संविधान में संशोधन कर सकती है।

संसद का गठन
(Composition of the Parliament)

संविधान के अनुच्छेद 79 के द्वारा व्यवस्था की गई है कि भारतीय संघ की एक संसद होगी जिसका निर्माण राष्ट्रपति तथा दो सदनों से मिलकर होगा, जिनके नाम क्रमशः राज्यसभा तथा लोकसभा होंगे। इस प्रकार भारतीय संविधान द्वारा ब्रिटिश संविधान की तरह राज्य के औपचारिक प्रधान को संसद का अंग माना गया है। 1919 और 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में द्वि–सदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना की गई थी और वर्तमान समय में संघात्मक विधानों में द्वि–सदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना की जाती है । अतः इनसे प्रेरणा लेते हुए भारतीय संविधान भी संघीय क्षेत्र में एक द्वि–सदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना करता है, जिसका उच्च सदन राज्यसभा है, जिसमें राज्यों के प्रतिनिधि होते हैं तथा निम्न सदन लोकसभा में जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं ।

राज्य सभा का गठन
(Composition of Rajya Sabha)

राज्यसभा संसद का द्वितीय या उच्च सदन है। संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार राज्ससभा के सदस्यों की अधिकतम संख्या 250 हो सकती है, परन्तु आजकल यह संख्या 245 है। इनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामजद किए जाते हैं। ये ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें कला, साहित्य, विज्ञान और समाज सेवा के क्षेत्र में विशेष ज्ञान और अनुभव प्राप्त हो । शेष सदस्य जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं । ये सदस्य संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करते हैं और इनका चुनाव एकल संक्रमणीय मत तथा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के अनुसार संघ के विभिन्न क्षेत्रों की विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा किया जाता है। जिन क्षेत्रों में विधानसभाएं नहीं होतीं, वहां पर राज्यसभा के सदस्यों के चुनाव के लिए विशेष निर्वाचक मण्डल गठित किए जाते हैं।

हमारे संविधान में इकाइयों को राज्यसभा में प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर दिया गया है और अमरीका के समान भारत में संघ की छोटी–बड़ी सभी इकाइयों को द्वितीय सदन में समान प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। इस सम्बन्ध में संविधान यह व्यवस्था करता है कि एक राज्य की जनसंख्या के प्रथम 50 लाख व्यक्तियों तक हर 10 लाख व्यक्तियों के लिए एक और उसके बाद हर 20 लाख पर एक के हिसाब से प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा।

डॉ. लक्ष्मीमल सिंधवी के अनुसार राज्यसभा के गठन में चार सिद्धान्त निहित हैं : अर्द्धसंघीय सिद्धान्त प्रतिनिधित्व सिद्धान्त, संयुक्त पुनर्विचार और नियन्त्रण तथा सन्तुलन का सिद्धान्त तथा प्रख्यात और विशिष्ट व्यक्तियों को भारतीय राज–व्यवस्था से सम्बद्ध करने का सिद्धान्त। राज्यसभा के गठन का निकट से अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यद्यपि इसके निर्वाचन की प्रक्रिया भिन्न है तथापि यह लोकसभा से मूलतः भिन्न नहीं है ।

जनवरी 2002 में विभिन्न राज्यों और केन्द्र–शासित क्षेत्रों को राज्यसभा में इस प्रकार प्रतिनिधित्व प्राप्त है:

योग्यताएं और कार्यकाल–राज्यसभा का सदस्य बनने के लिए निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक है:

1. वह भारत नागरिक हो।
2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो।
3. वह किसी भी लाभ के पद पर न हो, विकत मस्तिष्क का न हो, दिवालिया न हो।
4. ऐसी अन्य योग्यताएं रखता हो, जो संसद के किसी कानून द्वारा निश्चित की जाएं।

अनुच्छेद 102 के अनुसार संघ अथवा राज्यों के मन्त्री पर लाभ के पद नहीं समझे गए हैं तथा यदि कभी यह प्रश्न उठता है कि संसद के किसी सदन का कोई सदस्य उपर्युक्त योग्यताएं रखता है अथवा नहीं, तो यह प्रश्न निर्णय के लिए राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग की राय के आधार पर जो निर्णय देगा, वह अन्तिम होगा।

राज्यसभा एक स्थाई सदन होगा और इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष होगा। इसे स्थायी सदन इसलिए माना गया है कि इसकी अवधि से पूर्व राष्ट्रपति इसे भंग नहीं कर सकता और पूरी राज्यसभा का चुनाव एक साथ नहीं होता है। राज्यसभा के सदस्यों का कार्यकाल यद्यपि 6 वर्ष है, परन्तु उनमें से एक–तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष पश्चात् पदनिवत्त हो जाएंगे और नवीन एक–तिहाई सदस्य पद ग्रहण करेंगे।

पदाधिकारी–संविधान के अनुच्छेद 89 (1) के अनुसार भारत को उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है तथा राज्यसभा अपने में से किसी एक सदस्य को उपसभापति निर्वाचित करती है। उपराष्ट्रपति को राज्यसभा के रूप में 40,000 रुपये मासिक वेतन मिलता है। सेवानिवत्त उपराष्ट्रपति को 20000 रु0 प्रतिमाह पेंशन दिए जाने का प्रावधान किया गया है। राज्यसभा का उपसभापति जब सभा का सदस्य नहीं रह जाता, तो उसका पद रिक्त हो जाता है। वह स्वयं भी त्याग–पत्र दे सकता है अथवा सभा के सदस्यों द्वारा बहुमत से प्रस्ताव पारित कर उसे उसके पद से हटाया जा सकता है। यदि सभापति अनुपस्थित रहता है अथवा ऐसे समय में जब उपराष्ट्रपति राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहा हो, राज्यसभा का उपसभापति सभापति के कर्तव्यों का पालन करता है तथा यदि कभी उपसभापति का स्थान रिक्त हो, तब राज्यसभा का ऐसा सदस्य, जिसे राष्ट्रपति इस कार्य के लिए नियुक्त करे, उस पद के कर्तव्यों का पालन करेगा। राज्यसभा के सभापति और उपसभापति को भारत की संचित निधि में से वेतन दिया जाएगा। राज्यसभा के सभापति एवं उपसभापति को वे समस्त अधिकार प्राप्त होते है जो सामान्यतया विधानमंडलों के अध्यक्षों को प्राप्त रहते हैं यथा–सदस्यों को भाषण देने की अनुमति प्रदान करना, कार्यप्रणाली सम्बन्धी प्रश्नों को तय करना, वाद–विवाद को सुसंगत बनाए रखना, विचारधीन प्रश्न पर मतदान का परिणाम घोषित करना।

राज्यसभा की गणपूर्ति अपनी सदस्य संख्या की 1/10 है।

राज्यसभा के कार्य और शक्तियां : लोकसभा और राज्यसभा में सम्बन्ध (Power and Functions of the Council of States: Relations between Lok Sabha and Rajya Sabha)

राज्यसभा की रचना लोकसभा के सहयोगी और सहायक सदन के रूप में की गई है। राज्यसभा के कार्य और शक्तियों का अध्ययन निम्नलिखित रूपों से किया जा सकता है:

1. **विधायी शक्तियां** —लोकसभा के साथ–साथ राज्यसभा भी विधि निर्माण सम्बन्धी कार्य करती है। संविधान के द्वारा अवित्तीय विधेयक के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्तियां दी गई है। अवित्तीय विधेयक लोकसभा या राज्यसभा—दोनों सदनों में से किसी भी सदन में पहले प्रस्तावित किया जा सकता है और दोनों सदनों से पारित होने के बाद ही राष्ट्रपति के पास हस्ताक्षर के लिए जाता है। व्यवहार में स्थिति यह है क सामान्यतया सभी महत्वपूर्ण विधेयक लोकसभा में ही प्रस्तावित किए जाते हैं, राज्यसभा में नहीं।

   यदि दोनों सदनों में किसी विधेयक के सम्बन्ध में मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं तो राष्ट्रपति के द्वारा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाई जा सकती है। विधेयक एक सदन द्वारा स्वीकार किए जाने के बाद यदि 6 महीने की अवधि के अन्दर दूसरे सदन के द्वारा उसे स्वीकार नहीं किया जाता है, तो संयुक्त अधिवेशन बुलाया जाता है। संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा के स्पीकर द्वारा की जाती है और संयुक्त बैठक में विधेयक के भाग्य का निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाता है (अनुच्छेद 108)। इस प्रकार औपचारिक दष्टि से अवित्तीय विधेयक के सम्बन्ध में दोनों सदन समान स्तर पर हैं, लेकिन व्यवहार में राज्यसभा की स्थिति दो बातों की दष्टि से निर्बल है। प्रथम बात यह है कि संयुक्त अधिवेशन बुलाने की शक्ति राष्ट्रपति को है और राष्ट्रपति द्वारा यह कार्य मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के आधार पर किया जाता है। मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है, अतः बहुत अधिक संभावना इस बात की है कि संयुक्त अधिवेशन बुलाने के सम्बन्ध में मन्त्रिपरिषद् लोकसभा के दष्टिकोण को ही अधिक ध्यान में रखेगी। उदाहरण के लिए, यदि कोई विधेयक राज्यसभा से स्वीकत, लेकिन लोकसभा से अस्वीकत हो गया है तो संभावना इस बात की है कि इस विधेयक पर संयुक्त अधिवेशन नहीं बुलाया जाएगा और विधेयक अपने आप ही समाप्त हो जाएगा। द्वितीय बात यह है कि संयुक्त बैठक में विधेयक के भाग्य का निर्णय बहुमत के आधार पर किया जाता है और लोकसभा की सदस्य संख्या राज्यसभा की सदस्य संख्या से दुगनी से भी अधिक होने के कारण इस विधेयक की स्वीकति या अस्वीकति, लोकसभा की इच्छानुसार ही होगी। इस प्रकार कानूनी दष्टि में अवित्तीय विधेयको के सम्बन्ध में दोनों सदनों के समान अधिकर प्राप्त हैं, किंतु व्यवहार में राज्यसभा किसी विधेयक को पारित करने में अधिक–से–अधिक 6 माह का विलम्ब कर सकती है। यह लोकसभा द्वारा इच्छित विधेयक के पारित होने में स्थाई बाधा नहीं डाल सकती। अभी तक केवल दो बार दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाई गई है। प्रथम बार 1961 में 'दहेज निषेध विधेयक' (Dowry Abolition Bill) के सम्बन्ध में मतभेद दूर करने के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक हुई थी। दो दिन की बैठक में मतभेद दूर हो जाने पर विधेयक पारित कर दिया गया। दूसरी बार मई 1978 में 'बैंकिंग सेवा आयोग विधेयक' पर विचार के लिए दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाई गई। संयुक्त बैठक में यह विधेयक उसी रूप में पारित हो गया, जिस रूप में इसे लोकसभा के द्वारा पारित किया गया था।?

(2) **संविधान संशोधन की शक्ति (Power of amending the Constitution)**—संविधान संशोधन के सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा के समान ही शक्ति प्राप्त है। संविधान में संशोधन का विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है और संशोधन प्रस्ताव तभी स्वीकत समझा जाएगा, जबकि उसे संसद के दोनों सदनों द्वारा अलग–अलग अपने कुल बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत से पारित कर दिया जाये। संशोधन प्रस्ताव पर संसद के दोनों सदनों में असहमति होने पर संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की कोई व्यवस्था नहीं है। ऐसी स्थिति में सशोधन प्रस्ताव गिर जाएगा।

   व्यवहार के अन्तर्गत अब तक तीन बार संविधान संशोधन के प्रस्ताव पर लोकसभा और राज्यसभा में मतभेद की स्थिति पैदा हुई है। सर्वप्रथम, 1970 में प्रिवीपर्स समाप्त करने से सम्बन्धित संविधान संशोधन का प्रस्ताव लोकसभा में पारित होकर जब राज्यसभा में गया, तब राज्यसभा के द्वारा उसे अस्वीकार कर दिया गया। द्वितीय, 1978 में जब लोकसभा द्वारा 45वें संविधान संशोधन विधेयक को पारित कर राज्यसभा में भेजा गया, तो राज्यसभा के द्वारा इस संशोधन विधेयक को 5 संशोधनों सहित पारित किया गया। ऐसी स्थिति में लोकसभा और शासन के सम्मुख दो मार्ग थे—समस्त संशोधन विधेयक को छोड़ दिया जाए या उसी उसी रूप में स्वीकार कर लिया जाए, जिस रूप में उसे राज्यसभा के द्वारा पारित किया गया है। लोकसभा के द्वारा दूसरे मार्ग को अपनाया गया। ततीय, 1989 में 64वें और 65वें संविधान संशोधन

विधेयकों को लोकसभा द्वारा परित किए जाने के बावजूद राज्यसभा से दो तिहाई समर्थन नहीं मिला। इस प्रकार राज्यसभा के द्वारा संविधान संशोधन के सम्बन्ध में अपनी शक्ति का परिचय दिया गया।

अब तक केवल एक संविधान संशोधन विधेयक (41वों संशोधन विधेयक, जो बाद में छोड़ दिया गया) राज्यसभा में प्रस्तावित किया गया है, शेष सभी लोकसभा में।

(3) **वित्तीय शक्ति (Financial Power)**—राज्यसभा को कतिपय महत्वहीन वित्तीय शक्तियां भी प्राप्त हैं, यद्यपि संविधान द्वारा ही इस सम्बन्ध में राज्यसभा को लोकसभा की तुलना में निर्बल स्थिति प्रदान की गई है। संविधान के अनुसार वित्त–विधेयक पहले लोकसभा में ही प्रस्तावित किए जाएंगे। लोकसभा द्वारा स्वीकत होने पर वित्तीय विधेयक राज्यसभा में भेजे जाएंगे जिसके द्वारा अधिक–से–अधिक 14 दिन तक इस विधेयक पर विचार किया जा सकेगा। राज्यसभा वित्त–विधेयक के सम्बन्ध मे अपने सुझाव लोकसभा को दे सकती है, लेकिन यह लोकसभा की इच्छा पर निर्भर है कि वह उन प्रस्तावों को माने या न माने। इस दष्टि से भारत में राज्यसभा की स्थिति ब्रिटेन के हाउस ऑफ लॉर्ड्स से भी निर्बल है क्योंकि हाउस ऑफ लार्ड्स के द्वारा वित्त विधेयक पर एक माह तक विचार किया जा सकता है। संवैधानिक इतिहास में राज्यसभा के द्वारा पहली बार 1977–78 के वार्षिक बजट में 6 संशोधन करने की सिफारिश की गई, लेकिन लोकसभा ने राज्यसभा द्वारा प्रस्तावित संशोधन रद्द कर दिए।

(4) **कार्यपालिका शक्ति**— संसदात्मक शासन–व्यवस्था में मन्त्रिपरिषद् संसद के लोकप्रिय सदन के प्रति ही उत्तरदायी होती है। अतः भारत में भी मन्त्रिपरिषद् केवल लोकसभा के प्रति ही सामूहिक रूप से उत्तरदायी है न कि राज्यसभा के प्रति। राज्यसभा के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं और उनकी आलोचना भी कर सकते हैं, परन्तु उन्हें अविश्वास प्रस्ताव द्वारा मन्त्रियों को हटाने का अधिकार नहीं है। यह अधिकार केवल लोकसभा को ही प्राप्त है। अतः कार्यकारिणी पर नियन्त्रण की दष्टि से लोकसभा राज्यसभा की तुलना में निश्चित रूप से अधिक शक्तिशाली है।

(5) **विविध शक्तियां (Miscellaneous Power)**— उपर्युक्त शक्तियों के अलावा राज्यसभा को कुछ अन्य शक्तियां भी प्राप्त हैं जिनका प्रयोग वह लोकसभा के साथ मिलकर कर सकती है। ये शक्तियां और कार्य इस प्रकार हैं:

i. राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं।

ii. राज्यसभा के सदस्य लोकसभा सदस्यों के साथ मिलकर उपराष्ट्रपति का चुनाव करते हैं।

iii. राज्यसभा लोकसभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तथा अन्य कुछ पदाधिकारियों पर महाभियोग लगा सकती है। महाभियोग केवल तभी पारित समझा जाता है जब दोनों सदन इस प्रकार के प्रस्ताव को स्वीकार कर लें।

iv. राज्यसभा लोकसभा के साथ मिलकर बहुमत से प्रस्ताव पास कर उपराष्ट्रपति को उसके पद से हटा सकती है। उपराष्ट्रपति को पद से हटाने का प्रस्ताव प्रथम बार राज्यसभा से ही पारित होकर लोकसभा के पास जाता है।

v. एक माह से अधिक की अवधि तक यदि आपात्काल लागू रखना हो तो इस प्रकार से प्रस्ताव का अनुमोदन लोकसभा तथा राज्यसभा दोनों से होना आवश्यक है। लोकसभा के विघटन की स्थिति में केवल राज्यसभा का अनुमोदन ही आवश्यक है। आपात्काल में मौलिक अधिकारों के निलम्बन के लिए दिए गए आदेश को भी यथाशीघ्र संसद के दोनों सदनों के सामने रखा जाना चाहिए।

vi. बोम्मई मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने के बाद राज्य की विधानसभा का विघटन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि राष्ट्रपति उद्घोषणा का संसद के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदन न कर दिया जाए।

(6) **विशेष अधिकार (Special Power)**—अन्त में राज्यसभा को दो ऐसे अनन्य अधिकार भी प्राप्त है। जो लोकसभा को प्राप्त नहीं है और जिनका प्रयोग अकेले राज्यसभा ही करती है। इस प्रकार की शक्तियों का सम्बन्ध देश के संघीय ढांचे से है और राज्यसभा को राज्यों का एक–मात्र प्रतिनिधि होने के नाते निम्न प्रकार की दो शक्तियां प्राप्त हैं:

(i) अनुच्छेद 249 के अनुसार राज्यसभा उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले दो–तिहाई सदस्यों के बहुमत से राज्य सूची के किसी विषय को राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर सकती है। राज्यसभा द्वारा ऐसे प्रस्ताव पास कर दिए जाने पर संसद उस विषय पर कानून का निर्माण कर सकती है। ऐसा प्रस्ताव प्रारम्भ में एक वर्ष के लिए लागू होता है, लेकिन यदि राज्यसभा चाहे तो हर बार इसे एक वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है।

(ii) संविधान के अनुच्छेद 312 के अनुसार राज्यसभा ही अपने दो–तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास कर नई अखिल भारतीय सेवाएं स्थापित करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे सकती है। राज्यसभा जब तक इस प्रकार का प्रस्ताव पारित न कर दें, तब तक संसद या भारत सरकार किन्हीं नवीन अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था नहीं कर सकती है।

राज्यसभा की शक्तियों के इस अध्ययन से यह नितान्त स्पष्ट हो जाता है कि राज्यसभा न केवल द्वितीय सदन वरन् द्वितीय महत्व का सदन ही है। शक्तियों की दष्टि से इसकी स्थिति 'ब्रिटिश लॉर्ड सभा' और 'अमरीकी सीनेट' के बीच में ही कहीं है। वास्तव में, संविधान–निर्माताओं द्वारा राज्यसभा को प्रथम सदन के सहायक और सहयोगी सदन की भूमिका ही प्रदान की गई है, प्रतिद्वन्द्वी सदन की नहीं। लोकसभा की तुलना में निर्बल होते हुए भी उसकी स्थिति और उसकी शक्तियों का महत्व है। पायली के शब्दों में, "राज्यसभा एक निरर्थक सदन या व्यवस्थापन पर केवल रोक लगाने वाला सदन ही नहीं है। वास्तव में, राज्यसभा शासनतंत्र का एक आवश्यक अंग है, केवल दिखाने मात्र का दूसरा सदन नहीं है।"

राज्यसभा का आलोचनात्मक मूल्यांकन

राज्यसभा की स्थिति प्रारम्भ से ही पर्याप्त विवाद का विषय रही है यद्यपि संविधान सभा का एक बहुत बड़ा बहुमत राज्यसभा की स्थापना के पक्ष में था, लेकिन दूसरी ओर सदस्यों के द्वारा द्वितीय सदन की उपयोगिता पर सन्देह व्यक्त करते हुए एक सदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना के प्रस्ताव भी लाए गए थे। संविधान सभा के प्रमुख सदस्य डॉ. अम्बेडकर भी द्वितीय सदन के बहुत अधिक पक्ष में नहीं थे। संविधान लागू किए जाने के बाद भी अनेक बार इसकी आलोचना करते हुए इसके समाप्त कर देने तक की बात कही गई है। राज्यसभा के प्रति की गई आलोचनाओं का प्रमुख रूप से दो रूपों में अध्ययन किया जा सकता है :

(1) **रचना सम्बन्धी आलोचनाएं (Criticisms regarding Composition)**: रचना की दष्टि से राज्यसभा की बहुत अधिक आलोचना की जाती है और इस प्रकार की आलोचना के अनेक आधार हैं। सर्वप्रथम, यह कहा जाता है कि संघात्मक व्यवस्था में द्वितीय सदन का गठन संघात्मकता अर्थात् राज्यों की समानता के सिद्धान्त के आधार पर किया जाना चाहिए, लेकिन भारत में राज्यसभा के गठन में अमरीका की सीनेट या आस्ट्रेलिया संघ के द्वितीय सदन के समान संघात्मकता के सिद्धांत का पालन नहीं किया गया है। राज्यसभा का गठन दलगत आधार पर होता है और राज्यसभा के सदस्यों द्वारा दलगत आधार पर ही कार्य किया जाता है। श्री गिरधारीलाल के शब्दों में, "यह राज्यसभा नहीं वरन् राज्य विधानमण्डलों के राजनीतिक दलों की एक सभा है।" ऐसी स्थिति में राज्यसभा के गठन का विशेष उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।

द्वितीय, राज्यसभा के अधिकांश सदस्य अप्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर अपना पद ग्रहण करते हुए और इस बात का बहुत अधिक डर रहता है कि किन्हीं व्यक्तियों द्वारा धन की शक्ति या अन्य भ्रष्ट साधनों के आधार पर राज्यसभा का चुनाव जीत लिया जाएगा। व्यवहार में ऐसी कुछ घटनाएं प्रकाश में भी आई हैं।

ततीय, राज्यसभा के सदस्यों को राज्य विधानसभाओं द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की पद्धति के आधार पर निर्वाचित किया जाता है। इस सम्बन्ध में दोष यह है कि भारतीय संघ के कुछ राज्यों की विधानसभाओं में क्षेत्रीय दलों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त कर लेते हैं, जिसे राष्ट्रीय हित में नहीं कहा जा सकता।

चतुर्थ, राज्यभा के 12 सदस्यों को राष्ट्रपति के द्वारा मनोनीत किया जाता है और मनोनयन की यह प्रणाली नितान्त अप्रजातान्त्रिक है। कार्यपालिका के द्वारा अपनी इस शक्ति का कई बार दुरुपयोग किया गया।

पंचम, व्यवहार के अन्तर्गत राज्यसभा का प्रयोग एक राजनीतिक शरण–गह के रूप में किा गया है। राज्यसभा में प्रायः ऐसे लोगों को स्थान दिया जाता है जो प्रत्यक्ष चुनाव से दूर भागते हैं या उन्हें प्रत्यक्ष चुनाव में जनता द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है। इस प्रकार राजनीतिक दलों, विशेष रूप से सत्तारूढ़ पक्ष द्वारा अवकाश प्राप्त, अयोग्य तथा विशेष गुटों के प्रतिनिधियों को इस सभा में स्थान देकर राज्यसभा को केवल अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति का साधन बना लिया जाता है।

2. **शक्ति सम्बन्धी आलोचनाएं (Criticisms regarding Power):** संविधान के द्वारा राज्यसभा को जो अधिकार एवं शक्तियों प्रदान की गई हैं, उसके आधार पर इसे एक निरर्थक तथा अनुपयोगी सन कहाजाता है। सही रूप में राज्यसभा की स्थिति यह है कि यह साधारण विधेयकों के सम्बन्ध में 6 महीने तथा वित्त विधेयकों के सम्बन्ध में 14 दिन की देरी लगा सकती है। यह मन्त्रिमण्डल को नाममात्र के लिए प्रभावित कर सकती है, क्योंकि इसे मन्त्रिपरिषद् को पदच्युत करने

की शक्ति प्राप्त नहीं है। इसके द्वारा जिन अन्य कार्यों को किया जाता है जैसे राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेना, राज्य सूची के विषयों को राष्ट्रीय महत्व का घोषित करना या अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था के लिए प्रस्ताव पारित करना, उनके सम्बन्ध में आलोचकों का कहना है कि यह कार्य संविधान द्वारा स्थापित अन्य किन्हीं भी संस्थाओं या अधिकारियों को सौंपे जा कते हैं। केवल इन कार्यों को करने के लिए राज्यसभा के अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं है। आलोचकों के अनुसार राज्यसभा को वित्तीय और वित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में देर लगाने की जो शक्ति प्राप्त हे वह हानिकारक सिद्ध हुई है और विशेष परिस्थितियों में बहुत अधिक हानिकारक सिद्ध हो सकती है। ततीय, आलोचकों के अनुसार लोकसभा की कार्यविधि और गठन इस प्रकार का है कि इसके द्वारा कानून निर्माण में न तो अनावश्यक जल्दबाजी को अपनाया जा सकता है और न ही निरंकुशता को। अतः लोकसभा पर थोड़ा या अधिक अंकुश रखने के लिए राज्यसभा का कोई औचित्य नहीं है।

व्यवहार में लोकसभा तथा राज्यसभा में सम्बन्ध

राज्यसभा के विरुद्ध एक अतिरिक्त तर्क यह है कि व्यवहार के अन्तर्गत अनेक बार लोकसभा और राज्यसभा में आपसी विरोध की स्थिति उत्पन्न होती रही है। मोरिस जोन्स लिखते हैं कि ''संस्थाओं का यह स्वभाव होता है कि वे निष्ठाओं को जन्म देती हैं और जब दो संस्थाओं की स्थिति प्रायः समान होती है तो उनमें मतभेदों का उत्पन्न हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है।''

सर्वप्रथम इस प्रकार की स्थिति 1953 में उत्पन्न हुई, जब राज्यसभा ने अपने सदस्य और विधि मन्त्री श्री विश्वास को निर्देश दिया कि वे लोकसभा में उपस्थित न हों। द्वितीय घटना भी 1953 में ही घटी, जबकि राज्यसभा ने एक प्रस्ताव पास कर मांग की कि या तो राज्यसभा की अलग लोक लेखा समिति होनी चाहिए या वर्तमान लोक लेखा समिति में राज्य सभा के भी सदस्यों को प्रतिनिधित्व देकर इसे लोकसभा की 'लोकलेखा समिति' के स्थान पर संसद की लोक लेखा समिति' का रूप दिया जाना चाहिए। लोकसभा ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए इसे असंवैधानिक बताया। अन्त में पं. नेहरू ने हस्तक्षेप कर इस व्यवस्था को अपनाया कि लोक लेखा समिति तो लोकसभा की ही समिति रहेगी, लेकिन इस समिति को सहयोग देने के लिए राज्यसभा अपने 7 सदस्यों को नामांकित करेगी। 1954 में जब लोकसभा के सदस्य श्री एन.सी.चटर्जी ने राज्यसभा को 'उत्तरदायी आचरण का दोषी' बतलाया और 1963 में जब श्री एच.बी. कामथ ने राज्यसभा की तुलना 'ब्रिटिश लॉर्ड सभा'से की, तब भी ऐसी ही स्थितियां उत्पन्न हो गई।

राज्यसभा अपनी स्थिति के प्रति कुछ आवश्यकता से अधिक ही सजग रही है और कभी–कभी इसने लोकसभा के कार्यों में अनुचित रूप में बाधा डाली है। इस प्रकार की एक स्थिति 1970 में देखी गई है कि जबकि राज्यसभा ने लोकसभा द्वारा पारित प्रिवीवर्स समाप्ति का संविधान विधेयक अस्वीकार कर दिया। ऐसी स्थिति में अनेक सदस्यों ने राज्यसभा को 'आर्थिक और सामाजिक प्रगति में बाधक' बतलाते हुए इसे समाप्त करने की मांग की। मार्च 1973 मे कांग्रेस के वरिष्ठ सदस्य विभूति मिश्रा ने एक गैर–सरकारी प्रस्ताव रखा, जिसमें मांग की गई कि संवैधानिक संशोधन के आधार पर राज्यसभा को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

सन् 1977–79 के वर्षों में लोकसभा और राज्यसभा की दलीय संरचना में भेद रहा और इस स्थिति ने इन दोनों सदनों के बीच विरोध की घटनाओं को जन्म दिया। सर्वप्रथम राज्यसभा ने बैंकिंग सेवा आयोग विधेयक के सम्बन्ध में लोकसभा के विचार का विरोध किया और 1977-78 के वार्षिक बजट में भी संशोधन किए, लेकिन इन दोनों बातों के सम्बन्ध में राज्यसभा का विचार स्वीकार नहीं हुआ। इसके बाद में लोकसभा 45वां संशोधन विधेयक पारित कर राज्यसभा में भेजा, तब राज्यसभा ने इस विधेयक को संशोधनों सहित पारित किया और लोकसभा को राज्यसभा द्वारा किए गए ये संशोधन स्वीकार करने पड़े। इसी प्रकार, 'विशेष अदालत विधेयक' में भी राज्यसभा के द्वारा जो संशोधन किए गए, लोकसभा ने उन्हें स्वीकार कर लिया।

फरवरी 1980 में भारत के संसदीय इतिहास मे पहली बार राज्यसभा ने 'राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव' में ऐसे वाक्य जुड़वाए, जो नई सरकार की आलोचना करते हैं। 75 के मुकाबले 80 के बहुमत से जोड़े गए ये वाक्य हैं : ''लेकिन खेद है कि अभिभाषण में गैर–कांग्रेसी शासन वाली राज्य विधानसभाओं में दल–बदल की चिन्तापूर्ण कोशिशों को कोई उल्लेख नहीं है। न ही उसमें संघीय सिद्धांतों की घोर उपेक्षा करते हुए मनमाने ढंग से राज्य विधानसंभाएं भंग करने की कोशिशों पर ही चिन्ता प्रकट की गई है। अभिभाषण यह आश्वासन भी नहीं देता कि सरकार संविधान को तोड़ने–मरोड़ने और लोकतंत्रीय सिद्धांतों तथा आधार का उल्लंघन करने वाली इन कोशिशों को प्रोत्साहन नहीं देगी।'' इन संशोधनो का महत्व इतना ही है कि ये वाक्यांश संसदीय कार्यवाही में दर्ज हो गए, पर राजनीतिक दष्टि से यह राज्यसभा के स्वतंत्र चरित्र को उजागर करते हैं और राजनीतिक स्थिति में हुए भारी परिवर्तन के बावजूद शक्ति सन्तुलन बनाए रखने की चेष्टा का परिचय देते हैं।

लोकसभा और राज्यसभा के सदस्यों का कार्यकाल तथा दोनों सदनो के सदस्यों के चुनाव की पद्धतियों का जो भेद है उसके कारण भविष्य में भी इन सदनों की दलीय संरचना में भेद हो सकता है और इसके कारण दोनो सदनों में आपसी विरोध की स्थितियां पैदा हो सकती हैं।

राज्यसभा का महत्त्व और औचित्य

इस प्रकार की आलोचनाओं और कभी–कभी लोकसभा और राज्यसभा में पारस्परिक विरोध की घटनाओं के बावजूद राज्यसभा का अस्तित्व पर्याप्त उपयोगी और लाभदायक रहा है। यदि यह 'देवताओं का सदन' नहीं बन पाई तो दूसरी ओर इसने अपने आपको 'दुष्टों और प्रतिक्रियावादियों का सदन' भी नहीं बनने दिया है। राज्यसभा का महत्व और औचित्य पूर्णतया स्पष्ट है। प्रथम, राज्यसभा को संविधान के संशोधन के विषय में लोकसभा के समान शक्ति प्राप्त है। द्वितीय, राज्यसभा में से भी मन्त्रियों की नियुक्तियां की जाती हैं। 1966 में जब श्रीमती गांधी प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त हुई, उस समय वे राज्यसभा की ही सदस्य थीं, 1996 में प्रधानमंत्री मनोनीत होने के बाद एच.डी. देवगौड़ा राज्यसभा के ही सदस्य बने तथा जब अप्रैल, 1997 में इन्द्रकुमार गुजराल का प्रधानमंत्री पद पर मनोनयन हुआ तो वे उस समय राज्यसभा के ही सदस्य थे। ततीय, इस परम्परा से भी राज्यसभा के महत्व का आभास होता है कि केन्द्रीय मंत्री प्रायः राज्यसभा में उपस्थित रहते हैं और विचार–विमर्श तथा वाद–विवाद में भाग लेते हैं। इस प्रकार राज्यसभा सरकारी नीतियों तथा कार्यों पर प्रभाव डालने में समर्थ है और व्यवहार में अनेक बार इसने शासन की नीतियों तथा कार्यों को प्रभावित किया है। राज्यसभा उन सभी कार्यों को करती है जो परम्परागत रूप में द्वितीय सदन के द्वारा किए जाते हैं और भारत जैसे विशाल और संघात्मक व्यवस्था वाले देश के लिए संघात्मक व्यवस्थापिका का द्विसदनात्मक होना नितान्त स्वाभाविक और आवश्यक है। सामान्यतया राज्यसभा का कार्यकरण सफल रहा है और इसके अस्तित्व के औचित्य पर भी कोई सन्देह नहीं किया जाता है। प्रो. जितेन्द्र रंजन ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि ''यह न तो अमरीकी सीनेट की भांति अत्यधिक शक्तिशाली है और न ही ब्रिटिश लॉर्ड सभा या फांस के चतुर्थ गणतन्त्र की गणतंत्रीय परिषद् की भांति अत्यधिक दुर्बल। जापानी व्यवस्था की तरह द्वितीय सदन की निषेधात्मक शक्ति (Veto Power)को हमारे संविधान में स्वीकार नहीं किया गया है। इसे सिर्फ दुहराने की पर्याप्त शक्ति दी गई है, निषेध की नहीं। राज्यसभा न केवल रचना की दष्टि से विश्व का सबसे अधिक श्रेष्ठ द्वितीय सदन है, वरन् यह आधुनिक प्रजातंत्र के योग्य तथा द्वितीय सदन के उद्देश्यों की पूर्ति करने की दष्टि से भी सर्वाधिक सन्तुलित द्वितीय सदन है।''

आवश्यकता इस बात की है कि राज्यसभा के द्वारा अपने आपको लोकसभा का सहायक और सहयोगी समझा जाए, प्रतिद्वन्द्वी नहीं। पं. नेहरू ने 6 मई, 1953 को राज्यसभा में बिल्कुल ठीक ही कहा था कि ''दोनों सदनों के द्वारा परस्पर सहयोग के आधार पर कार्य किया जाना चाहिए क्योंकि इन दोनों में से कोई एक नहीं, वरन् दोनों एक साथ मिलकर ही भारत की संसद का निर्माण करते हैं और भारतीय संसद के रूप में जाने जाते हैं।''

लोक सभा
(House of the People)

संघीय संसद के निम्न सदन या लोकप्रिय सदन को लोकसभा का नाम दिया गया है। लोकसभा की सदस्य संख्या समय–समय पर परिवर्तित होती रही है। संविधान में उपबन्ध है कि लोकसभा के 530 से अधिक सदस्य राज्यों में प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष रीति से चुने जाएंगे और 20 से अत्यधिक सदस्य संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करेंगे जिनका निर्वाचन ऐसी रीति से होगा जैसे संसद विधि द्वारा उपबन्ध करे। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति आंग्ला–भारतीय समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए दो से अधिक सदस्य मनोनीत कर सकता है। इस प्रकार सदन की अधिकतम सदस्य संख्या 552 हो, ऐसी संविधान में परिकल्पना की गई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 82 में यह भी व्यवस्था है कि प्रत्येक जनगणना के अनुसार, 'परिसीमन आयोग' (Delimitation Commission) संसद के आदेशानुसार विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व में आवश्यक परिवर्तन करेगा। निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन निर्वाचन आयोग की देखरेख और संसद की अंतिम स्वीकति के अधीन किया जाता है। 1971 की जनगणना के आधार पर परिसीमन आयेाग के द्वारा अगली लोकसभा की सदस्य संख्या के सम्बन्ध में निर्णय लिए गए हैं। 42वें संवैधानिक संशोधन के अनुसार अनुच्छेद 82में संशोधन करते हुए व्यवस्था की गई है लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में सदस्यों की संख्या 2001 तक वही रहेगी जो 1971 की जनगणना के आधार पर निर्धारित की गई है। यह व्यवस्था 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति' के आधार पर की गई है जिससे किन्हीं राज्यों को जनसंख्या में वद्धि के आधार पर लोकसभा या विधानसभाओं में अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो सके। वर्तमान समय में विभिन्न राज्यों और केन्द्रशासित क्षेत्रों को लोकसभा में प्राप्त प्रतिनिधित्व तथा भविष्य के

सम्बन्ध में किए गए निर्णयों को पष्ठ 322 पर दी गयी तालिका के आधार पर समझा जा सकता है। लोकसभा के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा होता है। भारत में 18 वर्ष की आयु प्राप्त व्यक्ति को वयस्क माना गया है। अब लोकसभा के सभी निर्वाचन क्षेत्र 'एकल सदस्यीय' (Single Member Constituencies) रखे गए हैं। ये निर्वाचित क्षेत्र इस प्रकार निर्धारित किए जाएंगे कि लोकसभा का एक सदस्य कम–से–कम 5 लाख जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करे। इस सम्बन्ध में अधिकतम सीमा बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित की जाती रहेगी। मूल संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों हेतु 10 वर्ष की अवधि के लिए स्थान सुरक्षित रखने थे, किन्तु बाद में यह अवधि बढ़ा दी। संविधान के 79वें संशोधन द्वारा अब आरक्षण 25 जनवरी 2010 तक के लिए कर दिया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 81 में उल्लेख है कि ''प्रतिनिधित्व का अनुपात यथासंभव समस्त देश में समान रखने का प्रयत्न किया जाएगा।'' लेकिन यह बात उन राज्यों तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों पर लागू नही होगी जिनकी जनसंख्या 60 लाख से कम है। इसी प्रकार अनुच्छेद 330 द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजाति के क्षेत्रों के लिए स्थानों के आरक्षण (Reservation) के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई है, वह नागालैण्ड पर लागू नहीं है, क्योंकि 1971 की जनगणना के अनुसार नागालैण्ड की 88.6 प्रतिशत जनसंख्या जनजाति क्षेत्र से सम्बन्धित है। 31वें संवैधानिक संशोधन के अनुसार यह व्यवस्था असम के जनजाति क्षेत्रों, नागालैण्ड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम क्षेत्र पर भी लागू न होगी।

निर्वाचक तथा सदस्यों की योग्यता (Electors and Qualification for the Members)—लोकसभा के चुनाव में उन सभी सदस्यों को मतदान का अधिकार होगा जो भारत के नागरिक हैं, जिनकी आयु 18 वर्ष या अधिक है, जो पागल और दिवालिया नहीं है और जिन्हें संसद के कानून द्वारा किसी अपराध, भ्रष्टाचार या गैर–कानूनी व्यवहार के कारण मतदान से वंचित नहीं कर दिया गया है।

लोकसभा की सदस्यता के लिए संविधान के अनुसार निम्नलिखित योग्यताएं होनी आवश्यक हैं:

1 वह व्यक्ति भारत का नागरिक हो,

2 उसकी आयु 25 वर्ष या इससे अधिक हो,

3 भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अन्तर्गत वह कोई लाभ का पद धारण न किए हुए हो,

4 वह किसी न्यायालय द्वारा पागल न ठहराया गया हो तथा पागल न हो।

इन योग्यताओं के अतिरिक्त अन्य योग्यताएं निर्धारित करने का अधिकार संविधान के द्वारा संसद को दिया गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत संसद ने 1951 में 'जनप्रतिनिधित्व अधिनियम' (People Representaion Act) पास कर संसद के सदस्यों के लिए निम्न योग्यताएं निश्चित की है:

(1) अनुसूचित जातियों से सम्बन्धित सुरक्षित स्थानों के उम्मीदवारों के लिए आवश्यक है कि वे अनुसूचित जाति के सदस्य हों। इसी प्रकार जनजाति से सम्बन्धित सुरक्षित स्थान के उम्मीदवारों के लिए आवश्यक है कि वे जनजाति के सदस्य हों। ये व्यक्ति समस्त भारतीय क्षेत्र में किसी भी स्थान से अनुसूचित जाति या जनजाति के सदस्य हो सकते हैं।

(2) असम की जनजातियों के लिए सुरक्षित स्थान के उम्मीदवार बनने हेतु उसी जनजाति का होना और उस संसदीय निर्वाचन क्षेत्र या उसे जिले के किसी अन्य निर्वाचन क्षेत्र का निर्वाचक होना आवश्यक है।

(3) अन्य किसी स्थान से उम्मीदवार होने के लिए भारत में किसी भी संसदीय निर्वाचन क्षेत्र का निर्वाचक होना आवश्यक है अर्थात् किसी निर्वाचन क्षेत्र से उसका नाम मतदाता सूची में होना चाहिए।

(4) निर्वाचन सम्बन्धी अपराध के लिए दोषी पाए गए व्यक्ति को निर्वाचन आयोग द्वारा एक निश्चित समय अथवा जीवन भर के लिए संसद का चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित किया जा सकता है।

(5) उसने किसी अपराध के लिए दो वर्ष से अधिक सजा न पाई हो और उसे जेल से छूटे हुए पांच वर्ष से अधिक हो गए हों।

(6) उसे सरकार से सम्बन्धित किसी ठेके में हिस्सेदार नहीं होना चाहिए और न सरकार से सम्बन्धित किसी कारखाने में उसका हित होना चाहिए।

(7) उसे बेईमानी या राजद्रोही के कारण सरकारी नौकरी से न निकाला गया हो। इस प्रकार से अपराध के 5 वर्ष बाद ही वह संसद की सदस्यता प्राप्त कर सकता है।

कार्यकाल (Term)— 42वें संवैधानिक संशोधन (1976) के पूर्व तक लोकसभा का कार्यकाल 5 वर्ष था, लेकिन इस संवैधानिक संशोधन द्वारा लोकसभा का कार्यकाल बढ़ाकर 6 वर्ष कर दिया गया। अब 44वें संवैधानिक संशोधन (1978) द्वारा पुनः यह 5वर्ष कर दिया गया है। प्रधानमंत्री के परामर्श के आधार पर राष्ट्रपति के द्वारा लोकसभा को समय के पूर्व भी भंग किया जा सकता है। ऐसा अब तक सात बार 1970, 1977, 1979, 1984, 1990, 1997 और 1999 में किया गया है। संकट–काल की घोषणा लागू होने पर संसद विधि द्वारा लोकसभा के कार्यकाल में वद्धि कर सकती है, जो एक बार में एक वर्ष से अधिक न होगी।

लोकसभा के अधिवेशन राष्ट्रपति के द्वारा ही बुलाए और स्थगित किए जाते हैं और इस समबन्ध में नियम यह है कि लोकसभा की बैठक की अन्तिम तिथि और दूसरी बैठक की प्रथम तिथि में 6 माह से अधिक अन्तर नहीं होना चाहिए। लोकसभा और राज्यसभा दोनों की गणपूर्ति (Quorum) कुल संख्या का दसवां भाग है।

लोकसभा के चुनाव के लिए मतदान, गठन, पहली बैठक, कार्यकाल पूरा होने तथा उसके विघटन की तारीखों का विवरण (पहली से तेरहवीं लोकसभा तक)

लोकसभा	मतदान की अन्तिम तारीख	गठन की तारीख	पहली बैठक	कार्यकाल पूरा की तारीख होने की तारीख (संविधान के अनुच्छेद 93 (2))	भंग होने की तारीख
1	2	3	4	5	6
पहली	21–02–52	02–04–52	13–05–52	12–05–57	04–04–57
दूसरी	15–03–57	05–04–57	10–05–57	09–05–62	31–03–62
तीसरी	25–02–62	02–04–62	16–04–62	15–04–67	03–03–67
चौथी	21–02–67	04–03–67	16–03–67	15–03–72	27–12–70
पांचवी	10-03-71	15-03-71	19-03-71	18-03-77	18-01-77
छठी	20-03-77	15-03-71	19-03-71	18-03-77	18-01-77
सातवीं	06-01-80	10-01-80	12-01-80	20-01-85	31-12-84
आठवीं	28-12-84	31-12-84	15-01-85	14-01-90	27-11-89
नौवीं	26-11-89	02-12-89	18-12-89	17-12-94	13-03-91
दसवीं	15-06-91	20-06-91	09-07-91	08-07-96	10-05-96
ग्याहरवीं	07-05-96	15-05-96	22-05-96	21-05-2001	04-12-97
बाहरवीं	07-03-98	10-03-98	23-03-98	22-03-2003	26-04-99
तेरहवीं	04-10-99	10-10-99	20-10-99	19-10-2004	

1. मध्यावधि चुनाव कराए, चुनावों से पहले ही लोक सभा भंग कर दी गई थी।
2. कालम (2) में दी गई मतदान की अन्तिम तारीखें निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट पर आधारित हैं।

संसद सदस्यों के विशेषाधिकार
(Privileges of the Members of the Parliament)

संसद सदस्यों को कतिपय विशेषाधिकार प्राप्त हैं। संसदीय विशेषाधिकारों का उद्देश्य संसद की स्वतंत्रता, प्राधिकार और गरिमा की रक्षा करना है। ये ऐसे विशेषााधिकार हैं जिनके बिना संसद–सदस्य अपने कत्यों का निर्वहन नही कर सकते। संविधान के अनुच्छेद 105 में संसद के सदनों तथा उनके सदस्यों के विशेषाधिकारों एंव उन्मुक्ता का उल्लेख किया गया है। इस अनुच्छेद के खण्ड (3) में उपबन्ध किया गया है कि ''संसद के प्रत्येक दिन और उन सदस्यों तथा समितियों की शक्तियां, विशेषाधिकार तथा उन्मुक्तियां वहीं होंगी जो कि संसद समय–समय पर कानून बनाकर परिभाषित करे और जब तक ऐसी परिभाषा नहीं की जाती ये वैसी की होंगी जैसी कि इस संविधान के प्रारम्भ अर्थात् 26 जनवरी, 1950 को ब्रिटेन की संसद के 'हाउस ऑफ

कॉमन्स', उसके सदस्यों तथा समितियों की थीं।'' अभी तक इन विशेषाधिकारों के सम्बन्ध में संसद ने कोई व्यापक कानून नहीं बनाया है। अतः ऐसे किसी कानून के अभाव में संसद–सदस्यों को वे ही विशेषाधिकार प्राप्त हैं जो कि ब्रिटेन के संसद सदस्यों को प्राप्त हैं। 23 मार्च, 1967 को लोकसभा अध्यक्ष ने कहा कि ''संसद के विशेषाधिकारेां की परिभाषा करने के लिए कानून बनाया जाए तो यह अच्छी बात है।'' संसदीय कार्यमंत्री ने भी कहा है कि ''विशेषाधिकारों की परिभाषा करने का प्रश्न विचाराधीन है।'' संविधान के अनुच्छेद 105 में संसद के सदनों तथा संसद सदस्यों के विशेषाधिकारेां का उल्लेख किया गया है। ये विशेषाधिकार इस प्रकार हैंः

(1) संसद में या उसकी समिति में कही हुई किसी बात याप दिए गए मत के आधार पर किसी भी न्यायालय की काग्रवाही से उन्मुक्ति

(2) न्यायालय को संसद की कार्यवाही की जांच करने का निषेध।

(3) सभा के क्षेत्र के दौरान तथा उसके चालीस दिन पहले और चालीस दिन बात तक दीवानी मामलों में सदस्यों की गिरफ्तारी से उन्मुक्ति।

(4) किसी सदस्य की गिरफ्तारी, निरोध, कारावास तथा रिहाई के सम्बन्ध में तुरन्त सूचना प्राप्त करने का सदन को अधिकार है।

(5) सदन के सदस्यों को विचार–अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

(6) संसद–सदस्यों को जूरी सदस्यों के रूप में नियुक्त नहीं किया जा सकता।

(7) जब सदन गोपनीय बैठक के लिए बैठता है तो उस समय कोई भी व्यक्ति, जो सदन का सदस्य नहीं है, सभाकक्षों और दीर्घाओं, इत्यादि में नहीं रह सकता।

प्रत्येक सदन स्वयं अपने विशेषाधिकारों का रक्षक है। न केवल यह किसी ऐसे विषय का एकमात्र निर्णायक है। जो किसी प्रकार विशेषाधिकार को भंग करता हो बल्कि यदि वह उचित समझे तो किसी भी ऐसे व्यक्ति को कारावास का दण्ड दे सकता है या उसकी भर्त्सना कर सकता है, जिसे वह अवमान का दोषी समझता हो। सभा की किसी ऐसे व्यक्ति को दण्ड देने की शक्ति जो सभा का अपमान करे या उसके किसी विशेषाधिकार को भंग करे सबसे महत्वपूर्ण विशेषाधिकार है। इसी शक्ति के कारण संसद के विशेषाधिकार वास्तविक बनते हैं।

सांसदों का वेतन एवं सुविधाएं–संसद सदस्यों को वेतन और भत्ता संसदीय नियमों के अनुसार प्राप्त होगा। वर्तमान समय में सांसदों का वेतन 12,000 रु0 प्रतिमास, तथा 500रु0 प्रतिदिन दैनिक भत्ता है। इसके अतिरिक्त अन्य सुविधाएं और भत्ते इस प्रकार हैंः 10,000 रू0 प्रतिमाह की दर से निर्वाचन क्षेत्र भत्ता और 14,0000 प्रतिमाह की दर से कार्यालय व्यय भत्ता। इसमें 3,000 लेखन सामग्री, आदि खर्च के लिए होंगे। इसके अलावा, हर सांसद को दो टेलीफोन सेट (एक दिल्ली और एक अपने संसदीय क्षेत्र के लिए) मुफ्त मिलते है जिस पर वह सालाना 1 लाख 20 लाख हजार की मुफ्त कॉल कर सकता है। इसी तरह वर्षभर मिलने वाली मुफ्त बिजली को 50,000 यूनिट कर दिया गया है। हर सांसद को अपनी पत्नी अथवा किसी भी एक व्यक्ति के साथ देश में कही भी वातानुकूलित प्रथम श्रेणी की मुफ्त रेल यात्रा करने की सुविधा प्राप्त है। उसे देश के भीतर मुफ्त हवाई यात्रा की भी सुविधा हासिल है। साल में उसे हवाई जहाज के टिकट मुफ्त मिलते हैं।

लोकसभा के अध्यक्ष का पद
(Office of the Speaker)

अध्यक्ष का पद संसदीय शासन–प्रणाली में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विश्व में जहां पर भी संसदीय पद्धति की सरकार है, वहां संसद के निम्न सदन के स्पीकर को विशेष महत्व और दर्जा प्राप्त होता है। संविधान, अध्यक्ष का निर्वाचन लोकसभा स्वयं करती है।

अध्यक्ष का कार्यकाल–अध्यक्ष निर्वाचन के समय से लेकर, उसे लोकसभा के विघटन के बाद अगली लोकसभा की पहली बैठक से फौरन पहले तक अपने पद पर रहता है। वह दुबारा चुना जा सकता है। अध्यक्ष यदि लोकसभा सदस्य न रहे तेा उसे अपना पद छोड़ना पड़ता हे। लोकसभा के विघटन पर, यद्यपि अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष दोनों लोकसभा के सदस्य नहीं रहते, केवल उपाध्यक्ष ही अपना पद छोड़ता है। जब भी अध्यक्ष का पद रिक्त हो जाता है, इस सम्बन्ध में एक अधिसूचना बजट में प्रकाशित

की जाती है। अध्यक्ष को अपने सारे कार्यकाल में अपने पद के कत्यों का निर्वहन करना पड़ता है। स्थान से अनुपस्थिति होने या बीमारी की दशा में वह अपने काम उपाध्यक्ष को नहीं सौंप सकता। अध्यक्ष किसी भी समय उपाध्यक्ष को पत्र लिखकर अपने पद से त्याग–पत्र दे सकता है।

अध्यक्ष का हटाया जाना–अध्यक्ष को लोकसभा में, उसके उस समय के सदस्यों के बहुमत से संकल्प पास करके, उनके पद से हटाया जा सकता है। ऐसे संकल्प को प्रस्तावित करने के लिए कम–से–कम चौदह दिन की सूचना देनी पड़ती है। चौदह दिन का हिसाब लगाते समय प्रारम्भ और अन्त के दोनों दिन छोड़ दिए जाते हैं। जो सदस्य अध्यक्ष को पदच्युत करने के संकल्प की सूचना देना चाहे उसे यह सूचना लिखित रूप में सचिव को देनी पड़ती है। लोकसभा की बैठक में, जब अध्यक्ष को पदच्युत करने के संकल्प पर विचार हो रहा हो तो वह सभा की अध्यक्षता नहीं करेगा।

अध्यक्ष द्वारा शपथ ग्रहण–अध्यक्ष को अपना पद संभालने पर शपथ नहीं लेनी पड़ती और न ही प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। वह लोकसभा के सदस्य के नाते ही शपथ ग्रहण करता है।

अध्यक्ष की शक्तियां और कत्य –लोकसभा का सबसे शक्तिशाली रूढ़िगत और औपचारिक प्रधान लोकसभा का अध्यक्ष है। सभा में उसका प्राधिकार सर्वोच्च है। यह प्राधिकार अध्यक्ष की अनन्य निष्पक्षता पर आधारित है। उसकी शक्तियों तथा उसके कर्तव्यों का उल्लेख नियमों में तथा कुद हद तक संविधान में किया गया है। जिन नियमों के अनुसार उसे अपना काम करना होता है, वे नम्य हैं और कुछ मामालों में उसे अपने विवेक से काम लेना पड़ता है। उसके कर्तव्य बड़े कठिन हैं, जो अग्र प्रकार हैं:

(1) जहां तक संसद के दोनों सदनों के परस्पर सम्बन्धों का प्रश्न है, उनमें कुद मामलों में संविधान ने अध्यक्ष को विशेष स्थिति प्रदान की है। यह निर्णय अध्यक्ष ही करता है कि कौन–से विषय 'धन' सम्बन्धी विषय हैं क्योंकि ये लोकसभा के अनन्य अधिकार–क्षेत्र में आते हैं। यदि अध्यक्ष किसी विधेयक के सम्बन्ध में यह प्रमाण–पत्र दे दे कि धन–विधेयक है तो उसका निर्णय अन्तिम होता है।

(2) जब भी दोनों सदनों के बीच किसी विधान के सम्बन्ध में मतभेद होने पर संयुक्त बैठक बुलाई जाती है तो उसकी अध्यक्षता लोकसभा का अध्यक्ष करता है और बैठक के सम्बन्ध में प्रक्रिया नियम उसके निर्देशों तथा आदेशों के अन्तर्गत लागू होते हैं।

(3) जब किसी प्रश्न के पक्ष और विपक्ष में बराबर–बराबर मत आते हैं तो स्पीकर निर्णायक मत देता है।

(4) संविधान के अनुसार उसे लोकसभा की बैठक स्थगित करने या गणपूर्ति न होने की दशा में बैठक निलम्बित करने की भी शक्ति प्राप्त है।

(5) उसे यह शक्ति प्राप्त है कि वह अपने विवेक से किसी ऐसे सदस्य को अपनी मातभाषा में बोलने की अनुमति दे जो अपने विचार हिन्दी या अंग्रेजी में भलीभांति व्यक्त नहीं कर सकता।

(6) कार्य की स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्यक्ष सभा की बैठक के प्रारम्भ तथा समाप्त होने का समय नियत करता है ओर निर्णय करता है कि सभा की बैठक किस–किस दिन होगी। वह यह भी निर्णय करता है कि किस समय सभा की बैठक अनिश्चित काल के लिए या किसी अन्य दिन, या उस दिन के किसी समय तक के लिए स्थगित की जाती है।

(7) सदन के नेता से परामर्श करके वह सरकारी कार्य का क्रम निर्धारित करता है और यदि उसका समाधान हो जाए कि उस क्रम में परिवर्तन करने का समुचित आधार है तो उसे वह बदल सकता है।

(8) अध्यक्ष को लोकसभा में दलों तथा समूहों को मान्यता देने की भी शक्ति प्राप्त है।

(9) वह लोकसभा की कार्यवाही का संचालन करता है।

(10) लोकसभा की गुप्त बैठकों में अध्यक्ष ही यह निर्णय करता है कि कार्यवाही का वत्तान्त कैसे तैयार किया जाए और ऐसे अवसरों पर किस प्रक्रिया का पालन किया जाए।

(11) लोकसभा में व्यवस्था बनाए रखना अध्यक्ष की जिम्मेदारी है और वह सदस्यों से नियमों का पालन करवाता है। कौल तथा शकधर के अनुसार, ''सभा में व्यवस्था बनाए रखना अध्यक्ष का मूल कर्तव्य है। उसकी अनुशासनात्मक शक्तियों का उद्‌गम सभा नियम हैं और अनुशासन सम्बन्धी मामलों में उनके निर्णय को सिवाय मुख्य प्रस्ताव के माध्यम से और

किसी प्रकार चुनौती नहीं दी जा सकती।'' अध्यक्ष किसी सदस्य के भाषण की असंगत बातों या उसमें दोहराई जाने वाली बातों को रोक सकता है। जब कोई सदस्य किसी के लिए कोई अनुचित या अपमानजनक बात कहे तो अध्यक्ष उसे रोक सकता है और उससे कह सकता है कि या तो अपने शब्द वापस ले या उनके लिए खेद प्रकट करे। अध्यक्ष अपने स्वविवेक का प्रयोग करके वाद–विवाद में प्रयुक्त अपमानजनक या अश्लील शब्दों या किसी ऐसे सदस्य द्वारा कही गई किसी बात को कार्यवाही के वृत्तान्त से निकाल सकता है, जिसे बोलने के लिए अनुमति न दी गई हो। जो सदस्य उच्छंखल व्यवहार का दोषी हो उसे अध्यक्ष सभा का त्याग करने के लिए कह सकता है। यदि कोई सदस्य अध्यक्ष के अधिकार की अवहेलना करे और लगातार सभा की कार्यवाही में बाधा डालता रहे तो अध्यक्ष उसका नाम लेकर उसे सभा से निलम्बित कर सकता है। यदि लोकसभा में शोरगुल और अव्यवस्था हो तो वह सभा को स्थगित कर सकता है या उसका कार्य निलम्बित कर सकता है।

(12) यह अध्यक्ष ही तय करता है कि कब किस सदस्य को बोलने का अवसर दिया जाये और उसे कितनी देर बोलने दिया जाये। जब भी आवश्यक हो वह भाषण की समय सीमा निर्धारित कर सकता है।

(13) वह सभा के विचार के लिए प्रस्ताव प्रस्तावित करता है और उन प्रस्तावों को सत्ता के निर्णय के लिए उसके सामने रखता है। सदस्य जो व्यवस्था का प्रश्न उठाते हैं, उन पर अध्यक्ष ही अपना निर्णय देता है और उसका निर्णय अन्तिम होता है।

(14) अध्यक्ष संकल्पों तथा प्रस्तावों की ग्राह्यता का निर्णय करता है। प्रश्नों की ग्राहणता के समान उसे संकल्पों तथा प्रस्तावों को स्वीकार करने के सम्बन्ध में भी सामान्य रूप से विवेकाधिकार है। वह यह निर्णय करता है कि मन्त्रिपरिषद् पर अविश्वास का प्रस्ताव नियमानुकूल है या नहीं और कटौती प्रस्ताव अर्थात् अनुदानों की मांग में कटौती करने का प्रस्ताव नियमों के अन्तर्गत ग्राह्य है या नहीं

(15) अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त है कि वह विधेयकों तथा संकल्पों के सम्बन्ध में रखे गए संशोधनों में से कुछ को सभा के सामने पेश करने के लिए चुन सकता है और किसी भी ऐसे संशोधन को सभा के सामने रखने से इन्कार कर सकता है जो उसके विचार में तुच्छ हो।

(16) लोकसभा में याचिकाएं पेश करने के लिए अध्यक्ष की स्वीकति आवश्यक है।

(17) लोकसभा के नेता के परामर्श से वह बजट, विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक पर सभा द्वारा विचार के लिए दिन और समय नियत करता है।

(18) उसकी सहमति के बिना किसी सदस्य, सभा या उसकी सहमति के विशेषाधिकार भंग के सम्बन्ध में कोई प्रश्न सभा में नहीं उठाया जा सकता।

(19) सभी संसदीय समितियों पर अध्यक्ष का सर्वोच्च नियन्त्रण है। वह उनके सभापतियों की नियुक्ति करता है और उनके काम के संगठन या उनके द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के सम्बन्ध में ऐसे निर्देश दे सकता है जो वह आवश्यक समझे। वह उनके साथ समय–समय पर परामर्श करता है और उनका मार्ग–दर्शन करता है। समितियों के सम्बन्ध में कुछ शक्तियां अध्यक्ष के लिए आरक्षित हैं। कोई समिति पहले अध्यक्ष से अनुमति लिए बिना संसद भवन से बाहर अपनी बैठक नहीं कर सकती है और उसकी पूर्व स्वीकति लिए बिना राज्य सरकार के अधिकारियों को गवाही देने के लिए बुला सकती है।

(20) सभा की कतिपय समितियां जैसे 'कार्य मन्त्रणा समिति', और 'नियम समिति' अध्यक्ष के नेतत्व में ही काम करती हैं और अध्यक्ष ही उनका सभापति होता है।

(21) जहां तक लोकसभा या उससे सम्बन्धित मामलों का प्रश्न है, उनके बारे में संविधान तथा नियमों की व्याख्या करने का अधिकार अध्यक्ष को है और कोई भी सरकार इस सम्बन्ध में अध्यक्ष के साथ वाद–विवाद नहीं कर सकती।

(22) अध्यक्ष अपने आसन पर बैठकर जो विचार प्रकट करता है वह उनके सम्बन्ध में सार्वजनिक रूप से या समाचारपत्रों में किसी वाद–विवाद में नहीं पड़ता।

(23) अध्यक्ष सभा में निधन सम्बन्धी निर्देश भी करता है, सभा की अवधि समाप्त होने पर विदाई भाषण देता है और साथ ही महत्त्वपर्ण राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय घटनाओं के सम्बन्ध में औपचारिक अवसरों पर भी भाषण देता है।

(24) लोकसभा के नियमों के अन्तर्गत अध्यक्ष को यह शक्ति प्राप्त हैं कि जब कोई विधेयक पास हो जाये तो वह उसमे प्रत्यक्ष गलतियों को शुद्ध करता है और अन्य ऐसे परिवर्तन कर सकता है जो सभा द्वारा स्वीकत संशोधनों के आनुषांगिक हों।

(25) जब कोई विधेयक संसद द्वारा पारित कर दिया गया है और उस समय सभा में हो तो अध्यक्ष से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के लिए भेजने से पहले उस पर हस्ताक्षर करके उसे प्रमाणित करें

(26) अध्यक्ष सचिवालय का प्रमुख है जो कि उसके नियन्त्रण तथा निर्देशों के अन्तर्गत कार्य करता है। लोकसभा के समस्त कर्मचारियों, उसके परिसर तथा सुरक्षा के सम्बन्ध में अध्यक्ष का अधिकार सम्पूर्ण है सभी अजनबी, आगन्तुक तथा समाचारपत्रों के संवाददाता उसके अनुशासन तथा आदेशों के अधीन हैं।

(27) लोकसभा के सदस्यों के अधिकारों की रक्षा उसकी जिम्मेदारी है। वह सदस्यों के लिए समुचित सुविधाओं की व्यवस्था करता है। अध्यक्ष की अनुमति लिए बिना किसी भी सदस्य को सभा के परिसर में न तो गिरफ्तार किया जा सकता है और न फौजदारी या दीवानी कानून के अन्तर्गत कोई आदेशिका उसे दी जा सकेगी।

(28) लोकसभा के अध्यक्ष को मन्त्रियों से पूछे जाने वाले प्रश्नों के सम्बन्ध में विभिन्न शक्तियां दी गई हैं। यद्यपि प्रश्नों की ग्राह्यता के सम्बन्ध में मार्गदर्शक सिद्धांत नियमों में दिए गए हैं, परन्तु उनका निर्वाचन करने की शक्ति अध्यक्ष के हाथ में है। अध्यक्ष यह फैसला कर सकता है कि किसी प्रश्न का मौखिक के स्थान पर लिखित उत्तर उपयुक्त होगा।

उपर्युक्त शक्तियों तथा कत्यों से स्पष्ट है कि हमारी लोकसभा के अध्यक्ष की विशाल शक्तियां हैं। इन शक्तियों एवं अधिकारों के प्रयोग से ही वह हमारी विशाल सभा का सफलतापूर्वक संचालन एंव नेतत्व करता है।

संसदीय शासन के विकास में अध्यक्ष की भूमिका—अध्यक्ष की कोई राजनीति नहीं होती उसे संसदीय शासन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना होता है। उसके पास और कुछ नहीं होता, केवल अपने व्यक्तित्व, अपनी आवाज, महत्व और गौरव से ही वह सदन की व्यवस्था को बनाए रखता है। सारे सदन की सत्ता उसके पीछे होती है। श्री जी. वी. मावंलकर लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष थे। सन् 1952 से 27 फरवरी, 1956 तक वे लोकसभा के अध्यक्ष रहे। 27 फरवरी, 1956 को उनका देहान्त हो गया। पूरे देश मे उनके असामायिक देहावसान पर शोक मनाया गया। उन्होंने अपने कार्यकाल में अनेक ऐसी परंपराएं डाली कि उन्हें लोकसभा का पिता कहा जाता है। उन्होंने यह घोषणा की कि वे अध्यक्ष के पद पर निष्पक्ष रहने की परंपरा का तो पालन करेंगे, किन्तु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से अपना सम्बन्ध नहीं तोडेंगे। उनका तर्क था कि जिस संस्था के झण्डे के नीचे उन्होंने स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी है, उससे कैसे सम्बन्ध विच्छेद किया जा सकता है? उन्होंने लोकसभा का मार्गदर्शन निष्पक्षता, गरिमा तथा प्रतिष्ठा के साथ किया। उन्होंने विधानमण्डल के पीठासीन अधिकारियों को निष्पक्षता, गरिमा तथा प्रतिष्ठा के साथ किया। उन्होंने विधानमण्डल के पीठासीन अधिकारियेां को निष्पक्ष रहने का परामर्श दिया। मावंलकर के पश्चात् श्री अनन्तशयनम् आयंगर को 8 मार्च 1956 को अध्यक्ष पद पर निर्वाचित किया गया। उन्होंने 1962 तक अध्यक्ष पद पर कार्य किया। वे अपने कर्तव्य—पालन में बहुत कठोर थे और कभी—कभी सदन की कार्यवाही में हंसी—मजाक का पुट भी ला देते थे। जब आयंगर को बिहार का राज्यपाल बनाया गया तो उनके स्थान पर सरदार हुकमसिंह को तीसरी लोकसभा का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। दूसरी लोकसभा के उपाध्यक्ष के रूप में उन्होंने पूरे देश में विशिष्ट ख्याति अर्जित कर ली थी और तीसरी लोकसभा की अध्यक्षता के कार्य को उन्होंने पूरे देश में विशिष्ट ख्याति अर्जित कर ली थी और तीसरी लोकसभा की अध्यक्षता के कार्य को उन्होंने अपनी योग्यता, प्रतिभा तथा संसदीय विद्वता से कुशलतापूर्वक चलाया। चतुर्थ लोकसभा की अध्यक्षता का भार श्री संजीव रेड्डी पर डाला गया। इस समय बदली हुई दलीय स्थिति में उन्हें कार्य करना पड़ा। सदन में कांग्रेस दल का उतना बहुमत नहीं था जितना कि पूर्व की लोकसभाओं में था। उन्होंने अध्यक्ष—पद पर निर्वाचित होते ही कांग्रेस दल से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। संजीव रेड्डी ने राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने हेतु लोकसभा की अध्यक्षता से त्याग—पत्र दे दिया। उनके बाद श्री गुरुदयालसिंह ढिल्लन को लोकसभा का अध्यक्ष बनाया गया। डॉ0 ढिल्लन के दूसरी बार अध्यक्ष पद पर चुने जाने पर प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में कहा था—''सभा का पिछले दो वर्ष का समय शान्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। सभा में छोटे—बड़े हंगामे, जटिल संवैधानिक मामले, प्रक्रिया सम्बन्धी विवाद, कुछ व्यवस्था के प्रश्न उठाए जाते रहे हैं, किंतु श्री ढिल्लन ने सदैव संसदीय आचरण के मूल सिद्धांतों को कायम रखते हुये तथा अपनी सौजन्यता एवं निष्पक्षता जो उनकी विशेषताएं हैं में ढील नहीं आने दी।'' श्री ढिल्लन के मन्त्रि—पद ग्रहरण करने के बाद श्री बलीराम भगत को अध्यक्ष पद पर आसीन किया गया। वे लोकसभा के छठे अध्यक्ष थे। उन्होंने कहा था, ''क्योंकि लोकसभा का अध्यक्ष सभी दलों के प्रति समान रूप से उतरदायी है इसलिए उसका निष्पक्ष होना बहुत आवश्यक है। इस दिशा में भूतपूर्व अध्यक्षों ने जो नियम, आदर्श और परम्पराएं कायम की

हैं, में उनका यथाशक्ति अनुकरण करूंगा।'' श्री बलीराम भगत (जनवरी, 1975 मार्च 1975) के बाद भी नीलम संजीव रेड्डी और उसके बाद के. एस. हेगड़े ने लोकसभा की उच्च परंपराओं को निष्ठापूर्वक संवारा और सुदढ़ किया। 1980–89 की लम्बी अवधि तक श्री बलराम जाखड़ लोकसभा के 'स्पीकर' पद पर आसीन रहे। बोर्फार्स मुद्दे पर दवाब में आई राजीव सरकार को बचाने के लिए बलराम जाखड़ ने जेहादी उत्साह दिखाया। उन्होंने लोक लेखा समिति की अध्यक्षता विपक्ष के किसी सदस्य को देने की 19 साल पुरानी परम्परा उलट दी और उस समय इंका की सहयोगी अन्नाद्रमुक के एक सदस्य को इसका अध्यक्ष बना दिया। श्री रविराय दिसम्बर 1989 में नवीं लोकसभा चुनावों के बाद स्पीकर पद पर सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए। दसवीं लोकसभा के चुनाव (1991) के बाद श्री शिवराज पाटिल लोकसभा अध्यक्ष चुने गये। शिवराज पाटिल ने स्पीकर पद की खोई गरिमा को कुछ–कुछ सीमा तक वहाल करने का प्रयास किया वे दायित्त्व पूरा न करने वाले विपक्षी सदस्यों, दोनों को फटकारते। उन्होंने सदन की कार्यवाही आमतौर पर इस प्रकार चलाई कि वे आलोचना से बचे रहे। 11वीं लोकसभा (1996) के चुनावों के बाद पी. ए. संगमा अध्यक्ष पद पर निर्विरोध निर्वाचित हुए। अपनी निष्पक्षता, योग्यता एवं लोकप्रियता के कारण उन्हेंने अध्यक्ष पद की गरिमा में अपूर्व वद्धि की। 12वीं एवं 13वीं लोकसभा चुनावों के बाद तेलूदेशम के श्री बालयोगी स्पीकरपद पर आसीन हैं।

श्यामलाल शकधर लिखते है ''अनन्तश्यनम् आयंगर के अध्यक्ष काल में सभा की कार्यवाहियों में गतिशीलता तथा सजीवता देखने को मिली, सरदार हुकमसिंह ने अध्यक्ष पद को प्रतिष्ठा, गरिमा तथा कत्यों और विचारों में परिपक्वता द्वारा उन्नत बनाया। डॉ 0 संजीव रेड्डी ने अपना कार्यकाल निष्पक्षता तथा सभा की कार्यवाहियों में सजीवता से पूर्ण किया।'' इस प्रकार भारत में संसदीय शासन के विकास में अध्यक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनका व्यक्तित्व एवं योगदान सराहनीय रहा है जिससे संसद की मान–मर्यादा बढ़ी है।

अध्यक्ष की वास्तविक स्थिति
(Actual Position of the Speaker)

अध्यक्ष सदन की प्रतिष्ठा, शक्ति तथा गौरव का द्योतक है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री नेहरू के शब्दों में, ''अध्यक्ष सभा का प्रतिनिधि है। वह सभा की गरिमा और उसकी स्वतंत्रता का प्रतीक है और चूंकि सभा राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। अतः एक तरह से अध्यक्ष राष्ट्र की स्वतंत्रता और आजादी का प्रतीक बन जाता है। अतः यह उचित ही है कि अध्यक्ष का पद सम्मानित पद है। उसकी स्वतंत्र स्थिति है और उस पद पर वही व्यक्ति आसीन होने चाहिए जो साधारण रूप से योग्य तथा निष्पक्ष हों।'' लोकसभा के भूतपूर्व सचिव एम. एन. कौल के अनुसार, ''यद्यपि साधारणतया अध्यक्ष अध्यक्षता करता है, निगरानी रखता है तथा विवादों को नियन्त्रित करता है, लेकिन उसकी स्थिति इतनी महत्वपूर्ण है कि किसी भी संकट में उसकी शक्तियां राजनीतिक दष्टि से बहुंत अधिक महत्वपूर्ण हो सकती हैं। यथार्थ में भारतीय संसदीय व्यवस्था में लोकसभा का अध्यक्ष उस सन्तुलन–चक्र के समान है, जिससे कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के सम्बन्ध में सरकार की ओर से मैं यह कहूंगा कि हम यह चाहेंगे कि माननीय अध्यक्ष अब और हमेशा सदन की स्वतंत्रता की रक्षा प्रत्येक प्रकार के खतरे से करेंगे–कार्यपालिका के अतिक्रमण के खतरे से भी। यह खतरा हमेशा बना रहता है कि एक राष्ट्रीय सरकार अल्पसंख्यकों के विचारों का दमन करने का प्रयत्न करे और ऐसी स्थिति में अध्यक्ष का यह दायित्व हो जाता है कि वह सदन के प्रत्येक सदस्य तथा प्रत्येक इकाई की एक प्रभुत्वपूर्ण सरकार से रक्षा करे।''

अध्यक्ष के निर्णय नजीरें हैं जिनसे आगे आने वाले अध्यक्षों, सदस्यों तथा अधिकारियों का पथ–प्रदर्शन होता है। ऐसी नजीरों का संग्रह कर लिया जाता है और समय आने पर यही या तो प्रक्रिया नियमों में परिवर्तित हो जाती हैं और या परिपाटियों के रूप में इनका अनुसरण किया जाता है। अध्यक्ष के निर्णयों को केवल प्रस्ताव रखकर ही चुनौती दी जा सकती है, वैसे उन पर आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। जो सदस्य अध्यक्ष के विनिर्णय पर विरोध प्रकट करता है वह सभा और अध्यक्ष के अवमान का दोषी होता है। अध्यक्ष अपने निर्णय के कारण बताने के लिए बाध्य नहीं होता। अध्यक्ष द्वारा दिए गए विनिर्णय या व्यक्त किए गए विचार या दिए गए वक्तव्य की आलोचना नहीं की जा सकती।

लोकसभा का अध्यक्ष भारतीय संसदीय समूह का पदेन सभापति होता है जो भारत में अन्तर्संसदीय संघ के राष्ट्रीय समूह और राष्ट्रमण्डल संसदीय संस्था की मुख्य शाखा के रूप में काम करता है। वह राज्यसभा के सभापति के परामर्श से विदेशों को जाने वाले विभिन्न संसदीय प्रतिनिधिमण्डलों के लिए सदस्यों का नाम निर्देशन करता है। कभी–कभी वह स्वयं इन प्रतिनिधिमण्डलों का नेतत्व करता है।

संसदीय सचिवालय और सदन की इमारत अध्यक्ष के नियंत्रण में होती है। इस दिशा में सारा प्रशासन अध्यक्ष के आदेश से ही चलता है। सदन के कार्य को चलाने सम्बन्धी सारे अधिकार भी अध्यक्ष को प्राप्त होते हैं।

प्रो. पायली के अनुसार कुछ ही वर्षों के भीतर लोकसभा के अध्यक्ष पद ने सदन की गरिमा को अपनी निष्पक्षता द्वारा बनाए रखा है। प्रारम्भ में मावलंकर जैसे अध्यक्ष इस विचारधारा के थे कि सदन में वह निर्दलीय व्यक्ति के समान आचरण करे, किन्तु सदन के बाहर वह दलगत निष्ठाएं रख सकता है, परन्तु बाद के अध्यक्षों जैसे नीलम संजीव रेड्डी तथा गुरुदयाल सिंह ढिल्लन ने अध्यक्ष–पद धारण करते ही दल की राजनीति से संन्यास ले लिया। अध्यक्ष को भारत में सातवां स्थान प्राप्त हैं, जो सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के बराबर का है।

अध्यक्ष को लोकसभा के अभिभावक का–सा दायित्व निभाना होता है। सदन में व्यक्तिगत आरोप–प्रत्यारोप के बजाय स्वस्थ विचारों के आदान–प्रदान को समुचित अवसर प्रदान करना होता है।

एंस्किन ने कहा है–''अध्यक्ष की तटस्थता में विश्वास प्रक्रिया के सफल रूप से संचालन के लिए अनिवार्य है। बहुत–सी परिपाटियां ऐसी हैं जिनका उद्देश्य न केवल यह है कि अध्यक्ष की तटस्थता बनी रहे बल्कि यह भी कि उसकी तटस्थता को सभी स्वीकार करें।'' भारत में अध्यक्षता करने वाले व्यक्तियों ने दलगत राजनीति से ऊपर उठकर कार्य किया है जिससे उनकी गरिमा में वद्धि हुई है।

भारतीय अध्यक्ष की ब्रिटिश और अमरीकी अध्यक्ष से तुलना
(Comparison of Indian Speaker with British and American Speaker)

ब्रिटेन की भांति भारत में लोकसभा के अध्यक्ष का दर्जा बहुत सम्मान का है। भारत के अध्यक्ष की स्थिति इंग्लेण्ड और अमरीका के बीच की है। इसका कारण यह है कि भारत में लोकसभा का अध्यक्ष न तो अपना सम्बन्ध राजनीतिक दलों से और दलगत राजनीति से इतना तोड़ लेता है जितना ब्रिटेन में और न ही पद ग्रहण करने के बाद वह इतना पक्षपात करता है जितना अमरीकी प्रतिनिधि सदन का अध्यक्ष। भारत में अध्यक्ष अपने चुनाव के बाद अपने दल से पूर्णतया सम्बन्ध–विच्छेद नहीं करता है, परन्तु सक्रिय दलीय राजनीति में भाग नहीं लेता है। वह सदन की कार्यवाही अत्यन्त निष्पक्ष रूप से चलाता है। सरदार हुकमसिंह का यह कथन भारतीय अध्यक्ष की निष्पक्षता का कितना सुन्दर उदाहरण है–'' आपको मालूम होगा कि एक तरफ जहां विरोधी दलों के कुछ सदस्यों ने मेरी निष्पक्षता को चुनौती दी है, वहीं दूसरी ओर सत्तारूढ़ दल के सदस्यों ने प्रतिपक्ष के प्रति मेरे झुकाव की शिकायत की है। क्या प्रतिक्रिया का यह अर्न्तविरोध मेरी निष्पक्षता का प्रमाण नहीं है?'' फिर भी भारत में अध्यक्ष को वह सम्मान नहीं मिल पाया जो ब्रिटेन में अध्यक्ष को प्राप्त है। वहां अध्यक्ष अपने दल से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता है और उसका निर्वाचन भी निर्विरोध होता है। अध्यक्ष के निर्वाचन के समय पी. जी. मावलंकर ने कहा कि ''यदि कुछ विरोधी दलों के सदस्यों ने अपना विरोध किया है उसका भाव आपका व्यक्तिगत विरोध करना यही था, वह विरोध तो मात्र इसलिए था कि आप कांग्रेसी उम्मीदवार थे।'' 18 दिसम्बर, 1954 को तो लोकसभा में अध्यक्ष के विरुद्ध प्रस्ताव भी पेश किया गया। विरोधी दल आम चुनाव में अध्यक्ष के विरुद्ध प्रत्याशी भी खड़ा करते रहे हैं सदन में अध्यक्ष के निर्वाचन के समय भी विपक्षी दलो ंने अपने प्रत्याशी खड़े किए हैं। श्री मॉरिस जोन्स अपनी पुस्तक 'Parliament in India' में एक स्थान पर लिखते हैं ''अध्यक्ष पदधारी व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह निष्पक्षतापूर्वक आचरण करे और सभी व्यक्तियों को उसकी निष्पक्षता में पूर्ण विश्वास हो।'' अध्यक्ष की निष्पक्षता में सभी व्यक्तियों का विश्वास हो इसके लिए आवश्यक है कि लोकसभा के सदस्य द्वारा अध्यक्ष चुने जाने के बाद अपनी दलगत निष्ठाओं का त्याग कर दिया।

लोकसभा की शक्तियां और कार्य
(Power and Functions of Lok-Sabha)

भारतीय संसद के दो सदनों मे लोकसभा लोकप्रिय सदन है, क्योंकि इसके गठन का आधार जनसंख्या है और लोकसभा के सदस्यों को जनता के द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर निर्वाचित किया जाता है। संसदीय व्यवस्था का यह निश्चित सिद्धान्त है कि कानून निर्माण और प्रशासन पर नियंत्रण की अन्तिम शक्ति लोकप्रिय सदन को ही प्राप्त होती है। भारतीय संविधान द्वारा भी लोकसभा को राज्यसभा की तुलना में उच्च स्थिति प्रदान की गई है। संसद लोकसभा, राज्यसभा तथा राष्ट्रपति से मिलकर बनती है, लेकिन लोकसभा संसद की सबसे अधिक महत्वपूर्ण इकाई है। लोकसभा की शक्तियां तथा उसके कार्यों का अध्ययन निम्न रूपों में किया जा सकता हैः

(1) **विधायी शक्ति**–संविधान के अनुसार भारतीय संसद संघ सूची, समवर्ती सूची, अवशेष विषयों और कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्यसूची के विषयो ंपर कानूनों का निर्माण कर सकती है। यद्यपि संविधान के द्वारा साधारण अवित्तीय विधेयकों के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा को समान शक्ति प्रदान की गई है। संविधान मे कहा गया है कि इस प्रकार के विधेयक दोनों में से किसी एक सदन में प्रस्तावित किए जा सकते हैं और दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो

जाने पर राष्ट्रपति द्वारा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाए जाने की व्यवस्था है और लोकसभा में सदस्य संख्या राज्यसभा की संख्या की दुगनी से भी अधिक होने के कारण सामान्यतया इस बैठक में विधेयक के भाग्य का निर्णय लोकसभा की इच्छानुसार ही होता है। इस प्रकार कानून निर्माण के सम्बन्ध में अन्तिम शक्ति लोकसभा के पास है और राज्यसभा साधारण अवित्तीय विधेयक को 6 महीने तक रोके रखने के अलावा और कुछ नहीं कर सकती है। व्यवहार के अन्तर्गत अब तक महत्वपूर्ण विधेयक लोकसभा में ही प्रस्तावित किए जाते रहे हैं।

(2) **वित्तीय शक्ति (Financial Power)**—भारतीय संविधान द्वारा वित्तीय क्षेत्र के सम्बन्ध में शक्ति लोकसभा को ही प्रदान की गई है और इस सम्बन्ध में राज्यसभा की स्थिति बहुत गौण है। अनुच्छेद 109 के अनुसार वित्त विधेयक लोकसभा में ही प्रस्तावित किए जा सकते हैं, राज्यसभा में नहीं। लोकसभा से पारित होने के बाद वित्त विधेयक राज्यसभा में भेजा जाता है और राज्यसभा के लिए यह आवश्यक है कि उसे वित्त विधेयक की प्राप्ति की तिथि के 14 दिन के अन्दर–अन्दर विधेयक लोकसभा को लौटा देना होगा। राज्यसभा विधेयक में संशोधन के लिए सुझाव दे सकती है, लेकिन इन्हें स्वीकार करना यान करना लोकसभा की इच्छा पर निर्भर करता है। संविधान यह भी व्यवस्था करता है कि यदि वित्त विधेयक प्राप्त होने के बाद 14 दिन के अन्दर राज्यसभा सिफारिशों सहित या सिफारिशों के बिना वित्त विधेयक प्राप्त होने के बाद 14 दिन के अन्दर राज्यसभा सिफारिशों सहित या सिफारिशों के बिना वित्त विधेयक लोकसभा को न लौटाए, तो निश्चित तिथि के बाद वह दोनों सदनों से पारित मान लिया जाएगा। वार्षिक बजट और अनुदान सम्बन्धी मांग भी लोकसभा के समक्ष ही रखी जाती हैं और इस प्रकार के समस्त व्यय की स्वीकति देने का एकाधिकार लोकसभा को ही प्राप्त है।

(3) **कार्यपालिका पर नियन्त्रण की शक्ति (Power of Control over Executive)**—भारतीय संविधान के द्वारा संसदात्मक व्यवस्था की स्थापना की गई है, अतः संविधान के अनुसार संघीय कार्यपालिका अर्थात् मंत्रिमण्डल संसद (व्यवहार में लोकसभा) के प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल केवल उसी समय तक अपने पद पर रहता है जब तक कि उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो। संसद अनेक प्रकार से कार्यपालिका पर नियंत्रण रख सकती है। संसद के सदस्य मंत्रियों से सरकारी नीति के सम्बन्ध में व सरकार के कार्यो के सम्बन्ध में प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं तथा उनकी आलोचना कर सकते हैं। संसद सरकारी विधेयक अथवा गजट को स्वीकार करके, मंत्रियों के वेतन में कटौती का प्रस्ताव स्वीकार करके अथवा किसी सरकारी विधेयक में कोई ऐसा संशोधन करके, जिससे सरकार सहमत न हो, अपना विरोध प्रदर्शित कर सकती है। वह कामरोको प्रस्ताव (Adjournment Motion) पास करके भी सरकारी नीति की गलतियों को प्रकाश में ला सकती है। अन्तिम रूप से लोकसभा के द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पास करके कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिपरिषद को उसके पद से हटाया जा सकता है।

4. **संविधान संशोधन सम्बन्धी शक्ति (Power of Amending the Constitution)**: जहां एक ओर लोकसभा को सामान्य विधेयक पारित करने का अधिकार प्राप्त है, वहां दूसरी ओर संविधान में संशोधन और परिवर्तन करने का अधिकार भी प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद 368 के अनुसार संविधान में संशोधन कार्य संसद के द्वारा ही किया जा सकता है और इसी अनुच्छेद में उस प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है, जिसे संविधान के संशोधन में अपनाना होता है। संविधान के संशोधन के सम्बन्ध में लोकसभा और राज्यसभा की स्थिति समान है क्योंकि संशोधन विधेयक दोनों में से किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जा सकते हैं और उन्हें तभी पारित समझा जाएगा, जबकि उन्हें संसद के दोनों सदन अलग–अलग अपने कुल बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत से पारित कर दें। संविधान के अधिकांश प्रावधानों में अकेली संघीय संसद के द्वारा ही परिवर्तन किया जा सकता है; केवल कुछ ही प्रावधानों में संशोधन के लिए भारतीय संघ के आधे राज्यों के विधानमण्डलों की स्वीकति आवश्यक होती है।

भारतीय संसद की संविधान सम्बन्धी शक्ति पिछले वर्षों बहुत अधिक वाद–विवाद का विषय रही है। इस प्रकार के वाद–विवाद का एक प्रमुख बिन्दु यह रहा है कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित करने वाला संवैधानिक संशोधन कर सकती है अथवा नहीं। 1951 और 1965 में तो सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में संसद की इस शक्ति को स्वीकार किया था लेकिन 27 फरवरी, 1967 को गोलकनाथ विवाद में बहुमत से निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि 'ससंद कोई ऐसा संवैधानिक संशोधन नहीं कर सकती, जो मौलिक अधिकारों को छीनता या कम करता हो।' 1971 में 24वें संवैधानिक संशोधन के आधार पर गोलकनाथ विवाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए निर्णय को रद्द कर दिया

गया। 24वें संवैधानिक संशोधन के आधार पर गोलकनाथ विवाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए निर्णय को रद्द कर दिया गया। 24वें संवैधानिक संशोधन को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई, लेकिन 22 अप्रैल, 1973 के ऐतिहासिक निर्णय में इसे वैध घोषित किया गया, लेकिन इसके साथ ही इस निर्णय में यह कहा गया कि अनुच्छेद 368 के अन्तर्गत संसद को यह अधिकार नहीं है कि वह संविधान के मूल स्वरूप या उसके आधारभूत ढांचे को ही बदल दे या नष्ट कर दे।

5. **निर्वाचक मण्डल के रूप में कार्य (Function as an Electoral College)**: लोकसभा निर्वाचक मण्डल के रूप में भी कार्य करती है। अनुच्छेद 54 के अनुसार लोकसभा के सदस्य राज्यसभा के सदस्यों तथा राज्य विधानसभाओं के सदस्यों के साथ मिलकर राष्ट्रपति को निर्वाचित करते हैं। अनुच्छेद 66 के अनुसार लोकसभा और राज्यसभा मिलकर उपराष्ट्रपति का चुनाव करती हैं। लोकसभा के द्वारा सदन के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को निर्वाचित किया जाता है तथा वह उन्हें पदच्युत भी कर सकती है।

6. **जनता की शिकायतों का निवारण (Redressal of Public Grievances)**: लोकसभा के सदस्य प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित होकर आते हैं, अतः उनके द्वारा जनता की शिकायतें, जनता के विचार और भावनाएं सरकार तक पहुंचाई जाती हैं। लोकसभा के सदस्यगण इस बात की चेष्टा करते हैं कि सरकार अपनी नीतियों का निर्माण एवं कार्यों का सम्पादन जनता के हितों को ध्यान में रखते हुए करे। यदि सैद्धान्तिक अध्ययन के स्थान पर वास्तविक अध्ययन किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि लोकसभा सबसे अधिक प्रमुख रूप में यही कार्य सम्पादित करती है।

7. **विविध कार्य (Miscellaneous Functions)**: लोकसभा कुछ अन्य कार्य भी करती है जो इस प्रकार हैं:

   i. लोकसभा और राज्यसभा मिलकर राष्ट्रपति पर महाभियोग लगा सकती हैं।

   ii. उपराष्ट्रपति को उसके पद से हटाने के लिए राज्यसभा प्रस्ताव पास कर दे, तो इसप्रस्ताव का लोकसभा द्वारा अनुमोदन आवश्यक होता है।

   iii. लोकसभा और राज्यसभा मिलकर सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधिशों के विरुद्ध महाभियोग का प्रस्ताव पास कर सकती हैं।

   iv. राष्ट्रपति द्वारा संकटकाल की घोषणा को एक महीने के अन्दर–अन्दर संसद से स्वीकार कराना आवश्यक है अन्यथा इस प्रकार की घोषणा एक महीने बाद स्वयं ही समाप्त मान ली जाती है।

   v. यदि राष्ट्रपति सर्वक्षमा (Amnesty) देना चाहे तो उसकी स्वीकति संसद से लेनी आवश्यक है।

लोकसभा की शक्तियों के उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यदि संसद देश का सर्वोच्च अंग है, तो लोकसभा संसद का सर्वोच्च अंग। जनता का प्रतिनिधि सदन होने के कारण, लोकसभा संसद का महत्वपूर्ण, शक्तिशाली एवं प्रभावशाली अंग है। व्यवहार की दष्टि से यदि लोकसभा को संसद कह दिया जाय, तो अनुचित न होगा।

भारत में संसदीय समितियां
(Parliamentary Committees in India)

विश्व की समस्त व्यवस्थपिकाओं के सामने एक समस्या यह है कि कम–से–कम समय में अच्छे से अच्छा व्यवस्थापन किस प्रकार से हो सके? वर्तमान में सभी संसदें व्यवस्थापन कार्य के भार से दबी हुई हैं। वे बढ़ते हुए व्यवस्थापन कार्य को निपटा नहीं पाती हैं और यदि संसद व्यवस्थापन कार्य में शीघ्रता बरते तो कार्य का स्तर स्वाभाविक रूप से निम्न कोटि का होगा। संसद की इन कठिनाइयों के निराकरण के लिए इंग्लैण्ड में समिति–प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिक विधान–तन्त्रों में समितियों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है, उनसे कई लाभ हैं–प्रथम, समितियों में सदन की पिछली बैंचों पर बैठने वाले सदस्यों को भी व्यवस्थापन के कार्य में भाग लेने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है। द्वितीय, समितियों में विधेयकों पर निष्पक्षता के साथ सूक्ष्म विचार होता है, ऐसी सूक्ष्मता के साथ विचार करना संसद में कदापि सम्भव नहीं है। ततीय, समितियों द्वारा सदन का पर्याप्त समय बच जाता है। समितियां एक प्रकार से सदन की आंख, कान, हाथ और मस्तिष्क हैं। चतुर्थ, समितियों के सदस्य अपनी दलगत आस्थाओं के आधार पर मतदान नहीं करते हैं। पंचम, समितियों के सदस्यगण निर्वाध रूप से और अपनी

अन्तरात्मा के अनुसार समस्याओं के मूल्यांकन के आधार पर और दलगत निर्देश की चिन्ता किए बिना मतदान करते हैं। हरमन फाइनर के अनुसार, ''हाल में जो समितियों का प्रादुर्भाव हुआ है उसका कारण उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में व्यवस्थापन कार्य की वद्धि है। आधुनिक सरकार के कर्त्तव्यों की व्यापकता के कारण समितियों में होने वाली कार्यवाही को सदन में किए जाने में उससे अधिक समय लगेगा। समिति प्रणाली का मुख्य उद्देश्य अन्य संस्थाओं व अन्य समयों के लिए कार्य हटाकर लोकसदन के कार्यभार की अधिकता को कम करना है।'' संक्षेप में, समिति–व्यवस्था द्वारा सदन का समय बच जाता है और उसको विशेषज्ञों का परामर्श भी प्राप्त हो जाता है।

कौल तथा शकधर के अनुसार, ''संसद अपना बहुत–सा कार्य समितियों के माध्यम से करती है। इन समितियों को कार्य की कुछ ऐसी विशेष मदों को निपटाने के लिए नियुक्त किया जाता है जिसके लिए विशेषज्ञों द्वारा या ब्यौरेवार विचार करने की आवश्यकता है।''[1] भारत में समितियों की व्यवस्था मॉण्टेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों के परिणामस्वरूप शुरू हुई थी, लेकिन उन दिनों की समितियों सरकार के निर्णय तथा उसके हस्तक्षेप से स्वतन्त्र नहीं थीं। उन्हें कोई शक्तियां या विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। नए संविधान के लागू होने के बाद केन्द्रीय विधानमण्डल की स्थिति बिल्कुल बदल गई और समिति की व्यवस्था में भी बहुत अधिक परिवर्तन आया। वस्तुतः अब तो संसदीय समितियां संसद का लघुरूप ही बन गई हैं। संसद के दोनों सदनों में समिति व्यवस्था कुछ मामलों को छोड़कर एक जैसी है। न की नियुक्ति, कार्यकाल, कत्य और कार्यवाही चलाने की प्रक्रिया लगभग एकसमान है। यह प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 118(1) के अन्तर्गत दोनों सदनों द्वारा बनाए गए नियमों के उपबन्धों द्वारा विनियमित होती है।

अध्याय-10
भारतीय प्रशासन में मंत्रिमण्डल की भूमिका
(Role of Cabinet in Indian Administration)

भारत में ससंदात्मक अथवा मंत्रिमण्डलात्मक शासन प्रणाली की स्थापना की गई है। सैद्धान्तिक रूप से संविधान द्वारा सभी कार्यपालिका की शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित मानी गई हैं परन्तु यथार्थ में कार्यपालिका की शक्तियाँ मंत्रिपरिषद् में निहित होती हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74 के अनुसार, "राष्ट्रपति को उसके कार्यों को पूरा करने में सहायता तथा परामर्श देने के लिए मंत्रिपरिषद् होगी जिसका मुखिया प्रधानमंत्री होगा।" यह प्रावधान सोच–समझकर रखा गया है तथा संविधान के लचीलेपन को बनाए हुए है, अन्यथा भारतीय संविधान के व्यवहार से प्रकट होता है कि राष्ट्रपति स्वर्णिम शून्य है एवं मंत्रिमण्डल ही सक्रिय कार्यपालिका है। यद्यपि संविधान में मंत्रिमण्डल का उपबंध नहीं है, फिर भी यह भारतीय शासन व्यवस्था का प्राण है। मंत्रिमण्डल ही नीति–निर्णायक निकाय है जो न केवल सम्पूर्ण कार्यपालिका सत्ता का संचालन तथा समन्वय करता है बल्कि विधान–मण्डल में विधि–निर्माण को भी दिशा प्रदान करता है। इस तरह मंत्रिमण्डल की बहु–आयामी भूमिका है। रैम्जेम्योर के अनुसार "मंत्रिमण्डल राज्य के जहाज का परिचालक यन्त्र है।" इसी प्रकार मेरियट के शब्दों में "मंत्रिमण्डल वह धुरी है जिस पर प्रशासन चक्र घूमता है।"

भारत की मंत्रिमण्डल प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ

1. **राष्ट्रपति का मंत्रिमण्डल से अलग होना**: भारत का राष्ट्रपति केवल नाममात्र का राज्य का अध्यक्ष है। व्यावहारिक रूप से देश का शासन प्रधानमंत्री द्वारा चलाया जाता है जो इस शासन को मंत्रिमण्डल की सहायता से चलाता है। राष्ट्रपति न तो मंत्रिमण्डल की बैठकों में भाग लेता है और न ही उनकी अध्यक्षता करता है। प्रशासन सम्बन्धी सभी निर्णय मंत्रिमण्डल द्वारा लिए जाते हैं, जिनकी बैठकों की अध्यक्षता प्रधानमंत्री करता है। प्रधानमंत्री ही मंत्रिमण्डल के निर्णयों की जानकारी राष्ट्रपति को देता है। इसलिए राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल के कार्यों में शामिल नहीं होता।

2. **राजनीतिक एकरूपता**: मंत्रिमण्डल का निर्माण करते समय इसके सभी सदस्य प्रायः एक ही राजनीतिक दल से लिए जाते हैं। क्योंकि मंत्रिमण्डल राजनीतिक सजातीयता के आधार पर अच्छी तरह से कार्य कर सकता है, यदि वे सदस्य एक ही दल के न होकर संयुक्त सरकार के रूप में कार्य कर रहे होते हैं, जैसे की वर्तमान सरकार है, तो वे राष्ट्रीय नीति तथा राजनीतिक समस्याओं के बारे में प्रायः एक मत नहीं हो पाते हैं और सरकार का कार्य समय जन–कल्याण की बजाय मंत्री कल्याण में ही गुजरता है। इसलिए मंत्रिमण्डल में एकता होनी बहुत जरूरी है।

3. **सामूहिक उत्तरदायित्त्व**: भारतीय मंत्रिमण्डल की एक विशेषता सामूहिक उत्तरदायित्व भी है। इसका अभिप्रायः यह है कि यदि मंत्रिपरिषद् का कोई सदस्य कार्य करता है तो उसे समस्त मंत्रिमण्डल का कार्य समझा जाता है। किसी भी मंत्री द्वारा रखा गया प्रस्ताव या नीति सारे मंत्रिमण्डल की नीति होती है क्योंकि कोई भी मंत्री ससंद के सामने प्रस्ताव नहीं रख सकता जब तक उसे मंत्रिमण्डल स्वीकृति नहीं देता है। उदाहरण के लिए यदि किसी मंत्री के मन्त्रालय के विषय में कोई असंवैधानिक घटना घट जाए तो उस मंत्री को मंत्रिमण्डल को बनाए रखने के लिए त्याग पत्र देना पड़ता है। जैसे 1962 में चीन के आक्रमण के कारण जब देश की विदेश नीति असफल सिद्ध हुई और हमारे सहस्रों वर्ग मील क्षेत्र पर चीन ने अधिकार कर लिया तो समस्त मंत्रिमण्डल की बजाय केवल सुरक्षामंत्री कृष्ण मैनन ने त्याग पत्र दिया था।

4. **गोपनीयता**: मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था में गोपनीयता एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसके अनुसार मंत्रिमण्डल की बैठकों में होने वाले विचार विमर्श तथा निर्णयों को गुप्त रखा जाता है। प्रत्येक मंत्री को अपना पद ग्रहण करने से पहले राष्ट्रपति के सामने पद एवं गोपनीयता की शपथ इसी आधार पर लेनी पड़ती है और यह सभी मंत्रियों का संवैधानिक कत्तर्व्य है कि वे मंत्रिमण्डल द्वारा किए गए निर्णयों को गुप्त रखें। यदि कोई मंत्री इस बात का उल्लंघन करे तो उसे त्याग पत्र देना पड़ता है जैसे बजट पेश होने से पहले बाहर पता लग जाने के कारण स्वतन्त्रता के पश्चात् पहले मंत्रिमण्डल में से श्री आर० के० सांमुखन (Sh. R.K.Shanmukhan) को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा था।

5. **आन्तरिक मंत्रिमण्डल**: किसी भी देश में मंत्रिमण्डल एक बहुत महत्त्वपूर्ण संस्था है, जिसमें निर्णय लेना बहुत कठिन है, क्योंकि इसका आधार बहुत बड़ा है। इसलिए जो मंत्री व्यवहार में प्रधानमंत्री के अधिक विश्वासपात्र होते है, वह उन्हीं से अति महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विचार विमर्श करता है और यही अतिविश्वसनीय मंत्रियों की मण्डली ही आन्तरिक मंत्रिमण्डल का कार्य करती है। इस प्रथा का आरम्भ इंग्लैण्ड में युद्ध मंत्रिमण्डल (War Cabinet) के रूप में लायड जार्ज प्रथम तथा विन्स्टन चर्चिल (Vinston Churchil) द्वारा द्वितीय महायुद्ध में अति विश्वसनीय पाँच मंत्रियों की एक समिति बनाकर किया गया। इसी प्रकार से भारत में भी आरम्भ से ही इस प्रकार का आन्तरिक मंत्रिमण्डल स्थापित होता आ रहा है। पहली आन्तरिक कैबिनेट में पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा मौलाना आजाद शामिल थे। सरदार पटेल की मत्यु के बाद मौलाना आजाद आयंगर तथा रफी अहमद किदबाई पंडित नेहरू के विश्वासपात्र बने। जब श्रीमती इन्दिरा गाँधी प्रधानमंत्री बनी तो वाई० वी० चौहान, अशोक मेहता तथा दिनेश सिंह उनके विश्वासपात्र थे। बाद में यह स्थिति बदलती रही और साधारणतः गह, सुरक्षा तथा वित्त विभागों के मंत्रियों को इस संस्था में शामिल समझा जाता है। यही कारण है कि आज अटल बिहारी सरकार में श्री लाल कृष्ण आडवाणी को विश्वासपात्रता की वजह से भारत के उपप्रधानमंत्री तथा गहमंत्री का पद हासिल है।

6. **मंत्रिमण्डल तथा संसद में अनुरूपता**: मंत्रिमण्डल तथा संसद में अच्छा सम्बन्ध होना आवश्यक है क्योंकि सभी मंत्री संसद के सदस्य होते हैं और बहुमत दल के प्रभावशाली नेता होते हैं। उनका ससंद के सदस्यों तथा अपने दल पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। मंत्रिमण्डल को संवैधानिक तौर पर संसद का सेवक कहा जाता है, परन्तु व्यवहार में यह संसद पर नियन्त्रण करता है। इसलिए मंत्रिमण्डल तथा संसद पूर्ण अनुरूपता से कार्य करते हैं। लॉस्की के अनुसार, "मंत्रिमण्डल संसद का एक अंग है और इसे संसद से अलग नहीं किया जा सकता।"

7. **प्रधानमंत्री की सर्वोच्चता**: केन्द्रीय मंत्रिमण्डल प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करता है। प्रधानमंत्री का इस पर पूर्ण अधिकार होता है। संविधान में प्रधानमंत्री को समान मंत्रियों में प्रथम माना जाता है। परन्तु दिन–प्रतिदिन उसकी स्थिति अधिक प्रभावशाली होती जा रही है। उसे मंत्रिमण्डल रूपी महराब का केन्द्रीय पत्थर माना जाता है। सरकार का संगठन उस पर निर्भर करता है। दूसरे मंत्रियों की नियुक्ति उसके परामर्श के अनुसार होती है। वह चाहे तो किसी भी मंत्री को अपने मंत्रिमण्डल से हटा सकता है। कोई भी मंत्री प्रधानमंत्री की इच्छा के विरूद्ध कोई काम नहीं कर सकता। ऐसी अवस्था में उसे अपना पद त्यागना भी पड़ सकता है। या उसे, प्रधानमंत्री के विचार को मानना पड़ता है। जैसे 2 मार्च 1975 को मोहन धारिया को प्रधानमंत्री से श्री जयप्रकाश के आन्दोलन के सम्बंध में मतभेद होने के कारण अपना पद त्यागना पड़ा था। प्रधानमंत्री ही वास्तविक सरकार है। क्योंकि यदि ये अपना त्यागपत्र दे दे तो सारे मंत्रिमण्डल को त्याग पत्र देना पड़ता है। वह जिस समय चाहे मंत्रिपरिषद् का पुनर्गठन कर सकता है। वह मंत्रिमण्डल का सभापतित्त्व भी करता है। वह बैठकों को बुलाता है और उसके लिए एजैण्डा तैयार करवाता है। इतना ही नहीं वह राष्ट्रपति का प्रमुख सलाहकार भी होता है

8. **मंत्री दोनों सदनों में बैठ सकते हैं**: इंग्लैण्ड में मंत्री केवल अपने ही सदन में ही नहीं बैठ सकते अपितु वे संसद के दोनो सदनों में बैठ सकते हैं। वाद–विवाद में भाग ले सकते हैं। लेकिन वोट का प्रयोग केवल उसी सदन में कर सकते हैं जिसके सदस्य होते हैं।

9. **मंत्रिमण्डल की समितियां**: भारतीय मंत्रिमण्डल में भिन्न–भिन्न विषयों के सम्बन्ध में कई समितियाँ स्थापित की गई हैं। राजनीतिक कार्यों सम्बन्धी समिति इनमें से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समिति है। प्रत्येक विषय पर उससे सम्बन्धित समिति पहले निर्णय लेती है और उस पर फिर समस्त मंत्रिमण्डल विचार करता है।

10. **मंत्रिमण्डल संसद को भंग करवा सकता है**: जब कभी संसद और कैबिनेट में गतिरोध आ जाए अर्थात् जब कभी संसद कैबिनेट के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर दे अथवा ऐसा प्रस्ताव पास करने जा रही है अथवा जब मंत्रिमण्डल जनता का नए रूप से विश्वास प्राप्त करना चाहे तो मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप में अथवा प्रधानमंत्री व्यक्तिगत रूप में राष्ट्रपति को कहकर संसद को भंग करवा सकता है। प्रधानमंत्री द्वारा ऐसा कहे जाने पर राष्ट्रपति संसद को अवश्य भंग कर देता है। संसद को भंग करने की शक्ति के कारण आज कैबिनेट की स्थिति अत्यन्त शक्तिशाली हो गई है।

मंत्रिमण्डल के कार्य

1. **नीति निर्माण सम्बन्धित कार्य**: मंत्रिमण्डल देश की वास्तविक कार्यपालिका होती है। इसलिए यही राष्ट्रीय नीति का निर्माण करती है। सामाजिक कल्याण के कार्यों के लिए सरकार का कर्त्तव्य निश्चित करना, शान्ति की व्यवस्था बनाए रखने से सम्बन्धित विषयों पर सोच–विचार करना इसी का कार्य क्षेत्र है।

   राष्ट्रीय नीति का निर्माण करते समय मंत्रिमण्डल अपने दल के प्रोग्राम तथा सिद्धान्तों को समक्ष रखता है। व्यावहारिक रूप में राष्ट्रीय नीति की रूप रेखा बहुमत दल की कार्यकारिणी तैयार करती है। और मंत्रिमण्डल उसे विस्तत रूप में कार्यान्वित करता है। दलीय कार्यकारिणी मंत्रिमण्डल का नीति के सम्बन्ध में निर्देशन करती है। मंत्रिमण्डल इनका उल्लंघन नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त मंत्रिमण्डल द्वारा निर्धारित नीति के प्रति सभी मंत्रियों का सहमत होना आवश्यक है। यदि कोई मंत्री इससे सहमत न हो तो उसे त्यागपत्र देना पड़ता है। मंत्रिमण्डल केवल नीति का निर्माण ही नहीं करता, परन्तु इससे संसद द्वारा इसका समर्थन करना पड़ता है। यदि संसद इसका समर्थन न करे या इसमें संशोधन कर दे तो इस स्थिति में मंत्रिमण्डल को संसद की इच्छानुसार नीति में समर्थन करना पड़ता है।

2. **प्रशासकीय कार्य**: संविधान द्वारा शासन संचालन की शक्ति राष्ट्रपति में निहित की गई है। परन्तु व्यवहार में इसका प्रयोग मंत्रिमण्डल द्वारा किया जाता है। यह कार्यपालिका सम्बन्धित शक्तियों के प्रयोग का मुख्य साधन है। और प्रशासनिक कार्य का मुख्य निर्देशक है। देश के प्रशासन को चलाने के लिए उसे कई विभागों में विभक्त किया गया है। प्रत्येक मंत्री को एक या एक से अधिक विभाग दिये जा सकते हैं। वह मंत्रिपरिषद् के प्रति व्यक्तिगत रूप में तथा संसद के प्रति सामूहिक रूप में उत्तरदायी होता है। परन्तु उन पर आंतरिक नियन्त्रण मंत्रिपरिषद् का होता है।

3. **वैधानिक कार्य**: वैधानिक क्षेत्र में मंत्रिमण्डल को विशेष महत्त्व प्राप्त होता है। संसदीय प्रणाली में यद्यपि कानून बनाने का कार्य विधान पालिका का है। फिर भी दिन–प्रतिदिन इस क्षेत्र में भी "मंत्रिमण्डल का दखल इतना हो गया कि यह बिना किसी बढ़ावे के कहा जा सकता है कि आज–कल विधान निर्माण का कार्य संसद की स्वीकृति से मंत्रिमण्डल ही करता है।" संसद के अधिवेशन बुलाने का निर्णय मंत्रिमण्डल करता है। यह राष्ट्रपति द्वारा ससंद में दिया जाने वाला भाषण भी तैयार करता है। जिसमें आगामी वैधानिक कार्यों का वर्णन होता है। मंत्रिमण्डल हर विषय से सम्बन्धित बिल तैयार करता है और उसे कानून का रूप देने के लिए संसद में पेश करता है। परन्तु अधिकांश बिल मंत्रिमण्डल द्वारा ही पेश किये जाते हैं। और संसद का अधिकांश समय इन बिलों पर सोच–विचार करने और उन्हें स्वीकार करने में ही लग जाता है। मंत्री बिल के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालते हैं। और संसद सदस्यों के द्वारा पूछे गये सवालों का उत्तर देते हैं। मंत्रिमण्डल को बहुमत दल का समर्थन प्राप्त होने के कारण सभी बिल स्वीकृत हो जाते हैं। जिस समय संसद का अधिवेशन न हो रहा हो मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति के नाम पर अध्यादेश जारी करती है। जिसे संसद द्वारा पास किये गये कानूनों की भाँति लागू किया जाता है । मंत्रिपरिषद् के पास समय कम और काम अधिक होने के कारण कानून बनाते समय वह इस पर विस्तत रूप से विचार नहीं कर सकते। मंत्रिपरिषद् इन्हें केवल ढाँचे के रूप में पास करती है तथा मंत्रिमण्डल को इसमें विस्तार करने का अधिकार देती है। जो समयानुसार इसका प्रयोग करता है।

4. **विदेश नीति बनाना तथा अन्य देशों में सम्बन्धों का संचालन**: चूँकि आधुनिक युग अन्तर्राष्ट्रीयवाद का युग है। और कोई भी देश एक व्यक्ति की तरह आत्म सम्पन्न नहीं है। उसे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यक्ति की तरह ही राज्यों पर निर्भर होना पड़ता है। इसलिए विदेश नीति बनाना अति महत्त्वपूर्ण कार्य है। तथा इसके लिए मंत्रिपरिषद् सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण करती है। जैसे भारत ने गुट निरपेक्षता की नीति अपनाई है। नीति का निर्माण

करने के पश्चात् मंत्रिमण्डल इसे वास्तविक रूप देने के लिए पग उठाता हैं तथा इसका संचालन करता है। दूसरे देशों से सन्धियाँ तथा समझौते राष्ट्रपति के नाम पर मंत्रियों द्वारा ही किए जाते हैं। मंत्रिपरिषद् विदेशों में भेजे जाने वाले राजदूतों को चुनती है तथा उसके परामर्श पर राष्ट्रपति उसकी नियुक्ति करता है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति युद्ध एवं युद्ध विराम की घोषणा नहीं कर सकता। परन्तु व्यवहार में ऐसी घोषणा मंत्रिमण्डल के निर्णय अनुसार की जाती है और राष्ट्रपति केवल इसे औपचारिक रूप देता है।

5. **वित्तीय कार्य**: मंत्रिमण्डल का राष्ट्र की वित्त–व्यवस्था पर पूर्ण नियंत्रण होता है। यह देश की कुल आय और व्यय का उत्तरदायी होता है। वह देश का वार्षिक बजट तैयार करती है। तथा संसद की स्वीकृति के बाद वित्त मंत्री द्वारा संसद में पेश करवाती है। नये प्रकार के कर लगाने के सुझाव रखती है। जिस समय बजट संसद के समक्ष रखा जाता है तो प्रत्येक मंत्री अपने विभाग के लिए उत्तरदायी होता है। यदि देश में संकट उत्पन्न हो जाए तो मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति को वित्तीय संकटकाल की घोषणा करने का परामर्श देता है। यह राष्ट्रपति को वित्त आयोग गठित करने का सुझाव देता है।

6. **विभागों के कार्यों में समन्वय करना**: यह सभी विभागों की पारस्परिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करती है। तथा उनके कार्यों का समन्वय करती है। विभागों के पारस्परिक झगड़े मंत्रिमण्डल के समक्ष रखे जाते हैं। तथा उनका निर्णय करता है। यह विभिन्न विभागों का उत्तरदायित्व निश्चित करता है। तथा उनके कार्यों का निरीक्षण करता है।

7. **नियुक्तियों पर नियन्त्रण**: मंत्रिमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति राज्यों के गवर्नरों, राजदूत, अर्टोनी जनरल, नियन्त्रण व महालेखा परीक्षक संघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों, वित्तीय आयोग की नियुक्ति करता है। यहाँ तक कि सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल के परामर्श पर करता है। इसके अतिरिक्त लोक सेवाओं के कुछ उच्च पदों पर नियुक्ति भी मंत्रिमण्डल द्वारा की जाती है। जैसे केन्द्रीय मंत्रालयों के सचिवालयों के उपसचिव तथा उससे उच्च पदों पर नियुक्तियाँ मंत्रिमण्डल की नियुक्ति समिति द्वारा केन्द्रीय तथा अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारियों को पदोन्नत करके की जाती हैं।

8. **राष्ट्रपति को परामर्श देती है**: मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति का प्रमुख सलाहकार होता है। वह उसे हर समय तथा हर सहायक सलाह देता है। जिसे राष्ट्रपति को मानना ही पड़ता है।

9. **अन्य कार्य**: भारतीय मंत्रिमण्डल को कुछ ऐसे अधिकार भी प्राप्त हैं जो ब्रिटिश मंत्रिमण्डल को प्राप्त नहीं है। उदाहरण संसद के विशान्तिकाल में राष्ट्रपति के प्राधिकार के अन्तर्गत मंत्रिमण्डल को विधि निर्माण का अधिकार है। संकटकालीन स्थिति में राष्ट्रपति के अधिकार व्यावहारिक रूप में मंत्रिमण्डलें के ही अधिकार हैं। जिसके अन्तर्गत वह मौलिक अधिकारों को निलम्बित कर सकता है। तथा इसके द्वारा अन्य आवश्यक कदम उठाए जा सकते है।

अध्याय-11
प्रधानमंत्री
(Prime Minister)

भारत एक सार्वभौमिक प्रभुसत्ता सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को राष्ट्राध्यक्ष का दर्जा दिया गया है जबकि प्रधानमंत्री वास्तविक शासनाध्यक्ष बनाया गया है। सैद्धान्तिक रूप से संविधान द्वारा सभी शक्तियां राष्ट्रपति में निहित की गई है, परन्तु वास्तव में मन्त्रिपरिषद् ही सरकार की सभी शक्तियों का प्रयोग करती है अतः मन्त्रिमण्डल वह धुरी है जिस पर शासन चक्र घूमता है, और प्रधानमंत्री इस मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष होता है। इसलिए प्रधानमंत्री को राज्य रूपी जहाज का चालक कहा जाता है। वह सम्पूर्ण शासन की आधारशिला है। व्यवहार में मन्त्रिपरिषद् के अन्दर तथा बाहर सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति प्रधानमंत्री ही है। संविधान के अनुच्छेद 74 में उल्लेख है कि ''राष्ट्रपति को उसके कार्यों के सम्पादन में सहायता एवं परामर्श देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होगा।'' इसलिए भारतीय प्रधानमंत्री की सरकार तथा प्रशासन में अहम् भूमिका है।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति

संवैधानिक प्रावधान के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। जब देश में आम चुनावों द्वारा लोकसभा का गठन होता है तो लोकसभा में जिस राजनैतिक दल का बहुमत होता है उस दल के मुखिया को राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री पद पर नियुक्ति हेतु बुलाया जाता है और प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई जाती है। इस स्थिति में राष्ट्रपति को विवेक का प्रयोग करने का अवसर नहीं रहता है। राष्ट्रपति अपने विवेक व सूझबूझ का उस स्थिति में प्रयोग करता है जब लोकसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है, जो केन्द्र में स्थाई सरकार बना सके। उदाहरण के लिए सन् 1989 में जब लोकसभा में किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला तो राष्ट्रीय मोर्चे के नेता श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया था फिर 1991 में श्री पामुलपति वेंकट नरसिम्हा राव को, 1998 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी को और इसी प्रकार सन् 1999 में राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन, जिसमें 23 राजनीतिक दल शमिल थे, को लोकसभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ और गठबन्धन द्वारा दोबारा श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतत्व में केन्द्र में मिली–जुली सरकार का गठन किया गया।

प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्ति के लिए संविधान में कोई अलग योग्यता नहीं रखी गई है। वह संसद के किसी भी सदन का सदस्य हो सकता है तथा यदि नियुक्ति के समय वह संसद का सदस्य नहीं है तो छः महीने के अन्दर उसे सदस्यता ग्रहण करनी आवश्यक है, अन्यथा उस पद को रिक्त समझा जाएगा। इसलिए उसमें वे सभी योग्यताएं होनी चाहिए जो भारत के संविधान में लोकसभा का सदस्य बनने के लिए निर्धारित की गई हैं।

कार्यकाल

संविधान की धारा 75 के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है, मन्त्री राष्ट्रपति के प्रसाद–पर्यन्त अपने पद पर बने रहेंगे।'' (The Ministers shall hold office during the pleasure of the President.) लेकिन व्यवहार में स्थिति बिल्कुल भिन्न है। प्रधानमंत्री 5 वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है, लेकिन जब तक उसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त है, वह अपने पद पर बना रहेगा। अभिप्राय यह हुआ कि प्रधानमंत्री का कार्यकाल निश्चित नहीं है। लोकसभा के अविश्वास के प्रस्ताव के द्वारा, प्रधानमंत्री को हटाया जा सकता है। 10 जुलाई, 1979 को लोकसभा के विरोधी दल के नेता यशवन्त राव चह्वान ने प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के विरुद्ध अविश्वास–प्रस्ताव पेश किया। अविश्वास–प्रस्ताव पर मतदान होने से पूर्व ही प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने 15 जुलाई, 1979

को त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि जनता पार्टी के काफी सदस्यों ने जनता पार्टी को छोड़ दिया था। यह पहला अवसर था जब किसी प्रधानमंत्री को अविश्वास–प्रस्ताव के कारण त्यागपत्र देना पड़ा। 39वें संशोधन के द्वारा, जिसे अनुच्छेद 329 A को संविधान में अंकित किया गया था, उस अनुच्छेद को 44वें संशोधन द्वारा संविधान में से निकाल दिया गया है। अब प्रधानमंत्री के चुनाव–सम्बन्धी विवादों की सुनवाई उसी प्रकार की जाती है, जिस प्रकार संसद के किसी अन्य सदस्य के विरुद्ध धारा 329 के अधीन होती है। 17 अप्रैल, 1999 में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार द्वारा लोकसभा में विश्वास मत खो देने के पश्चात् अपना त्यागपत्र दे दिया गया था। अतः प्रधानमंत्री का कार्यकाल निश्चित नहीं है।

प्रधानमंत्री के कार्य एवं शक्तियाँ

इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री के बारे में श्री ग्लैडस्टोन ने कहा था, ''कहीं भी इतने छोटे पद की इतनी बड़ी छाया नहीं है।'' ("Nowhere has so small a substance cast so large shadow.") इसी प्रकार से श्री ग्रीब्स ने भी कहा था, ''उसकी शक्तियाँ एक तानाशाह जैसी दिखाई पड़ती हैं।'' ("His formal powers resemble closely to those of an autocrat.") यदि इन दोनों उक्तियों को भारत के प्रधानमंत्री पर लागू किया जाए तो बिल्कुल ठीक बैठती हैं। भारत में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसको इतनी शक्तियाँ प्राप्त हों। प्रधानमंत्री की शक्तियों और कार्यों का विवरण निम्नलिखित है–

1. **वह मन्त्रिपरिषद् का निर्माण करता है:** बहुमत दल का नेता होने के कारण राष्ट्रपति उसे प्रधानमंत्री नियुक्त करता है तथा उसे सरकार निर्माण करने के लिए निमन्त्रित करता है। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री द्वारा सुझाए गए व्यक्तियों को ही मन्त्री नियुक्त करता है। मन्त्रियों का चुनाव पूर्णतया प्रधानमंत्री की इच्छा पर निर्भर रहता है। यह ठीक है कि प्रधानमंत्री अपने दल के प्रमुख नेताओं को मन्त्री बनाने के अधिकार की उल्लंघना कम ही करता है, परन्तु अगर वह चाहे तो दल के प्रमुख नेताओं को किसी–न–किसी बहाने मन्त्रिपरिषद् की सदस्यता से वंचित कर सकता है। श्री मोरारजी देसाई ने त्यागपत्र प्रधानमंत्री की इच्छा पर ही दिया था चाहे बाहरी रूप में प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने ऐसी इच्छा प्रकट नहीं की थी।

2. **विभागों का बंटवारा:** न केवल प्रधानमंत्री मन्त्रियों को नियुक्त करता है, अपितु वह उनमें विभागों का बंटवारा भी करता है। यह निर्णय वही करता है कि कौन–सा मन्त्री किस विभाग का अध्यक्ष होगा तथा कौन–सा मन्त्री कैबिनेट मन्त्री होगा तथा कौन–सा मन्त्री राज्य मन्त्री अथवा उपमन्त्री। विभाग बांटने की शक्ति को प्रधानमंत्री की स्वेच्छाधारी शक्ति कहा जा सकता है। यह ठीक है कि उसे पार्टी के नेताओं को सन्तुष्ट रखना होता है तथा देश के प्रत्येक क्षेत्र को प्रतिनिधित्व देना होता है, परन्तु एक दढ़ तथा लोकप्रिय नेता प्रधानमंत्री के रूप में अपनी इच्छानुसार मन्त्रिपरिषद् को रूप दे सकता है।

3. **मन्त्रियों को हटाने की शक्ति:** सैद्धान्तिक रूप में मन्त्री, राष्ट्रपति के प्रसाद–पर्यन्त पद पर बने रहते हैं, परन्तु राष्ट्रपति मन्त्रियों को पद से अलग करने का निर्णय प्रधानमंत्री के कहने पर ही करता है। अतः ''व्यवहार में मन्त्री प्रधानमंत्री के प्रसाद–पर्यन्त अपने पद पर रहते हैं।'' (Theoratically the ministers hold office during the pleasure of the President but in practice, it is the pleasure of the Prime Minister during which they remain in office.") अगर प्रधानमंत्री की दष्टि में कोई मन्त्री कुशलता से कार्य नहीं कर रहा अथवा अगर वह मन्त्री प्रधानमंत्री के किसी निर्णय से सहमत नहीं है तो प्रधानमंत्री उस व्यक्ति को त्यागपत्र देने के लिए कह सकता है, जो कि उस मन्त्री को देना ही होता है, अन्यथा प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को कहकर उसे पदच्युत करवा सकता है। वास्तव में इस बात की नौबत नहीं आती। जब भी किसी मन्त्री को यह पता चल जाता है कि प्रधानमन्त्री उसे मन्त्रिपरिषद् में नही रखना चाहता तो वह स्वयं त्यागपत्र दे देता है।

   सन् 1995 में हवाला काण्ड सामने आया। उसमें राव सरकार के कई मन्त्री लिप्त थे। तत्काल प्रधानमंत्री राव ने उन सभी मन्त्रियों को मन्त्रिमण्डल से हटा दिया जो हवाला काण्ड में संलिप्त थे। इसी प्रकार पूर्व प्रधानमंत्री श्री देवेगौड़ा ने श्री तसलीमूद्दीन को मन्त्रिपरिषद् से हटाया, क्योंकि उनके विरुद्ध असामाजिक तत्वों से सम्बन्ध का आरोप था।

4. **लोकसभा का नेतत्व करता है :** इंग्लैण्ड की भांति भारत का प्रधानमंत्री लोकसभा का नेतत्व करता है। वह सदन में सरकार की नीति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घोषणाएं करता है और प्रश्नों के उत्तर देता है। वह लोकसभा में वाद–विवाद को आरम्भ करता है तथा मन्त्रियों की सदन में आलोचना से सुरक्षा करता है। वह अपने दल के सदस्यों को सचेतक

(Whips) द्वारा आदेश तथा निर्देश भेजता है तथा उन पर निगरानी और नियन्त्रण रखता है। सदन के वैधानिक कार्यों पर उसका विशेष प्रभाव होता है। वह स्पीकर के साथ मिलकर सदन का कार्य करता है तथा सदन में अनुशासन बनाए रखने के लिए स्पीकर की सहायता करता है।

5. **राष्ट्रपति तथा मन्त्रिमण्डल में कड़ी का काम करता है:** प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तथा मन्त्रिमण्डल के मध्य कड़ी का काम करता है। वह राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल के द्वारा किए गए निर्णय की सूचना देता है तथा राष्ट्रपति के विचार मन्त्रिमण्डल के समक्ष रखता है। राष्ट्रपति उसे किसी एक मन्त्री द्वारा व्यक्तिगत रूप से किए गए निर्णयों पर मन्त्रिमण्डल का निर्णय लेने के लिए कह सकता है। वह राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार होता है। यदि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के परामर्श से सहमत न हो तो भी उसे परामर्श मानना पड़ता है।

6. **कैबिनेट का नेतत्व :** प्रधानमंत्री कैबिनेट का नेता होता है। वह कैबिनेट की बैठकों की प्रधानता करता है। राष्ट्रपति कैबिनेट की कार्रवाई में भाग नहीं लेता। प्रधानमंत्री के नेतत्व में ही कैबिनेट सभी कार्य करता है। वह कैबिनेट की बैठक बुलाता है, उसमें विचार किए जाने वाले विषयों की सूची बनाता है, कैबिनेट में विभिन्न विषयों पर बहस संचालित करता है तथा अगर उचित समझे तो उन पर मतदान करवाता है। अधिकतर किसी नीति पर सहमति तभी होती है, जब उस नीति को प्रधानमंत्री की सहमति प्राप्त हो जाए। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कैबिनेट की सम्पूर्ण कार्रवाई प्रधानमंत्री की देखरेख में होती है।

7. **विभिन्न विभागों में एक कड़ी:** कैबिनेट का प्रधान होने के नाते वह एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य करता है। अतः विभिन्न विभागों में उत्पन्न होने वाली आपसी समस्याओं, झगड़ों तथा मतभेदों को इस तरह सुलझाता है, जिससे प्रशासनिक कुशलता बनी रहे। कुशल प्रशासन के लिए यह आवश्यक है कि सरकार के विभिन्न विभागों में आपसी सहयोग तथा साधनों का समन्वय हो। ऐसे उद्देश्य के लिए प्रधानमंत्री विभिन्न विभागों में कड़ी की तरह कार्य करता है। वह अन्तर्विभागीय मतभेदों को दूर करने के लिए मध्यस्थ तथा निर्णायक के रूप में भी कार्य करता है।

8. **राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार:** प्रधानमंत्री राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार है। राष्ट्रपति प्रत्येक मामले पर प्रधानमंत्री की सलाह लेता है और उसके द्वारा दी गई सलाह के अनुसार ही कार्य करता है, वह उसकी सलाह को मानने के लिए बाध्य है। राष्ट्रपति को प्रशासन के बारे में किसी भी प्रकार की सूचना प्राप्त करनी हो तो वह किसी अन्य मन्त्री से सीधा बात न करके प्रधानमंत्री से ही बात करता है तथा सूचना प्राप्त करता है।

9. **दल का नेता:** प्रधानमंत्री अपने दल का नेता होता है। दल की नीतियों तथा कार्यक्रम को तैयार करने में उसका मुख्य हाथ होता है। आम चुनाव के समय दल के उम्मीदवारों को खड़ा कर उन्हें टिकटें देना तथा उन्हें चुनाव जीतवाने में वह बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उस समय वह समस्त देश का दौरा करके जनता से उसके दल के उम्मीदवारों के पक्ष में मत देने की अपील करता है।

10. **सदन के नेता के रूप में:** दल का नेता होने के साथ–साथ वह सदन का भी नेता होता है। प्रधानमंत्री ही संसद के अधिवेशन बुलाने की तिथि निश्चित करता है। लोकसभा की कार्रवाई चलाने का उत्तरदायित्व उसी पर होता है। कौन–सा बिल कब प्रस्तुत किया जाएगा और कौन–सा बाद में, किस बिल पर कितना वाद–विवाद होगा, यदि विरोधी दल बिल पेश करना चाहता है तो उस पर वाद–विवाद कब होगा, इन सब बातों का निर्णय स्पीकर, प्रधानमंत्री और विपक्ष के नेता से सलाह करके करता है। प्रधानमंत्री ही सदन में महत्वपूर्ण नीतियों की घोषणा करता है। प्रधानमंत्री ही सरकार की नीतियों को सदन में पेश करता है यदि विरोधी दल द्वारा इन नीतियों की आलोचना की जाती है तो वह उन आलोचनाओं का उत्तर देता है। विशेषकर प्रधानमंत्री की महत्ता तब और भी बढ़ जाती है, जब वह अविश्वास के प्रस्ताव के नाजुक समय में अपने दल की रक्षा करता है।

11. **प्रधानमंत्री राष्ट्र के नेता के रूप में:** प्रधानमंत्री राष्ट्र का नेता है। सारा राष्ट्र प्रधानमंत्री की ओर अच्छे प्रशासन व पथ–प्रदर्शन के लिए निगाहें लगाए हुए होता है। साधारणतः चुनाव भी प्रधानमंत्री के नाम पर लड़े जाते हैं; जैसे सन् 1980 में इन्दिरा गाँधी ने चुनाव जीता, ऐसे ही सन् 1989 में श्री वी०पी० सिंह ने जनता को विश्वास दिलाया था कि राष्ट्र को साफ–सुथरी सरकार देंगे। इसी प्रकार सन् 1998 में लोकसभा के चुनाव में यह नारा दिया गया, 'अब की बारी अटल बिहारी' अर्थात् मतदाता दल को महत्व देते ही हैं, लेकिन साथ में इसके नेता को अधिक महत्व देते हैं।

प्रधानमंत्री का राष्ट्र के नेता के रूप में महत्व संकटकालीन समय में और भी बढ़ जाता है। सारा राष्ट्र देश के प्रधानमंत्री की ओर देखता है और जनता उसके विचारों को बड़े ध्यान से सुनती है।

12. **लोकसभा को भंग कराने का अधिकार:** इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री को यह विशेषाधिकार प्राप्त है कि वह कॉमन्स सभा को भंग कर दे और इस मामले में उसे मन्त्रिमण्डल की सलाह लेने की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार का अधिकार भारत के प्रधानमंत्री को दिया गया है। वह राष्ट्रपति को सलाह देकर लोकसभा को भंग करवा सकता है। जैसा कि सन् 1977 में राष्ट्रपति फखरुद्दीन ने प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी की सलाह पर लोकसभा को भंग किया था। इसी प्रकार चौ० चरण सिंह की सलाह पर राष्ट्रपति नीलम संजीवा रेड्डी ने भी लोकसभा को भंग किया था। सन् 1997 में पूर्व प्रधानमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल के परामर्श पर भी राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया था और उसके पश्चात् नए चुनाव करवाए गए। इसी प्रकार सन् 1999 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के मन्त्रिमण्डल के परामर्श के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया। राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री की सलाह को मानना पड़ेगा ऐसा प्रावधान संविधान की धारा 42 में किया गया है।

13. **प्रधानमंत्री और विदेश-नीति:** प्रधानमंत्री भले ही विदेशी विभाग अपने पास न रखता हो, परन्तु उसे विदेश मन्त्रालय से घनिष्ठ सम्बन्ध रखना पड़ता है। वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की नीति का स्पष्टीकरण करता है। विदेश–नीति के सभी महत्वपूर्ण विषय उसी के द्वारा निश्चित किए जाते हैं। विदेशी राज्यों में प्रधानमंत्री की विचारधारा एवं नीतियाँ मान्य होती हैं। उसी के सुझावों पर किसी राज्य को मान्यता दी जाती है, राजदूत नियुक्त किए जाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें वापिस बुलाया जाता है। राज्यों के अध्यक्षों की बैठकों में या सम्मेलनों में वह भारत का प्रतिनिधित्व करता है। शान्ति, युद्ध और सन्धि के क्षेत्र में प्रधानमंत्री की महत्वपूर्ण भूमिका रहती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ में किसी देश के प्रतिनिधि के रूप में प्रधानमंत्री ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

14. **प्रधानमंत्री राष्ट्रमण्डल के देशों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करता है:** भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य है, जिस कारण राष्ट्रमण्डल के देशों के साथ मैत्री के सम्बन्ध स्थापित करना प्रधानमंत्री का कार्य है। प्रधानमंत्री राष्ट्रमण्डल की बैठकों में भाग लेता है।

15. **प्रधानमंत्री और सुरक्षा:** राष्ट्र की सुरक्षा का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही होता है। इसका कारण उसका रक्षा विभाग पर पूरा नियन्त्रण होता है। राष्ट्र की सुरक्षा और विदेश–नीति में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है और वह दोनों ही विभागों के कार्यों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। देश की हार–जीत उसकी हार–जीत है। उदाहरण के लिए सन् 1965 के युद्ध में पाकिस्तान पर विजय का श्रेय श्री लाल बहादुर शास्त्री को मिला। प्रधानमंत्री राष्ट्र की सुरक्षा के लिए कैबिनेट से सलाह लेकर यह निर्णय करता है कि किस राष्ट्र से सन्धि की जाए, किस राष्ट्र से किस प्रकार के अस्त्र लिए जाएं और संकट के समय किस राष्ट्र की सहायता ली जाए।

16. **प्रधानमंत्री का अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण:** प्रधानमंत्री का देश की अर्थव्यवस्था पर पूरा नियन्त्रण होता है। अर्थव्यवस्था की विफलता का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री पर ही होता है। जुलाई, 1969 से लेकर जून, 1970 तक वित्त विभाग श्रीमति इन्दिरा गांधी के पास ही था। बजट का निर्माण वित्त मन्त्री प्रधानमंत्री की सलाह से ही करता है। योजना आयोग का अध्यक्ष प्रधानमंत्री ही होता है।

17 **सरकार का प्रमुख प्रवक्ता:** संसद तथा जनता के सामने मन्त्रिमण्डल की नीति और निर्णयों की घोषणा प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है। वह सभी प्रशासकीय विभागों की जानकारी रखता है और जब कभी कोई मन्त्री संकट में हो तो उसकी सहायता करके मन्त्रिमण्डल रूपी नौका को डूबने से बचाने का कार्य प्रधानमंत्री ही करता है।

18. **प्रधानमंत्री की आपातकालीन शक्तियां:** भारतीय संविधान के अन्तर्गत धारा 352, 356, 360 के द्वारा भारत के राष्ट्रपति को तीन प्रकार की संकटकालीन शक्तियाँ दी गई हैं, लेकिन वास्तविक रूप में राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार ही करता है, जैसे अक्तूबर, 1962 में चीन के आक्रमण के समय एवं 3 दिसम्बर, 1971 को पाकिस्तान के आक्रमण के समय तथा 26 जून, 1975 को आन्तरिक व्यवस्था के खराब होने पर अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री की सलाह से ही आपात्कालीन स्थिति की घोषणा की थी। इसी प्रकार अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यों में राष्ट्रपति–शासन भी प्रधानमंत्री की सलाह के अनुसार लगाया जाता है। 44वें संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति, अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत संकटकाल की घोषणा तभी कर सकता है, यदि मन्त्रिमण्डल संकटकाल की घोषणा

करने की लिखित सलाह दे। अप्रैल, 1977 को कार्यवाहक राष्ट्रपति श्री बी०डी० जत्ती ने प्रधानमंत्री की सलाह पर नौ विधानसभाओं को भंग किया।

प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व: किसी भी प्रधानमंत्री की स्थिति और भूमिका उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। महान् व्यक्तित्व का प्रधानमंत्री एक प्रभावशाली प्रधानमंत्री होता है, जिसकी भूमिका का प्रभाव शासन, दल और जनता पर पड़ता है। भारत में नेहरू, इन्दिरा गाँधी तथा राजीव गाँधी ऐसे ही प्रधानमंत्री थे। वर्तमान प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी भी ऐसे ही प्रधानमंत्री हैं। दुर्बल व्यक्तित्व के प्रधानमंत्री का राष्ट्र की गतिविधियों पर नियन्त्रण कम रहता है और वह कोई विशिष्ट छाप नहीं छोड़ पाता।

प्रधानमंत्री की स्थिति: प्रधानमंत्री की शक्तियाँ एवं कार्यों का अध्ययन करने से यह बात एकदम स्पष्ट हो जाती है कि हमारी सवैधानिक व्यवस्था में प्रधानमंत्री की स्थिति केन्द्रीय धुरी के समान है। श्री नेहरू ने स्वयं प्रधानमंत्री पद को 'सरकार की मुख्य कड़ी' की उपमा दी। 1956 ई० में श्री नेहरू ने कहा, ''मैं भारत का प्रधानमंत्री हूँ तथा प्रधानमंत्री सर्वश्रेष्ठ मन्त्री होता है। वह सरकार की नीति निर्धारित कर सकता है।'' ("I am the Prime Minister of India and the Prime Minister is Prime Minister. He can lay down the policy of the Government.") संवैधानिक तन्त्र में प्रधानमंत्री की स्थिति इतनी महत्वपूर्ण हो गई है कि कुछ लेखक तो यहाँ तक कह देते हैं, ''भारत में कैबिनेट प्रणाली के स्थान पर अब प्रधानमंत्रीय सरकार की स्थापना की गई है।'' ("The Prime Ministerial form of Government has replaced cabinet system of Government").

वास्तव में प्रधानमंत्री को संविधान के अधीन विशाल शक्तियों का स्वामी बनाया गया है तथा संवैधानिक ढांचे में उसकी स्थिति सबसे महत्वपूर्ण है। लास्की के अनुसार, ''वह ब्रिटिश प्रधानमंत्री के समान मन्त्रिपरिषद् के संगठन, जीवन और मत्यु के लिए केन्द्रीय शक्ति है। प्रत्येक मन्त्रिपरिषद् का रूप तथा आकार उसकी नीति और निर्णय पर निर्भर होता है।'' उसे सूर्य की उपमा दी जा सकती है, जिसके इर्द–गिर्द अन्य नक्षत्र चक्कर काटते हैं।

प्रधानमंत्री की तानाशाही: वास्तव में भारतीय प्रधानमंत्री के हाथ में अत्यन्त विशाल शक्तियां केन्द्रित हैं। उसकी इतनी अधिक शक्तियों को देखते हुए कुछ विचारकों ने यह मत प्रकट किया है कि प्रधानमंत्री तानाशाह बन सकता है। श्री के०टी० शाह के शब्दों में, ''संविधान प्रधानमंत्री को इतनी अधिक शक्तियाँ तथा स्थिति प्रदान करता है कि हर समय इस बात का भय बना रहता है कि यदि प्रधानमंत्री चाहे तो वह तानाशाह बन सकता है।'' ("The Constitution concentrates so much powers and influence in the hands of the Prime Minister that there is every danger to apprehend that he may become a dictator if he chooses to do so.") इसी प्रकार श्री एन० वी० गाडगिल ने भी कहा है, ''प्रधानमंत्री को इतनी अधिक शक्तियां सौंपी गई हैं कि यदि वह स्वभाव से लोकतन्त्रात्मक विचारों का न हो तो उसके तानाशाह बनने की सम्भावना हो सकती है।'' ("The Prime Minister is invested with formidable power and influence and unless he be a genuine democrate by nature, he is very likely to become a dictator").

परन्तु यह बात हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि भारतीय प्रधानमंत्री के पास विशाल शक्तियाँ तो हैं, परन्तु वह तानाशाह नहीं बन सकता। जो व्यक्ति प्रधानमंत्री के तानाशाह बन जाने की सम्भावना पर बल देते हैं, वे निश्चय ही लोकतन्त्रीय व्यवस्था में दढ़ विश्वास नहीं रखते। लोकतन्त्रीय व्यवस्था में किसी भी अधिकारी के तानाशाह बन जाने की कल्पना करना ठीक नहीं। इतिहास इस बात का गवाह है कि भारतीय प्रधानमंत्री ने अपने पद की शक्तियों का दढ़ रूप से प्रयोग तो किया, परन्तु उन्होंने कभी भी तानाशाह बनने का प्रयत्न नहीं किया।

प्रधानमंत्री की स्थिति वास्तव में उसके व्यक्तित्व पर निर्भर है। वास्तविकता तो यह है कि प्रधानमंत्री का पद बड़ा शक्तिशाली होता है, उसकी स्थिति बड़ी महान् है, परन्तु इतना होते हुए भी वह तानाशाह नहीं बन सकता। उसकी स्थिति सही अर्थों में उसकी शक्तियों के कारण नहीं, बल्कि यह उसके व्यक्तित्व (Individual Personality) पर निर्भर करती है।

देश के वास्तविक मुखिया के रूप में कार्य करते हुए किसी व्यक्ति के तानाशाह बन जाने की कल्पना करना ठीक नहीं। प्रधानमंत्री के पास विशाल शक्तियाँ हैं, परन्तु वह तानाशाह नहीं बन सकता। लोकतन्त्रीय व्यवस्था में अधिकारी होते हुए प्रधानमंत्री ऐसा बनने की सोच भी नहीं सकता, क्योंकि उसे यह पता होता है कि लोकतन्त्रीय वातावरण में तानाशाही स्थापित करने की सोचना आत्महत्या करने के समान है।

निश्चय ही प्रधानमंत्री का पद हमारी सवैधानिक व्यवस्था में सबसे अधिक शक्तिशाली है, परन्तु इसके साथ यह भी याद रखना चाहिए कि इस पद को, जो भी व्यक्ति प्राप्त करता है, उसे जनता के सामने–लोकतन्त्र में दढ़ विश्वास की परीक्षा में खरा उतरना होता है। जनता के लिए कल्याणकारी कार्य करके तथा चुनाव में जनता के सम्मुख उपस्थित होकर उसने जनता के विश्वास को प्राप्त किया होता है। जनता के विश्वास को सदा बनाए रखने का उत्तरदायित्व वह समझता है तथा उसका सदा यह प्रयत्न रहता है कि यह ऐसे ढंग से कार्य करे जिससे उसे जनता का विश्वास प्राप्त रहे। दूसरे शब्दों में, वह सदैव जनमत के अनुसार कार्य करता है।

प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व सदैव कड़ी निगरानी में रहता है। उसकी अपनी पार्टी के प्रतिद्वन्द्वी इस अवसर की खोज में रहते हैं कि कब उन्हें यह पद प्राप्त हो। प्रधानमंत्री सदैव एक तरफ तो यह प्रयत्न करता है कि उसके दल के विभिन्न गुटों के नेता संतुष्ट रहें, तो दूसरी ओर अपनी स्थिति को बनाए रखने में लगा रहता है। विरोधी पक्ष भी अधिक–से–अधिक प्रधानमंत्री के कार्यों तथा व्यक्तित्व में त्रूटियाँ खोजने के चक्कर में लगे रहते हैं, क्योंकि उन्हें पता है कि उनको सफलता प्रधानमंत्री की असफलता पर ही प्राप्त हो सकती है। प्रधानमंत्री की आलोचना करने का अर्थ है समस्त सरकार की आलोचना करना। प्रधानमंत्री भी सदैव विरोधी पक्ष से चौकन्ना रहता है। एक तरफ तो वह विरोधी पक्ष को यह विश्वास दिलाने के लिए तत्पर है तथा दूसरी ओर वह सदैव विरोधी पक्ष द्वारा की गई सरकार की प्रत्येक आलोचना का जवाब भी देता है। जेनिंग्ज के शब्दों में, ''प्रधानमंत्री के पद की स्थिति उसी प्रकार बन जाती है, जैसे उस पद पर कार्य करने वाला व्यक्ति उसको बनाना चाहे।''

अभी तक भारत में वर्तमान प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी सहित 13 प्रधानमंत्री हुए हैं। 1950 में जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने थे जो उन्हें महात्मा गांधी के उत्तराधिकारी के रूप में यह पद मिला था। कांग्रेस संगठन तथा संसदीय दल में उनकी स्थिति अचुनौतीपूर्ण थी। इसलिए 1952, 1957 और 1962 के चुनावों में कांग्रेस दल का नेता होने के कारण उन्हे यह पद बार–बार मिला। उनकी मत्यु के पश्चात् प्रधानमन्त्री पद की रिक्तता को जल्दी भरने के लिए राष्ट्रपति ने उसे समय के वरिष्ठतम मन्त्री गुलजारी लाल नन्दा को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया, और नेततव की लड़ाई लाल बाहदुर शास्त्री और मोरारजी देशाई के बीच थी। इस प्रकार कांग्रेस हाईकमान के अनुसार आम सहमति शास्त्री जी के पक्ष में हाने के कारण वे कांग्रेस संसदीय दल के नेता चुने गए और प्रधानमन्त्री बने। जनवरी 1966 में शास्त्री जी के निधन के बाद उत्तराधिकार के लिए संघर्ष पुनः शुरू हुआ। पहले की तरह गुलजारीलाल नन्दा को फिर प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। इसके बाद 24 जनवरी, 1966 से 24 मार्च, 1977 तक श्रीमति इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री बनी और सबसे अधिक प्रभावशाली और शक्तिशाली प्रधानमंत्री सिद्ध हुई। दिसम्बर, 1970 और, जनवरी 1977 तथा 1979 में राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री के लोकसभा को भंग करने के परामर्श को स्वीकार करने के कारण प्रधानमन्त्री की स्थिति और भी मजबूत हुई।

मार्च 1977 के छठें लोकसभा चुनाव में नवीन दल, जनता पार्टी को लोकसभा में शानदार सफलता प्राप्त हुई, परन्तु जनता पार्टी विभिन्न राजनीतिक दलों से मिलकर बनी थी। इसलिए आमसहमति के लिए जननायक जयप्रकाश नारायण तथा जे०बी० कपलानी जैसे आदरणीय राष्ट्रीय नेताओं ने मोरारजी देसाई को लोकसभा में संसदीय दल का नेता चुना और इस प्रकार पहली बार गैर–कांग्रेसी नेता प्रधानमंत्री बने। 1977-80 में अल्पमत सरकार के प्रधानमंत्री चरणसिंह की सिफारिश पर भारत में पुनः आम चुनाव हुए और इन्दिरा गांधी दोबारा प्रधानमंत्री बनी राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने 31 अक्तूबर, 1984 को श्रीमति गांधी की निर्मम हत्या के बाद उनके पुत्र राजीव गांधी को प्रधानमंत्री बनाया और उन्होंने 2 दिसम्बर 1989 तक सक्रिय, लोकप्रिय तथा सफल प्रधानमंत्री के रूप में कार्य किया। 1989 के चुनाव में किसी दल को पूर्ण बहुमत न मिलने के कारण राजीव गांधी ने सरकार बनाने के निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। ऐसी स्थिति में एक नया प्रयोग किया गया जिसके द्वारा वी०पी० सिंह ने अल्पमत जनता दल के नेता के रूप में सरकार बनाई और यह अव्यवहारिक प्रयोग वी०पी० सिंह के द्वारा त्यागपत्र देने के कारण केवल 11 महीने तक चला। इसके बाद जो प्रयोग किया गया वह अकल्पनीय और हास्यासपद होने के साथ संसदीय प्रणाली के नाम पर एक कलंक था। जिसके अन्तर्गत चन्द्रशेखर द्वारा नवगठित समाजवादी जनता पार्टी (मात्र 54 सासंद) ने सरकार बनाई और 7 महीने तक चली और फिर राष्ट्रपति ने चुनावों की घोषणा कर दी। 1991 के चुनाव में कांग्रेस पार्टी बड़े दल के रूप में उभरी परन्तु पूर्ण बहुमत नहीं मिला और इसी बीच 21 मई, 1991 को कांग्रेस के वरिष्ठ नेता पी०वी० नरसिंहराव को प्रधानमंत्री बनाया गया। उनकी सरकार ने पूरे पांच साल तक काम किया। 1996 में किसी भी दल को बहुमत न मिलने के कारण भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े दल के रूप में उभरने पर श्री अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री पद की शपथ

दिलाई गई। यह सरकार मात्र 13 दिन चली और सरकार ने बिना विश्वास मत प्राप्त किए त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद 13 दलों के गठबन्धन सयुंक्त मोर्चा की सरकार देवगौड़ा के नेतत्व में बनी। यह सरकार 1 जून, 1996 से 21 अप्रैल 1977 तक चली। इसके बाद पुनः सयुंक्त मोर्चा के नेता इन्द्रकुमार गुजराल के नेतत्व में 21 अप्रैल से 19 मार्च, 1998 तक सरकार चली। फिर 19 मार्च 1998 को अटल बिहारी वाजपेयी ने दोबारा प्रधानमंत्री पद ग्रहण किया। इसके बाद तेहरवीं लोकसभा (1999) के चुनाव में राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन को पहले की अपेक्षा अधिक सीटें मिली और श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने तीसरी बार 13 अक्तूबर, 1999 को प्रधानमंत्री पद की शपथ ली और यही सरकार आज भी कार्यरत है।

सांराशतः भारत में प्रधानमंत्री, कैबिनेट रूपी महल की आधार की आधारशिला होता है। यद्यपि संसदीय लोकतन्त्र में प्रधानमंत्री पद की स्थिति अत्यन्त सदढ़ तथा कभी–कभी निरंकुश दिखाई देती है किन्तु भारत में राजनीतिक अस्थिरता तथा गठबन्धन सरकारों के कारण प्रधानमंत्री का पद पूर्व की भांति अब अत्यधिक शक्ति सम्पन्न नहीं रह गया है। प्रधानमंत्री द्वारा सरकार बनाए रखने के लिए अब बार–बार मन्त्रिमण्डल में फेर–बदल करने पड़ते है जैसे अटल बिहारी सरकार ने 24 मई 2003 में ग्यारहवां फेर–बदल किया और कई मन्त्रियों को बाहर और कईयों को मन्त्रिमण्डल में शामिल किया जैसे अजीत सिंह को कषि मन्त्रालय से बाहर कर राजनाथ सिंह को कषि मन्त्रालय सौंपा गया।

अध्याय-12
केन्द्र-राज्य सम्बन्ध
(Centre-State Relations)

संघीय संविधान, राष्ट्रीय प्रभुता तथा राज्य प्रभुता के बीच, जो कि ऊपरी दष्टि से विरोधी जान पड़ती है, सामंजस्य पैदा करने का प्रयत्न करता है। संविधान के अन्तरंग में ही कुछ ऐसे उपबन्ध होते हैं जो सामंजस्य के तौर–तरीकों पर प्रकाश डालते हैं। केन्द्र एवं राज्यों की सरकारों के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना करने वाली संघ प्रणाली को 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी जाती है। इस व्यवस्था में संघीय सरकार शक्तिशाली तो होती है, किन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्रों में कमजोर नहीं होती, साथ ही, दोनों ही सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता इस व्यवस्था का मुख्य लक्षण होता है। संघवाद का बुनियादी तत्त्व है – शक्तियों का विभाजन। सहयोगी संघवाद में शक्तियों के विभाजन के उपरान्त भी केन्द्र एवं राज्यों के बीच अन्तःक्षेत्रीय सहयोग पर बल दिया जाता है। यह सहयोग केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकारों के बीच ही नहीं अपितु विभिन्न प्रादेशिक सरकारों एवं असंख्य राजनीतिक संरचनाओं के मध्य भी दिखलाई देता है।

वस्तुतः कोई भी संघीय शासन प्रणाली वाला देश आज यह दावा नहीं कर सकता कि वह केन्द्र–राज्य मतभेदों की समस्या से पूर्णतया उन्मुक्त है। यथार्थ में संघ व्यवस्था, जिसका आधार परस्पर सामंजस्यपूर्ण हिस्सेदारी की भावना है, को तनावों का संस्थाकरण (Institutionalised tensions) करने वाली व्यवस्था भी कहा जा सकता है।

अमेरीका के संविधान के विपरीत, जिसमें केवल केन्द्र सरकार की शक्तियों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है कि अवशेष शक्तियाँ राज्यों को दी गई हैं, भारत के संविधान में केन्द्र तथा राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण की एक अधिक निश्चित सुस्पष्ट योजना अपनाई है।

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की विशेषताएँ
(Features of Centre State Relations)

संविधान द्वारा प्रस्तुत केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का विश्लेषण करने से निम्न तथ्य उभरते हैं।

1. **शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार** – संविधान–निर्माताओं ने केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बनाया है। वह किसी भी सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। वह अवशिष्ट शक्तियों का उपभोग कर सकती है और राज्यपालों द्वारा राज्यों पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है। उसकी आय के साधन अधिक हैं और वह राज्यों को ऋण भी दे सकती है।
2. **राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं के समतुल्य** – संघ एवं राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण इस प्रकार किया गया है कि राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं के समतुल्य हो गई है। जिस प्रकार नगरपालिकाएँ राज्य सरकारों पर पूर्णतः निर्भर है, उसी प्रकार राज्य सरकारें भी सभी क्षेत्रों में संघ सरकार पर निर्भर है।
3. **सहयोगी संघवाद** – ग्रेनविल ऑस्टिन के अनुसार, "भारत की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संविधान सभा ने एक विशिष्ट प्रकार के संघवाद को जन्म दिया है" जिसे ए.एच.वर्च ने 'सहयोगी संघवाद' की संज्ञा दी है। इस व्यवस्था में संघीय सरकार शक्तिशाली होती है, किन्तु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्रों में कमजोर नहीं होतीं, साथ ही दोनों ही सरकारों की एक–दूसरे पर निर्भरता इस व्यवस्था का मुख्य लक्षण होता है।
4. **भारतीय संघ की आत्मा एकात्मक** – राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की उद्घोषणा किए जाने पर राज्यों की स्वायत्तता को स्थगित किया जा सकता है और इस दिशा में राष्ट्रपति राज्य का सारा कामकाज अपने प्रतिनिधि राज्यपाल के माध्यम से चला सकता है। केन्द्र की शक्तियाँ आपातकाल में ही नहीं अपितु सामान्यकाल में भी बढ़ाई जा सकती हैं, अतः भारतीय संघ की आत्मा एकात्मक कही जा सकती है।

संविधान के आधार पर संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. केन्द्र तथा राज्यों के विधायी सम्बन्ध।
2. केन्द्र तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध।
3. केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध।

केन्द्र-राज्य विधायी सम्बन्ध
(Legislative Relations)

संघ व राज्यों के विधायी सम्बन्धों का संचालन उन तीन सूचियों के आधार पर होता है जिन्हें संघ सूची (Union List), राज्य सूची (State List) व समवर्ती सूची (Concurrent List) का नाम दिया गया है। इन सूचियों को सातवीं अनुसूची में रखा गया है।

संघ सूची (Union List) – इस सूची में राष्ट्रीय महत्त्व के ऐसे विषयों को रखा गया है जिनके सम्बन्ध में सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की नीति का अनुकरण आवश्यक कहा जा सकता है इस सूची के सभी विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार संघीय संसद को प्राप्त है। इस सूची में कुल 97 विषय हैं जिनमें कुछ प्रमुख यह हैं – रक्षा, विदेशिक मामले, युद्ध व सन्धि, देशीयकरण व नागरिकता, विदेशियों का आना–जाना, रेलें, बन्दरगाह, हवाई मार्ग, डाक, तार, टेलीफोन व बेतार, मुद्रा निर्माण, बैंक, बीमा खानें व खनिज आदि।

राज्य सूची (State List) – इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं जो क्षेत्रीय महत्त्व के हैं। इस सूची के विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार सामान्यतया राज्यों की व्यवस्थापिकाओं को ही प्राप्त है। मूल संविधान के अनुसार इस सूची में 66 विषय थे, लेकिन 42 वें संवैधानिक संशोधन (1976) से इस सूची के चार विषय शिक्षा, वन, जंगली जानवरों और पक्षियों की रक्षा तथा नाप–तोल, राज्य सूची से समवर्ती सूची में कर दिए गए हैं। राज्य सूची के कुछ प्रमुख विषय हैं : पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई और सड़कें, आदि।

समवर्ती सूची (Concurrent List) — इस सूची में साधारणतया वे विषय रखे गए हैं जिनका महत्व क्षेत्रीय व संघीय दोनों ही दष्टियों से है। इस सूची के विषयों पर संघ तथा राज्य – दोनों को ही विधियाँ बनाने का अधिकार प्राप्त है। यदि इस सूची के विषय पर संघीय तथा राज्य व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून परस्पर विरोधी हो, तो सामान्यतः संघ का कानून मान्य होगा। इस सूची में कुल 47 विषय हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं – फौजदारी विषय तथा प्रक्रिया, निवारक निरोध, विवाह और विवाह–विच्छेद, दत्तक और उत्तराधिकार, कारखाने, श्रमिक संघ, औद्योगिक विवाद, आर्थिक और सामाजिक योजना, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, पुनर्वास और पुरातत्त्व आदि।

अवशेष विषय (Residuary Subjects) — संयुक्त राज्य अमरीका, स्विट्जरलैण्ड और आस्ट्रेलिया में अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण का अधिकार इकाइयों को प्रदान किया गया है, लेकिन भारतीय संघ में कनाडा के संघ की तरह अवशेष विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण की शक्ति संघीय संसद को प्रदान की गई है।

राज्य सूची के विषयों पर संसद की व्यवस्थापन शक्ति
(Parliament can Legislate on the Subjects of State List)

सामान्यता संविधान द्वारा किए गए इस शक्ति–विभाजन का उल्लंघन किसी भी सत्ता द्वारा नहीं किया जा सकता। संसद द्वारा राज्य सूची के किसी विषय पर और किसी राज्य की व्यवस्थापिका द्वारा संघीय सूची के किसी विषय पर निर्मित कानून अवैध होगा, लेकिन संसद के द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता हेतु राज्य सूची के विषयों पर भी कानूनों का निर्माण किया जा सकता है। संसद को इस प्रकार की शक्ति प्रदान करने वाले संविधान के कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं:

(i) **राज्य सूची का विषय राष्ट्रीय महत्त्व का होने पर** – संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार, यदि राज्य सभा अपने दो–तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है कि राज्य सूची में निहित कोई विषय राष्ट्रीय महत्त्व का हो गया है, तो संसद को उस विषय पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसकी मान्यता केवल एक वर्ष तक रहती

है। राज्यसभा द्वारा प्रस्ताव पुनः स्वीकृत करने पर इसकी अवधि में एक वर्ष की वद्धि और हो जाएगी। इसकी अवधि समाप्त हो जाने के उपरान्त यह 6 माह तक प्रयोग में आ सकता है।

(ii) **राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा इच्छा प्रकट करने पर** – अनुच्छेद 252 के अनुसार, यदि दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पास कर यह इच्छा व्यक्त करते हैं कि राज्य सूची के किन्ही विषयों पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाए, तो उन राज्यों के लिए उन विषयों पर अधिनियम बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाता है। राज्यों के विधानमण्डल न तो उन्हें संशोधित कर सकते हैं और न ही इन्हें पूर्णरूप से समाप्त कर सकते हैं।

(iii) **संकटकालीन घोषणा होने पर (अनुच्छेद 250)** – संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्य की समस्त विधायिका शक्ति पर भारतीय संसद का अधिकार हो जाता है। इस घोषणा की समाप्ति के 6 माह बाद तक संसद द्वारा निर्मित कानून पूर्ववत् चलते रहेंगे।

(iv) **विदेशी राज्यों से हुई सन्धियों के पालन हेतु (अनुच्छेद 253)** – यदि संघ सरकार ने विदेशी राज्यों से किसी प्रकार की सन्धि की है अथवा उनके सहयोग के आधार पर किसी नवीन योजना का निर्माण किया है, तो इस सन्धि के पालन हेतु संघ सरकार को सम्पूर्ण भारत के सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत पूर्णतया हस्तक्षेप और व्यवस्था करने का अधिकार होगा। इस प्रकार इस स्थिति में भी संसद को राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(v) **राज्य में संवैधानिक व्यवस्था भंग होने पर (अनुच्छेद 356)** – यदि किसी राज्य में संवैधानिक संकट उत्पन्न हो जाए या संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए तो राष्ट्रपति राज्य विधानमण्डल के समस्त अधिकार भारतीय संसद को प्रदान कर सकता है।

(vi) **कुछ विधेयकों को प्रस्तावित करने और कुछ की अन्तिम स्वीकृति के लिए केन्द्र का अनुमोदन आवश्यक** – उपर्युक्त परिस्थितियों में तो संसद द्वारा राज्य सूची के विषयों पर कानूनों का निर्माण किया जा सकता है, इसके अतिरिक्त भी राज्य व्यवस्थापिकाओं की राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति सीमित है। अनुच्छेद 304 (ख) के अनुसार कुछ विधेयक ऐसे होते हैं, जिनको राज्य विधानमण्डल में प्रस्तावित किए जाने से पूर्व राष्ट्रपति की पूर्व–स्वीकृति की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, वे विधेयक, जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दष्टि से उस राज्य के अन्दर या उसके बाहर, वाणिज्य या मेल–जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने हों।

अनुच्छेद 31(ग) के अनुसार, राज्य सूची के ही कुछ विषयों पर राज्यों की व्यवस्थापिकाओं द्वारा पारित विधेयक उस दशा में अमान्य होंगे, यदि उन्हें राष्ट्रपति ने विचारार्थ रोक रखा हो और उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति न प्राप्त कर ली गई हो। उदाहरण के लिए, किसी राज्य द्वारा सम्पत्ति के अधिग्रहण के लिए बनाए गए कानूनों का समवर्ती सूची के विषयों के बारे में ऐसे कानूनों, जो संसद में उससे पहले बनाए गए कानूनों के प्रतिकूल हों या उन पर जिनके द्वारा ऐसी वस्तुओं की खरीद और बिक्री पर लगाया जाने वाला कर हो, जिन्हें संसद ने समाज के जीवन के लिए आवश्यक घोषित कर दिया है, राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल किसी भी विधेयक के बारे में अपनी सहमति देने से इन्कार कर सकता है और उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति बिना कोई कारण बताए विधयकों को अस्वीकृत कर सकता है। सन् 1959 में केरल के राज्यपाल ने केरल कृषि भूमि सम्बन्धी विधेयकों को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा। इसी बीच अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत आपातकाल की घोषणा द्वारा राज्य विधानसभा को भंग कर दिया गया। नए चुनावों के बाद बनी विधानसभा ने राष्ट्रपति द्वारा किए गए सुझावों को शामिल कर कानून को सन् 1961 में पास कर दिया।

केन्द्र के द्वारा इन संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर व्यवहार में भी अपने आपको शक्तिशाली बनाने का कार्य किया गया है। उदाहरण के लिए 1954 में ततीय संशोधन के आधार पर समवर्ती सूची के विषयों में वद्धि की गई, जिससे कि खाद्यान्न के अभाव में उत्पन्न स्थिति का सामना करने के लिए केन्द्रीय सरकार आवश्यक कदम उठा सके।

राज्य सूची के विषयों पर केन्द्रीय हस्तक्षेप – राज्यों द्वारा यह भी शिकायत की गई है कि केन्द्र उद्योग, व्यापार एवं वणिज्य जैसे विषयों पर कानून बनाने लग गया है, जबकि ये विषय राज्य सूची में उल्लिखित हैं। सन् 1951 में संसद ने 'उद्योग विकास एवं नियन्त्रण अधिनियम' पारित किया, जिसमें उन उद्योगों का उल्लेख किया गया जिनको जनहित में केन्द्र द्वारा नियन्त्रित

करना आवश्यक था। धीरे–धीरे अनेक उद्योगों को इस अधिनियम के अन्तर्गत ले लिया गया। इस प्रकार राज्य–सूची में वर्णित 24, 26, तथा 27 संख्या वाले विषयों पर केन्द्र का अधिकार स्थापित हो गया। यही नहीं, रेजर पत्ती, कागज, गोंद, जूते, माचिस, साबुन, आदि विषयों पर भी केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया। राज्य के नेताओं का कहना है कि इस प्रकार के अत्यधिक केन्द्रीयकरण से राज्यों का आर्थिक विकास अवरुद्ध हो गया है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में साधारणतया संघीय संसद तथा राज्यों की व्यवस्थापिकाओं के कार्यक्षेत्र संविधान द्वारा विभाजित हैं, लेकिन विशेष परिस्थितियों में संघ सरकार द्वारा सरकार के कार्यक्षेत्र का अतिक्रमण किया जा सकता है। के.वी.राव ने ठीक ही कहा है कि "राज्य सूची में दिए गए विषय कितने महत्त्वहीन, कितने संदिग्ध और अस्पष्ट हैं।" पायली के अनुसार "विधायी सत्ता के वितरण की सूची योजना से निःसन्देह केन्द्रीयकरण की एक प्रबल प्रवत्ति प्रकट होती है।" डॉ. महादेवप्रसाद शर्मा ने लिखा है कि "जब राज्यों के सिर पर संघ का भय सर्वदा विद्यमान रहता है तो उनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वे पूर्ण विश्वास के साथ अपने अधिकारों की माँग दढ़तापूर्वक करेंगे।" अमर नन्दी ने लिखा है कि "विशाल मूर्ति की भांति केन्द्र ही सारे रंगमंच पर छाया रहता है।"

प्रशासनिक सम्बन्ध
(Administrative Relations)

संघात्मक शासन की सबसे कठिन समस्या संघ तथा राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्धों का समायोजन करना है। यदि संविधान में तत्सम्बन्धी स्पष्ट तथ्य उपलब्ध न हों तो दोनों को अपना दायित्त्व निभाने में कठिनाई का अनुभव होता है। इसलिए भारतीय संविधान निर्माताओं ने इस सम्बन्ध में विस्तत उपबन्धों की आवश्यकता अनुभव की ताकि प्रशासनिक क्षेत्र में संघ तथा राज्यों के मध्य किसी प्रकार के विवाद उत्पन्न न हों।

प्रशासनिक सम्बन्ध : संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में
(Administrative Relations : Constitutional Aspect)

भारतीय संविधान में ग्यारहवें भाग के दूसरे अध्याय में केन्द्र तथा राज्यों के बीच प्रशासनिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है। संविधान के अनुच्छेद 73 के अनुसार केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति उन विषयों तक सीमित है जिन पर संसद को विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त है। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 162 के अनुसार, राज्यों की प्रशासनिक शक्तियाँ उन विषयों तक सीमित हैं जिन पर राज्य विधानसभाओं को कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों के सम्बन्ध में प्रशासनिक अधिकार साधारणतया राज्यों में निहित हैं किन्तु इन विषयों पर राज्य की प्रशासनिक शक्तियाँ उन विषयों तक सीमित हैं जिन पर राज्य विधानसभाओं को कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों के सम्बन्ध में प्रशासनिक अधिकार साधारणतया राज्यों में निहित हैं किन्तु इन विषयों पर राज्य की प्रशासनिक शक्तियों को संघ की ऐसी प्रशासनिक शक्तियों द्वारा सीमित रखा गया है जो या तो संविधान द्वारा या संसदीय विधि द्वारा प्रदत्त हैं।

प्रशासनिक सम्बन्धों में केन्द्र को राज्यों के ऊपर नियन्त्रण रखने का अधिकार प्रदान किया गया है, किन्तु इसके बावजूद राज्यों को स्वायत्तता एवं जिम्मेदारी का बड़ा क्षेत्र मिला हुआ है। फिर भी, कुछ विद्धानों को महसूस होता है कि इन सम्बन्धों ने राज्यों की स्वायत्तता को कम किया है क्योंकि एक ही दल का बोलबाला है और "राज्यों के मुकाबले एक अत्यन्त शक्तिशाली संस्था के रूप में केन्द्रीय कार्यपालिका का उदय हुआ है तथा केन्द्र को अधिक अधिकार मिल गए हैं।"

राज्यों के ऊपर संघीय नियन्त्रण की विधियाँ – संविधान के अन्तर्गत केन्द्र–राज्य प्रशासनिक सम्बन्धों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय एकता की दष्टि से संघीय सरकार को राज्यों के सम्बन्ध में कतिपय प्रशासनिक शक्तियां प्राप्त हैं जो निम्नवत् हैं।

(1) **राज्यों का दायित्त्व (Obligation of the States)** – संविधान के अनुसार राज्यों को अपनी कार्यपालिका शक्ति का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए जिससे संसद द्वारा निर्मित कानूनों का पालन होता रहे। हर राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह संसद के कानूनों को अमल में लाने के लिए हर संभव उपाय काम में लाए। राज्यों का यह भी दायित्व है कि वे केन्द्रीय प्रशासन में कोई बाधा उत्पन्न न होने दें।

(2) **केन्द्र सरकार राज्यों को निर्देश दे सकती है (The Centre may given directions to the States)** — केन्द्र को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्यों को यह निर्देश दे सके कि उन्हें अपनी कार्यकारी शक्ति का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए। राष्ट्रीय व सैनिक महत्व के मार्गों व पुलों आदि का निर्माण साधारणतया केन्द्रीय सरकार ही करती है, परन्तु केन्द्र को यह अधिकार प्राप्त है कि इस प्रकार के मार्गों के निर्माण व उनके उचित रख–रखाव के लिए वह राज्यों को आवश्यक निर्देश दे सके। इसी प्रकार रेलमार्गों तथा रेलगाड़ियों की सुरक्षा के लिए भी निर्देश जारी किए जा सकते हैं।

(3) **केन्द्र राज्यों की सरकारों का उपयोग अपने एजेण्ट के रूप में कर सकता है (The Union may Constitute States as its Agents)** — राष्ट्रपति राज्यों की सरकारों अथवा उसके पदाधिकारियों को अपने एजेण्ट के रूप में कोई भी कार्य करने की जिम्मेदारी सौंप सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि संघ सूची में दिए गए किसी भी विषय से सम्बन्धित कोई भी कार्य राज्यों के पदाधिकारियों को सौंपा जा सकता है।

(4) **सरकारी कृत्यों, अभिलेखों और न्यायिक कार्यवाही को पूरी मान्यता दी जाएगी (Full faith shall be given to Public Acts, Records and Judicial Proceedings)** — केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार दोनों का यह कर्त्तव्य है कि वे सभी सरकारी कृत्यों का आदर करें और देश के सभी न्यायालयों द्वारा दिए गए अन्तिम निर्णयों को लागू करें।

(5) **दो या अधिक राज्यों में बहने वाले जलाशयों व नदियों के जल का बंटवारा (Waters of Inter-State rivers)** — संसद को यह अधिकार है कि अन्तर्राज्यीय नदियों के बंटवारे से उत्पन्न विचार को निपटाने के लिए वह उचित कानून बनाए। संसद किसी भी नदी या नदी–घाटी परियोजना के पानी के इस्तेमाल, वितरण या नियन्त्रण–सम्बन्धी विवाद के सिलसिले में मध्यस्थता की व्यवस्था कर सकती है। संसद, सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय को इस प्रकार के विवादों पर विचार करने से रोक सकती है। यह एक महत्त्वपूर्ण अधिकार है और इसका इस्तेमाल कृषि एवं औद्योगिक विकास के लिए पानी और बिजली जैसी सुविधा की व्यवस्था के लिए किया जा सकता है। साथ ही इसका उपयोग दामोदर घाटी निगम जैसी बहु–उद्देश्यीय परियोजनाओं के लिए किया जा सकता है।

(6) **अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना (Establishment of an Inter-State Council)** —संविधान राष्ट्रपति को अधिकार देता है कि वह एक अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना करे जिसके निम्नलिखित तीन विशेष कार्य होगें:

(i) राज्यों के बीच उठ खड़े होने वाले विवादों की जांच करना तथा उनके सम्बन्ध में सलाह देना।

(ii) उन विषयों पर छानबीन कर विचार करना जिनमें राज्यों की एकसमान दिलचस्पी हो।

(iii) इन विषयों, और विशेषकर इनसे सम्बन्धित नीति एवं कार्य के बेहतर समन्वय के सम्बन्ध में सिफारिशें करना।

राष्ट्रपति इस परिषद् के संगठन और प्रक्रिया को निर्धारित एवं इसके कर्त्तव्यों को परिभाषित कर सकता है।

(7) **अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services)** — संघ द्वारा राज्यों को नियन्त्रित करने का एक महत्वपूर्ण तरीका है अखिल भारतीय सेवाएँ। यद्यपि राज्यों और केन्द्र की पथक् सेवाएँ और लोक सेवा आयोग है, फिर भी संविधान अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना के लिए संघ को अधिकार देता है। संघ को इन सेवाओं के सदस्यों को राज्यों के महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर रखने का अधिकार होता है।

(8) **राज्यपाल (Governor)** — राज्यों के राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं और एक प्रकार से वे राज्यों में केन्द्र के एजेण्ट के नाते कार्य करते हैं। उनके माध्यम से केन्द्रीय सरकार राज्यों के शासन पर अंकुश रख सकती है।

(9) **संघ द्वारा दिए गए निर्देशों का अनुपालन करने में या उनको प्रभावी करने में असफलता का प्रभाव (Effect of failure to comply with or to given effect to directions given by the union)** — संविधान के अनुच्छेद 365 के अनुसार यदि राज्य की सरकार केन्द्र के निर्देशों का पालन न करे तो राष्ट्रपति यह उद्घोषणा कर सकता है कि राज्य का संवैधानिक ढाँचा विफल हो गया है। इस घोषणा का परिणाम यह होगा कि राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाएगा।

राज्यों की स्वायत्तता में कमी – संक्षेप में, संविधान केन्द्रीय कार्यपालिका के प्राबल्य का प्रावधान करता है। हक्की और शर्मा की दलील है कि संघीय प्रशासनिक सम्बन्धों की क्रिया के कारण राज्यों की स्वायत्तता में इतनी कमी आ गई है कि संघीय राज्यतंत्र के सहकारी स्वरूप पर आघात पहुंचा है।

केन्द्र-राज्य विवादास्पद क्षेत्र : कतिपय प्रशासनिक मामले
(Centre-State Areas of Conflict : Administrative Aspects)

अपने प्रारम्भिक वर्षों में भारतीय संघ व्यवस्था की प्रमुख विशेषता थी – केन्द्र राज्य सहयोग। ज्यों–ज्यों संविधान और संघ प्रणाली प्रौढ़ होती गई त्यों–त्यों उसमें दरारें दिखने लगीं और आज अनेक ऐसे मुद्दे प्रशासनिक तौर से दिखाई देते हैं जहां केन्द्र और राज्यों में मतभेद की झलक मिलती है।

चतुर्थ आम चुनाव (1967) में पूर्व 'नेहरू युग' में केन्द्र और राज्यों के सम्बन्ध 'मधुर' कहे जा सकते हैं। इस कालावधि में देश के राजनीतिक क्षितिज पर कांग्रेस दल का एकाधिकार था और केन्द्र व राज्यों के बीच संघर्षपूर्ण स्थिति उत्पन्न नहीं हुई। केन्द्र–राज्य विवाद को 'कांग्रेस दल के अंतरंग' का मामला (Intra-party Affair) समझा जाता था और उसका निराकरण उसी प्रकार खोज जाता था जैसे किसी पारिवारिक विवाद का हल खोजते हैं। नेहरू जैसे करिश्माती व्यक्तित्व के आगे तो छोटे–मोटे विवादों का हल खोजना कोई मुश्किल भी नहीं था। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उस युग में मतभेद के कोई मुद्दे नहीं होते थे। हम सभी जानते हैं कि राज्यों के कतिपय शक्तिशाली मुख्यमंत्री तो कभी–कभी दबाव की भाषा में ही बात करते थे। पश्चिमी बंगाल में तात्कालिक मुख्यमंत्री डॉ. बी.सी.राय ने 'दामोदर घाटी कॉरपोरेशन' (डी.वी.सी.) के मामले पर कितना दबावपूर्ण और उग्र रूख अपनाया था? भारत में पनपी 'कांग्रेस–व्यवस्था' (Congress System) अथवा 'एक–दल प्रधान व्यवस्था' की विशेषता थी 'परामर्श और सर्वानुमति की विधि' (Consultation-Consensus Technique) और इस विधि के माध्यम से मतभेदों को उग्र रूप धारण नहीं करने दिया जाता था। डॉ. इकबाल नारायण के शब्दों में, ऐसा लगता है मानो संघ व्यवस्था एकात्मक दलीय ढाँचे के अन्तर्गत कार्यरत थी और यह आश्चर्य की ही बात है कि इसने संघ व्यवस्था के विकास का मार्ग अवरुद्ध नहीं किया।

चतुर्थ आम चुनावों के बाद (और छठी, आठवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं एवं तेहरवीं लोकसभा एवं उसके बाद राज्य विधानसभाओं के चुनावों के बाद) भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ आया। अब संघ प्रणाली का क्रियान्वयन 'एक–दल प्रधान ढाँचे' (One-party Dominant Framework) के बजाय 'बहुदलीय प्रतियोगी राजनीति' (Multi-party Competitive Politics) के ढाँचे में होने लगा। चतुर्थ आम चुनावों के बाद कांग्रेस दल का एकाधिकार समाप्त हुआ और अनेक राज्यों में गैर–कांग्रेसी दलों की सरकारें बनीं। ये गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार को अविश्वास और शंका की दष्टि से देखने लगीं। इसी कालावधि में कई राज्यों में क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक दलों का अभ्युदय हुआ। क्षेत्रीय दलों का ध्येय अपनी शक्ति में वद्धि करना और केन्द्रीय सत्ता को दुर्बल करना रहा। गैर–कांग्रेस दलों के मुख्यमंत्री तो प्रायः छोटी–छोटी बातों को तूल देने लगे और केन्द्र के विरुद्ध बार–बार शिकायतें प्रस्तुत करने लगे। वस्तुतः केन्द्र और राज्यों के मध्य तनाव और मतभेद के युग का सूत्रपात हुआ।

संक्षेप में, केन्द्र तथा राज्यों के मध्य उठने वाले विवादास्पद प्रशासनिक मुद्दे निम्नलिखित हैं।

(1) **राज्यपाल का पद** – राज्यपाल राज्य का संवैधानिक कार्यकारी है। चतुर्थ आम चुनावों के बाद राज्यपालों के अधिकार–क्षेत्र, नियुक्ति के तरीके, आदि को लेकर केन्द्र–राज्य मतभेद, उत्पन्न हुए। गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें बराबर यह आरोप लगाती रहीं कि केन्द्र राज्यपालों के माध्यम से उनकी सरकारों को पदच्युत करने में लगा हुआ है। गैर–कांग्रेसी मुख्यमन्त्रियों का यह भी कहना था कि उनके राज्यों में राज्यपालों की नियुक्ति करते समय उनसे परामर्श किए जाने की परम्परा का केन्द्र पालन नहीं कर रहा है। कतिपय राज्यपालों ने तो सुनिश्चित लोकतान्त्रिक अभिसमयों का भी पालन नहीं किया और ऐसा आभास मिलता था कि उन्होंने केन्द्रीय सरकार के एजेण्ट की भूमिका का निर्वाह करने में भी अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली। राज्यपाल धर्मवीर की भूमिका को लेकर पश्चिमी बंगाल और केन्द्रीय सरकार के मध्य विवाद इतना उग्र हो गया कि अन्ततः राज्यपाल को स्थानान्तरित ही करना पड़ा। आन्ध्र प्रदेश के तात्कालिक राज्यपाल रामलाल ने एन.टी.रामाराव की तेलगुदेशम सरकार (1984) को बर्खास्त करके राज्यपाल पद को अत्यन्त हास्यापद बना दिया, जबकि विधानसभा में रामाराव को स्पष्ट बहुमत प्राप्त था। समूचे आन्ध्र प्रदेश में राज्यपाल और केन्द्र के खिलाफ जनआक्रोश जब अपनी चरम सीमा पर पहुंचा तो रामाराव की सरकार को पुनः पदासीन करना पड़ा और राज्यपाल को बेआबरू हटना पड़ा। तमिलनाडु में राज्यपाल डॉ. चेन्ना रेड्डी तथ मुख्यमंत्री सुश्री जयललिता के सम्बन्धों में इतनी कड़वाहट आ गई कि तमिलनाडु विधानसभा ने राज्यपाल डॉ. रेड्डी को हटाने के लिए प्रस्ताव पारित कर दिया। लोकतान्त्रिक मान्यताओं, परम्पराओं और संवैधानिक मर्यादाओं का, राज्यपाल रोमेश भण्डारी ने (21 फरवरी 1998) उत्तर प्रदेश की कल्याण सिंह सरकार को उसे अपना बहुमत सिद्ध करने का मौका दिए बिना ही बर्खास्त करके जो मखौल

बनाया था उस पर अंतरिम–स्थगनादेश देकर तथा कल्याण सिंह सरकार को तत्काल बहाल करने का निर्देश देकर इलाहाबाद हाईकोर्ट की खण्डपीठ ने लोकतान्त्रिक व्यवस्था को बनाये रखने का ऐतिहासिक कार्य किया। भाजपा से तात्कालिक केन्द्रीय सरकार की नाराजगी हो सकती है, लेकिन राजनीतिक लड़ाई राज्यपाल को माध्यम बनाकर लड़ना लोकतान्त्रिक आदर्शों के सर्वथा प्रतिकूल था। खण्डपीठ का फैसला राज्यपाल रोमेश भण्डारी के गाल पर करारा तमाचा था और इसके बाद उनक पास अपने पद पर बने रहने का कोई अधिकार शेष नहीं बचा। राज्य विधानसभा में शक्ति परीक्षण में कल्याण सिंह की जीत के बाद भी भण्डारी 15 मार्च, 1998 तक निर्लज्जता से अपने पद पर बने रहे। 30 जून, 2001 को तमिलनाडु में पूर्व मुख्यमंत्री करुणानिधि और दो केन्द्रीय मन्त्रियों – मुरासोली मारन और टी.आर. बालू की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में राज्यपाल फातिमा बीवी द्वारा समय पर और निष्पक्ष रिपोर्ट न भेजने पर बर्खास्तगी के भय से तत्काल त्याग–पत्र दे देना राज्यपाल की भूमिका को विवादास्पद बना देता है।

(2) **नौकरशाही** – नौकरशाही दूसरा प्रशासनिक विषय है जिस पर केन्द्र तथा राज्यों के बीच मतभेद दिखलाई देते हैं। भारत में अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से संघ सरकार राज्यों पर नियन्त्रण रखती है। संविधान में संघ तथा राज्य सरकारों के लिए अलग–अलग सेवाओं की व्यवस्था की गई है, परन्तु ब्रिटिश शासन से विरासत में हमने एकीकृत उच्च प्रशासनिक सेवाओं की पद्धति भी प्राप्त की है, तदनुसार अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारी संघ तथा राज्य दोनों जगह कार्य करते हैं। संविधान में यह व्यवस्था है कि भारतीय प्रशासनिक सेवाआ और भारतीय पुलिस सेवा संघ और राज्यों में समान रूप से कार्य करेंगी। चतुर्थ आम चुनाव के बाद नौकरशाही के सम्बन्ध में दो प्रश्न सामने आएः पहला प्रश्न यह था कि क्या नौकरशाही गैर–कांग्रेस राज्य सरकारों की नीतियों का क्रियान्वयन उसी उत्साह तथा प्रतिबद्धता से कर पाएगी, जिस उत्साह से वह अब तक कांग्रेस सरकार की नीतियों का क्रियान्वयन करती थी। यह प्रश्न वस्तुतः सरकारी कर्मचारियों की तटस्थता से जुड़ा हुआ है। कतिपय लोगों के मन में यह धारणा थी कि तीस वर्षों तक कांग्रेस दल के कार्यक्रमों और नीतियों को कार्यान्वित करने वाली नौकरशाही तमिलनाडु में द्रमुक–अन्ना द्रमुक, केरल में साम्यवादी दल, पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी–साम्यवादी दल और पंजाब में अकाली दल की नीतियों और कार्यक्रमों का सहजता से कैसे क्रियान्वयन कर पाएगी? दूसरा सवाल नई अखिल भारतीय सेवाओं के गठन से सम्बन्धित था। कुछ गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारों ने कहा कि अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारी केन्द्रीय सरकार के एजेण्ट होते हैं तथा वे राज्य की नीतियों को ठीक ढंग से लागू नहीं करते हैं। कई राज्यों में निम्नलिखित कारणों से अखिल भारतीय सेवाएं राज्यों की स्वायत्तता को कम करती हैं। ततीय, अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारियों का वेतन स्तर उच्च होता है जिससे राज्य की वित्तीय स्थिति प्रभावित होती है। वस्तुतः अखिल भारतीय सेवाएं केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में कटुता बढ़ाने का कारण इसलिए बन जाती है क्योंकि उनकी नियुक्ति और पदोन्नति अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के मामलों पर केन्द्रीय सरकार पर निर्भर करती है और राज्यों में उनके प्रति अपनत्व की भावना नहीं दिखलाई देती है।

करुणानिधि, मारन एवं बालू की गिरफ्तारी (30 जून, 2001) प्रकरण से जुड़े चेन्नई पुलिस आयुक्त के, मुथुकुरुमन, मध्य चेन्नई के संयुक्त पुलिस आयुक्त सी.जार्ज और त्रिप्लीकेन के पुलिस आयुक्त क्रिस्टोफर नेल्सन को केन्द्र ने केन्द्रीय कैडर में तबादला करने के निर्देश दिए हैं जबकि तमिलनाडु सरकार का मत है कि राज्य सरकार की स्वीकृति के बिना इन अधिकारियों का तबादला नहीं किया जा सकता। इससे केन्द्र–राज्य विवाद बढ़ने की आशंका है।

(3) **कानून और व्यवस्था के मामलों पर राज्यों को केन्द्रीय निर्देश** – क्या राज्य सरकारों के लिए केन्द्रीय सरकार के निर्देशों का पालन करना बाध्यकारी है? यदि राज्य सरकारें संघीय निर्देशों का पालन न करें तो क्या व्यवस्था होगी? यह एक विचारणीय प्रश्न है कि जब राज्य सीमा के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार की सम्पत्ति की सुरक्षा राज्य सरकारें न कर सकें तो केन्द्रीय सरकार क्या करे? जब राष्ट्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को कतिपय राज्यों में तैनात किया तो केरल, पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु की सरकारों ने केन्द्र की इस शक्ति पर आपत्ति उठाई और इससे केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों में कटुता आई। 18 सितम्बर 1968 को केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल का सामना करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने राज्यों को एक अध्यादेश द्वारा वांछित निर्देश प्रदान किए। केरल की साम्यवादी सरकार ने केन्द्रीय अध्यादेश को संविधान विरोधी और श्रमिक विरोधी कहकर उसे मानने से इन्कार कर दिया। ऐसी गम्भीर स्थिति में जब राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस तैनात की गई तो केन्द्र–राज्य सम्बन्ध का उग्रतम रूप उभरने लगा। मुख्यमंत्री नम्बूदरीपाद ने आरोप लगाया कि राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस का आगमन राज्य के आन्तरिक मामलों में सरासर हस्तक्षेप है।

वस्तुतः केन्द्र का यह संवैधानिक अधिकार है कि वह कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए, सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए, केन्द्रीय प्रतिष्ठानों की रक्षा के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस राज्यों में तैनात करें, किन्तु वे राज्य सरकारें जो केन्द्र में सत्तारूढ़ दल से मेल नहीं खाती, इसे राज्य के आन्तरिक मामलों में अनुचित हस्तक्षेप कहकर केन्द्र–राज्य में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न कर देती हैं।

(4) **आर्थिक नियोजन** – के. सन्थानम् के अनुसार, नियोजन व्यवस्था ने नीति और वित्त सम्बन्धी सभी मामलों में राज्यों की स्वायत्तता को एक छाया का रूप प्रदान कर दिया है। वस्तुतः नियोजन का संघवाद पर जो प्रभाव पड़ा है उसने केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन दिया है। भारत में सम्पूर्ण देश – केन्द्र एवं राज्यों के लिए योजना निर्माण का कार्य योजना आयोग करता है। यह एक केन्द्रीय अभिकरण है जिसका निर्माण केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के एक प्रस्ताव के आधार पर हुआ है। इसमें प्रधानमंत्री, कुछ केन्द्रीय मंत्री तथा विशेषज्ञ होते हैं। इसमें राज्यों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। यह नीतियों की एकरूपता पर बल देता है। यह आयोग समूचे देश के लिए यह मानकर योजना बनाता है कि मोटे तौर से सभी राज्यों की परिस्थितियां समान हैं। नियोजन का सम्बन्ध शासन के समस्त विषयों से है, चाहे वह विषय संघ सूची का हो अथवा राज्य सूची का। राज्य सूची के विषयों पर भी योजना आयोग एक 'सुपरमैन' बन गया है। नियोजन के परिणामस्वरूप ही केन्द्र उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य जैसे विषयों पर कानून बनाने लग गया, जबकि ये विषय राज्य सूची में उल्लिखित हैं। यहीं नहीं, आज रेजर पत्ती, कागज, गोंद, माचिस, साबुन जैसे विषयों पर भी केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया है।

बदले राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में यह देखा गया है कि अब राज्य योजना आयोग तथा केन्द्रीय सरकार के निर्णयों को ज्यों–का–त्यों स्वीकार नहीं कर लेते हैं। इस बात का अभ्यास 19 व 20 अप्रैल, 1969 को दिल्ली में हुई राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक से मिलता है। राष्ट्रीय विकास परिषद् के इतिहास में पहली बार कुछ राज्यों ने चौथी योजना के प्रारूप को औपचारिक रूप से अस्वीकृति प्रदान की। पश्चिमी बंगाल तथा केरल के मुख्यमंत्री और दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद् ने योजना को उसी रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। वस्तुतः अब अनेक राज्यों में केन्द्र की सरकार गठित करने वाले दलों से भिन्न दलों की सरकारें होने के कारण हाँ में हाँ मिलाने की प्रवत्ति नहीं रही और आर्थिक नियोजन विवादास्पद मसला बनता जा रहा है।

केन्द्र-राज्य प्रशासनिक समायोजन के उपकरण
(Instruments of Centre-State Administrative Co-ordination)

केन्द्र और राज्यों के मध्य विचार–विमर्श आवश्यक ही नहीं, वांछनीय भी है। ऐसा करने से एक संघ व्यवस्था में केन्द्र–राज्यों के बीच साझेदारी की भावना बढ़ती है और सद्भाव के साथ कार्य करने के लिए निर्णय प्रक्रिया के 'आगत' (इनपुट) भी बढ़ते हैं। यद्यपि भारत के संविधान ने केन्द्रीय सरकार पर बहुत सारे कार्यों का भारी भार डाला है, फिर भी राष्ट्र निर्माण के सभी महत्वपूर्ण कार्यों में जैसे–कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा शान्ति व्यवस्था, आदि में केन्द्र सरकार राज्य सरकारों पर गम्भीर रूप से निर्भर रहती है। इस सम्बन्ध में क्योंकि केन्द्र के निर्देश राज्यों के लिए बाध्यकारी नहीं हो सकते, अतः यह आवश्यक है कि केन्द्र और राज्यों के बीच विचार–विमर्श के यन्त्र विकसित किए जाएं। संविधान की समवर्ती सूची में ऐसे 47 विषयों का उल्लेख है जिन पर केन्द्र और राज्य दोनों ही कानून बना सकते हैं। इस सूची के विषयों पर प्रशासन में केन्द्र और राज्यों के मध्य परामर्श का क्षेत्र और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है।

भारत में केन्द्र–राज्य प्रशासनिक समायोजन की दष्टि से राज्यपाल सम्मेलन, राष्ट्रीय विकास परिषद्, मुख्यमंत्री सम्मेलन, मुख्य सचिव सम्मेलन, पुलिस महानिदेशक सम्मेलन, आदि महत्वपूर्ण हैं। उपर्युक्त में से प्रथम तीन राजनीतिक स्तर पर कार्य कर रहे हैं। प्रशासनिक स्तर पर जो सम्मेलन महत्वपूर्ण हैं उनमें मुख्य सचिवों का सम्मेलन तथा विभिन्न कार्यकारी सचिवों के सम्मेलन उल्लेखनीय हैं। 1990 में अन्तर्राज्यीय परिषद् का भी गठन किया गया है।

फिर भी भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में ऐसे परामर्श यंत्रों का विकास एक नया प्रयोग है। यह अभी असुन्तलित और अविकसित है। उनका प्रयोग अधिकतर उन्हीं विषयों के लिए हुआ है जो राज्य सूची में हैं। स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि केन्द्र ने अपने निर्णयों को राज्यों द्वारा मनवाने के लिए ही इसका प्रयोग किया है।

निष्कर्षः प्रशासनिक संघ का स्वरूप

भारतीय संघ व्यवस्था में प्रशासनिक एकरूपता पर बल दिया गया है। अमरीका की तरह दोहरी न्याय व्यवस्था का प्रबन्ध करने के स्थान पर न्याय व्यवस्था को एकीकृत कर दिया गया है। अखिल भारतीय प्रशासनिक और पुलिस सेवाओं का प्रावधान किया गया है। भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के अधीन भारत की लेखा परीक्षा तथा लेखा सेवा का आयोजन है, जो एक केन्द्रीय सेवा हैं, किन्तु यह संघ के साथ–साथ राज्यों के व्यय का लेखा तथा परीक्षा कार्य को भी सम्पन्न करती है। निर्वाचन आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और आयोग संसद के साथ–साथ राज्य विधानमण्डलों के निर्वाचनों को भी सम्पन्न करता है। संघ तथा राज्यों के बीच अथवा दो या दो से अधिक राज्यों के बीच विवादों का निपटारा करने लिए संघ की स्थिति महत्वपूर्ण हैं। केन्द्रीय सरकार के पास समन्वयकारी शक्तियाँ हैं और क्षेत्रीय परिषदों के माध्यम से केन्द्र राज्य सरकारों की शक्तियाँ पर नियन्त्रण रखता है। संकटकालीन शक्तियों के प्रवर्तन काल में केन्द्रीय शासन को राज्यों पर सभी प्रकार के प्रशासनिक नियन्त्रण प्राप्त हो जाते हैं। इसी कारण नारमन डी. पामर ने भारतीय संघ व्यवस्था को प्रशासनिक संघ कहकर पुकारा है।

केन्द्रीकरण की विद्यमान प्रवत्ति के बावजूद भी प्रशासनिक स्वरूप वाले भारतीय संघ के घटक राज्यों के हाथों में देश के शासन का आज भी बहुत बड़ा भाग है। यद्यपि उन्हें आर्थिक संसाधनों के लिए केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है और विकास कार्यों का संयोजन भी केन्द्र करता है, फिर भी राज्यों में अपने अधिकारों पर जोर देने की प्रवत्ति बढ़ी है और देश के शासन में वे ज्यादा हाथ चाहते हैं। भारत में सरकारी नीतियों और विकास कार्यक्रमों को अमल में लाने का काम राज्य शासन का ही है। पाल एच एपिलबी ने ठीक ही लिखा है भारतीय शासन–व्यवस्था ऐसी है कि इसमें प्रशासन के महत्वपूर्ण कार्य राज्य सरकारें करती हैं। और योजनाओं की क्रियान्विति के लिए केन्द्र को उन्हीं पर निर्भर रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में राज्य की आर्थिक स्वायत्तता के समर्थकों का यह कहना कहाँ तक सार्थक है कि हमारे राज्य प्रशासनिक दष्टि से केन्द्रीय सरकार के अनुचर मात्र हैं? हां, यदि राज्यों के वित्तीय संसाधनों में वद्धि के उपाय किए जाते हैं तो निश्चित ही उनकी प्रशासनिक क्षमता में वद्धि होगी। वस्तुतः राष्ट्रीय एकता और तीव्र विकास के लिए शक्तिशाली केन्द्र और समद्ध राज्यों के संघीय ढाँचे का होना ही लाभकारी है। राज्यों को महसूस करना चाहिए कि दुर्बल केन्द्र का सिद्धांत राजनीतिक दष्टि से आत्महत्या का समतुल्य होगा। यदि शक्ति का सन्तुलन राज्यों की तरफ झुकता है तो राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास होगा जिससे भारी राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति शून्य उभरेगा।

वित्तीय सम्बन्ध
(Financial Relations)

संघात्मक शासन – व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों की सरकारों के बीच केवल विधायी और प्रशासनिक शक्तियों का ही विभाजन नहीं होता अपितु वित्तीय स्रोतों का भी बंटवारा होता है। वित्तीय स्रोतों के विभाजन को लेकर राज्यों के बीच मतभेद और तनाव उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। यह समस्या उतनी ही पुरानी है जितनी कि संघात्मक शासन प्रणाली और यह विश्व की अधिकांश संघ व्यवस्थाओं को संकटग्रस्त करती रही है।

केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध : संवैधानिक प्रावधान

केन्द्र तथा राज्यों के मध्य राजस्व के साधनों के विभाजन के आधारभूत सिद्धांत हैं : कार्यक्षमता, पर्याप्तता तथा उपयुक्तता। इन तीनों उद्देश्यों की एक साथ ही प्राप्ति अत्यन्त कठिन थी, अतः भारतीय संविधान में समझौते की चेष्टा की गई। संविधान द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों का निरूपण निम्न प्रकार किया गया है :

(1) **कर निर्धारण, शक्ति का वितरण और करों से प्राप्त आय का विभाजन** – भारतीय संविधान में वित्तीय प्रावधानों की दो विशेषताएं हैं। प्रथम, संघ तथ राज्यों के मध्य कर निर्धारण की शक्ति का पूर्ण विभाजन कर दिया गया है और द्वितीय, करों से प्राप्त आय का बंटवारा होता है।

संघ के प्रमुख राजस्व स्रोत इस प्रकार हैं : निगम कर, सीमा शुल्क, निर्यात शुल्क, कृषि भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, विदेशी ऋण, रेलें, रिजर्व बैंक, शेयर बाजार, आदि। राज्यों के राजस्व स्रोत हैं –प्रति व्यक्ति कर, कृषि भूमि पर कर, सम्पदा शुल्क, भूमि और भवनों पर कर, पशुओं तथा नौकाओं पर कर, बिजली के उपयोग तथा विक्रय कर, वाहनों पर चुंगी कर, आदि।

संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत, किन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले करों के उदाहरण हैं : बिल, विनियमों, प्रोमिसरी नोटों, हुण्डियों, चैंको, आदि पर मुद्रांक शुल्क और दवा तथा मादक द्रव्य पर कर, शौंक–श्रंगार की चीजों पर कर तथा उत्पादन शुल्क।

संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत, किन्तु राज्यों को सौंपे जाने वाले करों के उदाहरण हैं : कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क, रेल, समुद्र, वायु द्वारा ले जाने वाले माल तथा यात्रियों पर सीमान्त कर, रेल भाड़ों तथा वस्तु भाड़ों पर कर, शेयर बाजार तथा सट्टा बाजार के आदान–प्रदान पर कर, मुद्रांक शुल्क के अतिरिक्त कर, समाचार–पत्रों के क्रय–विक्रय तथा उनमें प्रकाशित किए गए विज्ञापनों पर और समाचार–पत्रों से अन्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा वाणिज्य के माल के क्रय–विक्रय पर कर।

कतिपय कर संघ द्वारा आरोपित तथा संग्रहीत किए जाते हैं, पर उनका विभाजन संघ तथा राज्यों के बीच होता है। आय–कर का विभाजन संघीय भू–भाग के लिए निर्धारित निधि तथा संघीय खर्च को काटकर शेष राशि में से किया जाता है। आय–कर के अतिरिक्त दवा तथा शौंक–श्रंगार चीजों के अतिरिक्त अन्य चीजों पर लगाया गया उत्पादन शुल्क इसके अन्तर्गत आता है।

(2) **सहायक अनुदान तथा अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए दिया जाने वाला अनुदान** – संविधान के अन्तर्गत केन्द्र द्वारा राज्यों को चार तरह के सहायता अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। प्रथम, पटसन व उससे बनी वस्तुओं के निर्यात से जो शुल्क प्राप्त होता है उसमें से कुछ भाग अनुदान के रूप में जूट पैदा करने वाले राज्यों – बिहार, बंगाल, असम व उड़ीसा – को दे दिया जाता है। द्वितीय, बाढ़, भूकम्प व सूखाग्रस्त क्षेत्रों में पीड़ितों की सहायता के लिए भी केन्द्रीय सरकार राज्यों को अनुदान दे सकती है। ततीय आदिम जातियों व कबीलों की उन्नति व उनके कल्याण की योजनाओं के लिए भी सहायक अनुदान दिया जाता है। चतुर्थ, राज्य को आर्थिक कठिनाइयों से उबारने के लिए केन्द्र राज्यों की वित्तीय सहायता कर सकता है।

(3) **ऋण लेने सम्बन्धी उपबन्ध** – संविधान केन्द्र को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह अपनी संचित निधि की साख पर देशवासियों व विदेशी सरकारों से ऋण ले सके। ऋण लेने का अधिकार राज्यों को प्राप्त होता है, परन्तु वे विदेशों से धन उधार नहीं ले सकते। यदि किसी राज्य सरकार पर संघ सरकार का कोई कर्ज बाकी है तो राज्य सरकार अन्य कर्ज संघ सरकार की अनुमति से ही ले सकती है। इस प्रकार का कर्ज देते समय संघ सरकार किसी भी प्रकार की शर्त लगा सकती है।

(4) **करों से विमुक्ति** – राज्यों द्वारा संघ की सम्पत्ति पर कोई कर तब तक नहीं लगाया जा सकता जब तक संसद विधि द्वारा कोई प्रावधान न कर दे। भारत सरकार या रेलवे द्वारा प्रयोग में आने वाली बिजली पर संसद की अनुमति के अभाव में राज्य किसी प्रकार का शुल्क नहीं लगा सकते। इसी प्रकार संघ सरकार भी राज्य सम्पत्ति और आय पर कर नहीं लगा सकती।

(5) **भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक द्वारा नियन्त्रण** – भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के परामर्श से राष्ट्रपति करता है। यह भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के हिसाब का लेखा रखने के ढंग और उनकी निष्पक्ष रूप से जांच करता है। नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के माध्यम से ही भारतीय संघ राज्य की आय पर अपना नियन्त्रण करती है।

(6) **वित्तीय संकटकाल** – वित्तीय संकटकालीन घोषणा की स्थिति में राज्यों में आय सीमा राज्य सूची में चर्चित करों तक ही सीमित रहती है। वित्तीय संकट के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को संविधान के उन सभी प्रावधानों को स्थगित करने का अधिकार है जो सहायता अनुदान, आदि संघ के करों की आय में भाग बंटाने से सम्बन्धित हो। केन्द्रीय सरकार वित्तीय मामलों में राज्यों को निर्देश भी दे सकती है।

निष्कर्षतः यह कहना उचित है कि भारतीय संघवाद की सामान्य प्रकृति अर्थात् 'केन्द्रीयता' के अनुकूल ही उपबन्धों की योजना हुई है। केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों की अपेक्षा वित्तीय क्षेत्र में अधिक शक्तिशाली है। प्रो. एम.वी. पायली के शब्दों में, "वर्तमान स्थिति में राज्यों पास सीमित साधन हैं और अपनी अधिकांश विकास योजनाओं के लिए उन्हें केन्द्र

की सहायता की आवश्यकता रहती है इसलिए उन्हें केन्द्र का नेतत्व स्वीकार करना पड़ता है। कभी–कभी केन्द्र के आदेशों के आगे भी झुकना पड़ता है।"

केन्द्र-राज्य तनाव क्षेत्र : वित्तीय तथा योजना सम्बन्धी विषय
(Areas of Conflict : Financial Aspects)

सैद्धान्तिक दष्टि से केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवादों को तीन भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम, संस्थागत विषय जैसे राज्यपाल का पद, नौकरशाही की भूमिका और संविधान का स्वरूप, आदि विषयों को लेकर उत्पन्न होने वाले विवाद। द्वितीय, कार्यात्मक विषय जैसे कानून और व्यवस्था के अधिकार–क्षेत्र के प्रश्न पर विवाद, अन्तर्राज्यीय विवाद, भाषा विवाद, राज्य सूची के विषयों पर केन्द्रीय हस्तक्षेप, आवश्यक वस्तुओं पर केन्द्रीय नियन्त्रण, आदि मसले। ततीय, वित्तीय और योजना सम्बन्धी विषय – संघीय शासन–व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय और योजना सम्बन्धी प्रश्नों को लेकर मतभेद होना स्वाभाविक है। 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के बाद भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच निम्नलिखित वित्तीय और योजना सम्बन्धी विषयों को लेकर विवाद उभरे हैं :

(i) **वित्तीय संसाधनों के वितरण की प्रचलित व्यवस्था** – वर्तमान में वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा वित्तीय संसाधनों के वितरण की प्रचलित व्यवस्था से अधिकांश राज्य सन्तुष्ट नहीं हैं। प्रचलित व्यवस्था में करों से प्राप्त होने वाली आय का प्रधान भाग केन्द्रीय कोष में जाता है और अपने लोककल्याण एवं जनविकास सम्बन्धी दायित्वों की वद्धि के बावजूद भी राज्यों की आय के स्रोत अत्यन्त अल्प रखे गए हैं। इसके परिणामस्वरूप राज्यों की योजनाओं की सफलता बहुत कुछ केन्द्रीय अनुदान पर भी निर्भर हो जाती है। सन् 1967 के बाद राज्यों की यह शिकायत रही है कि केन्द्र की सरकार उन राज्यों को अधिक मदद देती हैं जहां राज्य सरकारें उसके अनुकूल हैं। योजना आयोग के माध्यम से भी केन्द्र राज्यों पर न केवल नियन्त्रण रखता है बल्कि भेदभाव भी बरतता है।

इसके अतिरिक्त, राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान एवं सहायता बहुत ही कम हैं और वे अपने बढ़ते हुए दायित्वों का निर्वाह करने में असमर्थ हैं। राज्यों की योजना की आकति तय करने का कोई निश्चित मापदण्ड नहीं है और वे राज्य, जिनकी आय के स्रोत ज्यादा हैं, महत्त्वाकांक्षी योजनाओं का निर्माण कर लेते हैं जिससे राज्यों की आय में विषमता बढ़ती है। केन्द्रीय सरकार को आए दिन अपने कर्मचारियों के महंगाई भत्तों में वद्धि करनी पड़ जाती है। राज्यों को दिए जाने वाले कतिपय अनुदान केन्द्रीय सरकार की स्वविवेकी शक्ति के अन्तर्गत आते हैं और राज्यों को बराबर यह शिकायत रही है कि केन्द्रीय सरकार इन अनुदानों का वितरण करते समय पक्षपातपूर्ण आचरण करती है।

(ii) **राज्यों की ऋणग्रस्तता** – पिछले तीस वर्षों में राज्य धीरे–धीरे, किन्तु अधिकाधिक रूप से वित्तीय साधनों के लिए केन्द्रीय सरकार पर निर्भर होते चले गए। राज्यों की इस ऋणग्रस्तता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि सभी राज्य सरकारों का कुल कर्ज तीन साल पहले 2,43,525 करोड़ रूपये का था जो 1999–2000 में 4,09,258 करोड़ रू. का हो गया। यानि प्रत्येक व्यक्ति 4,308 रूपये कर्ज में डूबा हुआ है। इस प्रकार ऋण सेवाओं का भार राज्यों की कर आय को प्रभावहीन बना रहा है। वास्तव में, केन्द्र के साथ राज्यों की ऋणग्रस्तता अब इस स्थिति में पहुंच गई है कि ऋण अदायगी तथा ब्याज की रकम मिलकर नई केन्द्रीय सहायता से अधिक हो जाती है जिसका अर्थ यह है कि साधनों का वितरण विपरीत दिशा में हो जाता है। ऐसी स्थिति परिपक्व एवं सन्तुलित केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के लिए ऋणात्मक है।

(iii) **वित्त आयोग की भूमिका** – आलोचना का विषय यह भी है कि केन्द्र से हस्तान्तरित होने वाली राशि का केवल एक–तिहाई भाग ही वित्त आयोग की सिफारिशों पर होता है जबकि दो–तिहाई भाग वित्त आयोग के क्षेत्र से बाहर है बंटवारे की यह पद्धति मनमाने ढंग की है, चाहे यह बंटवारा योजना आयोग द्वारा ही क्यों न किया जाता हो? फिर केवल योजना आयोग ही ऐसे अनुदान नहीं देता। वित्त आयोग तथा योजना आयोग के क्षेत्र से बाहर के अनुदान प्रथम पंचवर्षीय योजना में दिए अनुदानों का केवल 7.3 प्रतिशत थे, किन्तु बाद की पंचवर्षीय योजनाओं में इनका महत्व बढ़ता गया तथा चौथी योजना में वह बढ़कर लगभग 41 प्रतिशत हो गया। ये अनुदान जिन्हें विवेकानुदान कहा जाता है योजना अनुदानों की अपेक्षा 73 प्रतिशत बढ़ गए। सरकार की इच्छा पर छोड़े गए इन अनुदानों के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि ये वित्तीय संघीय सम्बन्धों में न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन करते हैं। सभी मुख्यमंत्रियों ने सातवें वित्त आयोग के समक्ष

अनुच्छेद 282 के अत्याधिक प्रयोग पर जिसके अन्तर्गत ये विवेकानुदान दिए जाते हैं, पुनः विचार करने को कहा।

(iv) **आर्थिक नियोजन के सम्बन्ध में मतभेद** – योजना आयोग की भूमिका को लेकर भी केन्द्र–राज्य विवादों में वद्धि हुई है। अशोक चन्दा का मत है कि योजना आयोग ने संघवाद को निरस्त कर दिया है। योजना आयोग देश की योजना के लिए कुछ आधारभूत विषय निश्चित करता है। चूंकि प्रत्येक राज्य की समस्याएं अलग–अलग हैं इसलिए उनकी मूल समस्याओं का निराकरण नहीं हो पाता है। योजना प्रारूप का अन्तिम निर्णय तो केन्द्रीय संसद के हाथों में है। योजनाओं के सम्बन्ध में केन्द्र की कार्यपालिका वास्तव में निर्णय लेती है और कार्यान्वित राज्य की कार्यपालिकाओं को करना होता है। योजना आयोग के सामने राज्य एक परकटे पक्षी की भांति है। राज्यों के पास अपने योजना बोर्ड नहीं है, जो कि राज्य की योजनाओं को तकनीकी दष्टि से निश्चित कर सकें।

अब राज्य सरकारों में केन्द्रीय सरकार और योजना आयोग का विरोध करने की प्रवत्ति उभर रही है। सन् 1969 में पहली बार कुछ राज्यों ने चौथी योजना के प्रारूप को अनौपचारिक रूप से अस्वीकृति प्रदान की। पश्चिमी बंगाल तथा केरल के मुख्यमंत्री और दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद् ने योजना को उसी रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। राज्य के मुख्यमन्त्रियों ने केन्द्र से राज्यों की आय के स्रोतों को भी बढ़ावा देने की बात कही है। यह भी मांग की जा रही है कि योजना आयोग के कार्यों को सीमित किया जाना चाहिए तथा जो अनुदान दिए जाएं वे सशर्त नहीं होने चाहिए।

(v) **अन्तर्राज्यीय व्यापार** – संविधान के अनुसार अन्तर्राज्यीय व्यापार को नियमन करने की शक्ति केन्द्रीय सरकार में निहित है। केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय और स्थानीय राज्यों के हितों में समन्वय स्थापित करने के लिए कभी–कभी हस्तक्षेप करती है। इस केन्द्रीय हस्तक्षेप से कतिपय राज्य नाराज होते हैं और केन्द्र–राज्य मतभेद उभरते हैं। उदाहरण के लिए, खाद्य नीति को लिया जा सकता है जो कि राज्य सूची का विषय है और केन्द्रीय हस्तक्षेप से पंजाब ने अपनी लगातार नाराजगी प्रकट की। सन् 1969 में केन्द्रीय शासन ने गेंहूँ के सम्बन्ध में प्रचलित 'एक राज्य क्षेत्र' नीति का परित्याग कर 'आठ राज्यीय क्षेत्र' घोषित किया तो पंजाब ने इसे पसन्द नहीं किया।

मई 1979 में मुख्यमन्त्रियों के दो दिन के सम्मेलन में केन्द्र के वित्तीय साधनों के बंटवारे के सवाल पर विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया। विवाद इतना बढ़ गया जिसका पता इसी तथ्य से लग जाता है कि पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ने इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय के सामने ले जाने का निश्चय प्रकट किया। पश्चिमी बंगाल के वित्त मन्त्री डॉ. अशोक मित्र ने कहा कि कच्ची तम्बाकू, चीनी तथा कपड़ों पर एकत्र करों के बंटवारे के प्रश्न पर अनेक स्मरण–पत्र भेजने के बावजूद केन्द्र ने अपना वायदा पूरा नहीं किया। उन्होंने कहा था कि कुछ वर्ष पूर्व उक्त मदों पर एकत्र करों को राज्य सरकार ने स्वेच्छा से केन्द्र को दे दिया था। यदि मामला वार्ता से न सुलझा तो राज्य सरकार सर्वोच्च न्यायालय में मुकदमा दायर करेगी।

सरकारिया आयोग के सामने राज्यों ने केन्द्र–राज्य वित्त सम्बन्धों की आलोचना करते हुए निम्नलिखित शिकायतें प्रस्तुत कीं।

(1) राज्य सरकारों ने कुछ संसाधनों को विभाज्य पुल से बाहर रखने के सम्बन्ध में संघ सरकार की नीति की आलोचना की है, जो उनके मतानुसार उनके साथ बांटे जाने चाहिए थे। राज्यों के अनुसार इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, आयकर अधिनियम, 1959 के संशोधन द्वारा निगम कर को विभाज्य पुल से निकालना। बहुत–सी राज्य सरकारों ने यह सुझाव दिया है कि निगम कर की प्राप्तियों में राज्यों की भागीदारी रहनी चाहिए।

(2) राज्यों ने यह शिकायत की है कि आयकर अधिभार के एक लम्बी अवधि तक जारी रहने के कारण वे काफी राजस्व से वंचित रहे हैं जो राज्यों के साथ भागीदारी योग्य होता यदि भारत सरकार ने इसके बजाय आयकर की मूल दरों को समायोजित किया होता। कुछ राज्यों ने सुझाव दिया है कि आयकर अधिभार की प्राप्तियां राज्यों के साथ भागीदारी योग्य बना दी जानी चाहिए।

(3) कुछ राज्यों ने आरोप लगाया है कि संघ सरकार आयकर से राजस्व जुटाने में पर्याप्त रुचि नहीं दिखा रही है जिसका 85% इस समय राज्यों के साथ भागीदारी योग्य है। दूसरी ओर, विशेष वाहक पत्र योजना के माध्यम से संघ सरकार ने केवल अपने इस्तेमाल के लिए संसाधन जुटाये हैं जिनमें अन्यथा प्रकार से राज्यों की भागीदारी होती, यदि आयकर अधिनियम को बेहतर ढंग से लागू किया जाता।

(4) अनेक राज्यों ने संघ द्वारा उत्पाद शुल्क बढ़ाने की बजाय, जो उनके साथ भागीदारी योग्य होने, एकपक्षीय रूप से पेट्रोलियम और कोयला जैसी वस्तुओं के निर्देशित मूल्य में वद्धि की शिकायत की है।

(5) अनेक राज्यों ने संविधान (छठा संशोधन) अधिनियम, 1956 द्वारा अनुच्छेद 269 और 286 में हुए परिवर्तनों तथा केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 को ओर ध्यान दिलाया है। उनका आरोप है कि इन संशोधनों ने राज्यों के विक्रय कर की प्राप्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है जो कि उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजस्व का स्रोत है।

(6) वेतन में संशोधन, सेवान्त प्रसुविधाएं, महंगाई भत्ते की किस्तों के दिए जाने, इत्यादि पर संघ सरकार के निर्णयों के कारण राज्यों पर उसके अनुरूप भार पड़ता है। इसे, संघ की कार्यवाही के कारण राज्यों के व्यय पर अनिश्चित भार के उदाहरण के रूप में उद्धत किया गया है। कुछ राज्य सरकारों ने कहा है कि इस अतिरिक्त भार में संघ द्वारा हिस्सेदारी की जानी चाहिए।

(7) प्राकृतिक आपदाओं के लिए सहायता प्रदान किए जाने में विलम्ब, अपर्याप्तता और साथ ही भेदभाव बरतने की शिकायतें भी हैं जिन पर राष्ट्रीय महत्व के विषय के रूप में विचार किए जाने की आवश्यकता है।

वित्तीय साधनों का न्यायपूर्ण आबंटन : नए सन्तुलन की खोज – केन्द्र–राज्य वित्तीय सम्बन्धों को अधिक सहज बनाने हेतु प्रशासनिक सुधार आयोग तथा राजमन्नार समिति प्रतिवेदन में भी विचार किया गया था। इस उद्देश्य से पश्चिमी बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने भी एक विस्तत मसविदा (Memorandum) प्रस्तुत किया था।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने अनुच्छेद 283 के अन्तर्गत राज्यों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता का सरलतम रूप प्रस्तुत किया। इस सम्बन्ध में आयोग की अनुशंसाएं इस प्रकार हैं : प्रथम, राज्यों को दी जाने वाली कुल केन्द्रीय सहायता की मात्रा तय की जानी चाहिए। इसके बाद ऋण के रूप में दी जाने वाली रकम तय कर लेनी चाहिए। द्वितीय, इस अनुदान को वितरित करते समय वह राशि अलग कर लेनी चाहिए जो मूलभूत राष्ट्रीय महत्व की परियोजनाओं पर खर्च की जानी है। अवशिष्ट राशि को ही केन्द्रीय अनुदान के रूप में राज्यों को वितरित किया जाना चाहिए। ततीय, यदि राज्य ने किसी परियोजना को पूरा नहीं किया है तथा केन्द्रीय अनुदान की अधिक राशि खर्च कर दी है तो बाद में केन्द्रीय अनुदान की मात्रा कम की जा सकती है।

क्या राज्य को अधिक शक्तियाँ दी जानी चाहिएँ?
(Should the States be given More Powers)

इस सत्यता से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि वर्तमान समय में प्रत्येक क्षेत्र में राज्यों की तुलना में केन्द्र की स्थिति अधिक शक्तिशाली हे। संविधान द्वारा चाहे राज्यों का वैधानिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक क्षेत्र निश्चित किया गया है, परन्तु इस निश्चित क्षेत्र में राज्यों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है। राज्यों में अनेक ऐसी व्यवस्थायें हैं जिनके आधार पर केन्द्र राज्य के कार्यों मे हस्तक्षेप कर सकता है और व्यावहारिक रूप में करता भी है। इसी कारण भिन्न–भिन्न राजनैतिक दलों ने राज्यों को अधिक शक्ति देने की मांग की है। भारत के दोनों साम्यवादी दल, जनता पार्टी, शिरोमणी अकाली दल, तेलगू देशम, ए.आई.डी.एम. के. तथा कुछ अन्य राजनीतिक दल राज्यों को अधिक शक्ति देने की मांग करते हैं। कर्नाटक, पाण्डिचेरी, तमिलनाडु आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्रियों ने मार्च, 1983 में एक संयुक्त परिषद् बनाई थी। इस परिषद् ने भी यह मांग की थी कि राज्यों को आर्थिक क्षेत्र में अधिक शक्तियाँ प्रदान की जायें और केन्द्र तथा राज्य के मध्य सम्बन्धों पर पुनः विचार किया जाये। पंजाब में अकाली दल ने केन्द्र सरकार की नीतियों के विरूद्ध 1982–83 में एक जोरदार संघर्ष किया था। अनेकों मांगों के अतिरिक्त राज्यों को अधिक शक्तियां प्रदान करने तथा केन्द्र राज्यों के सम्बन्धों के समुचित ढाँचे पर पुनः विचार करने की मांग भी अकाली दल की मांगों में सम्मिलित थी। इसी कारण केन्द्र सरकार ने अप्रैल 1983 मे एक कमिशन नियुक्त करने की घोषणा की थी। इस कमिशन में एक मात्र सदस्य सरदार रणजीत सिंह सरकारिया नियुक्त किये गये थे, इसी कारण इस कमिशन को साधारणतः सरकारिया कमिशन कहा जाता है। सरकारिया कमिशन ने केन्द्र तथा राज्यों के सम्बन्धों के सभी पक्षों पर विचार करता है। इसके सम्बन्ध में हमारा यह विचार है कि पिछले कुछ वर्षों में हमारे देश में केन्द्रवाद (Centralism) की प्रवत्ति में वद्धि हुई है। यदि इस प्रवत्ति पर नियन्त्रण न किया गया तो भारतीय संघवाद के लिये एक गंभीर स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। प्रत्येक क्षेत्र में केन्द्र सरकार के हस्तक्षेप को कम करने के लिये राज्यों को अधिक अधिकार प्रदान करने की आवश्कता है। विशेषतया वित्तीय क्षेत्र में राज्यों को आय के अधिक साधन प्रदान किये जाने चाहिए ताकि वे केन्द्र सरकार पर निर्भर न रहें और अपनी विकासशील योजनाओं को स्वेच्छा से लागू कर सकें।

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में टकराव की स्थिति
(Centre-State Relations : Position of Confrontation)

केन्द्र–राज्य सम्बन्ध आज भी उतने ही खराब हैं जितने श्रीमती इन्धिरा गांधी के शासन काल में थे। श्रीमती इन्दिरा गांधी के कार्यकाल (1984) में ये सम्बन्ध बहुत बिगड़ गए थे जब सिक्किम, जम्मू–कश्मीर व आन्ध्र प्रदेश की गैर–कांग्रेस सरकारों को अपदस्थ किया गया था। तीन गैर–कांग्रेस शासित राज्यों में जो केन्द्रीय सरकार के मन्त्री थे वह इन राज्यों (आन्ध्र, पं. बंगाल, कर्नाटक) के मुख्यमन्त्रियों के खिलाफ बन्दूक ही ताने रहते थे। नवम्बर 1987 में प्रधानमत्री ने त्रिपुरा की कई सभाओं में भाषण किया और नपेन चक्रवर्ती की सरकार के खिलाफ टीका–टिप्पणी की। जनता, माकपा व तेलुगुदेशम के सदस्यों ने राज्यसभा में उनके राज्यों के प्रति केन्द्र की उपेक्षा के प्रति नाराजगी प्रकट की। कर्नाटक, पश्चिमी बंगाल व आन्ध्र प्रदेश में कई विकास योजनाएं इस वजह से रूकी हुई थीं कि केन्द्र ने स्वीकृति नहीं भेजी। राज्य विधानसभा में स्वीकत विधेयकों पर राष्ट्रपति के अनुमोदन के सम्बन्ध में भी ऐसे ही हाल रहे। इन विधेयकों को गह मन्त्रालय में अटका दिया जाता था। कुछ मामलों में तो राज्यपाल ही विधेयकों को दबा कर बैठ जाते थे। आन्ध्र प्रदेश की राज्यपाल कुमदवेदन जोशी के बारे मे ऐसी ही शिकायत की गई। कर्नाटक की बोम्बई सरकार (1989) को बर्खास्त करके राज्यपाल वेंकटसुब्वैया ने केन्द्रीय सरकार के सूबेदार की भूमिका का ही परिचय दिया। पर्यवेक्षकों के अनुसार 'अब देश में टकराव का वातावरण फिर पैदा हो रहा है।' कावेरी जल–विवाद और अयोध्या में मन्दिर निर्माण का मसला टकराव के उभरते मुद्दे हैं। भाजपा शासित राज्यों – राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और मध्य प्रदेश की सरकारों को बर्खास्त करके नरसिम्हा राव सरकार ने केन्द्र–राज्य टकराव को और अधिक प्रखर कर दिया। 21 फरवरी, 1998 को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भण्डारी ने षडयंत्र के तहत् भाजपा मुख्यमंत्री कल्याण सिंह को बर्खास्त कर जगदम्बिका पाल को सदन में शक्ति परीक्षण के बिना ही मुख्यमंत्री पद की तुरत–फुरत शपथ दिला दी। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने राज्यपाल की कार्रवाई को अनुचित बताते हुए रोक लगा दी। शक्ति परीक्षण में जीतने के बाद मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने राज्यपाल रामेश भण्डारी को हटाने की मांग दोहराई। प्रधानमंत्री इन्द्र कुमार गुजराल ने राष्ट्रपति को अपनी मजबूरी बताई कि उनके मन्त्रिमण्डल के अधिकांश सदस्य भण्डारी को पद से हटाने के पक्ष में नहीं है। केन्द्र में भाजपा सरकार बनने के आसार देखते हुए रोमेश भण्डारी ने 16 मार्च 1998 को बर्खास्तगी के भय से त्यागपत्र दे दिया। तमिलनाडु की मुख्यमंत्री जयललिता के निर्देशानुसार 30 जून, 2001 को राज्य में दो केन्द्रीय मन्त्रियों की गिरफ्तारी और राज्य सरकार को केन्द्र द्वारा चेतावनी जारी करना केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में टकराव के विकृत संकेत हैं।

यह सच है कि केन्द्रीय सरकार की अपेक्षाकृत शक्तिशाली स्थिति ने राज्य सरकारों की स्थिति को प्रभावित किया है, किन्तु फिर भी राज्य केन्द्रीय सरकार की प्रशासनिक इकाइयां मात्र नहीं है। ग्रेनविल ऑस्टिन लिखते हैं, "भारत नई दिल्ली नहीं है बल्कि राज्यों की राजधानियाँ भी है। राज्य केन्द्रीय सहायता के आकांक्षी हैं, किन्तु राज्यों के सहयोग के बिना संघ बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकता। राज्य सरकारें केन्द्रीय सरकार की नीतियों का माध्यम हो सकती हैं, किन्तु उनकी सहायता के बिना केन्द्रीय सरकार अपनी योजनाओं को क्रियान्वित नहीं कर सकती। वस्तुतः दोनों ही एक–दूसरे पर निर्भर हैं।"

उपर्युक्त विचार–विमर्श से स्पष्ट होता है कि सुदढ़ केन्द्र के बावजूद झुकाव केन्द्र और राज्यों के बीच सहयोगी साझेदारी के सम्बन्ध की ओर हैं। सहयोगी सम्बन्ध में स्वतंत्रता और परस्पर निर्भरता, दोनों होती हैं और यही समकालीन संघवाद की विशिष्टता है।

राज्यों में केन्द्रीय पहल से संचालित होने वाली परियोजनाओं की संख्या कम होनी चाहिए और केन्द्रीय पहल की परियोजनाओं के मानदण्ड निश्चित होने चाहिएँ। प्रशासनिक सुधार आयोग का विचार था कि राज्यों की परियोजनाओं को दो भागों–उत्पादित और गैर–उत्पादित में बांटा जाना चाहिएं योजना आयोग को वे सिद्धान्त तय करने चाहिए जिनके आधार पर परियोजना को दो भागों में बांटा जा सकता है, केवल उत्पादित परियोजना के लिए ही ऋण सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए। ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि इस परियोजना के चालू होने पर ब्याज सहित ऋण लौटाया जा सके। केन्द्रीय सरकार अपने कर्मचारियों का मंहगाई भत्ता, आदि बढ़ाती रहती है जिसका प्रभाव राज्यों के बजट पर भी पड़ता है। राज्य कर्मचारी भी केन्द्र के बराबर मंहगाई भत्ते की मांग करते हैं, राज्य सरकारों को उनकी मांगों के आगे झुकना पड़ता है जिससे उन पर काफी आर्थिक भार बढ़ जाता है। आयोग का विचार है कि केन्द्रीय सरकार की नीति के कारण ही मुद्रा–प्रसार बढ़ता है। अतः राज्यों के इस प्रकार के बढ़ते हुए व्यय का भार केन्द्रीय सरकार को ही वहन करना चाहिए।

राजमन्नार समिति का सुझाव था कि वित्त आयोग स्थायी रूप से स्थापित किया जाए तथा राज्यों के पक्ष में करों का पहले से अधिक वितरण हो ताकि उन्हें केन्द्र पर कम–से–कम निर्भर रहना पड़े। राज्यों को वित्तीय क्षेत्र में स्वायत्तता प्रदान करनी चाहिए। राज्यों को निगम कर, निर्यात कर तथा आबकारी कर में हिस्सा मिलना चाहिए।

राज्य स्वायत्तता की मांग का बिगुल बजाते हुए पश्चिमी बंगाल की वामपन्थी सरकार ने अपने मसविदे में कहा है – (i) कुल राजस्व का 75 प्रतिशत भाग राज्य सरकारों को व्यय हेतु प्रदान किया जाए। (ii) योजना आयोग की कार्यप्रणाली में फेर–बदल किया जाए। (iii) राज्यों को कर लगाने एवं वसूलने का पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए। (iv) संविधान के अनुच्छेद 280 की धारा 2 और 7 को समाप्त करना चाहिए। (v) केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के वाणिज्य सम्बन्धित संविधान के अनुच्छेद 302 में निहित अधिकारों को खत्म करना चाहिए।

वित्त सम्बन्धी मसलों पर राज्यों की शिकायतों पर विचार करते हुए सरकारिया आयोग ने सिफारिश की है कि (1) संविधान में उचित संशोधन करके निगम कर की निबल आय अनुज्ञेय सीमा तक राज्यों में हिस्से योग्य की जा सकती है। (2) संघ सरकार को आयकर पर अधिभार नहीं लगाना चाहिए। (3) खनिजों, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस की गारण्टी दरों की समीक्षा हर दो वर्ष में एक बार सही समय पर जब भी निर्धारित हो, की जानी चाहिए। (4) प्राकृतिक आपदाओं के होने पर तुरन्त सहायता दी जानी चाहिए (5) संघ सरकार को, अनुच्छेद 293 के खण्ड (4) के अन्तर्गत राज्यों को बैंकों और वित्तीय संस्थाओं में एक वर्ष से कम अवधि के उधार लेने के लिए सहज सहमति दे देनी चाहिए। (6) वित्त आयोग में विशेषज्ञों को स्थान दिया जाना चाहिए। यदि राज्यों से उपयुक्त विशेषज्ञों को लिया जाए और वित्त आयोग के सचिवालय में भी कर्मचारियों के रूप में उन्हें नियुक्त किया जाए तो लाभ होगा।

संक्षेप में, राज्यों की वित्तीय क्षमता में वद्धि करने हेतु निम्नलिखित चार मोटे–मोटे सुझाव दिए जा सकते हैं – (i) राज्यों के राजस्वों में वद्धि करने हेतु कतिपय कराधार की मदें उन्हें और दी जानी चाहिए, निगम–कर और आयकर के अधिभार की आमदनी का भी केन्द्र और राज्यों में बंटवारा किया जाना चाहिए। (ii) योजनागत और गैर–योजनागत अनुदानों के अन्तर को समाप्त किया जाए और राज्यों को आबंटित की जाने वाली अनुदान राशि देने की निश्चित प्रक्रिया का निर्धारण किया जाए। (iii) वित्त आयोग को स्थायी संवैधानिक निकाय का दर्जा दिया जाए, क्योंकि वर्तमान में योजना आयोग की प्रभावकारी भूमिका से वित्त आयोग की भूमिका कम हो गई है। (iv) राज्यों को दिए जाने वाले ऋण संवैधानिक सत्ता द्वारा निश्चित मापदण्डों के आधार पर दिए जाएं।

वस्तुतः राज्यों को अधिक मात्रा में वित्तीय साधन तभी उपलब्ध किए जा सकते हैं जब अधिक साधन एकत्रित किए जाएं। सभी वित्त विशेषज्ञ यह मानते हैं कि गत 53 वर्षों में राज्य सरकारों ने अपना खर्चा तो तेजी से बढ़ाया, लेकिन इसकी पूर्ति के लिए समुचित वित्तीय साधन विकसित नहीं किए। लोकप्रियता पाने और चुनाव में हार के भय से राज्यों ने नए कर न लगाने की नीति अपनाई तथा खर्च की पूर्ति के लिए केन्द्र पर बार–बार दबाव डाला।

इण्डिया टूडे ने लिखा है : "राज्य अपनी बदहाली के लिए खुद कम जिम्मेदार नहीं है। वर्षों से लोक लुभावन कार्यक्रमों और कुव्यवस्था के घातक मेल की वजह से राज्यों की आर्थिक दशा खोखली हो रही है। पंजाब की मिसाल गौरतलब है। सत्ता संभालने के दिन से ही अकालीदल–भाजपा की साँझी सरकार दानी बनी हुई है। एक ओर उद्योगपतियों और व्यापारियों को बिक्री कर में छूट देने की वजह से राज्य का कर राजस्व घट रहा है, तो दूसरी और किसानों को मुफ्त बिजली मुहैया कराने सरीखे तुष्टीकरण के वेजा कार्यक्रमों से खर्च नियन्त्रण से बाहर हो गया है। देश में सबसे अधिक प्रति व्यक्ति आय वाले इस प्रदेश में बिक्रीकर के मद में हर साल 4,200 करोड़ रु. वसूलने की क्षमता है लेकिन वह इसका एक तिहाई यानि केवल 1,400 करोड़ रु. ही वसूलता है..... पंजाब में हर विधायक को एक टाटा सूमों दी गई और हर महीने 500 लीटर डीजल मुफ्त... मन्त्रियों को मुफ्त में पेट्रोल बेहिसाब खर्च करने की छूट मिली हुई है....।"

क्या राज्यों के लिए संसाधन जुटाने के लिए केन्द्र के वित्तीय अधिकारों में जबर्दस्ती कटौती की जाए? यह तथ्य है कि वित्त आयोग ने भी समय–समय पर केन्द्रीय आय–कर में राज्यों का हिस्सा बढ़ाने की सिफारिशें की और परिणामस्वरूप आज आय–कर का 77.5 प्रतिशत भाग राज्यों को दिया जाता है, जबकि 1950 में राज्यों को 55 प्रतिशत हिस्सा मिलता था।

वस्तुतः वित्तीय अधिकारों के मामले में केन्द्र तथा राज्यों के बीच किसी प्रकार के विवाद या टकराव की गुंजाइश नहीं है। वे एक–दूसरे के पूरक बन सकते हैं। दिशा निर्देश देने, तालमेल बैठाने तथा संसाधनों के वितरण का काम केन्द्र के जिम्मे हो तथा आर्थिक कार्यक्रमों पर अमल का दायित्व और अधिकार राज्यों के अन्तर्गत हो तो विवाद का कोई कारण नजर नहीं आता है।

अध्याय-13

उच्चतम न्यायालय तथा न्यायिक पुनरावलोकन
(The Supreme Court and the Judicial Review)

भारत में उच्चतम न्यायलय संविधान के रक्षक और संविधान के अन्तिम व्याख्याता के रूप में कार्य करता है। भारतीय उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन की व्यापक शक्तियां प्राप्त हैं। वह संसद द्वारा पारित ऐसी किसी भी विधि को अवैध घोषित कर सकता है जो संविधान के विरूद्ध हो। इसी शक्ति के आधार पर वह संविधान की प्रभुता और सर्वोच्चता की रक्षा करता है। वह संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक है। प्रसिद्ध संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों का अभिरक्षक है। प्रसिद्ध संविधान वेत्ता एम. सी. सीतलवाड़ ने ठीक ही लिखा है–"संविधान के अन्तिम व्याख्याता के रूप में चाहे वह मौलिक अधिकारों का क्षेत्र हो अथवा संघ और राज्य के बीच उठने वाले प्रश्न एवं देश के समस्त कानूनों और प्रथाओं पर आधारित नियमों का क्षेत्र हो, राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक उन्नति के यंत्र स्वरूप, सर्वोच्च नयायालय के प्रभाव पर बल देने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।" भारत, के उच्चतम न्यायालय को विस्तत परामर्शदात्री शक्तियां प्राप्त हैं और सार्वजनिक महत्त्व के कानूनों तथा तथ्यों पर राष्ट्रपति ने अनेक बार उच्चतम न्यायालय के परामर्श से लाभ उठाया है। एम. वी. पायली के शब्दों में–"शायद ही कोई और न्यायालय ऐसा हेा जिसे संविधान के अन्तर्गत इतना क्षेत्र, अधिकार एवं महत्त्व प्रदान किया गया हो।"

सर्वोच्च न्यायालय का संगठन
(Composition of the Supreme Court)

मूल रूप से सर्वोच्च न्यायालय के लिए मुख्य न्यायाधीश तथा 7 अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था की गयी थी और संविधान के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार, न्यायाधीशों को वेतन और सेवा शर्ते निश्चित करने का अधिकार संसद को दिया गया है। संसद के द्वारा समय–समय पर कानून में संशोधन कर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या में वद्धि की गयी हैं। 1985 में विधि द्वारा यह निर्धारित किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश और 25 अन्य न्यायाधीशों होंगे। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति करता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करने में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश से अवश्य ही परामर्श लेता है। विशेष स्थिति उत्पन्न होने पर भारत का मुख्य न्यायाधीश भारत के राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर तदर्थ न्यायाधीशों (Adhoc Judges) की नियुक्ति कर सकता है। इस प्रकार की तदर्थ नियुक्तियां करते समय भारत के मुख्य न्यायाधीश को उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से सलाह लेनी होगी जिसमें से न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाए। भारत में तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति कनाड़ा में प्रचलित ऐसी ही प्रथा के समान है। सर्वोच्च या संधीय न्यायालय के पदनिवत न्यायाधीश को राष्ट्रपति की पूर्व–स्वीकति प्राप्त कर सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनाया जा सकता है।

मुख्य न्यायाधीशों की नियुक्ति और तत्सम्बन्धी विवाद (Appointment of the Chief Justice of India and Controversy about that)—सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में संविधान लागू किये जाने के समय से लेकर 1972 ई. तक यह परम्परा चली आ रही थी कि मुख्य न्यायाधीश के सेवानिवत होने के बाद उसके स्थान पर दूसरे मुख्य न्यायाधीशकी नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति द्वारा सेवानिवत होने वाले मुख्य न्यायाधीश से परामर्श अवश्य ही लिया जाता था और यह नियुक्ति न्यायाधीशों की वरिष्ठता के आधार पर की जाती थी। केवल एक बार 1964 में श्री जफर ईमाम को उनकी वरिष्ठता के बावजूद सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का पद नहीं प्रदान किया गया, लेकिन यह निर्णय बहुत कुछ सीमा तक श्री जफर के स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों के आधार पर किया गया था, लेकिन अप्रैल 1973 में जब प्रधान न्यायामूर्ति

श्री सीकरी सेवानिवत हुए तो तीन न्यायाधीशों (श्री शेलट,श्री हेगडे और श्री ग्रोवर) की वरिष्ठता का उल्लघंन करके श्री अजीतनाथ रे की मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति किया गया था। श्री अजीतनाथ रे की नियुक्ति के सम्बन्ध में श्री सीकरी से परामर्श नहीं लिया गया था। समस्त देश के विधि जगत द्वारा इस नियुक्ति का घोर विरोध किया गया। अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश श्री सीकरी ने प्रतिक्रिया व्यक्त की कि, "सरकारी निर्णय राजनीतिक था।" श्री छगला ने कहा, "यह न्यायिक इतिहास का सर्वाधिक अंधेरा दिन है।" सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिएशन ने इसे पूर्णतया राजनीतिक और गुण से सम्बन्ध नहीं (Purely Political and having no relation to merits) बतलाया लेकिन दूसरी और सरकारी पक्ष का प्रतिपादन करते हुए मन्त्री श्री कुमारमंगलम ने संसद में कहा कि "मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति मात्र वरिष्ठता के आधार पर नहीं की जा सकती और **न्यायाधीश का दष्टिकोण, उनका सामाजिक दर्शन हवा का रूख पहचानने की उनकी शक्ति और संसद की सर्वोच्चता को मान्यता-सर्वोच्च न्यायाधीश के पद पर नियुक्ति के महत्वपूर्ण आधार होने चाहिए।"** उन्होंने स्पष्ट कहा कि "यह आज की सरकार के विवेक पर निर्भर है कि वह अपनी दष्टि में उपयुक्त व्यक्ति का नियुक्त करे। देश के सर्वोच्च न्याय आासन पर बैठने वाले का दष्टिकोण व दर्शन भी उपयुक्त होना चाहिए।" इस विचार पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हए प्रसिद्ध विधिवेत्ता पालकीवाला ने कहा : "अनुभव से हमें सीखना चाहिए कि राजनीति में न्याय के तत्वों का प्रवेश उचित है, पर न्याय में राजनीति का प्रवेश विनाशकारी है। सरकार का यह दावा कितना असंगत है कि उसे सर्वोच्च न्यायालय में ऐस न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार है जो सत्ताधारी दल के दर्शन में आस्था रखते हैं। मान लीजिए एक ऐसा दल सत्ता में पहुंचे जिसकी विचारधारा संविधान के विपरीत हो, तो ऐसी अवस्था में न्यायाधीश संविधान का पालन करेंगे या सत्ताधारी दल के दर्शन का।" इस नियुक्ति के विरोध में सर्वोच्च न्यायालय के तीनों न्यायाधीशों–श्री शेलेट, श्री हेगड़े और श्री ग्रोवर ने त्यागपत्र दे दिया। समस्त देश में व्यापक रूप से शंका व्यक्त की गयी कि मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में अपनायी गयी यह नवीन सरकारी नीति न्यायपलिका को कार्यपालिका की चेरी बना देगी और इससे न्यायपलिका की स्वतन्त्रता तथा प्रतिष्ठा पर आघात पहुंचेगा। समस्त स्थिति पर विचार करने के लिए 11 और 12 अगस्त को दिल्ली में सर्वोच्च न्यायालय बार ऐसोसिशन के तत्वाधान में 'अखिल भारतीय अधिवक्ता सम्मेलन' हुआ। जिसमें लगभग 700 प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। सम्मेलन में यह प्रस्ताव पास किया गया कि उच्च और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति अधिवक्ता संघ और न्यायाधीशों का प्रतिनिधित्व करने वाली समितियों की सिफारिश पर होनी चाहिए और उच्च न्यायालयों या सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को ही नियुक्त किया जाना चाहिए। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता और सम्मान को बनाए रखने को दष्टि से उपर्युक्त सुझाव निश्चित रूप से विचार योग्य है।

सन् 1977 में पुनः 1973 के ही ढंग पर मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति की गयी। जनवरी 1977 में मुख्य न्यायाधीश श्री अजीतनाथ रे के कार्यकाल की समाप्ति पर वरिष्ठता के आधार पर श्री एच. आर. खन्ना को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए था, लेकिन जस्टिस खन्ना की नियुक्ति करने के स्थान पर जस्टिस मिर्जा हमीदुल्ला बेग को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया। सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिशन द्वारा इस नियुक्ति की आलोचना की गयी और अपनी वरिष्ठता का उल्लंघन किये जाने के विरोध में न्यायाधीश एच. आर. खन्ना के द्वारा त्यागपत्र दे दिया गया।

मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति और विवाद का निराकरण (फरवरी 1978)–1977 में सत्तारूढ़ शासक वर्ग न्यायपालिका की स्वतन्त्रता और उसकी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए वचनबद्ध था। अतः मुख्य न्यायधीश पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध ा में वरिष्ठता के सिद्धान्त को पुनः स्वीकार करते हुए फरवरी 1978 मे श्री वाई. वी. चन्द्रचूड़ को मुख्य न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किया गया। अजीतनाथ रे के कार्यकाल की समाप्ति पर तत्कालीन शासक दल के कुछ नेताओं और कुछ विख्यात विधिवेत्ताओं ने कहा कि श्री चन्द्रचूड़ को मुख्यन्यायाधीश के पद पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। उनका कहना था कि मुख्य न्यायाधीश से जिस वैचारिक स्वतन्त्रता और निष्पक्षताकी आशा की जाती है, उसका उनमें दुःखद अभाव रहा है। अप्रैल 1976 में बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) के मामले में उन्होंने साहसपूर्ण निर्णय नहीं दिया। बी. एम. तारकुण्डे के अनुसार, "बन्दी प्रत्यक्षीकरण मामले में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला कानूनी दष्टि से तो कमजोर है ही, जनता और देश के लिए भी यह गम्भीरतम खतरे से भरा है। वह न्याय की धारणा का ही मखौल है।" श्री छगला के द्वारा भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया गया, लेकिन इस प्रकार की आपात्तियों को अस्वीकार करते हुए सरकार द्वारा सोचा गया कि मुख्य न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सुनिश्चित परम्पराओं को अपनाया जाना चाहिए। शासन का यह कार्य न्यायपालिका की स्वतन्त्रता तथा उसके सम्मान को बनाए रखने की दष्टि से उचित है। वस्तुतः मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त निश्चित किये जाने चाहिए, जिससे कि न्यायिक क्षेत्र की इन सर्वोच्च नियुक्तियों के सम्बन्ध में शासन के द्वारा मनमाना

आचरण न किया जा सके और न्यायाधीश पद तथा न्यायाधीश पदधारी व्यक्ति विवाद के विषय न बनें। विधि आयोग ने भी अपनी 80वीं रिपोर्ट में कहा है कि सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में वरिष्ठता के सिद्धान्त का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता की रक्षा और लोकतन्त्र के सुचारू संचालन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में वर्तमान प्रक्रिया–संविधान के अनुच्छेद 124 में प्रावधान है कि सर्वोच्च न्यायालय की नियुक्ति में राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श अवश्य ही लेगा। इस बात को लेकर विवाद था कि क्या राष्ट्रपति अकेले मुख्य न्यायाधीश के परामर्श को मानने के लिए बाध्य है?

इस विवाद के समाधान हेतू राष्ट्रपति द्वारा जुलाई 1998 में एक सन्दर्भ (Reference) सर्वोच्च न्यायालय को भेजा गया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संदर्भ पर 28 अक्टूबर, 1998 को लिए गए निर्णय के आधार पर अब सर्वोच्च न्यायलय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया इस प्रकार है :

राष्ट्रपति द्वारा ये नियुक्तियां सर्वोच्च न्यायालय से प्राप्त परामर्श के आधार पर की जाएगी। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश इस प्रसंग में राष्ट्रपति को परामर्श देने से पूर्व 'चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह' से लिखित परामर्श प्राप्त करेंगे तथा इस परामर्श के आधार पर राष्ट्रपति को परामर्श देंगे।

सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने अपने सर्वसम्मत निर्णय में कहा है कि, "वरिष्ठतम न्यायाधीशों के समूह को एकमत से और लिखित में सिफारिश करनी चाहिए। जब तक न्यायाधीशों के समूह की राय मुख्य न्यायाधीश के विचार से मेल न खाए, तब तक मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति से कोई सिफारिश नहीं जानी चाहिए।"

सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया है कि, "यदि भारत के मुख्य न्यायाधीश परामर्श की प्रक्रिया पूरी किए बिना न्यायाधीशों की नियुक्ति और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में राष्ट्रपति को सिफारिश करते हैं तो सरकार ऐसी सिफारिश मानने के लिए बाध्य नहीं है।"

न्यायिक नियुक्तियों में दखलन्दाजी

हाल ही में ये तथ्य उभर कर सामने आया है कि न्यायिक नियुक्तियों में 'चयन समिति की सिफारिश' के बावजूद राष्ट्रपति भवन की दखलन्दाजी बढ़ने लगी है। पिछले वर्ष सुप्रीम कोर्ट में चार न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने फाईल पर यह आसाधारण टिप्पणी दर्ज कर दी थी कि सुप्रीम कोर्ट की पीठ में होने वाली नियुक्तियों में भी अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए आरक्षण होना चाहिए। इसी चरण में राष्ट्रपति भवन ने सुप्रीम कोर्ट में तीन न्यायाधीशों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव को महीने भर से ज्यादा समय से लटकाए रखा। पर मुख्य न्यायाधीश आदर्श सेन आनन्द के नेतत्व वाली मौजूदा न्यायपालिका उच्च न्यायालयों समेत किसी भी स्तर पर किसी रूप में कार्यपालिका की दखजन्दाजी के सख्त खिलाफ है।

न्यायाधीशों की योग्यता (Qualification for the Judges)–सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों में अग्रलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है :

(1) वह भारत का नागरिक हो।

(2) वह किसी उच्च न्यायालय अथवा ऐसे दो या दो से अधिक न्यायालयों में लगातार कम से कम 5 वर्ष तक न्यायाधीश के रूप में कार्य कर चुका हो।

या

किसी उच्च न्यायालय अथवा न्यायालयों में लगातार, 10 वर्ष तक अधिवक्ता (Advocate) रह चुका हो।

या

राष्ट्रपति के विचार में एक पारंगत विभिन्नता

यह अन्तिम उपबन्ध वस्तुतः नियुक्ति के क्षेत्र को व्यापक करने के लिए रखा गया है। इस उपबन्ध के अनुसार किसी विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाला कोई विख्यात न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश पद पर नियुक्त किया जा सकेगा।

संविधान में यह स्पष्ट रूप से लिखित है कि सर्वोच्च न्यायालय का कोई भी न्यायाधीश भारत राज्य क्षेत्र में किसी न्यायालय

अथवा किसी अन्य पदधिकारी के न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता है और न वह किसी न्यायालय में किसी अन्य रूप में कार्य कर सकता है।

कार्यकाल तथा महाभियोग (Term and Impeachment)—सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सेवानित्तित की आयु 65 वर्ष है। यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरीका के संविधान की भांति भारतीय संविधान में आजीवन कार्यकाल की व्यवस्था व्यवहारतः वैसी ही है, क्योंकि भारत में औसत आयु को देखते हुए 65 वर्ष की आयु बहुत होती है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 128 में किसी सेवानिवत न्यायाधीश की नियुक्ति करने की भी विशेष व्यवस्था की गयी है। इस अवस्था के पूर्व वह स्वयं त्यागपत्र दे सकता है। इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को उसके पद से केवल प्रमाणित दुर्व्यवहार या अक्षमता के आधार पर ही हटाया जा सकता है। इस प्रकार के महाभियोग की कार्यविधि निश्चित करने का अधिकार संसद का प्राप्त है। कार्यविधि चाहे जो हो, लेकिन संसद के दोनों सदनों को अलग–अलग अपने कुल सदस्यों की संख्या के बहुमत और उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो–तिहाई मत से प्रस्ताव पास करना होगा और वह प्रस्ताव राष्ट्रपति को भेजा जाएगा। उसके बाद राष्ट्रपति उस न्यायाधीश की पदच्युति का आदेश जारी करेगा। इस संबन्ध में यह आवश्यक है कि न्यायाधीश के विरूद्ध महाभियोग का प्रस्ताव एक ही सत्र में स्वीकार होना चाहिए और न्यायाधीश को अपने पक्ष के समर्थन तथा उसकी पैरवी का पूरा अवसर प्रदान किया जाएगा।

वेतन, भत्ते और सेवा शर्ते (Salary, Allowances and Service Conditions)—सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिए जाएंगे जो संसद विधि द्वारा निर्धारित करे। 'उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय न्यायाधीश सेवा शर्त संशोधन विधेयक 1998 के आधार पर इन न्यायाधीशों के वेतन में आवश्यक सुधार किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के लिए 33 हजार रू. मासिक तथा अन्य न्यायाधीशों के लिए 30 हजार रू. मासिक निर्धारित किया गया है। न्यायाधीशों को यह संशोधित वेतन 1 जनवरी, 1996 से देय है।

इन न्यायाधीशों को मासिक भत्ता, यात्रा भत्ता, निवास सुविधा, स्टाफ कार, सीमित मात्रा में पेट्रोल तथा अन्य कुछ सुविधाएँ भी प्राप्त होती है।

न्यायाधीशों के लिए पेन्शन और सेवानिवत (ग्रेच्युटी) की व्यवस्था सर्वप्रथम 1976 में की गई थी। 1986 में पेन्शन, ग्रेच्युटी तथा सेवा शर्तो में भी उल्लेखनीय सुधार किया गया है। पेन्शन की अधिकतम सीमा मुख्य न्यायाधीश के लिए 60 हजार रूपये वार्षिक व अन्य न्यायाधीशों के लिए 54 हजार रूपये वार्षिक है। ग्रेच्युटी 30 हजार रूपये से बढ़ाकर 50 हजार रूपये कर दी गयी है। न्यायाधीशों की नियुक्ति के बाद उनके, भत्ते, आदि में कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। उन्हें वेतन व भत्ते भारत की संचित निधि से दिये जायेंगे जिस पर भारतीय संसद को काई अधिकार प्राप्त नहीं है।

उन्मुक्तियां (Immunities)—न्यायाधीशों को अपने सभी कार्यो और निर्णय के लिए आलोचना से मुक्ति प्रदान की गयी, किन्तु न्यायालय के किसी निर्णय या किसी न्यायाधीश की किसी सम्मत्ति की शैक्षणिक दष्टि से आलोचनात्मक विवेचना की जा सकती है। न्यायाधीश पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता है कि उन्होंने किसी प्रेरणा या हितवश एक विशेष प्रकार का निर्णय दिया। संसद के द्वारा भी महाभियोग के प्रस्ताव पर विचार करने के अतिरिक्त अन्य किसी समय पर न्यायाधीशों के आचरण पर विचार नहीं किया जा सकता है। न्यायालय को अधिकार प्राप्त है कि वह अपना सम्मान बनाये रखने और शत्रुतापूर्ण आलोचना से अपनी रक्षा करने के लिए किसी भी तथा कथित अपराधी के विरूद्ध न्यायालय के अवमान की कार्यवाही कर सके। सन् 1953 में इस न्यायालय के एक निर्णय पर 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' द्वारा की गयी एक टिप्पणी के कारण उस समाचार–पत्र के सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक के विरुद्ध न्यायालय अवमान की कार्यवाही की गयी थी। न्यायालय अवमान की कार्यवाही ने केवल गरिमा की रक्षा करने हेतु वरन ऐसे कार्य को रोकने के लिए भी की जा सकती है, जिसका इसकी निष्पक्ष निर्णय की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका हो। 'दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य' के विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसा ही निर्णय दिया था।

सर्वोच्च न्यायालय का अवस्थापन
(Establishment of the Supreme Court)

संविधान में सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार दिया गया है कि वह स्वयं अपना अवस्थापन (Establishment) रखे और उस पर पूरा नियन्त्रण भी रखें। इस सम्बन्ध में संविधान–निर्माताओं का उचित रूप से यह मत था कि यदि इस प्रकार की व्यवस्था न हो तो न्यायालय की स्वाधीनता केवल एक भ्रम ही सिद्ध होगी। सर्वोच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और कर्मचारियों की सब नियुक्तियां मुख्य न्यायाधीश द्वारा या उसके द्वारा इस कार्य पर लगाये गये किसी अन्य न्यायाधीश द्वारा या पदाधिकारी

द्वारा की जाती हैं। इन पदाधिकारियों की सेवा शर्ते भी इस न्यायालय द्वारा ही निर्धारित की जाती हैं, उन पर होने वाले व्यय तथा न्यायालय के अवस्थापन के अन्य व्यय भारत की संचित निधि से किये जाते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि (Procedure of the Supreme Court) –सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि के सम्बन्ध में संविधान ने कुछ व्यवस्थाएं की हैं । इसके अतिरिक्त, संविधान ने भारतीय संसद को भी इस सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार प्रदान किया है तथा अन्य बातों पर सर्वोच्च न्यायालय स्वयं भी राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर नियम निर्मित करने की क्षमता रखता है। इसकी कार्यविधि के सम्बन्ध में संविधान द्वारा निम्न व्यवस्थाएं की गयी है :

(1) जिन विषयों का सम्बन्ध संविधान की व्यवस्था से हो या जिसके अर्न्तगत संवैधानिक प्रश्न उपस्थित हो या जिसमें विधि के अभिप्राय का स्पष्ट करने की आवश्यकता हो या जिन विषयों पर विचार का कार्य भारत के राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय को सौंपा हो, उनकी सुनवाई सर्वोच्च न्यायालय के कम–से–कम 5 न्यायाधीशों द्वारा की जाती हैं।

(2) सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख किसी ऐसे मुकदमें की अपील भी प्रस्तुत की जा सकती है जिसकी सुनवाई के उपरान्त यह विचार किया जाए कि उसमें संविधान की व्याख्या करना आवश्यक है या कानून के अभिप्राय को तात्विक रूप से प्रकट करना होगा। इस प्रकार के विवाद प्रारम्भ में पांच से कम न्यायाधीशों के सामने उपस्थित हो सकते हैं, पर यदि यह स्पष्ट हो जाए कि उसमें संविधान की व्याख्या या कानून के रूप से स्पष्टीकरण होना आवश्यक है तो भी कम–से–कम पांच न्यायाधीशों के समक्ष उपस्थित किया जाता है और उनकी व्याख्या के अनुसार ही उसका निर्णय होता है।

(3) सर्वोच्च न्यायालय के समस्त निर्णय खुले तौर पर किये जाते हैं।

(4) सर्वोच्च न्यायालय के समस्त निर्णय बहुमत के आधार पर किये जाते हैं। बहुमत के निर्णय से असहमत न्यायाधीश अपना पथक निर्णय दे सकता है। वह अन्य किसी प्रकार से बहुमत के निर्णय को प्रभावित नहीं कर सकता। बहुमत निर्णय ही मान्य होता है।

सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियां (Power of the Supreme Court): संघात्मक संविधान में संघात्मक न्यायालय का विशेष स्थान प्राप्त होता है ताकि संतुलन कायम किया जा सके और संविधान की सर्वोच्च और केन्द्र तथा इकाइयों को अपने–अपने क्षेत्र में स्वायत्तता (Autonomy) कायम की जा सके।

किसी किसी ऐसे न्यायलय की आवश्यकता होती है जोकि संविधान की व्याख्या कर सके, केन्द्र और राज्यों के झगड़े को या राज्यों के आपसी झगड़ों को निपटा सके। नहीं तो एक दूसरे के अधिकारों में हस्तक्षेप और वाद–विवाद उत्पन्न हो जाएंगे। संविधान द्वारा दिए गए मौलिक अधिकारों को सुरक्षित रखने की आवश्यकता है ताकि सरकार उनको छीन न ले। इसको सुरक्षित रखने के लिए संविधान ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय को बहुत–सी शक्तियां प्रदान की हैं। कुछ लेखक तो भारत के सर्वोच्च न्यायालय को अमेरीका के सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक शक्तिशाली बताते हैं। श्री अल्लादी कष्णा स्वामी अय्यर का कहना है, "भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संसार के किसी भी अन्य सर्वोच्च न्यायालय से अधिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भी अधिक। (The Supreme Court of India has wider jurisdiction that the highest Court in any Federation of the world including the Supreme Court of U.S.A.) भारत के न्यायालय को वास्तव में बहुत सी शक्तियाँ दी गई हैं, जिनका पता निम्नलिखित बातों से चलता है :

1. **प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction):** सर्वोच्च न्यायालय को कुछ मुकद्दमों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। अर्थात कुछ ऐसे मुकद्दमें हैं जो सीधे सर्वोच्च न्यायालय के पास ले जाए जा सकते हैं। सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे सभी झगड़ों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा, जिनमें
   (i) झगड़ा केन्द्रीय सरकार और एक या अधिक राज्य के बीच हों।
   (ii) दो या अधिक राज्यों में आपस में विवाद हो या झगड़ों में कोई कानूनी प्रश्न हो जिस पर कोई कानूनी अधिकार निर्भर हो।

इस अधिकार से सर्वोच्च न्यायालय संघ और राज्यों में सन्तुलन पैदा कर सकता है। उपरिलिखित प्रकार के मुकद्दमे भारत के किसी अन्य न्यायालय में नहीं ले जाए जा सकते।

अपवाद (Exception):निम्मलिखित प्रकार के झगड़े सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में नहीं आते :

1. सरकारों के मध्य झगड़ा किसी न्यायोचित अधिकार पर आधारित होना चाहिए। सरकारों के बीच जो झगड़े किसी विधि पर आधारित न हों या जिनका आधार वैधानिक ने हो, ये सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार में नहीं आते।
2. सातवें संशोधन के अनुसार संविधान के आरम्भ होने से पहले की गई राज्यों और संध के बीच की संधियों और समझौतों इत्यादि में कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार इसे नहीं है।
3. सर्वोच्च न्यायालय को व्याक्तियों, सभाओं (Associations) और स्थानीय संस्थाओं के बारे में भी कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार नहीं है।
4. संसद कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों में राज्य के आपसी झगड़े को निकाल सकती है जबकि ये झगड़े किसी साझी नदी या घाटी के पानी के प्रयोग, वितरण या नियन्त्रण के विषय में हों।
5. इसको ऐसे मामले में, जो वित्त आयोग को संघ और राज्यों में कई प्रकार के खर्चे के विषय में सौंपे गए हों, कोई प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार नहीं है।

नागरिकों के मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र (Enforcement of Fundamental Rights in Original Jurisdiction): संविधान के तीसरे भाग में जो मौलिक अधिकार दिए गए हैं, उनको लागू करवाने के लिए नागरिक न्यायालय के पास जा सकते हैं। नागरिक मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए उच्च न्यायालय में भी जा सकते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वे पहले सम्बन्धित राज्य के उच्च न्यायालय के शरण लें और बाद में सर्वोच्च न्यायालय का द्वारा खटखटाएं। नागरिक सीधे सर्वोच्च न्यायालय के पास जा सकते है। रामजी लाल बनाम इन्कम टैक्स ऑफिसर के मुकद्दमें का निर्णय करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित मुकद्दमें ही इसके प्रारम्भिक क्षेत्र में आते हैं, वे नहीं जोकि संविधान के किसी और भाग में दिए हों।

राष्ट्रपति व उप-राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवादों का निर्णय करना: (To decide election disputes of the President and Vice-President): 32 वें संशोधन से पूर्व राष्ट्रपति तथा उप–राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों को सुनने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को था और उसका निर्णय अन्तिम होता था। 1967 में डॉ. जाकिर हुसैन तथा 1969 में वी. वी. गिरि के चुनाव–सम्बन्धी विवादों को सर्वोच्च न्यायालय ने सुना था और उनके चुनावों को वैध घोषित किया था। परन्तु अगस्त 1975 में 39 वां संशोधन पास किया गया, जिसके अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों का निर्णय भविष्य में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाएगा। बल्कि ऐसे झगड़ों का निर्णय भविष्य के लिए संसद कानून द्वारा किसी सत्ता या संस्था की व्यवस्था करेगी। 3 फरवरी, 1977 को राष्ट्रपति फखरूद्दीन अली अहमद ने राष्ट्रपति व उप–राष्ट्रपति अधिनियम 1952 को संशोधित करने के लिए अध्यादेश जारी किया और 9 सदस्यों की स्थापना की परन्तु जनता पार्टी ने सत्ता में आने के बाद इस अध्यादेश को समाप्त होने दिया। जनता सरकार ने 39 वे संशोधन को प्रभावहीन बनाने के लिए तथा सर्वोच्च न्यायालय को पुनः राष्ट्रपति व उप राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी विवादों को सुनने का अधिकार देने के लिए 16जून, 1977 को लोकसभा में बिल पेश किया, जिसे 17 जून 1977 को सर्वसम्मति से पास कर दिया गया। इस प्रकार अब फिर सर्वोच्च न्यायालय का राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित विवादों को सुनने का अधिकार प्राप्त हो गया है। 44 वें संशोधन के अनुसार राष्ट्रपति अथवा उप–राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धित सभी सन्देहों और विवादों की जांच सर्वोच्च न्यायालय करेगा तथा सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अन्तिम होगा।

2. **अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction) :** सर्वोच्च नयायालय के तीन प्रकार के अपीलीय क्षेत्राधिकारी हैः

   (i) ***संवैधानिक क्षेत्राधिकार (Constitutional Jurisdiction) :*** संवैधानिक मामलों में यह न्यायालय तब ही अपील सुन सकेगा जब उच्च न्यायालय यह प्रमाण पत्र दे दे कि मुकद्दमें में कोई कानूनी प्रश्न विचारणीय है। यदि वह ऐसा प्रमाण –पत्र देने से इंकार कर देतो सर्वोच्च न्यायालय स्वयं अपील के लिए विशेष स्वीकति दे सकता है।

   (ii) ***दीवानी क्षेत्राधिकार (Civil Jurisdiction):*** दीवानी मुकद्दमें में यह न्यायालय उच्च न्यायालय के किसी फैसले या अन्तिम आदेश के विरुद्ध अपील सुन सकता है यदि उच्च न्यायालय यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमें में 20,000 या इससे अधिक मूल्य की सम्पत्ति का प्रश्न विवादग्रस्त है। परन्तु संविधान के 30 वें संशोधन द्वारा 20,000 रूपए

की राशि की शर्त हटा दी गई है। अब किसी भी राशि का मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय के पास आ सकता हैं जब उच्च न्यायालय यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय के सुनने के योग्य है। यह ऐसे मुकद्दमों की अपीलें सुन सकता है जबकि उच्च न्यायालय यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमें में कोई प्रश्न विवाद ग्रस्त है।

(iii) ***फौजदारी क्षेत्राधिकार (Criminal Jurisdiction):*** निम्नलिखित फौजदारी मुकद्दमों में ये अपीलें सुन सकेगाः

(क) यदि अपील करने पर उच्च न्यायालय अपराधी की रिहाई के फैसले को बदल दे और उसे मत्यु दण्ड दे दे, तो यह दूसरी अपील का मुकद्दमा होगा।

(ख) यदि किसी मुकद्दमें को उच्च न्यायालय ने अपने पास ले लिया हो और उसने किसी अपराधी को मौत का दण्ड दिया हो।

(ग) यदि उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के नियमों के अनुसार यह प्रमाण–पत्र दे दे कि मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुने जाने के योग्य है। परन्तु 134 वें अनुच्छेद के अनुसार अपील की कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है कि यदि उच्च न्यायालय अपराधी को फौजदारी मुकद्दमें में छोड़ने का आदेश जारी कर दे तो उसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील हो।

संविधान ने संसद को अधिकार दिया है कि वह कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के फौजदारी मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकारी को बढ़ा सकती है।

136वें अनुच्छेद के अनुसार सैनिक न्यायालय को छोड़कर किसी भी उच्च न्यायालय के फैसले के विरुद्ध अपील की विशेष स्वीकति देने पर सर्वोच्च न्यायालय पर कोई संवैधानिक प्रतिबन्ध नहीं है और यह बात स्वयं सर्वोच्च न्यायालय पर निर्भर है।

अपने अधिकार का प्रयोग यह न्यायालय इस प्रकार करेगा कि ऐस मुकद्दमों में पीड़ित पक्ष को दुःख से मुक्ति दी जाए, जहां कि प्राकतिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन किया गया हो। चाहे उस पक्ष के पास अपील करने के लिए कोई अन्य उचित कारण न भी हो। इसके इस अधिकार पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता चाहे फैसले को अन्तिम रूप दिया जा चुका हो, परन्तु इस शक्ति का प्रयोग करते समय वह संविधान की धाराओं के विरुद्ध नहीं चलेगा और न ही कोई सुविधा देने की व्यवस्था करेगा जोकि संविधान में नहीं है क्योंकि ऐसा करना कानून के विरूद्ध होगा जोकि न्यायालय का काम नहीं है। कानून बनाना संसद का कार्य है। न्यायालय ने तो केवल यह देखना होता है कि प्रस्तुत विवाद में किसी कानून का उल्लंघन तो नहीं किया गया । जिस कानून के अधीन कार्यवाही की गई है वह संविधान की व्यवस्थाओं का व्यतिक्रमण तो नहीं। उचित और योग्य व्यक्तियों वाले न्यायालय न्यायपूर्वक ऐसे निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं। अन्य न्यायालयों के कार्यो में इससे अधिक दखल यह न्यायालय नहीं देगा।

(3) **मौलिक अधिकारों के विषय में क्षेत्राधिकार (Jurisdiction regarding fundamental Rights):** यह न्यायालय स्वतन्त्रताओं और मौलिक अधिकारों का रक्षक है। 32 वें अनुच्छेद के अनुसार इसे यह शक्ति दी गई है कि यह आदेश या लेख जैस बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habesa Corpus), परमादेश (Mandamus), प्रतिषेध (Prohibition), अधिकार पच्छा (Qua-Warranto) और उत्प्रेषण लेख (Certiorari) मौलिक अधिकारों को लागू करवाने क लए सर्वोच्च न्यायालय की सहायता लेने के अधिकार को राष्ट्रपति स्थागित कर सकता है।

मौलिक अधिकारों को लागू करते समय संसद या विधानमण्डलों द्वारा पास किए कानूनों की व्याख्या करते समय भारत का सर्वोच्च न्यायालय कानूनी नीति की जांच, निरीक्षण और निर्णय नहीं कर सकता। न्यायाधीशों ने केवल यह देखना होता है कि जो कानून उनके नोटिस में लाए गए हैं, वे किसी उपयुक्त संस्था द्वारा बनाए गए हैं ? ऐसा इसलिए किया गया है कि संविधान मे ऐसा लिखा गया है। इस विषय में भारत का सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका के इस न्यायालय से बिलकुल भिन्न है क्योंकि अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को अपनी शक्ति कानून की प्रक्रिया (Process of Law) से प्राप्त हुई है जिसके द्वारा वह कानून की अच्छाई और बुराई को देख सकता है और यदि वह प्राकतिक न्याय के विरुद्ध हो तो उसको रद्द कर सकता है। इसे एक अच्छे विधानमण्डल का कार्य भाग प्राप्त होता है, परन्तु चरणजीत बनाम भारत सरकार में इस न्यायालय ने कहा है कि न्यायायल किसी कानून को तब तक ठीक समझता है जब तक वह बुरा साबित न हो जाए।

4. ***परामर्श शक्तियां (Advisory Powers) :*** 143वें अनुच्छेद के अनुसार राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि किसी भी सार्वजनिक महत्व के विषय पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श कर सकता है; परन्तु इस अनुच्छेद के अनुसार इस न्यायालय के लिए जरूरी है कि वह अपनी राय अवश्य दे और न ही राष्ट्रपति के लिए जरूरी है कि वह इसके परामर्श के अनुसार चले। यह परामर्श कोई निर्णय नहीं होता।

इसमे संदेह है कि 143वें अनुच्छेद द्वारा दी गई राय 141वें अनुच्छेद की धाराओं के अन्तर्गत आती है; परन्तु देहली कानून अधिनियम (Delhi Law Act) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए परामर्श का प्रयोग भिन्न–भिन्न न्यायालयों ने किया है। अमेरिका और आस्ट्रेलिया के सर्वोच्च न्यायालय ऐसे कानूनी प्रश्नों पर राय देने के विरुद्ध हैं। कीथ (Keith) परामर्शी शक्तियों के पक्ष में हैं क्योंकि इससे समय की बचत होती है।

कुछ लोगों ने सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार–क्षेत्र की आलोचना की है। उनका कहना है कि सर्वोच्च न्यायालय को काल्पनिक अथवा सम्भावित (Hypothetical) कानूनी प्रश्नों पर अपने विचार नहीं प्रकट करने चाहिएँ। उसको केवल उन्हीं प्रश्नों पर ही सम्मति देनी चाहिए जो अभियोग के रूप में उसके पास आते हैं।

परन्तु यह आलोचना निराधार है क्योंकि हमारे देश में लिखित संविधान है तथा वह देश का आरम्भिक कानून है; समस्त देश का राज्य कार्य इसी कानून के अनुसार ही चलाया जाता है। किसी भी कानून के विषय में तब तक कोई निश्चित सम्मति नहीं बनाई जा सकती जब तक कि सर्वोच्च न्यायालय उसकी संवैधानिकता के विषय में अन्तिम निर्णय नहीं दे देती है। इसलिए ऐसे कानून के विषय में जिनकी संवैधानिकता के विषय में अन्तिम निर्णय नहीं दे देती। इसलिए ऐसे कानून के विषय में जिनकी संवैधानिकता के विषय में सन्देह हो, सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति ले लेनी बहुत उचित है क्योंकि इस प्रकार जीवन में स्थिरता उत्पन्न होती है तथा मुकद्दमें बाजी कम होती है।

राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय से अभी तक नौ मामलों में सलाह मांगी है और सर्वोच्च न्यायालय ने सभी मामलों में अपनी राय दी है। राष्ट्रपति की ओर से सबसे पहले 1951 में देशी रियासतों के भारत संघ में विलय के सम्बन्ध में राय मांगी गई थी। इसके अतिरिक्त 1958 में केवल शिक्षा विधेयक 1960 में बेरूबाड़ी के सम्बन्ध में, 1963 में तटकर अधिनियम, 1964 में उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य श्री केशव सिंह से सम्बन्धित मामलों पर तथा 1974 में गुजरात विधानसभा के भंग होने के कारण, अगस्त 1974 मे राष्ट्रपति का चुनाव करवाने के सम्बन्ध में राय मांगी थीं। सर्वोच्च न्यायालय ने विधानसभा के भंग होने की स्थिति में राष्ट्रपति का चुनाव करवाने के सम्बन्ध मे 5 जून, 1974 को अपना परामर्श दिया था, जिसमें कहा गया था कि अनुच्छेद 62 के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव पहले राष्ट्रपति के कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व होना आवश्यक है चाहे विधानसभा भंग क्यों न हो। एक अगस्त, 1978 को राष्ट्रपति श्री नीलम संजीवा रेड्डी ने आपातकाल में किए गए अपराधों के लिए शाह आयोग आदि आयोगों द्वारा दोषी पाए गए विशिष्ट व्यक्तियों पर, जिनमें भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्रीमति इन्दिरा गांधी तथा उनके कुछ मन्त्रिमण्डलीय सहयोगी और उनके पुत्र श्री संजय गांधी शामिल थे, मुकद्दमा चलाने के लिए विशेष अदालतों के गठन की संवैधानिकता वैधता के बारे में राय मांगी। सर्वोच्च न्यायालय से विशेष रूप से इस प्रयोजन के लिए तैयार किए गए एक विधेयक के मसौदे पर राय देने के लिए कहा गया। सर्वोच्च न्यायालय ने 1 दिसम्बर, 1978 को अपनी राय देत हुए आपातकाल के दौरान हुए अपराधों के लिए अन्य राजनीतिक तथा सार्वजनिक पदों पर आसीन व्यक्तियों पर मुकद्दमें चलाने हेतु विशेष न्यायालयों के गठन को संवैधानिक रूप से वैध बताया। राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद के मामले पर राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांगा कि अयोध्या में राम मन्दिर था या नहीं। 2 अक्टूबर; 1994 को अपना ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए कहा कि सर्वोच्च न्यायालय राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिए बाध्य नहीं है और इसके साथ ही उसने अयोध्या मामले पर राष्ट्रपति को परामर्श देने से इन्कार कर दिया।

5. **अपने निर्णय के पुर्निरीक्षण का अधिकार (Power to Review its own Decision):** चाहे सर्वोच्च न्यायालय के जज उच्चकोटि के विधिवेत्ता हैं तथा सर्वोच्च न्यायालय में निर्णय करते समय छान–बीन करते है फिर भी उनसे कभी न कभी गलती हो सकती है। इसलिए उनको अपने निर्णय तथा आदेशों का पुर्निरीक्षण करने का अधिकार दिया गया है। इसके द्वारा उनसे किए गए गलत निर्णय भी संशोधित किए जा सकते है। सर्वोच्च न्यायालय का यह अधिकार दिया गया है क्योंकि देश में इससे बड़ा कोई न्यायालय नहीं जिसमें इसके विरुद्ध अपील हो सके। उदाहरणस्वरूप सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य के मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर

सकती है। परन्तु 1967 में गोलकनाथ मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती। 1973 में केशवानंद भारती मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है।

6. **एक अभिलेख न्यायालय (A Court of Record):** संविधान की धारा 129 द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को एक अभिलेख न्यायालय भी माना गया है। इसकी समस्त कार्यवाही तथा निर्णय सदैव के लिए यादगार तथा प्रमाण के रूप में प्रकाशित किए जाते है तथा देश के समस्त न्यायालयों के लिए यह निर्णय न्यायिक दष्टांत (Judicial Precedents) के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। इन अभिलेखों का इतना महत्त्व होता है कि इनकी पवित्रता पर उंगली नहीं उठाई जा सकती तथा न ही देश के अन्य न्यायालय इन अभिलेखों के विरुद्ध जा सकते है; जब किसी न्यायालय को कानून द्वारा अभिलेख न्यायालय बना दिया जाता है तब ऐसे न्यायालय को न्यायालय के अपमान (Contempt of Court) का दण्ड देने का अधिकार मिल जाता है तथा इस अधिकार को संविधान द्वारा स्वीकति मिली है।

7. **सर्वोच्च न्यायालय को न्यायालयों की कार्यवाही तथा कार्यविधि का नियमित करने के लिए नियमों का निर्णय करने की शक्ति (Power to frame rules to regulate the activities of the Courts):** सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेद 145 द्वारा न्यायालय की कार्यवाही तथा कार्यविधियों को नियमित करने के लिए समय–समय पर नियमों का निर्माण करने की शक्ति दी गई है। 42 वें संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद में एक नई उपधारा सम्मिलित की गई है। इस नई उपधारा के अधीन सर्वोच्च न्यायालय को अनुच्छेदों 131ए तथा 138ए के अधीन की जाने वाली कार्यवाहियों को नियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति दी जाती है।

8. **मुकद्दमें को स्थानान्तरित करने की शक्ति (Power regarding Transference of Cases):** 42वें संशोधन 1976 के द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 139ए सम्मिलित किया गया है। इसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय शीघ्र न्याय दिलाने के उद्देश्य से किसी मुकद्दमें को एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में भेज सकता है। महान्यायवादी (Attorney General) को अधिकार दिया गया है कि यदि यह उचित समझे कि किसी उच्च न्यायालय में सार्वजनिक हित से सम्बन्धित कोई मामला लम्बित है और उसमें कोई महत्त्वपूर्ण कानूनी मुकद्दमा निहित है तो वह सर्वोच्च न्यायालय से प्रार्थना करसकता है उस मामले को उच्च न्यायालय से मंगवा कर सर्वोच्च न्यायालय में निपटाया जाए।

9. **संविधान की व्याख्या तथा रक्षा (Interpretation and Protection of the Constitution):** संविधान की व्याख्या तथा रक्षा करना भी सर्वोच्च न्यायालय का कार्य है। जब कभी भी संविधान की व्याख्या के बारे में कोई मतभेद उत्पन्न हो तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्याख्या की जाती है और सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्या को अन्तिम तथा सर्वोत्तम माना जाता है। अनुच्छेद 141 के अनुसार, "सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित किया गया कानून भारत के क्षेत्र में स्थित सभी न्यायालयों पर बाध्य होगा।" (The Law declared by Supreme Court shall be binding on all Courts within the territory of India.) केवल संविधान की व्याख्या करना ही नहीं बल्कि इसकी रक्षा करनी भी सर्वोच्च न्यायालय का कार्य है। यदि सर्वोच्च न्यायालय को यह विश्वास हो जाए कि संसद द्वारा बनाया गया कानून या कार्यपालिका का आदेश संविधान का उल्लंघन करता है, तो वह उस कानून या आदेश को असंवैधानिक घोषित करके रद्द कर सकता है। संविधान देश की सर्वोच्च विधि है और उसकी रक्षा करना सर्वोच्च न्यायालय का कर्त्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई संविधान की व्याख्या अन्तिम होती है।

10. **विविध कार्य (Miscellaneous Functions):** सर्वोच्च न्यायालय को निम्नलिखित कार्य भी करने पड़ते हैं :

    1. सर्वोच्च न्यायालय अपना कार्य चलाने के लिए अपने पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है। यह नियुक्तियां वह आप तथा संघीय लोक सेवा आयोग की सहायता से करता है।
    2. उच्चतम न्यायालय देश के अन्य न्यायालयों पर शासन करता है। यह देखता है कि प्रत्येक न्यायालय में न्याय ठीक प्रकार से हो रहा है अथवा नहीं।
    3. राष्ट्रपति अथवा उपराष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी यदि कोई मतभेद हो जाए तो उसका निर्णय उच्चतम न्यायालय करता है तथा इसका निर्णय अन्तिम होता है।

4. संघीय लोक सेवा आयोग के सदस्यों तथा सभापति को पदच्युत करने का अधिकार तो राष्ट्रपति के पास है परन्तु राष्ट्रपति ऐसा तब ही कर सकेगा जब उच्चतम न्यायालय उसकी जांच–पड़ताल करके उसको अपराधी घोषित कर दे।

क्षेत्राधिकार में विस्तार (Enlargment of Jurisdiction) : अनुच्छेदों 136 और 139 के अर्न्तगत संसद का अपने अधिनियम द्वारा निम्नलिखित मामलों के सम्बन्ध में सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार विस्तत करने का अधिकार है:

(i) संघ सूची में दिया गया कोई भी मामला, (ii) उच्च नयायपालिका के फैसलों के विरुद्ध फौजदारी मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार, (iii) कोई भी मामला जो भारत सरकार और किसी भी राज्य की सरकार ने समझौते द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को दिया हो, (iv) मूल अधिकारों को लागू करने के अतिरिक्त किसी और उद्देश्य के लिए निर्देश, आदेश तथा लेख जारी करना और (v) सर्वोच्च न्यायालय को संविधान द्वारा सौंपे गए क्षेत्राधिकार को अच्छी प्रकार से प्रयोग करने के लिए कोई दूसरी जरूरी शक्ति।

11. **न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review):** सर्वोच्च न्यायालय का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य संविधान की व्याख्या तथा रक्षा करना है और यही सर्वोच्च न्यायालय का सबसे महत्वपूर्ण अधिकार भी है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय को संविधान का संरक्षक होने के नाते उसकी अन्तिम व्याख्या करने का अधिकार भी प्राप्त है। इसके अधीन वह संसद तथा राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाए कानूनों की पुनःछानबीन कर सकता है तथा उनकों असंवैधानिक तथा नियम–विरुद्ध घोषित कर सकता है। न्यायिक पुनर्विचार का अर्थ है, "उच्च शक्ति जिस के द्वारा उच्चतम न्यायालय यह देखता है कि राज्य सरकारें, तथा केन्द्रीय सरकार के कार्य शासन रचना के विरोधी तो नहीं।" इस के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय जांच करता है कि राज्य विधानमण्डलीय तथा केन्द्रीय सरकार के निर्मित कानून भारतीय संविधान के अनुसार है अथवा नहीं। यदि उच्चतम न्यायालय यह अनुभव करे कि कोई कानून संविधान की धाराओं के विरूद्ध है तो उसको संविधान के विरुद्ध होने के कारण रद्द कर दिया जाता है। इस प्रकार से सर्वोच्च न्यायालय के पास संविधान की व्याख्या करने की अन्तिम शक्ति है। केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के अंग अपनी समस्त शक्ति संविधान से ही प्राप्त करते हैं। एक संघीय राज्य में केंद्रीय तथा राज्य सरकारों के अंग अपनी समस्त शक्ति संविधान से ही प्राप्त करते हैं। एक संघीय राज्य में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की शक्तियों सीमित होती हैं तथा किसी के द्वारा भी अधिकारों का अतिक्रमण संविधान का उल्लंघन समझा जाता है। हमारे संविधान में शक्तियों का विभाजन किया जाता है। संघीय सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद को दिया गया है। इसी प्रकार राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्यों के विधानमण्डलों के पास है। इसी प्रकार जब भी संसद अथवा राज्य सरकारें अपने अधिकारों से बाहर हो कर कोई कार्य करती हैं तब उच्चतम न्यायालय को ऐसे कानून को असंवैधानिक घोषित करने का अधिकार है।

संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार भी संसद तथा राज्य विधानमण्डलों की शक्तियों को सीमित करते हैं। जो भी कानून संविधान में दिए इन मौलिक अधिकारों के विरुद्ध जाता है, उच्चतम न्यायालय, उसको रद्द कर देता है। यह शक्ति उच्च न्यायालय को भी दी गई है।

42वें संशोधन द्वारा संविधान में 144ए नामक एक नया अनुच्छेद सम्मिलित किया गया है जिसके अनुसार केन्द्रीय कानून और राज्य कानूनों की संवैधानिक वैधता का निर्णय ऐसी न्यायपीठ (Bench) द्वारा होना चाहिए जिसमे 7 न्यायाधीश हों और तब तक कोई कानून अवैध करार नहीं दिया जा सकता जब तक कानून की अवैधता के बारे में निर्णय न्यायपीठ के दो तिहाई न्यायाधीशों द्वारा न किया गया हो। 42वें संशोधन द्वारा ही संविधान में अनुच्छेद 131ए शामिल किया जाता है जिसके द्वारा केन्द्रीय कानून की संवैधानिक वैधता को केवल सर्वोच्च न्यायालय मे ही चुनौती दी जा सकती है। 42वे संशोधन से पूर्व केन्द्रीय कानून की संवैधानिकता वैधता की जांच करने का अधिकार उच्च न्यायालय को भी भी प्राप्त था। परन्तु इस संशोधन द्वारा यह अधिकार केवल सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया। जिन विषयों पर केन्द्र और राज्य दोनों के कानूनों की वैधता का प्रश्न निहित हो, उन पर भी केवल सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार दिया गया; परंतु 42 वें संशोधन द्वारा संविधान में अनुच्छेद 32 ए अंकित किया गया जिसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को राज्य के कानून की संवैधानिकता जांच करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों को लागू करने लिए राज्य के कानून की संवैधानिक जांच तभी तक कर सकता था यदि उसमें केन्द्रीय कानून का भी प्रश्न हो। दिसम्बर,

1977 में 43वां संशोधन पास किया गया जिसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के 42वें संशोधन से पहले की स्थिति को स्थापित किया गया है। अर्थात् 43वें संशोधन द्वारा अनुच्छेदों 32ए, 131ए तथा 144ए को संविधान में से निकाल दिया गया है। अतः अब पुनः सर्वोच्च न्यायालय केन्द्र तथा राज्यों के कानूनों की संवैधानिक जांच कर सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग कई महत्वपूर्ण कानूनों को रद्द करने के लिए किया है। 27 फरवरी, 1967को सर्वोच्च न्यायालय ने गोलकनाथ बनाम सरकार के मुकद्दमें में यह निर्णय दिया था कि संसद को मौलिक अधिकारों में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण के कानून को भी अवैध घोषित किया। राजाओं आदि के प्रिवी पर्स (Privy Purses) तथा अन्य विशेषाधिकारों को समाप्त करने के राष्ट्रपति के आदेश को भी अवैध घोषित किया गया। स्वामी केशवानंद भारती के मुकद्दमें में निर्णय देत हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संसद मौलिक अधिकारों में परिवर्तन कर सकती है पर संविधान के मौलिक ढांचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। 9 मई, 1980 को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक महत्त्वपूर्ण निर्णय में 42वें संशोधन अधिनियम 1976 के उस खण्ड को रद्द कर दिया, जिसमें संसद को संविधान संशोधन के असीमित अधिकार दिए गए थे। सर्वोच्च न्यायालय ने 42 वें संशोधन के अधीन संशोधित संविधान के अनुच्छेद 31सी को भी रद्द कर दिया। रद्द किये अनुच्छेद में मौलिक अधिकारों पर निर्देशक सिद्धांतों का वरीयता दी गई थी। मई, 1980में सर्वोच्च न्यायालय ने एक अन्य मुकद्दमें की जांच करते हुए यह फैसला दिया कि मौत की सजा संवैधानिक है। सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penel Code) में मौत की सजा की व्यवस्था संविधान के अनुच्छेदों 14, 19, और 31 का न तो उल्लंघन करती है न ही यह संविधान के मूल ढांचे के विरुद्ध है। 12 नवम्बर, 1991 को सर्वोच्च नयायालय ने दल–बदल विरोधी कानून 1982 (52वें संवैधानिक संशोधन) को उचित ठहराया। परन्तु संविधान की 10वीं अनुसूची के सातवें पैरे का रद्द कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि सातवें पैरे से अनुच्छेदों 136, 226 और 227 के उद्देश्यों का उल्लंघन होता है।

सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति (Position of the Supreme Court) : इस विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस न्यायालय को संसार के सभी संघात्मक या सर्वोच्च न्यायालयों से अधिक शक्तियां प्राप्त हैं। भूतपूर्व महान्यायवादी श्री सीतलवा ने ठीक ही कहा था, "इस न्यायालय का लेख 20 लाख वर्ग मील से अधिक क्षेत्र पर, जिसमें लगभग 33 करोड़ (अब 101 करोड़ से अधिक) की जनसंख्या निवास करती है, लागू होगा। यह कहना सच है कि इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ अपनी प्राकतिक सीमा में , राष्ट्रमण्डल के किसी भी पक्ष या संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की और क्षेत्राधिकार शक्तियों से विस्तत है। इसे ही संविधान की अन्तिम व्याख्या करने का अधिकार है। संविधान की अन्तिम व्याख्या करने वाली संस्था होने के कारण इसको संविधान की ही व्याख्या करने का अधिकार नहीं है बल्कि संध, राज्यों और स्थानीय संस्थाओं के कानूनों की व्याख्या करने का भी अधिकार है। अपने प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र के अधीन यह उन सब झगड़ों को निपटाता है जो संघ और राज्यों में आपस में होते हैं। इसके अपीलीय क्षेत्र में केवल संवैधानिक मुकद्दमें ही नहीं बल्कि दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमें आते हैं। अपीलों की आज्ञा देने के विशेष अधिकार में इसकी यह शक्ति है कि वह देश के किसी भी न्यायालय के निर्णयों पर विचार कर सकता है। कई अवस्थाओं में यह न्यायालय राष्ट्रपति को परामर्श भी देता है।

इस न्यायालय द्वारा पास किए गए कानून भारत के प्रत्येक न्यायालय पर लागू होते हैं। इसके आदेश सारे देश पर लागू होते हैं और यह किसी भी व्यक्ति को किसी अभिलेख या किसी भी कागज को पेश करने के आदेश दे सकता है। सर्वोच्च न्यायालय संसद और राज्यों के विधानमण्डलों को मनमानी करने से रोकता है और उनके बनाए हुए कानूनों या आदेशों को असंवैधानिक घोषित करके रद्द कर सकता है। हमारे मौलिक अधिकारों की रक्षा करता है। संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को इतनी अधिक शक्तियां प्राप्त हैं कि यह मौलिक अधिकारों का ही रक्षक ही नहीं बल्कि संविधान और देश के कानून का भी रक्षक है। श्री अल्लादी कष्णास्वामी अय्यर (Shri Alladi Krishana Swami Ayyar) के अनुसार, "भारतीय संविधान का विकास काफी सीमा तक सर्वोच्च न्यायालय के कार्यो तथा इस बात पर निर्भर करता है कि सर्वोच्च न्यायलय संविधान को किस दिशा मे ले जाता है।" (The future evolution of the Indian Constitution will thus depend to a large extent upon the work of Supreme Court and the direction given to it by that Court.) एम. वी. पायली (M.V. Pylee) ने सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति के बारे में लिखा है कि "अपनी विभिन्न तथा व्यापक शक्तियों के कारण सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक क्षेत्र में ने केवल एक सर्वश्रेष्ठ संस्था है, बल्कि वह देश के संविधान तथा कानून का भी रक्षक है।" (The Combination of Such wide and varied Powers

in the Supreme Court of India makes it not only the supreme authority in the judicial field but also the guardian of the Constitution and law of the land.)

सर्वोच्च न्यायालय का प्रमुख कर्त्तव्य कानूनों की वैधता निश्चित करना और संविधान की व्याख्या करना होता है। इस सम्बन्ध में भारत के सर्वोच्च न्यायालय का कार्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय से भिन्न है। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की व्याख्या करने की अपनी शक्ति की, कानून की उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law) के वाक्यांश की इस प्रकार व्याख्या की है कि सर्वोच्च न्यायालय वास्तव में व्यवस्थापिका की तीसरा सदन ही श्रेष्ठ व्यवस्थापिका बन चुका है। भारत के संविधान बनाने वालो ने कानून की उचित विधि की धारा को अपना कर 'कानून द्वारा स्थापित विधि' (Procedure establishment by Law) का वाक्यांश अपनाया है। इसके द्वारा हमारा सर्वोच्च न्यायालय केवल कानून लागू करने वाली संस्था है। यह कोई एक अतिरिक्त विधानसभा नहीं कहला सकता। यह तो केवल उस समय किसी कानून को अवैध घोषित कर सकता है, जब वह संविधान का उल्लंघन करता हो। किसी कानून के केवल बुरा होने के कारण हमारा सर्वोच्च न्यायालय उसे अवैध घोषित नहीं कर सकता। इस प्रकार हमारे देश में न्यायिक सर्वोच्चता (Judicial Supremacy) के सिद्धान्त के विकास की सम्भावना नही। हमारे सर्वोच्च न्यायलय के अनुसार, "भारत की न्यायपालिका की स्थिति इंग्लैंड के न्यायालयों और अमेरिका के न्यायालयों की स्थिति के बीच है।"

वास्तव में हमारे सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति का उद्देश्य वैधानिक कार्यो की अपेक्षा कार्यपालिका के अत्याचारों और अधिकार चेष्टाओं पर प्रतिबन्ध लगाना है। यह तो केवल यह देखता है कि न तो संसद और न ही कार्यपालिका संविधान द्वारा निश्चित क्षेत्राधिकार का उल्लंघन करे।

भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन
(The Judicial Review in India)

न्यायिक पुनर्विलोकन शक्ति का अभिप्राय है–कानूनों की वैधानिकता के परीक्षण की शक्ति। भारतीय संविधान के कुछ अनुच्छेद उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति प्रदान करते हैं लेकिन भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है जितना संयुक्तराज्य अमेरीका में है। भारतीय संविधान–निर्माताओं ने अमेरिकन संविधान की शब्दावली 'कानून की सम्यक् प्रक्रिया' (Due Process of Law) के स्थान पर कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure Established by Law) को स्वीकार किया है। अमेरिका में कोई कानून यदि वह प्राकतिक न्याय के कुछ सर्वमान्य सिद्धान्तों के विरूद्ध हो, तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है। किन्तु ऐसा भारत में नहीं है। भारत का सर्वोच्च न्यायालय यह निश्चित करने में अमुक कानून संवैधानिक है या नहीं, प्राकतिक न्याय सिद्धान्तों का या उचित–अनुचित की अपनी धारणाओं की नहीं अपना सकता है। दूसरे शब्दों में, भारत में न्यायालय किसी कानून को अवैधानिक तभी ठहरा सकता है जबकि सम्बन्धित विधानमण्डल ने उस कानून का निर्माण करने में अपनीकानून–निर्माण क्षमता का उल्लंघन किया हो। भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन की सीमाओं को स्पष्ट करते हुए एच. एम. सीरबाई ने लिखा है–"भारत में किसी कानून को केवल इस आधार पर अवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता कि वह न्यायालय की सम्मति मे स्वतन्त्रता अथवा संविधान की भावना के किसी सिद्धान्त का अतिक्रमण करता है, जब तक कि वे सिद्धान्त संविधान में उल्लेखित न हों । किसी कानून की सांविधानिकता पर निर्णय देने न्यायालय को कानून की बुद्धिमत्ता या बुद्धिहीनता, उसके न्याय कानून और अन्याय से कोई सम्बन्ध नहीं है।" अमेरिका का सर्वोच्च नयायालय 'कानून की उचित प्रक्रिया' वाली धारा के आधार पर लगभग एक 'तीसरा सदन' अथवा 'उच्च विधानमण्डल, की (Third House or Super Legislature) बन गया है। जैसा कि न्यायाधीश ह्यूज ने लिखा हे–हम एक सविध ाान के अन्तर्गत तो रहते है, लेकिन संविधान वैसा ही है जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय कहता है।" भारत के सर्वोच्च न्यायालय को निश्चित रूप से ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं है। अमेरिका में 'न्यायिक सर्वोच्चता' को अपनाया गया है जबकि भारत में न्यायिक सर्वोच्चता और संसदीय सर्वोच्चता के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है अर्थात अमेरिकन सिद्धान्त और ब्रिटिश सिद्धान्त को मिलाने का प्रयत्न किया गया है।

न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का संविधान में उल्लेख

भारतीय संविधान में न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का उल्लेख निम्नलिखित अनुच्छेदों में मिलता है–

(अ) अनुच्छेद 12 (2) (मूल अधिकारों वाला भाग)

(ब) अनुच्छेद 246 (जिसमें संघ एवं राज्यों के विधायी क्षेत्रों में कानून बनाने की शक्तियों का उल्लेख है)

(स) अनुच्छेद 32 (जिसमें नागरिकों के सांविधानिक उपचारों के अधिकार का उल्लेख है)

(द) अनुच्छेद 131 एवं 132 (जिनमें उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार तथा सांविधानिक मामलों में अपीलीय क्षेत्राधिकार का उल्लेख है)।

(अ) अनुच्छेद 13 (2) के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति–इस अनुच्छेद में लिखा है कि "राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनाएंगे जो इस भाग (मूल अधिकारों वाला भाग तीन) द्वारा दिए गए अधिकारों को छीनता या कम करता हो और इस खण्ड का उल्लंघन करने वाला प्रत्येक कानून उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगा।" इसका अर्थ यह हुआ कि अनुच्छेद द्वारा किए गए कार्यो को उच्चतम न्यायलय इस आधार पर देख सकता है कि वे अनुच्छेद 13 (2) के अनुकूल हैं या नहीं, और यदि वे अनुकूल नहीं है तो उन्हें असांविधानिक घोषित कर सकता है। संविधान के 24 वें संशोधन 1971 से पूर्व यह अनुच्छेद देश की राजनीति में तूफान लाने वाला सिद्ध हुआ। अनेक बार उच्चतम न्यायालय के निर्णय एक समान नहीं रहे। 1952 में पहली बार शंकरी प्रसाद के मामले में उच्चतम न्यायालय ने सर्वसम्मति से यह स्वीकार किय कि संसद मूल अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग मे संशोधन कर सकती है। 1965में सज्जनसिंह के मामले में 2/3 के बहुमत से उपर्युक्त निर्णय का पुनः समर्थन किया गया। लेकिन 1967 में गोलकनाथ के मामले में उच्चतम न्यायालय नेअपने पहले के निर्णय को उलट दिया। इस मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने सदा के लिए मूल अधिकारों का संशोधन–शक्ति से परे कर दिया। यह निर्णय 6–5 के अनुपात से लिया गया।

उच्चतम न्यायालय के गोलकनाथ विवाद पर दिए गये निर्णय के बड़े दूरगामी और क्रान्तिकारी परिणाम निकले। देश के संविधान को दी गई चुनौतियों के नए उत्तर दिए गए। परिणामस्वरूप तेजी से बदलते हुए राजनीतिक सन्दर्भ में चौबीसवां संशोधन अधिनियम, 1971 पारित किया गया। संसद को मूल अधिकारों के अध्याय में संशोधन करने का अधिकार या नहीं – इस प्रश्न पर विवाद समाप्त हो गया। यह निश्चित कर दिया गया कि संसद को संविधान के किसी भी उपबन्ध को, जिसमे मौलिक अधिकार भी आते हैं, संशोधित करने का अधिकार होगा। चौबीसवें संशोधन के फलस्वरूप न्यायिक पुनर्विलोकन के क्षेत्र में एक अष्पष्टता दूर हो गई। 1973 में उच्चतम न्यायालय द्वारा भी अपने निर्णय में इस सांविधानिक संशोधन की वैधता को स्वीकार कर लिया गया।

(ब) अनुच्छेद 246 के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति–यह अनुच्छेद भी उच्चतम न्यायालय के न्यायिक पुनर्विलोकन के अधिकार को प्रकट करता है। इसमें संघ तथा राज्यों के विधायी क्षेत्रों में कानून बनाने की शक्तियों का उल्लेख है। चूंकि संघ और राज्यों की विधायी सीमा का उल्लेख कर दिया गया है, अतः किसी भी पक्ष द्वारा इस सीमा का उल्लंघन एक असांविधानिक कार्य माना जाता है और उच्चतम न्यायालय अपनी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग कर उसे असांवधानिक घोषित कर सकता है। चूंकि तीनों सूचियों में शक्तियों के वितरण की स्पष्ट व्यवस्था है और सभी परिस्थितियों का संविधान में यथासाध्य उल्लेख कर दिया गया है, अतः उच्चतम न्यायालय को अपना विवेक प्रयोग करने का आधार बहुत कम मिल पाता है अर्थात उसे 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के अनुसार ही किसी भी कार्य की वैधता की जांच करनी होती हैं इसके विपरीत अमेरिका में उच्चतम न्यायालय को अपने विवेक का प्रयोग करने के अवसर बहुत अधिक मिलते है क्योकि वहां संविधान में संघ राज्य सम्बन्धों का वर्णन बहुत संक्षेप में किया गया है और अवशिष्ट शक्तियां राज्यों में निहित है। इसलिए वहां इस प्रकार के विवाद उठते रहते है कि संघ राज्यों की अवशिष्ट शक्तियों का उल्लंघन कर रहा है या नहीं।

(स) अनुच्छेद 32 के अनुसार न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति–इस अनुच्छेद में नागरिकों के सांविधानिक उपचारों के अधिकारों का उल्लेख किया गया है। कोई भी नागरिक यदि अनुभव करें कि उसके मूल अधिकार का विशुद्ध रूप से उल्लंघन हुआ है तो वह उच्चतम न्यायालय की शरण ले सकता है। उच्चतम न्यायालय को यह देखने का अधिकार होगा कि क्या वास्तव में राज्य के किसी कार्य या कानून से विशुद्ध रूप से नागरिक के मूल अधिकार का उल्लंघन हुआ है। मूल अधिकारों की सुरक्षा के लिए ही उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद 32 (2) के अर्न्तगत बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और अधिकार–पच्छा लेख निकालने का अधिकार है। ये लेख या आदेश 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के अनुसार ही निकाले जाते है, अमेरिका की तरह 'प्राकतिक अधिकारों के सिद्धान्त' के अनुसार नहीं। वास्तव में इन रिटों (Writs) के रूप में न्याय–प्रशासन की एक नई शाखा का विकास हुआ है।

(द) अनुच्छेद 131 एवं 132 के अनुसार न्यायिक पनर्विलोकन की शक्ति–अनुच्छेद 131 में उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का और अनुच्छेद 132 में , सांविधानिक मामलों में उसके अपीलीय क्षेत्राधिकार का उल्लेख किया गया है अर्थात ये दोनों अनुच्छेदों उच्चतम न्यायालय को संघीय और राज्य सरकारों द्वारा निर्मित विधियों के पुनर्विलोकन का अधिकार देते है।

इस सम्पूर्ण विवेचना से स्पष्ट है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की भांति ही भारत में भी न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का अधिकार का प्रयोग 'कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया' के ही अनुसार कर सकता है। संविधान के लागू होने के बाद से अब तक उच्चतम न्यायालय ने इस शक्ति का प्रयोग करके अनेक महत्त्वपूर्ण कानूनों का या अध्यादेशों, नियमों या विनिमयों को पूर्णतया या आंशिक रूप से असांविधानिक धोषित किया है।

38वें संविधान संशोधन तक की स्थिति

संविधान के 38वें संशोधन अधिनियम,1975 द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई है कि आपातकालीन स्थिति की घोषणा के राष्ट्रपति के अधिकार को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस संशोधन ने राष्ट्रपति, राज्यपाल और उपराज्यपालों द्वारा उदघोषित आपतकालीन स्थिति वाले अध्यादेशको न्यायालय की सुनवाई के क्षेत्राधिकार से अलग कर दिया। 29 वें संशोधन अधिनियम, 1975 द्वारा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और संसद के अध्यक्ष के चुनावों पर विचार करने के न्यायालय के अधिकार समाप्त कर दिए गए। 40वें संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा प्रधानमंत्री को भी राष्ट्रपति और राज्यपालों की तरह दण्डिका तथा दीवानी कार्यवाहियों से विमुक्ति प्रदान कर दी गई ।

42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा उच्चतम न्यायालय की पुनर्विलोकन की शक्ति को और सीमित कर दिया गया तथा न्यायिक पुनर्विलोकन की प्रक्रिया का कठिन बना दिया गया। लेकिन 1980 में उच्चतम न्यायालय मिनर्वा मिल बनाम भारत संध के विवाद मे 42 वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 368 में शामिल किए गए खण्ड (4) और (5) को अवैध घोषित करके संसद की संविधान को असीमित रूप से संशोधित करने की शक्ति पर प्रश्न–वाचक चिन्ह लगा दिया। लेकिन 43वें सांविधानिक संशोधन ने न्यायिक पुनर्विलोकन सम्बन्धी प्रावधानों को समाप्त कर दिया और न्यायिक पुनर्विलोकन के सम्बन्ध मे पुनः वही स्थिति हो गई जो 42 वें सांविधानिक संशोधन के पूर्व थी।

उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने ही निर्णयों पर पुनर्विचार

उच्चतम न्यायालय को, संविधान के अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत अपने निर्णयों और आदेशों का पुनर्विलोकन करने की शक्ति प्राप्त है। न्यायालय को यह सत्ता प्रदान करने में संविधान–निमाताओं ने अपनी बुद्धिमत्ता और सतर्कता का परिचय दिया है। "कहा जाता है कि निम्न न्यायालय का सम्बन्ध तथ्यों से है, उच्च न्यायालय का सम्बन्ध त्रुटियों (निम्न न्यायालय द्वारा निर्णय की त्रुटियों) से है तथा उच्चतम न्यायालय का सम्बन्ध विवेक बुद्धि (Wisdom) से है। किन्तु उच्चतम न्यायालय भी गलती कर सकता है इसलिए आवश्यक है कि उस त्रुटि को ठीक करने की राह खुली रखी जाए।"

न्यायापालिका की स्वतन्त्रता
(Independence of the Judiciary)

एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायपालिका ही नागरिकों के अधिकारों और संविधान की संरक्षिका हो सकती है। भारतीय संविधान में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिए निम्नलिखित उपबन्धों का समावेश किया गया है–

1. **पदावधि की सुरक्षा**–एक बार नियुक्त किए जाने के उपरान्त न्यायाधीशों को, उनके स्वैच्छिक त्याग–पत्र के अलावा, महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा हटाया जा सकता हैं। यह विशेष प्रक्रिया अत्यन्त कठिन है, अतः न्यायाधीश को पद से हटाना कोई सरल कार्य नहीं है।
2. **न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते आदि विधायिका के अधिकार से परे होना**–उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन संविधान द्वारा नियत है और भारत की संचित निधि पर भारित है। उन पर संसद में मतदान नहीं हो सकता हैं। न्यायाधीशों के कार्यकाल के दौरान उनके वेतन और भत्तों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। वित्तीय आपात् की

स्थिति ही इसका अपवाद है। साथ ही यह भी व्यवस्था है कि उच्चतम न्यायालय का कोई अवकाश प्राप्त न्यायाधीश देश के किसी न्यायालय में अथवा किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष वकालत नहीं कर सकता है।

3. **कार्य प्रणाली के नियमन हेतु नियम बनाने की शक्ति**–उच्चतम न्यायालय को अपनी कार्य–प्रणाली के नियमों हेतु स्वयं ही नियम बनाने का अधिकार है। यह आवश्यक है कि ये नियम संसद द्वारा निर्मित विधि के अर्न्तगत होने चाहिए और इन पर राष्ट्रपति की अनुमति ली जानी चाहिए। उच्चतम न्यायालय के निर्णय या आदेश भारत राज्य क्षेत्र के भीतर सभी न्यायाधीशों को मान्य होंगे।

4. **कर्मचारी वर्ग पर नियन्त्रण**–उच्चतम न्यायालय को अपने कर्मचारी वर्ग पर पूरा नियन्त्रण सौंपा गया है, क्योंकि इसके अभाव में उसकी स्वतन्त्रता को आघात पहुंच सकता है। न्यायालय के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों द्वारा की जाती है। सेवा शर्ते भी न्यायालय द्वारा ही निर्धारित की जाती है।

5. **संसद क्षेत्राधिकार बढ़ा सकती है, घटा नहीं सकती**–संसद को उच्चतम न्यायालय की शक्ति और क्षेत्राधिकार को बढ़ाने का अधिकार है, घटाने का नहीं। इस प्रकार उच्चतम न्यायालय को संसदीय दबाव से मुक्त रखा गया है।

6. **उन्मुक्तियां**–अपनी अधिकारिक क्षमता में किए गए न्यायालयों के निर्णयों और कार्य की अवहेलना नही की जा सकती। संसद भी न्यायाधीशों के ऐसे कार्यो पर जिसे उन्होंने कर्त्तव्य–पालन करते हुए किया हो, विचार–विर्मश नही कर सकती।

7. **अवकाश प्राप्त करने के बाद वकालत करने पर प्रतिबन्ध**–अवकाश प्राप्ति के बाद न्यायाधीश भारतीय क्षेत्र में किसी भी न्यायालय या अधिकारी के समक्ष वकालात नहीं कर सकते हैं। किन्तु संविधान विशेष प्रकार के कार्य–सम्पादन के लिए उनकी नियुक्ति की अनुमति देता है, उदाहरणार्थ विशेष जांच–पड़ताल तथा अन्वेषण करना।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस तरह हमारे संविधान में उच्चतम न्यायालय की स्थिति बड़ी मजबूत हे और उसकी स्वतन्त्रता पर्याप्त रूप से संरक्षित है। किन्तु सेवा निवत न्यायाधीशों को आयोग एवं समितियों के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किए जाने की वर्तमान प्रथा से न्यायपालिका की स्वतन्त्रता को खतरा उत्पन्न हो सकता है। भारतीय विधि आयोग ने इस प्रथा के संकटों के बारें में संकेत करते हुए इसे शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने की सरकार से सिफारिश की है। उसने कहा है

अध्याय-14
राजनैतिक दलः राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दल
(Political Parties: National and Regional)

आधुनिक युग लोकतन्त्रीय युग है। लोकतन्त्रीय शासन को लोगों का, लोगों के लिए और लोगों द्वारा माना गया है। लोकतन्त्र में प्रभुसत्ता किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के समूह के पास नहीं होती, अपितु समूची जनता के पास होती है। राजनीतिक दलों के बिना जनता की प्रभुसत्ता का निर्णय नहीं हो सकता और न ही बहुमत का राज्य स्थापित हो सकता है। राजनीतिक दलों द्वारा जनता अप्रत्यक्ष रूप में शासन में भाग ले सकती हैं और राजनीतिक दलों के बिना लोकतन्त्र की स्म्भावना नहीं हो सकती। स्वतन्त्र भारत ने भी लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली को अपनाया है। इसलिए भारत में भी राजनीतिक दलों का विकास होना स्वाभाविक था। भारत में कुछ राजनीतिक दल ऐसे हैं, जिनका जन्म स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् हुआ और कुछ राजनीतिक दल ऐसे हैं जो अंग्रेजों के राज्यकाल के समय में अस्तित्व में आए थे।

भारत में दल व्यवस्था
(Party System in India)

भारत मे स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय प्रभावकारी दलों के संगठन की आवश्यकता महसूस हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक विशेष अस्तित्व वाले संगठन के रूप में पैदा हुई जिसने देश में अंग्रेज विरोधी तत्वों को एकत्रित किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस दल ने एक राजनीतिक दल के रूप में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया, यद्यपि महात्मा गांधी चाहते थे कि यह केवल समाज सेवा संगठन के रूप में कार्य करें। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश की राजनीति में कांग्रेस दल की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण थी कि भारत का प्रायः एक प्रभुत्वशाली दलीय व्यवस्था के रूप में वर्णन किया गया। कांग्रेस आम जनता का सर्वप्रिय दल था तथा इसके योजना कार्य में सब कुछ सम्मिलित था। प्रायः इसको भारतीय समाज का लघुरूप माना जाता था जिसमें राष्ट्र के समस्त तत्वों का प्रतिबिम्ब था।

परन्तु इससे हमें गलत परिणामों पर नहीं पहुंचना चाहिए। कोंग्रेस में ही विभिन्न तत्व विद्यमान थे जो महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अलग–अलग विचार रखते थे। कांग्रेस दल जो आन्दोलन दल से एक राजनीतिक दल में बदल गया था, चाहता सब विभिन्न तत्वों को अपने विशालतम संगठन में समा सकता था। इसके बाद कांग्रेस दल एक केन्द्रीय दल बन गया जिसमें वामपन्थी और दक्षिणपन्थी राजनीति साथ–साथ शामिल थी। इसने दल में एक आन्तरिक शोधक रचना का गठन किया। जिसमें कांग्रेस की बाहरी परिस्थितियों के अनुसार इनके भिन्न–भिन्न तत्व एक–दूसरे में घुल–मिल सकते थे।

यह एक तथ्य है कि भारत में कांग्रेस का प्रभाव सम्पूर्ण नहीं था। यद्यपि लोकसभा में कांग्रेस को भारती बहुमत प्राप्त था फिर भी कभी भी राष्ट्रीय चुनावों में इसे सार्वजनिक मतों का बहुमत नहीं मिला। दूसरी और विरोधी दलों को लोकसभा में यद्यपि कम स्थान प्राप्त थे, परन्तु उनके पीछे मतदाताओं की पर्याप्त शक्ति थी और राज्य स्तर पर कांग्रेस का प्रभाव और भी कम था।

भारत में विरोध विशेषतः सरकार का विरोध था। कांग्रेस दल सत्तारूढ़ दल था अतः विरोध का अभिप्राय कांग्रेस के विरोध से था। विरोधी पक्ष का प्रयास मुख्यतः कांग्रेस की आलोचना करना तथा इसको सत्ता से हटाना था।

दलीय व्यवस्था की विशेषताएं

भारतीय दलीय व्यवस्था में तीन अवसर ऐसे आए है, जब इसमें मूलभूत परिवर्तन घटित हुए। उदाहरणतः 1977 में विरोधी दलों द्वारा संचालित जनता सरकार का केन्द्र में सत्तारूढ़ होना। इससे पहले 1967 में लगभग 8 राज्यों में (हरियाणा सहित) पहली बार विरोधी दलों ने अपनी सरकारें बनाई जो कांग्रेस पार्टी के एकाधिकार को एक गहरा झटका माना गया। 1987 में भी एक

बार विरोधी दलों ने मिल कर राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार स्थापित की। 1991 में कांग्रेस राष्ट्रीय सत्ता से हाथ धो बैठी और ढ़ेर सारी विरोधी दलों के गठबन्धन की सरकार बनी जो 2003 तक चल रही है। इस प्रकार एकल दल आधिपत्य टूट कर बहुल–दलीय व्यवस्था का पर्दापण हो गया है। इस परिपेक्ष में भारतीय दल व्यवस्था की विशेषताएं निम्न हैं:–

(I) **बहुदलीय पद्वतिः** 1977 तक कांग्रेस का अधिपत्य रहा। परन्तु 1980 में फिर कांग्रेस पार्टी का एकाधिकार स्थापित हो गया। 1989 में फिर मिली जुली सरकार बनी जिसमें कई विरोधी दल शामिल थे परन्तु 1991 के पश्चात् कांग्रेस दल की प्रधानता का श्रीगणेश हुआ जो 1996 के चुनाव गहरी जड़े पकड़ गया और वर्तमान राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक मोर्चे सरकार (2003) में 24 दल शामिल है।

1999 के लोक सभा चुनावों में राजनैतिक दलों की संख्या 654 से अधिक हो गई है।

(II) **व्यक्तिगत नेतत्व पर आधारितः** 1951 से 1964 तक कांग्रेस में जवाहर लाल नेहरू की प्रधानता रही।

1970-76 और 1980-84 में इन्दिरा गांधी का व्यक्तित्व पार्टी में छाया रहा 1984 के बाद राजीव गांधी का प्रभाव रहा 1991 के पश्चात् अटल बिहारी के व्यक्तित्व पर भारतीय जनता पार्टी टिकी हुई है। उधर विरोधी दल कांग्रेस में सोनिया गांधी का ही प्रभाव है।

(III) **राजनैतिक दलों में निरन्तर विभाजन एवं विघटन की प्रवत्ति।**

अब तक कांग्रेस पार्टी तीन बार विभाजित हो चुकी है। 1969 में कांग्रेस (ओ) और कांग्रेस (आई), 1977 में गठित जनता पार्टी विभाजित होकर चार अन्य पार्टियों में बँट गई 1978 और 1995 में कांग्रेस में पुनः विघटन हुआ जनता दल का विभाजन सबसे अधिक और अति शीघ्रता से हुआ है। अन्य प्रमुख दलों में भी विघटन हुआ है।

(IV) **अवसरवादिता की उभरती प्रवत्तिः** भारतीय राजनीति में अवसरवादिता सदैव से विद्यमान रही है और अभी हाल ही के वर्षों में यह निरन्तर उग्र रूप ग्रहण कर रही है। रजनी कोठारी के अनुसार, "व्यक्ति का महत्व अभी भी राजनीति में बहुत है। भारत में एक ही संगठन के अभिन्न अंग अलग–अलग काम करते हैं। एक ही दल के राष्ट्रीय और राज्य शाखाएं प्रतिकूल दिशाओं में चलती हैं और ऐसे गुटों व तत्वों से हाथ मिलाती हैं जो विचारधारा और नीति में उनसे भिन्न हैं" जनवरी 1980 के केरल विधानसभी चुनावों में इन्दिरा कांग्रेस और जनता पार्टी ने परस्पर सहयोग करते हुए एक ही फ्रण्ट के अन्तर्गत चुनाव लड़ा, जबकि राष्ट्रीय स्तर पर ये दल एक–दूसरे के कट्टर विरोधी थे और हैं। इस प्रकार की अवसरवादिता के अन्य अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

(V) **राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रम में स्पष्ट भेद का अभावः** भारत के राजनीतिक दलों की नीतियों और कार्यक्रमों में स्पष्ट भेद का अभाव है और इसी कारण वे जनता के सम्मुख स्पष्ट विकल्प प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं। इस प्रकार के विचार भेद के अभाव का एक कारण यह है कि आज भारत के राजनीतिक रंगमंच पर जितने भी पात्र दष्टिगोचर होते हैं, उन सबको राजनीतिक प्रशिक्षण राष्ट्रीय आन्दोलन में ही प्राप्त हुआ है, लेकिन इसका द्वितीय और अधिक प्रमुख कारण यह है कि स्वयं राजनीतिक दलों की नीतियां और कार्यक्रम अत्यधिक अस्पष्ट और अनिश्चित हैं। कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य लगभग एक दर्जन छोटे–बड़े राजनीतिक दल भी समाजवाद को ही अपना लक्ष्य घोषित किये हुए हैं। अनेक राजनीतिक दलों के पास अपना कोई निश्चित कार्यक्रम न होने के कारण उनके द्वारा विध्वंसकारी कार्यों का आश्रय लिया जाता है और विघटनकारी तत्वों को प्रोत्साहित किया जाता है।

(V) **साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय दलः** भारत में अनेक राजनीतिक दल साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय आधार पर गठित है। ऐसे दलों में अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (D. M. K.), द्रविड मुनेत्र कड़गम (D. M. K.) अकाली दल, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग, मुस्लिम मजलिस, नेशलन कांफ्रेंस, असम गण परिषद, सिक्किम संग्राम परिषद और अन्य अनेक दलों का नाम लिया जा सकता है। नागालैण्ड, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम प्रदेश और अरूणाचल प्रदेश में तो नागालैण्ड लोकतान्त्रित दल और मणिपुर पीपुल्स पार्टी आदि ही प्रभावाशाली है और अखिल भारतीय दलों का प्रभाव लगभग नगण्य है। लोकसभा चुनावों में तो ये साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय दल अपनी शक्ति तथा प्रभाव का सीमित परिचय ही दे पाते हैं, लेकिन विधानसभा चुनावों में अपनी शक्ति का परिचय देने में सफल रहते हैं। 1989-2002 में शिव सेना ने भी अपनी शक्ति में पर्याप्त वद्धि की जो एक साम्प्रदायिक दल है तथा क्षेत्रीय भी।

(VI) **राजनीतिक दलों की आन्तरिक गुटबन्दीः** भारती की दल प्रणाली की एक प्रमुख विशेषता विभिन्न दलों की आन्तरिक गुटबन्दी है। लगभग सभी राजनीतिक दलों में छोटे–छोटे गुट पाये जाते हैं, एक वह गुट जो सत्ता में है और दूसरा असन्तुष्ट

है। इन गुटों में पारस्परिक मतभेद इस सीमा तक पाया जाता है कि कभी–कभी निर्वाचन में एक गुट के समर्थन प्राप्त उम्मीदवार को दूसरे गुट के सदस्य पराजित करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। दल में आन्तरिक गुटबन्दी कांग्रेस दल में सबसे ज्यादा पायी जाती है क्योंकि इसमें सत्ता के लिए निरन्तर संघर्ष चलता रहा है जिसका प्रभाव सम्पूर्ण दल की प्रगति पर पड़ता है। अन्य राजनीतिक दलों में भी स्थिति यही है। 1996 में सत्तारूढ़ जनता दल या संयुक्त मोर्चे के अन्य घटक भी गुटबन्दी से मुक्त नहीं हैं। इस प्रकार की गुटबन्दी पश्चिमी देशों के राजनीतिक दलों में नहीं जायी जाती है। शासक दल और अन्य दलों में गुटबन्दी की यह स्थिति भारतीय राजनीति का अभिशाप बनी हुई है।

(VII) **राजनीतिक दल-बदलः** भारत में दल–बदल की स्थिति सदैव से विद्यमान रही है, लेकिन 1967 से 1970 के वर्षों में यह प्रवत्ति बहुत अधिक भीषण रूप में देखी गयी। पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्य प्रदेश, आदि राज्यों में विशेष रूप से यह प्रवत्ति देखी गयी कि एक राजनीतिक दल के सदस्य के रूप में निर्वाचित विधानसभा के सदस्यों द्वारा अपने निर्वाचकों की अनुमति प्राप्त किये बिना ही विधानसभा में अपने राजनीतिक दलों की सदस्यता में परिवर्तन कर लिया गया। इस प्रकार के दल परिवर्तन के परिणामस्वरूप इन राज्यों में बहुत जल्दी–जल्दी सरकारों का पतन हुआ और राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो गई। 1991-92 के दौरान दल–बदल की घटनाएं काफी बैठी। 1998 में उत्तर प्रदेश में जगदम्बिका पाल और कल्याण सिंह ने दल–बदल का नया इतिहास रचाया। 1999 में हरियाणा में बंशीलाल सरकार देखते ही देखते दल बदल की भेंट चढ़ गई और इसका लाभ औमप्रकाश चौटाला को मिला।

(IX) **निर्दलीय सदस्यों की संख्या में कमी**

1952 के लोक सभा चुनाव में निर्दलय सदस्यों की संख्या 849 थी जो 1996 में बढ़ कर 10535 हो गई परन्तु 1998-99 में चुनाव सुधार के सख्त प्रावधानों के कारण इस समस्या में भारी कमी आई और ये केवल 1915 ही रह गए।

राजनैतिक दलों की समस्याएं

भारत में राजनैतिक दलों की मुख्य समस्याएं निम्नलिखित हैंः

(1) **संगठनात्मक समस्याएंः** भारत में बहुल राजनैतिक व्यवस्था है। जिसमें विभिन्न जाति, धर्म, भाषा, संस्कति के लोग रहते है। धर्मनिरपेक्षता की दष्टि से व्यवस्था को चलाना सम्भव नहीं माना जाता जिससे दलों के संगठन प्रभावशाली एवं मजबूत नहीं हो पाते। इसी कारण दलों में विभाजन एवं विघटन हो जाते है। क्षेत्रीय दल भी इससे अछूत नहीं रहे।

(2) **दल-बदलः** भारत में दल–बदल एक सामान्य सी बात है। दल–बदल देश में राजनीतिक स्थिरता को क्षति पहुंचाने के साथ–साथ प्रशासन तथा संसदीय संस्थाओं में लोगों के विश्वास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यह दल–बदल 1967 से 1968 तक लगभग 16 सरकारों के पतन के लिए उत्तरदायी है। दल–बदल स्वस्थ दल प्रणाली के विकास में एक बाधा है।

(3) **वित्त साधनः** भारत में राजनीतिक दल सामान्यतः अपना वित्तीय लेखा–जोखा, यहां तक कि सदस्य तथा कोष संचालन के साधनों से प्राप्त धन का ब्यौरा भी नहीं छापते।

व्यावहारिक रूप से सभी राजनीतिक दलों की आय का सामान्य स्रोत संसद तथा राज्य विधानसभाओं के सदस्यों पर लगाया गया चन्दा है। सभी राजनीतिक दलों की आय के मुख्य स्रोत दान थैलियां तथा कोष संचालन भी है। 1956 के कम्पनी अधिनियम ने पहली बार राजनीतिक चन्दों के साथ दान तथा अन्य को कोषों के योगदान की सीमित कर दिया। कम्पनियों द्वारा राजनीतिक दलों को दान देने पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए एक विधेयक 1968 में पारित किया गया, परन्तु राजनीतिक दलों के वित्त साधनों की गति लगातार पूर्ववत् चलती रही। आय का एक कम विवादास्पद तरीका दल के नेताओं को प्राप्त थैलियां हैं। ये स्थानीय दल कार्यकर्त्ताओं द्वारा जनता तथा व्यापारी लोगों से सामान्यतः एकत्र की जाती हैं तथा अक्सर चुनावों के समय नेताओं को भेंट कर दी जाती हैं।

(4) **नेतत्व का संकटः** राजनीतिक दलों में नेतत्व का संकट (Crisis of Leadership) पाया जाता है। प्रखर और निर्मल नेतत्त्व का अभाव है। राजनीति को हमारे नेताओं ने एक गन्दा खेल बना दिया है। उनमें राजनीतिक अवसरवादिता (Political opportunism) देखने को मिलती है।

(5) **काले धन का प्रभावः** चुनाव बहुत खर्चीले हो जाने से वास्तविक जनसेवी चुनाव मैदान में उतरने से कतराते हैं। दलों को पूंजीपतियों और कम्पनियों से आर्थिक सहायता मिलती रही है। जो लोग धन देते हैं, वे बदले में अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। पूर्व राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी ने यह कहा था कि 'एक व्यक्ति चुनाव में लाखों रूपये खर्च करने के बाद ईमानदार हरगिज नहीं रह सकता।' यह एक ऐसा कटु सत्य है जो हमारी राजनीतिक व्यवस्था के खोखलेपन को प्रकट करता है।

(6) **जातिवाद और साम्प्रदायिकताः** जातिवाद और साम्प्रदायिकता जैसे जीवन मूल्य हमें विरासत में मिले हैं, जिनके कारण हर दल को इन तत्वों के साथ समझौता करना पड़ता है। योग्य उम्मीदवारों की बजाय उन्हें ऐसे लोगों को चुनावी टिकट देने पड़ते हैं जिनकी जाति वालों का उन चुनावों के क्षेत्र में बाहुल्य हो।

(7) **राजनीति का अपराधीकरणः** सभी राजनीतिक दलों में अपराधी तत्व घुस आये हैं। अपराधियों ने राजनीतिक नेतत्व को अपने पंजे में फंसा लिया है। 1966 के लोकसभा चुनाव परिणामों पर टिप्पणी करते हुए इण्डिया टुडे ने लिखा है : किसी भी अपराध का नाम लीजिए और आपको एक–न–एक सांसद मिल सकता है जिसके ऊपर उसका आरोप लगा होगा। इस मामले में उत्तर प्रदेश सबसे आगे है। चुनाव में रिकार्ड 435 आपराधिक पष्ठभूमि वाले प्रत्याशी खड़े हुए थे। उनमें से 27 तो संसद में भी पहुंच गए। इस सूची में 14 सांसदों के साथ भाजपा सबसे ऊपर है, हालांकि उनमें से ज्यादातर छोटे–मोटे मामलों में आरोपी हैं। सपा के पास आपराधिक रिकार्ड वाले सात सांसद हैं जिनमें से चार हिस्ट्रीशीटर हैं : कांग्रेस के एक और बसपा के तीन सांसदों के नाम आपराधिक मामलों से जुड़े हैं।"

(8) **भारत में 'सह-अस्तित्व की संस्कति' का अभाव हैः** विधानमण्डल में जब दलों की संख्या अधिक हो जाती है तो कभी–कभी मिले–जुले मन्त्रिमण्डल का गठन करना पड़ता है। मिली–जुली सरकारें तभी ठीक प्रकार चल सकती हैं जबकि विभिन्न घटकों के बीच परस्पर विश्वास हो। भारत का यह दुर्भाग्य रहा है कि हमारे नेता नीतियों के कारण नहीं व्यक्तिगत आधारों पर आपस में लड़ते–झगड़ते रहते हैं। संक्षेप में, देश को सुस्पष्ट विचारधाराओं पर आधारित दो या तीन अखिल भारतीय दलों की आवश्यकता है।

भारतीय राजनीतिक दलों का वर्गीकरण
(Classification of Indian Political Parties)

भारतीय राजनीतिक दलों को चार भागों में बांटा जा सकता है : (1) राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष दल, (2) क्षेत्रीय अथवा राज्यस्तरीय दल, (3) स्थानीय, किन्तु जातीय साम्प्रदायिक दल और (4) तदर्थ दल।

(1) **राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष दल**–निर्वाचन आयोग ने राजनीतिक दलों के मान्यता सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन के लिए 1968 के चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आबण्टन) आदेश में संशोधन करते हुए 1 दिसम्बर, 2000 को अधिसूचना जारी की है। नए नियमों के तहत् राष्ट्रीय स्तर के दल का दर्जा प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित राजनीतिक दल को लोकसभा चुनाव अथवा विधानसभा चुनावों के किन्हीं चार अथवा अधिक राज्यों में कुल डाले गए वैध मतों के 6 प्रतिशत मत प्राप्त करने के साथ ही किसी राज्य अथवा राज्यों से लोकसभा की कम–से–कम 4 सीटें जीतनी होंगी अथवा लोकसभा में उसे कम–कम–से 2 प्रतिशत सीटें (मौजूदा 543 सीटों में कम–से–कम 11 सीटें) जीतनी होंगी जो कम–से–कम तीन राज्यों से हासिल की गई हों। ऐसे दल दो प्रकार के हैं – बिना विचारधारा के और विचारधारा पर आधारित दल। बिना विचारधारा वाले दलों में कांग्रेस को लिया जा सकता है। विचारधारा से अभिप्राय है, किसी विशिष्ट सामाजिक और आर्थिक दर्शन में विश्वास और प्रतिबद्धता व्यक्त करना। कांग्रेस को वैचारिक दष्टि से तटस्थ दल कहा जा सकता है। कांग्रेस एक ऐसा दल है जिसमें अनेक विचारधारा और हितों के व्यक्ति सम्मिलित हो सकते हैं। इसे दल के बजाय एक सार्वजनिक मंच (प्लेटफार्म) कहा जा सकता है।

विचारधारा में विश्वास करने वाले राष्ट्रीय दलों के दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–दक्षिणपन्थी और वामपन्थी। दक्षिणपन्थी दल जहां यथास्थिति को बनाये रखना चाहते हैं वहां वामपन्थी दल आर्थिक और समाजिक ढ़ांचे में आमूलचूल परिवर्तन चाहते हैं। स्वतन्त्र दल, जनसंघ और भारतीय जनता पार्टी को दक्षिणपंथी दल कहा जाता था क्योंकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में इनके दष्टिकोण ब्रिटिश अनुदारवादी दल से मिलते–जुलते हैं। वामपन्थी दल भी दो प्रकार के है– उदार और उग्र। उदार दलों में सभी समाजवादी दलों को लिया जा सकता है तथा उग्र दलों में सभी प्रकार के साम्यवादी दलों को

स्थान दिया जा सकता है। उदारवादी दल, गांधीवाद और फेबियनवादी सिद्धांतों में विश्वास करते हैं जबकि साम्यवादी दल क्रान्तिकारी साधनों में विश्वास करते हैं। समस्त प्रकार के अखिल भारतीय दलों का दष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष है उनकी सदस्यता सभी धर्मों और जातियों के लिए खुली है।

(2) **क्षेत्रीय अथवा राज्यस्तरी दल**–ये वे दल हैं जिनका प्रभाव राज्य की सीमा तक ही है। राज्य स्तरीय दल का दर्जा प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित दल को लोकसभा अथवा विधानसभा चुनाव में डाले गए कुल वैध मतों का कम–से–कम 6 प्रतिशत मत प्राप्त करने के साथ ही राज्य विधानसभा में कम–से–कम दो सीटें जीतना आवश्यक है अथवा विधानसभा की कुल सदस्य संख्या की कम–से–कम तीन प्रतिशत सीटें अथवा तीन सीटें (इनमें से जो भी अधिक है) जीतना आवश्यक होगा। इनमें तेलगू देशम्, शिव सेना, डी.एम.के., अन्ना डी.एम.के., असम गण परिषद्, सिक्किम संग्राम परिषद् समाजवादी पार्टी, तमिल मनीला कांग्रेस, तणमूल कांग्रेस, हरियाणा विकास पार्टी, आदि प्रमुख हैं। आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, असम, सिक्किम आदि राज्यों में ये दल प्रभावशाली हैं।

(3) **स्थानीय किन्तु जातीय साम्प्रदायिक दल**–कतिपय दल विशेष जाति या सम्प्रदाय तक ही सीमित हैं। केरल की मुस्लिम लीग, महाराष्ट्र की शिवसेना, पंजाब का अकाली दल तथा बिहार की झारखण्ड पार्टी ऐसे ही दल हैं।

(4) **तदर्थ दल**–भारत में ऐसे भी दल हैं जो बनते और बिगड़ते रहते हैं। इन्हें छोटे–छोटे गुट कहा जा सकता है। ऐसे दलों में कांग्रेस (तिवारी), केरल कांग्रेस, बंगला कांग्रेस, हरियाणा कांग्रेस, जनता पार्टी, रामराज्य परिषद, आदि को याद किया जा सकता है। ऐसे दल कब बन जाते और कब अस्त हो जाते हैं इसका पता लगाना कठिन है। ये विभिन्न दलों से निकले असन्तुष्ट नेताओं द्वारा निर्मित गुट है।

प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक दल और उनके कार्यक्रम
(Major National Parties and their Programmes)

1 जनवरी, 2002 को निम्नांकित 7 दलों को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त है :

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस	काग्रेस
भारतीय जनता पार्टी	भाजपा
भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी	कम्यु
भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)	माकम्यु
जनता दल (यु)	जद (यु)
राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी	राकांपा
बहुजन समाजपार्टी	बसपा

इनमें से प्रमुख राष्ट्रीय दलों की विचारधारा, कार्यक्रम, संगठन एवं भूमिका का यहाँ विवेचन करना अपरिहार्य है।

कांग्रेस पार्टी : कांग्रेस (इ)
(Congress Party : Congress (I))

कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हुई। 1907 तक कांग्रेस का लक्ष्य विदेशी शासन पर दबाव डालना मात्र था। सन् 1907 से 1919 तक कांग्रेस उदारवादियों और उग्रवादियों में विभक्त रही। सन् 1920 से 1947 तक कांग्रेस का नेतत्व महात्मा गांधी ने किया और देश को स्वाधीनता प्राप्त हुई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त कांग्रेस एक राजनीतिक दल में परिवर्तित हो गयी तथा केन्द्र और राज्यों के निर्वाचनों में प्रचण्ड बहुमत प्राप्त कर सत्ता का उपयोग करने लगी। सन् 1967 के आम चुनाव में कांग्रेस की स्थिति दुर्बल हुई। सन् 1969 में कांग्रेस दो भागों में विभक्त हो गयी तथा 1971 एवं 1972 के निर्वाचनों में कांग्रेस को पुनः प्रचण्ड विजय प्राप्त हुई। श्री हर्षदेव मालवीय ने लिखा है, "कांग्रेस की भव्य विरासत ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध शानदार संघर्ष और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद समाजवादी भारत तथा जनता के लिए बेहतर जीवन के प्रयास की दिशा में प्राप्त सफलताओं से भरपूर है।"

कांग्रेस किसका प्रतिनिधित्व करती है? इस प्रश्न का जवाब 15 सितम्बर, 1931 में ही महात्मा गांधी ने लन्दन में 'फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी' में भाषण के दौरान किया था, "कांग्रेस मूलतः भारत में 7 लाख गांवों में बसे मूक, अधभूखे करोड़ो लोंगो का प्रतिनिधित्व करती है–चाहे वे तथाकथित ब्रिटिश भारत या भारतीय भारत के हों। कांग्रेस यह मानती है कि उन्हीं हितों की सुरक्षा की जानी चाहिए जो इन करोड़ो मूक लोंगो के हितों का साधन करते हैं।" उन ऐतिहासिक दिनों से लेकर आज तक करोड़ों मूक लोंगो तथा राष्ट्रीय हितों और दूसरी ओर कुछ वर्गीय हितों में संघर्ष छिड़ा, कांग्रेस अपनी अधिकांश जनता के हितों के साथ दढ़ प्रतिज्ञ रही।"

संगठन – कांग्रेस की सदस्यता दो प्रकार की है–प्रारम्भिक और सक्रिय। कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसकी आयु 18 वर्ष हो, कांग्रेस की सदस्य बन सकता है। सदस्य बनने के लिए दल के उद्देश्यों में लिखित विश्वास प्रकट करना पड़ता है। प्रारम्भिक और सक्रिय सदस्यों के चन्दे तथा अधिकारों में अन्तर है। संगठन की दष्टि से ग्राम या मोहल्ला कांग्रेस समिति संगठन की आधरभूत इकाई है। ग्राम और मोहल्ला कांग्रेस समितियों के ऊपर तहसील समितियां होती हैं। इसके ऊपर जिला समितियां और प्रान्तीय समितियां होती हैं। संगठन की दष्टि से सम्पूर्ण देश पच्चीस प्रदेशों में विभक्त है। प्रान्तीय कांग्रेस समितियों के ऊपर कांग्रेस का राष्ट्रीय या अखिल भारतीय संगठन होता है जो एक अध्यक्ष, एक कार्यकारिणी समिति, एक अखिल भारतीय कांग्रेस समिति और कांग्रेस के खुले वार्षिक अधिवेशन से मिलकर बनता है। कांग्रेस ने विधान में एक नये संशोधन द्वारा अध्यक्ष की अवधि तीन वर्ष कर दी हैं। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में अध्यक्ष के अतिरिक्त 20 अन्य सदस्य होते हैं। कार्यकारिणी समिति के 10सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं और 10 सदस्य कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। कार्यकारिणी समिति में ही कांग्रेस की सर्वोच्च शक्ति निहित है। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में तीन प्रकार के सदस्य होते हैं – निर्वाचित, पदेन और सम्बद्ध संस्थाओं के प्रतिनिधि। कांग्रेस के संसदीय कार्यों के नियन्त्रण और समन्वय के लिए कांग्रेस कार्यकारिणी समिति एक संसदीय बोर्ड की स्थापना करती है। जिसमें कांग्रेसाध्यक्ष और पांच अन्य सदस्य होते हैं।

कांग्रेस (आई) की नीतियाँ और कार्यक्रम (Programme and policies of the Congress(I) - जनवरी 1980 के लोकसभा के चुनावों के समय इस दल ने जो चुनाव आविस–पत्र (Election Manifesto) जारी किया था और उसके पश्चात् इस दल ने जो नीति प्रस्ताव समय–समय पर पारित किये हैं उसके अनुसार इस दल के कार्यक्रम और नीतियों को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर सकते हैं :–

1. **धर्म-निरपेक्ष समाज (Secular Society)** – इस दल ने यह वचन दिया था कि यह दल धर्म–निरपेक्ष की स्थापना के लिए वचनबद्ध है और इस मन्तव्य के लिये यह दल ऐसी कार्यवाहियां करेगा जिससे साम्प्रदायिक एकता और धार्मिक सहनशीलता विकसित हो सके। इस दल ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा और राष्ट्रीय जीवन में उनके प्रभावशाली सहभागिता को यकीनी बनाने के लिए आवश्यक पग उठाने का भी वचन दिया था। इस दल इस मत का समर्थक है कि संवैधानिक व्यस्याओं के अनुसार अल्पसंख्यकों के द्वारा स्थापित की गई शैक्षणिक संस्थाओं को पूर्ण सुरक्षा और धार्मिक और सांस्कृतिक व्यवहार की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। धर्म–निरपेक्षता को शक्तिशाली बनाने के लिए यह उन राजनीतिक, सांस्कतिक और सामाजिक संस्थाओं के विरूद्ध आवश्यक कार्यवाही करने के पक्ष में है जो संस्थाएं भारतीय शासन प्रणाली के मूल सिद्धान्तों को नष्ट करने के लिए साम्प्रदायिक वर्गों (Sectional) या जात–पात सम्बन्धी भावनाओं को उत्तेजित करती हैं।
2. **अल्पसंख्यक (Minorities)** – इस दल ने यह वचन दिया था कि साम्प्रदायिक हिंसा (Communal Violence) को समाप्त करने के लिए यह दल एक विशेष शक्ति (Force) स्थापित करेगा जिसका उद्देश्य साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित करने में सहायता करना होगा। इस शक्ति में अल्पसंख्यकों, अनूसुचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के लोंग भर्ती किए जायेंगे। इसके अतिरिक्त यह दल अल्पसंख्यक आयोग (Minority Commission) को संवैधानिक मान्यता देने के पक्ष में हैं। अल्पसंख्यकों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के प्रति भी यह दल विशेष ध्यान देने का समर्थक है। अपने चुनाव आविस–पत्र में इस दल ने अल्पसंख्यकों को विश्वास दिलाया था कि सुरक्षा सेवाओं और सरकार की अन्य सेवाओं में उन्हें उचित रोजगार अवसर प्रदान किए जाएंगे। इस दल ने यह भी विश्वास दिलाया था कि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (Aligarh Muslim University) के अल्पसंख्यक स्वरूप (Minority Character) को यकीनी बनाया जायेगा और यह दल अल्पसंख्यकों के निजी कानून (Personal Law) में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

3. **प्रजातन्त्र को शक्तिशाली बनाना (Stregthening of Democracy)** – इस दल में यह विश्वास प्रकट किया था कि कुछ विशेष हितों के द्वारा धन का अधिक प्रयोग और शारीरिक पक्ष से डराने–धमकाने (Physical Intimidation) की कार्यवाहियो को रोकने के लिए आवश्यक पग उठाने की तत्काल आवश्यकता है। इस दल के विचार में कार्यवाहियाँ विशेष करके पिछड़े क्षेत्रों में अत्यधिक घटती हैं और जब तक इन कार्यवाहियों को समाप्त नहीं किया जाता तब तक भारतीय लोकतन्त्र शक्तिशाली नहीं बन सकता। इस दल ने जनता दल की सरकार पर यह दोष लगाया था कि इस सरकार ने प्रजातन्त्र विरोधी ऐसी कार्यवाहियो को रोकने के लिए कोई यत्न नहीं किये हैं, अपितु इसके विपरीत युनावों में विजय प्राप्त करने के लिए जनता दल की सरकार ने स्वयं उन कार्यवाहियो का सहारा लिया हैं। जनता सरकार ने दल परिवर्तन (Defection) को भी उत्साहित किया था और भी कुछ ऐसी कार्यवाहियाँ की थी जिनके कारण भारतीय प्रजातन्त्र कमजोर है। इसलिए कांग्रेस (आई) ने इस बात पर बल दिया था कि भारतीय प्रजातन्त्रीय प्रणाली में जो भी अभाव या पथभ्रष्टता (Aberrations) प्रवेश कर गई है। उन सभी को दूर करने के लिए यह दल ठीक रूप से कार्यवाही करेगा।

4. **प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation)** – इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण पर दढ विश्वास प्रकट किया था। इस दल का विचार है कि राजनीतिक और सामाजिक आर्थिक गतिविधियो में लोगों को विशाल स्तर पर शामिल करने के लिए प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की क्रिया को कार्यान्वित रूप देना अनिवार्य है। इस दल का यह मत हैं कि प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की क्रिया निम्न स्तर पर आरम्भ होना अनिवार्य है ताकि लोग सरकार के साथ सम्बन्धित स्थानीय स्तर के कार्यो से क्रियाशील सहभागी (Active Participants) बन सके। यह दल दहेज प्रथा और अन्य सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने के लिए प्राथमिकता (Priority) देने के पक्ष में है।

5. **आर्थिक कार्यक्रम (Economic Programme)** – यह दल समाजवादी समाज (Socialist Society) स्थापित करने के लिए वचनबद्व है। यह दल ऐसी अर्थ व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जो शोषण से मुक्त हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही यह दल योजनाबन्दी का पुननिर्माण करने का समर्थक हैं। अर्थव्यवस्था को दढ बनाने के लिए इस दल की दष्टि से अधिक से अधिक वैज्ञानिक और औधोगिक विकास (Technological Development) की आवश्यकता हैं। मुद्रा के प्रसार (Inflation) को रोकने के लिए मांग और पूर्ति (Demand and Supply) में ठीक संतुलन स्थापित करने के लिए यह दल उचित वित्तीय नीतियों को ग्रहण करना चाहता हैं इस दल को विश्वास हैं कि इन मन्तव्यों की प्राप्ति के लिए उत्पादन को विशाल स्तर पर बढाना अति अनिवार्य हैं और यह तब ही सम्भव हो सकता है। यदि ऐसा आर्थिक वातावरण विकसित किया जाये जिसमें लोग औधोगिक धन्धों में पैसा लगा सकें। इसके अतिरिक्त इस दल का यह विश्वास है कि जब तक आवश्क कच्ची सामग्री उचित मात्रा में उत्पादकों को प्राप्त नही होती तब तक उत्पादन के निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त नही किया जा सकता। इस मन्तव्य की प्राप्ति के लिए इस दल ने परिवहन के साधनों की योग्यता में सुधार करने, बिजली के उत्पादन को बढाने और स्मगलिंग, जखीराबाजी और अन्य आर्थिक अपराधों को कठोरता सहित निपटाने के लिए आवश्यक कार्यवाहियाँ करने का विश्वास दिया था। इसके अतिरिक्त इस दल का यह मत है कि देश की अर्थव्यवस्था को दढ बनाने के लिए विदेशी मुद्रा के संयम सहित प्रयोग करना अति अनिवार्य है। और विदेशी मुद्रा (Foreign Exchange) को केवल ऐसी वस्तुओं को विदेशो से मंगवाने के लिए व्यय किया जाना चाहिए। जो वस्तुएं देश के उत्पादन को बढाने में सहायक सिद्ध हो सकती है। साधारण शब्दों में हम यह कह सकते है कि यह दल देश के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन की मात्रा और गति को अधिक से अधिक सीमा तक पहुंचाने का इच्छुक है।

6. **राष्ट्रीय आमदनी नीति (National Income Policy)** – आमदनी सम्बन्धी यह दल एक विशाल राष्ट्रीय नीति निश्चित करना चाहता है। इस दल के विचार के अनुसार ऐसी नीति का मुख्य उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों (Sectors) और पेशे के आयु प्रबन्धों (Earnings Structure) में ऐसे परस्पर स्वीकत स्तर (Norms) स्थापित करना होगा जो मुद्रा प्रसार के दबाबों (Inflationary Pressures) सें, जहां तक सम्भव हो सके, सुरक्षित रह सकें और उनमें एक परस्पर सन्तुलन कायम रह सके। इसका साधारण अर्थ यह है। कि यह दल विभिन्न पेशों और क्षेत्रों सम्बन्धी आमदनी की एक ऐसी नीति निश्चित करना चाहता है जिसके साथ मुद्रा का प्रसार न हो और विभिन्न पेशों से होने वाली आमदनी में एक उचित सन्तुलन बना रहे।

7. **रोजगार (Employment)** – यह दल रोजगार के अवसरों को बढाने के लिए औधोगिक विकास के साधन को विशाल स्तर पर अपनाना चाहता है। इस दल का विचार है कि बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए ऐसी औधोगिक योजनाओं को प्राथमिकता दी जाये जो रोजगार के अधिक से अधिक अवसर प्रदान करती हो। अधिक से अधिक रोजगार

को यकीनी बनाने के लिए यह दल ग्रामीण और नगर क्षेत्रों में कारीगरों को अधिक से अधिक सुविधाएं देने का समर्थन करता है ताकि वह अपने लिए आप रोजगार पैदा कर सकें। इस दल का यह सुझाव है कि प्रत्येक परिवार का कम से कम एक वयस्क सदस्य उतना वेतन कमाता हो जितना कि सामाजिक कीमतों के अनुसार उचित हो। इस मन्तव्य के लिए यह दल एक समय–सीमित कार्यक्रम (Time bound Programme) लागू करना चाहता है। यह दल रोजगार के अवसरों को बढाने के मन्तव्य से वनों का विकास, दरियाओं और सिंचाई की गहरों में से रेत निकालने के कार्यो आदि को विशाल स्तर पर ग्रहण करना चाहता है। शिक्षक और योग्य युवक पुरूषों और स्त्रियों की सहायता करके उन्हें अपना कारोबार चलाने के योग्य बनाना इस दल के कार्यक्रम में शामिल है।

8. **काश्तकारी (Agriculture)** – यह दल काश्तकारी का आधुनिकीरण (Modernisation) करने के लिए काश्तकारी की उपज को अत्यधिक बढाने के पक्ष में है। यह दल इस विचार का समर्थक है कि प्रायः जनता दल और विशेष करके लोक दल के नेताओं ने बड़े–बड़े भूपिपतियों और छोटे कृषकों के हितों को परस्पर समरूप या एक समान दिखाने का यत्न किया है। परन्तु इस दल का यह विचार है। कि कषकों या उद्योग विरूद्ध काश्तकारी के नाम पर लोगो की भावनाओं को जाग्रत करना एक राजनीतिक चाल है। इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र यह दावा किया था कि कांग्रेस शासन के दौरान की 'लघु कषक विकास संस्था' (Small Farmer's Development Agency) स्थापित की गई थी। अत्यधिक सख्या में छोटे कषकों ने इस संस्था से अनेकों प्रकार की रियायतें और लाभ प्राप्त किए थे। 'लघु कषक विकास संस्था' (Small Farmer's Development Agency) की गतिविधियों का सम्पूर्ण देश में विस्तार करना और इसके कार्यक्रमों का आधुनिकीरण करना इस दल के कार्यक्रम में शामिल है।

   इसके अतिरिक्त कषकों को ब्याज की उचित दर पर कर कर्जे प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करना, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (Regional Rural Banks) और अन्य वित्तीय संस्थाएं छोटे और मामूली कषकों की सहायता के लिए स्थापित करना, कषकों को कर्जे देने की विधि सरल बनाना, मुर्गीखाने, रेशम के उत्पादन और दूध की डेरियों के द्वारा छोटे कषकों की आय में वद्धि काश्तकारी के साथ सम्बन्धित उद्योगो (Agro-Industries) को विशाल स्तर पर स्थापित करना, कषक काश्तकारी सेवा केन्द्र (Farmer's Agro-Service Centres) खोलने, ग्रामीण क्षेत्र में भण्डार गहों की सुविधाएं (Ware Housing Facilities) प्रदान करना, पांच एकड तक शुष्क भूमि पर मालिया समाप्त करना और प्रचलित मालिया प्रणाली को समाप्त करके किसी अन्य उचित और साधारण प्रणाली को लागू करना कांग्रेस (आई) के कार्यक्रम में शामिल है। इसके अतिरिक्त इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी वचन दिया था कि छोटे और मामूली कषकों को आर्थिक पक्ष से पिछड़ा वर्ग समझा जाएगा और उन्हें वह सभी सुविधाएं और लाभ प्राप्त होंगे जो आर्थिक पक्ष से अन्य पिछड़े वर्गो को दिए जाते है।

9. **उद्योग (Industry)** – यह दल छोटे ग्रामीण, स्तर और विशाल स्तर के उद्योग के सामूहिक विकास पर विश्वास रखता है। अन्य शब्दों मे यह दल प्रत्येक स्तर के उद्योग को विकसित करने के लिए उत्साहित करना चाहता हैं यह दल उद्योगों के द्वारा रोजगार के अधिक से अधिक अवसर उत्पन्न करना चाहता है, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि यह दल उद्योगों में मशीनीकरण या आधुनिकीकरण (Mechanisation or Modernisation) करना नहीं चाहता। इसके विपरीत यह दल वैज्ञानिक और तकनीकी विकास की सहायता के साथ विशाल स्तर के उद्योग स्थापित करने के पक्ष में है और उसके साथ–साथ निम्न और मध्य स्तर के और घरेलू उद्योग के विकास को उत्साहित करने का इच्छुक है।

10. **बहु-राष्ट्रीय (Multi Nationals)** – 'बहु–राष्ट्रीय' शब्द उन उद्योगों या संस्थओं के लिए प्रयुक्त किया जाता हैं जिनकी शाखाओं या जिनके क्षेत्र का विस्तार विभिन्न देशों में हुआ हो। कांग्रेस (आई) ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह वचन दिया था कि उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में बहु–राष्ट्रीय व्यापारों की भूमिका या उनके प्रभावों का पुर्ण रूप से निरीक्षण किया जाएगा ताकि उनकी गतिविधियों को सीमित करने के लिए आवश्यक सामग्री का अन्वेषण किया जा सके। अन्य शब्दों में यह दल बहु–राष्ट्रीय व्यापारों के विस्तार के पक्ष में नही है। और देश की अर्थव्यवस्था ओर उनके हानिकारक या विनाशकारी प्रभावों को निष्फल बनाना चाहता है।

11. **श्रम (Labour)** – उद्योगों में श्रमिकों की सहभागिता को यकीनी बनाना इस दल के प्रमुख उद्देश्यों में से एक है। इस दल का विचार है कि उत्पादन और औद्योगिक प्रबन्ध में श्रमिकों का सहभागी होना अति आवश्यक हैं इस दल ने यह विश्वास दिया था कि ऐसी सहभागिता का तुरन्त ही विस्तार किया जाएगा और सरकारी व्यापार इस सम्बन्धी प्रभावशाली नेतत्व

प्रदान करेंगे। यह दल सामाजिक न्याय की स्थिरता के लिए श्रमिकों की भलाई को अत्यन्त आवश्यक समझता है। कांग्रेस (आई) ने अपने चुनाव आविस–पत्रों में काश्तकारी के साथ सम्बद्ध श्रमिकों (Agriculture Labour) की सर्वोन्मुखी स्थिति को सुधारने के लिए विशेष कार्यक्रम लागू करने का विश्वास दिया था। काश्तकारी के साथ सम्बद्ध श्रमिकों को घर बनाने के लिए जमीन मुफ्त देना, घर बनाने के लिए सहायता देना, उन के लिए कम से कम वेतन निश्चित करना, उनके बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा का प्रबन्ध करना ओर उनको बेराजगार होने से सुरक्षित रखना आदि तथ्य कांग्रेस (आई) के काश्तकारी के श्रमिकों के साथ सम्बन्धित कार्यक्रम में शामिल थे।

12. **कमजोर वर्ग (Weaker Sections)** – इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में यह विश्वास दिया था कि कमजोर वर्गो के लिए एक विशेष कार्यक्रम लागू करेगा। पांच वर्षो के समय में सभी अनिवार्य गाँवो को पीने के शुद्ध पानी का प्रबन्ध करना, समस्त देश के ग्रामीण क्षेत्रें में गह–निर्माण के कार्य की गति की तीव्र करना, कमजोर वर्गो के लोगो को मकान बनाने के लिए मुफ्त भूमि देना, शहरी क्षेत्रों में गन्दे उपनिवेशों की सफाई करना, सफाई कर्मचारियों के प्रति विशेष ध्यान देना, ग्रामीण क्षेत्रों में कर्जदारी समाप्त करना और वचनबद्ध श्रम (bonded labour) का अन्त करना कमजोर वर्गो की स्थिति को सुधारने सम्बन्धी ग्रहण किए जाने वाले कार्यक्रम के विशेष लक्षण होगे। 1975–1976 में संकटकालीन स्थिति के दौरान कांग्रेस दल की सरकार ने 20–सूत्रीय कार्यक्रम (20-Point Programme) चलाया था। कांग्रेस (आई) ने 20–सूत्रीय कार्यक्रम को पुनः लागू करने के लिए अपने चुनाव आविस पत्र में घोषणा की थी। इस दल ने इस बात पर भी बल दिया था कि भूमि सुधारों को लागू करने के लिए गम्भीर यत्न किए जायेगे और जनता दल के शासन काल में जिस किसी व्यक्ति से भूमि छीन ली गई थी वह भूमि उस व्यक्ति को वापिस दी जाएगी।

13. **अन्तर्राष्ट्रीय नीति (International Policy)** – इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में यह घोषित किया था कि इस दल के विचार में भारत का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में बड़ी महत्वपूर्ण, गतिशील और लाभदायक भूमिका अभिनीत करनी है। भारत की यह भूमिका विशेष रूप में विकसित और विकासशील देशों में पाये जाने वाले अन्तरों को सीमित करने के प्रति और विश्व शान्ति की स्थापना के प्रति होगी।यह दल प्रभुताशाली समानता, परस्पर आदर और देशों के आन्तरिक कार्यो में हस्तक्षेप न करने के आधार पर सभी देशों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने और दढ़ बनाने पर विश्वास रखता है। अपने चुनाव आविस पत्र में इस दल ने यह घोषित किया था कि :–

(1) कांग्रेस बाह्य खतरों के विरूद्ध भारत की क्षेत्रीय और प्रभुसत्ता की रक्षा करेगा।

(2) भारत के आकार, प्राकतिक स्त्रोतों, मानवी योग्यता, उसकी भौगोलिक स्थिति और उसकी दीर्घ जमीनी, वायु और समुद्री सीमाओं को प्रमुख मानकर यह दल भारत की रक्षा योग्यता (Defence Capability) को शक्तिशाली बनाने का यत्न करेगा :

(3) अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर भारत के गौरव, सम्मान और राष्ट्रीय हितों का कायम रखेगा।

(4) शान्तमयी आधारों पर भारत के विकास के लिए परमाणु शिल्प–विज्ञान (Nuclear Technology) के प्रयोग से भारत के प्रभावशाली अधिकारों की रक्षा करेगा।

(5) जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रतिभासित की गई शान्तमयी सह–अस्तित्व की नीति (Policy of peaceful Co-existence) और गुटबन्दी से रहित नीति (Policy of Non-Alignment) का दढता सहित पालन करेगा।

(6) दक्षिणी–एशिया (South Asia), दक्षिणी पूर्वी एशिया (South East Asia), पश्चिमी एशिया (West Asia), अफ्रीका (Africa) और लेटिन अमेरिका (Latin America) के देशों में निकटवर्ती सम्बन्ध स्थापित करने के लिए यत्न करेगा।

(7) यह दल उन देशों के साथ द्वि–पक्षीय (Bi-lateral) और बहु–पक्षीय (Multi-lateral) समझौते करेगा और उनकी परस्पर ऐसे समझौते करने के लिए उत्साहित करेगा। ऐसे समझौते शांति स्थापित करने के लिए परस्पर सहयोग के लिए और इस क्षेत्र को बाह्य हस्तक्षेप से सुरक्षित रखने के लिए इसका शान्तमयी क्षेत्र बनाने के लिए किए जाएंगे।

निष्कर्ष (Conclusion) – कांग्रेस (आई) ने 1980 के लोकसभा के चुनावों में 9 राज्यों की विधान सभाओं के चुनावों में शानदार सफलता प्राप्त की थी। साधारण लोगों को यह विश्वास था कि यह दल अपनी घोषित नीतियों अनुसार साधारण लोगों के हितों के कार्य करने के लिए गम्भीर प्रयास करेगा ताकि यह दल अपने प्रति लोगों के विश्वास को स्थिर रख सके। परन्तु जब लोग प्रायः यह अनुभव करने लग पड़े थे कि दल ने अपनी नीतियों को लागू करने के लिए कोई विशेष सफल प्रयास नहीं किए है।

इसी कारण मई, 1982 में पश्चिमी बंगाल, हरियाणा, केरल ओर हिमाचल प्रदेश की विधान सभाओं के चुनावों में इस दल को वह शानदार सफलता प्राप्त न हुई जो केवल 2 वर्ष पूर्व लोकसभा और कुछ अन्य राज्यों की विधान सभाओं के चुनावों में इस दल को प्राप्त हुई थी। जनवरी, 1983 में इस दल की आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक और मणिपूर की विधान सभाओं के चुनावों में भी निराशा का मुख देखना पड़ा था। इस दल की लोकप्रियता दिन प्रतिदिन कम होती जा रही हैं। इस दल में आंतरिक फूट अत्यधिक है और इसी कारण कई राज्यों में इस दल की सरकारों की स्थिरता की निरन्तर खतरा बना रहता है। इस दल सम्बन्धी यह विचार भी प्रायः प्रचलित है कि यह दल श्रीमती इन्दिरा गाँधी के व्यक्तित्व के इर्द गिर्द ही घूमता हैं। लोगों का विश्वास पुनः जीतने के लिए इस दल का गम्भीर प्रयास करने पड़ेंगे क्योंकि लोगों का भारी बहुमत इस दल की कार्यप्रणाली से सन्तुष्ठ नहीं है।

बीस सूत्री कार्यक्रम - 1975 मे घोषित किया गया। 1982 में इसे नवीनता प्रदान की गई इसमें भूमि सुधार, कषि उपज, ग्रामीण विकास, खेती योग्य भूमि की सीमा निर्धारण, कृषि श्रमिको का वेतन, अनुसूचित जाति एवं जनजाति नियोजन स्वस्थ्य, प्रारम्भिक शिक्षा, उचित मूल्य दुकानें आदि का प्रावधान किया जाएगा।

समय परिवर्तन के साथ–साथ इसके कार्यक्रम तथा विचारधारा भी बदलती कल्याण, पेयजल, ग्रामीण आवास, बिजली, परिवार है।

(17) लोकसभा के चुनाव (फरवरी 1998) और कांग्रेस का चुनाव घोषणापत्र

लोकसभा के फरवरी 1998 मे सम्पन्न हुए मध्यावधि चुनावों के अवसर पर जारी चुनाव घोषणापत्र में कांग्रेस ने बावरी मस्जिद को ध्वस्त होने से नहीं बचा पाने के कारण बिना शर्त माफी मांगी और इसके लिए अपनी तत्कालीन सरकार के पूर्व प्रधानमन्त्री पी.वी. नरसिंहराव को पूरी तरह जिम्मेदार ठहराया। घोषणा पत्र में संयुक्त मोर्चे को भानुमति का कुनवा बताया। जनता दल को 'एमीवा' कीड़े की तरह घोषित किया गया। इसे निराश और घमण्डी लोगों का जमावड़ा बताया गया। कांग्रेस ने जैन आयोग की रिपोर्ट के मुदेद् पर संयुक्त मोर्चा सरकार से सर्मथन वापसी को उचित ठहराया और कहा कि किसी भी परिस्थिति में अपने नेता राजीव गांधी की हत्या के प्रश्न पर समझौता नहीं कर सकती।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में अल्पसंख्यकों से अनेक वादे किये है। कहा है कि अल्पसंख्यकों और मानवाधिकारों के लिए एक नया मन्त्रालय गठित किया जायेगा। सविंधान में संशोधन करके अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं के लिए एक आयोग स्थापित करेगी। उर्दू को उसका उचित स्थान दिलाया जायेगा। पार्टी भारतीयों के लिए समान निजी कानून बनाने के विचार को नहीं मानती। कांग्रेस अल्पसंख्यकों के सामाजिक और शैक्षिणक रूप से पिछड़े लोगों को आरक्षण की सुविधा देगी। उन्हें अन्य पिछड़े वगों के लोगों को दी जाने वाली विशेष सुविधाओं का भी लाभ देगी।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र मे कहा है कि देश के आदिवासी क्षेत्रों में विशेष न्यायालयों को स्थापित किया जाएगा। बैंकों द्वारा अनुसूचित जाति और जनजाति के किसानों के लिए शुरू की गई सौ करोड़ रूपये की विशेष ऋण व्यवस्था की राशि को दुगुनाकर दिया जाएगा। उद्योगों में कर्मचारियों की हिस्सेदारी को प्रोत्साहित किया जाएगा। पूर्व सैनिकों के पुनर्वास के लिए नए कार्यक्रम शुरू किए जाएंगे। महिलाओं ओर लड़कियों के खिलाफ भेदभाव को समाप्त करने के लिए पार्टी एक राजनीतिक अभियान शुरू करेगी। कांग्रेस सभी स्कूलों में एन. सी. सी. को अनिवार्य कर देगी। कांग्रेस यह सुनिश्चित करेगी कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली का लाभ सिर्फ गरीब और जरूरतमन्द लोगों को मिले। वर्तमान परिवार नियोजन की खामियों को एक सुनश्चित तरीके से दूर करने का प्रयास किया जाएगा। चुनाव घोषणा पत्र में कांग्रेस ने अपने आर्थिक एजेन्डा की भी रूपरेखा निर्धारित की है। कहा गया हैं कि कषि और ग्रामीण बुनियादी ढांचे में विशेषकर पिछड़े इलाकों में वास्तविक पूंजी निवेश बढ़ाना होग। ऋण प्रणालियों को फिर सशस्त बनान होगा। बिजली, सड़क, बन्दरगाह, कोयला, तेल और गैस, खनन और दूरसंचार जैसे क्षेत्रों में घरेलू और विदेशी सार्वजनिक और निजी पूंजी निवेश बढ़ाना होगा। पूंजी बाजार में फिर से उत्साह का संचार करना होगा। रोजगार परक आर्थिक गतिविधियों को नीति का विकास बनाकर उन पर विशेष ध्यान देना होगां इनमें निर्यात, कषि पशुधन और पशुपालन, सुचना–टैक्नोलोजी, आवास और निर्माण, बनीकरण, छोटे और ग्रामीण उद्योग, कपड़ा तथा पर्यटन आदि उद्योग शामिल है।

कांग्रेस ने चुनाव घोषणा पत्र में कहा है कि वह विदेश नीति को देश की आर्थिक प्राथमिकताओं और चिंताओं से जोडेगी। कांग्रेस देश में पाकिस्तान के सहयोग से चल रही आतंकवादी और घुसपैठ की गतिविधियों का डटकर मुकाबला करेगी। हमारी परमाणु नीति शान्तिपूर्ण और विकासात्मक बनी रहेगी, लेकिन जरूरत पड़ने पर हम अपने अन्य विकल्पों को भी खुला रखेंगे। कांग्रेस

अमरीका के साथ सम्बन्धों को और मजबूत करेगी। यूरोपीय संघ के साथ समझौतो के सिलसिले को आगे बढ़ाया जायेगा। जापान के साथ और निकट के आर्थिक तथा निवेश सम्बन्ध स्थापित करने का विशेष अभियान चलाया जाएगा। रूस के साथ ऋण समस्या का मान्य हल खोजने के प्रयास किए जाएगे। कांग्रेस पूर्ण निरस्त्रीकरण के प्रयास जारी रखेगी। कांग्रेस ने धर्मनिपेक्षता की अपनी नीति को फिर दुहराया। घोषण पत्र मे कहा गया कि धर्मनिरपेक्ष होने का दावा करने वाले वामपंथी मोर्चे ने सन् 1989 के चुनावों में भाजपा को सम्मान दिया। वह राष्ट्रीय मोर्चा सरकार को समर्थन देने में भी भाजपा के साथ रहा। कांग्रेस ने ही भाजपा से न कभी समझौता किया ओर न करेगी। पार्टी ने देश में आर्थिक स्वराज की स्थापना को अपना लक्ष्य बताया है।

"पूर्व भारत से नाता है, सरकार चलाना आता है" के उद्घोष के साथ कांग्रेस ने विश्वास व्यक्त किया कि स्थायित्वपूर्ण और धर्मनिरपेक्ष सरकार के लिए एक बार फिर उसे भारत की जनता का समर्थन मिलेगा।

12वी लोसभा में कांग्रेस को 141सीटें प्राप्त हुई अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, पंजाब, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा, उतर प्रदेश, जैसे राज्यों में कांग्रेस को एक भी सीट नहीं मिली।

13वी लोकसभा के चुनाव (सितम्बर–अक्टूबर 1999 और कांग्रेस) – 1999 में 13वी लोकसभा का चुनाव कांग्रेस ने श्रीमती सोनिया गांधी के नेतत्व में लड़ा। पिछले वर्ष सोनिया के अध्यक्ष पद सम्भालने से पार्टी को नया वंशगत उत्तराधिकारी मिल गया। सोनिया ने इस चुनाव में अल्पसंख्यकों और दलितों का समर्थन फिर से पाने के साथ साथ अभिजात वर्ग की सद्भावना का पहले जैसा लाभ उठाने का भरसक कोशिश की। मध्यम वर्ग का दिल जीतने के लिए पार्टी के चुनाव घोषणा पत्र में रोजगार पर जोर देते हुए कहा गया कि "एक करोड़ नए रोजगार के अवसर बनाए जाएंगे।" अल्पसंख्यकों के लिए विशेष पैकेज की चर्चा करते हुए प्राथमिक शिक्षा पर जोर दिया गया। राष्ट्रीय जनता दल, अत्रा दमुक तथा मुस्लिम लीग जैसे दलों से कांग्रेस ने चुनावी तालमेल भी किया। इस चुनाव में कांग्रेस ने 453 सीटों के लिए प्रत्याशी खड़े किए और उसके मात्र 113 प्रत्याशी (28.42% वोट) ही लोकसभा में पहुचें। यदि कर्नाटक में कांग्रेस के भाग्य का छींका न टूटा होता तो उसका आंकड़ा दो अंकों पर ही सिमट जाता। उत्तर प्रदेश में 1998 के शून्य स्कोर के मुकाबले एक बार उसे 10 सीटें प्राप्त हुई।

चुनाव 1999 : कांग्रेस घोषणा पत्र के प्रमुख बिन्दु

- मुद्रास्फीति के नियन्त्रण के लिए केबिनेट समिति का गठन।
- सन् 2003 तक आयात लाइसेन्स का खात्मा करना।
- छोटे किसानों को मिलने वाले कर्ज की मात्रा दोगुनी करना।
- दूरसंचार में विदेशी निवेश की सीमा पर पुनविचार करना।
- प्रतिरक्षा सुधारों के लिए समिति का गठन करना।
- राष्ट्रीय वरिष्ठ नागरिक कोश की स्थापना।
- राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा परिषद् का गठन करना।
- श्रम कानूनों का पुनरीक्षण।
- नई कपड़ा नीति।

जनता पार्टी
(Janata Party)

मार्च, 1977 में हुए लोकसभा के चुनावों में जनता पार्टी नामक एक नये राजनीतिक दल ने भाग लिया था। इस दल का निर्माण जनवरी, 1977 में चार राजनीतिक दलों – कांग्रेस (संगठन), भारतीय लोकदल, जनसंघ तथा समाजवादी दल ने विमलकर किया था। जनता दल में इन चार विरोधी दलों के अतिरिक्त कई बागी कांग्रेसी भी इस दल में सम्मिलित हुए थे। ये राजनीतिक दल श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा जून, 1975 में आन्तरिक आपातकालीन स्थिति लागू करने के प्रतिक्रम के कारण अस्तित्व में आया था। इस दल ने मार्च, 1977 में लोकसभा के चुनावों में शानदार सफलता प्राप्त की थी। श्री मोरारजी देसाई की अध्यक्षता में इस दल ने सरकार का निर्माण किया। स्वतन्त्रता उपरान्त यह प्रथम समय था कि एक गैर–राजनीतिक दल ने केन्द्र में शासन

की बागडोर सम्भाली थीं यह वर्णनीति है कि बाबू जगजीवन राम ने कांगेस से त्याग पत्र देकर 'कांग्रेस फार डैमोकेसी' (Congress for Democracy) नामक एक नये राजनीतिक दल को जनवरी 1977 में जन्म दिया था। 1 मार्च 1977 के लोकसभा के चुनावों में इस दल ने जनता पार्टी के सहयोग से चुनाव लड़े थे। तदोपरान्त मई, 1977 में यह दल भी जनता पार्टी में सम्मिलित हो गया था।

जनता पार्टी की नीतियां और कार्यक्रम (Policies and Programmes of the Janata Party) – जनवरी 1980 में लोकसभा के चुनावों के समय जनता दल ने अपना चुनाव–आविस–पत्र (Election Manifesto) जारी किया था। इस चुनाव आविस पत्र में जनता दल ने अपने प्रमुख सिद्धान्तों और नीतियों का वर्णन किया था। जिन्हें हम संक्षेप रूप में निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन वर्णन कर सकते है :–

1. प्रारम्भिक सिद्धान्त (Basic Principles) – इस दल के प्रारम्भिक सिद्धान्त इस प्रकार है।

1. सत्तावाद वंश–शासन और व्यक्तिगत महानता (Personality Cult) की विरोधता और प्रत्येक स्तर और लोकतन्त्र की स्थापना।
2. प्रभावशाली और स्थायी सरकार जो कानून के शासन (Rule of Law) पर आधारित होगी और जिसमें लोगों को शान्तमय विधि के द्वारा अपने विरोधी विचार प्रकट करने या आन्दोलन करने का अधिकार प्राप्त होगा।
3. धर्म–निरपेक्ष समाज की स्थापना जिसमें सभी धर्मो और नस्लों के लोगों से उचित स्थान प्राप्त होगा।
4. अर्थ–व्यवस्था और प्रशासन में विकेन्द्रीकरण करना ताकि स्थानीय स्वशासन के निम्न स्तर की संस्थाओं को अधिक से अधिक शक्तियां प्राप्त हैं।
5. समाजवादी समाज की स्थापना करना जिसमें जनतक क्षेत्र की प्रमुख भूमिका होगी और यह क्षेत्र अति गरीब लोगों के हितों के लिए कार्य करेगा।
6. आत्म–निर्भरता के द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा को यकीनी बनाना।
7. वास्तविक दलबन्दी रहित विदेशी नीति (Policy of Genuine Non-alignment) का पालन करना।

2. **राजनीतिक कार्य** (Political Tasks) – इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में निम्नलिखित राजनीतिक कार्यो की पूर्ति करने पर बल दिया था :–

1. इस दल का विश्वास है कि हमारे देश के सविधान में कुछ विशेष परिस्थितियों को निपटाने के लिए अनिवार्य व्यवस्थाएं विद्यमान नहीं है। इसलिए यह दल राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपालों की शक्तियों सम्बन्धी, राष्ट्रपति राज्य लागू करने सम्बन्धी आदि सवैधानिक व्यवस्थाओं का पूर्ण निरीक्षण करना चाहता है और नये हालातों के अनुसार इनमें आवश्यक परिवर्त न करने का इच्छुक हैं। इसके अतिरिक्त यह दल निगरान सरकार (Caretaker Government) की शक्तियों की सीमा और उसकी स्थिति को स्पष्ट रूप में सवैधानिक व्यवस्थाओं के द्वारा वर्णन करना चाहता है।,
2. यह दल राजनीतिक अधिकारेां की शुद्धता का आदर करता है और इस मत का समर्थक है कि मौलिक अधिकारों की अखण्डता प्रत्येक अवस्था में कायम रहनी चाहिए। इस दल का यह मत है कि मौलिक अधिकारों ओर निर्देशक सिद्धान्तों में कोई अन्तर विरोधता नहीं है। यह दल मौलिक अधिकारों को सीमित किये बगैर निर्देशक सिद्धांतों को लागू करना चाहता है।

जनता दल चुनाव–प्रणाली में अग्रलिखित सुधार लागू करना चाहता हैः–

(i) लोकसभा पर राज्य विधान सभाओं के चुनावों के लिए राज्य के द्वारा वित्तीय सहायता दी जाये।

(ii) प्रमाणित राजनीतिक दलों की उचित गतिविधियों के लिए भी राज्य के द्वारा वित्तीय सहायता देने का प्रबन्ध किया जाये।

(iii) राजनीतिक दलों के हिसाब–किताब की प्रत्यक्ष रूप में चुनाव–आयोग (Election Commission) के द्वारा स्थापित की संस्थाओं के द्वारा जनतक जांच पड़ताल (Public Audit) करने का प्रयत्न किया जाये।

(iv) चुनाव के दौरान किसी विशेष पद के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रशासनिक ढ़ांचे के दुरूपयोग को रोकने का प्रबन्ध किया जाये।

(v) सभी मतदाताओं के लिए जान–पहचान कार्ड (Identity Card) जारी किये जायें।

(vi) प्रत्येक मतदाता को निडरता सहित अपने मत का प्रयोग करने का पूर्ण अवसर दिया जाये।

(vii) मत का अधिकार देने की आयु 21 वर्ष से कम करके 18 वर्ष की जाए।

(viii) यह दल इस पक्ष में है कि दल परिवर्तन की मन्दवादी को रोकने के लिए अनिवार्य कानून का निर्माण किया जाना चाहिए यहां यह वर्णन योग्य है कि जनता दल की सरकार ने अपने शासन काल के समय दल परिवर्तन को रोकने के लिए एक संवैधानिक संशोधन करने का यत्न किया था, परन्तु जनता दल के कुछ अपने ही विधायकों के दबाव अधीन सरकार को वह संवैधानिक संशोधन वापिस लेना पड़ा था।

3. **आर्थिक कार्य (Economic Tasks)** – जनता दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में निम्नलिखित आर्थिक कार्यों को कार्यान्वित रूप देने का विश्वास दिया था :–

(i) आर्थिक योजनाबन्दी में काश्तकारी और ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी जायेगीः

(ii) जिन कीमतों पर कषक उत्पादन करने के लिए सामग्री क्रय करता है उन कीमतों और जिन कीमतों पर वह अपना उत्पादन विक्रय करता है, में उचित सन्तुलन स्थापित किया जायेगा। अन्य शब्दों में कषक को उसके उत्पादन का उचित मूल्य प्राप्त करने के लिए व्यवस्थाएं की जाएगी;

(iii) ग्रामीण–श्रमिकों (Rural-Workers) को संघ (Unions) बनाने के लिए सहायता दी जाएगी;

(iv) जनता सरकार के द्वारा त्यागपत्र देने के समय वस्तुओं की कीमतें जिस स्तर पर अस्तित्व में थी उस स्तर की स्थिरता सहित पुन; स्थापित करने का यत्न किया जायेगा। अन्य शब्दों में बढ़ रही कीमतों को रोका जायेगा और कीमतों को कम करने के लिए यत्न किये जायेंगे।

(v) अति गरीबों की भलाई के लिए जनता दल की सरकार ने एक–कार्यक्रम लागू किया था जिसको ऐनटोडिया (Antyodaya) के नाम से जाना जाता है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य अति गरीब लोगों को अपने पैरों पर खड़ा करने योग्य बनाना है। जनता दल ने यह दावा किया था कि अपने शासन काल में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 12 लाख गरीब परिवारों को सहायता दी गई थी। इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह विश्वास दिया था कि आने वाले पांच वर्षों में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 125 लाख अति गरीब परिवारों को सहायता दी जाएगी।

(vi) 10 वर्षों के समय के भीतर सभी क्षेत्रों में ग्रामीण रोजगार देने सम्बन्धी योजना (Rural Employment Gurantee Scheme) को लागू किया जायेगा और इस योजना का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक परिवार के कम से कम एक सदस्य को रोजगार देना अनिवार्य होगा।

(vii) उन बेराजगार ग्रेजूएटों को भत्ता दिया जायेगा जो राजेगार प्राप्त होने तक सामाजिक सेवाओं की योजनाओं में कार्य करेंगे।

(viii) पांच वर्षों के समय के भीतर भूमिहीन श्रमिकों और कारीगरों के संस्थात्मक कर्जे (Institutional Credit) को तीन गुणा कर दिया जायेगा।

(ix) योजनाबन्दी के खर्चे का 45 प्रतिशत हिस्सा 'सामूहिक ग्रामीण विकास' (Integerated Rural Development) के लिए लगाया जायेगा और भूमि सुधार सम्बन्धी कानूनों को 9वीं अनुसूची में अंकित किया जायेगा ताकि न्यायपालिका इन कानूनों को किसी आधार पर असंवैधानिक घोषित न कर सकें। यहां यह वर्णन योग्य है कि संसद् संवैधानिक संशोधन के द्वारा जिस कानून को भी 9वीं अनुसूची (9th Schedule) में अंकित कर देती है वह कानून न्यायालयों के न्यायिक पुनर्निरीक्षण के अधिकार (Power of Judicial Review) से बाहर होता है।

(x) पांच वर्षों के समय के भीतर सभी फालतू भूमि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के भूमिहीन सदस्यों में विभक्त कर दी जाएगी।

(xi) जो भी मुजारे या पट्टेदार निजी रूप में काश्त करते हैं उनको पांच वर्षों के समय के भीतर उस भूमि के स्वामित्व के अधिकर दे दिये जायेंगे।

(xii) कषकों को उनके उत्पादनों का पारिश्रमिक मूल्य दिया जायेगा।

(xiii) आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण कम किया जायेगा और एकाधिकारों (Monopolies) और अन–उचित व्यापारिक गतिविधियों को समाप्त किया जायेगा।

(xiv) उचित करों और नियन्त्रण द्वारा विलासमयी या अय्याशी की सामग्री के उपभोग को सीमित किया जायेगा।

(xv) जनमत क्षेत्र (Public Sector) और सहकारिता (Co-operatives) की प्रमुख भूमिका को यकीनी बनाया जायेगा। अन्य शब्दों में यह दल जनतक क्षेत्र और सहकारिता के उद्देश्यों को अधिक उत्साहित करने के पक्ष में है।

(xvi) सभी उद्योगों और काश्तकारी श्रमिकों के कम से कम वेतन की यकीनी बनाया जायेगा।

(xvii) बोनस कानून (Bonus Act) में सुधार करने के लिए इसकी कमियों को दूर किया जायेगा।

(xviii) आवश्यक अन्वेषणों और प्रयोगों के द्वारा शान्तमयी मन्तव्यों के लिए प्रमाण शक्ति का विकास किया जायेगा।

4. **प्रैस की स्वतन्त्रता (Freedom of Press)** – यह दल प्रैस की स्वतन्त्रता को लोकतन्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार मानता है। यह दल संविधान में संशोधन करके प्रैस की स्वतन्त्रता सम्बन्धी स्पष्ट संवैधानिक व्यवस्था करना चाहता था। यहां यह वर्णन योग्य है। कि वर्तमान समय हमारे संविधान में प्रैस की स्वतन्त्रता सम्बन्धी कोई विशेष वर्णन नहीं किया गया है, अपितु अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत वर्णित भाषणों और विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता (Freedom of Speech and Expression) में ही प्रैस की स्वतन्त्रता को सम्मिलित समझा जाता है। यह दल प्रसारण और दूरदर्शन की स्वाधीनता (Autonomy) प्रदान करने का इच्छुक है। इस मन्तव्य के लिए ही इस दल की सरकार ने 'प्रसार भारतीय विधेयक' (Prasar Bharati Bill) लोकसभा में प्रस्तुत किया था, परन्तु लोकसभा के भंग हो जाने के कारण वह विधेयक कानून का रूप धारण न कर सका। यह दल दूरदर्शन और प्रसारण के लिए एक स्वाधीन निगम (Autonomous Corporation) स्थापित करना चाहता है।

5. **अल्पसंख्यक (Minorities)** – जनता दल का यह विश्वास है कि अल्पसंख्यकों की समस्याओं के प्रति विशेष ध्यान देना अनिवार्य है ताकि उनको यह विश्वास हो सके कि समूचे राष्ट्र में उनको उचित स्थान प्राप्त होगा। इस दल की सरकार ने अपने शासनकाल में अल्पसंख्यकों की समस्याओं को निपटाने के लिए अल्पसंख्यक आयोग (Minorities Commission) स्थापित किया था। यह दल इस आयोग को संवैधानिक मान्यता और कानूनी शक्तियां देना चाहता था परन्तु लोकसभा भंग हो जाने के कारण यह दल ऐसा न कर सका। इस दल ने अपने चुनाव आविस–पत्र में अल्पसंख्यक आयोग को संवैधानिक मान्यता देने सम्बन्धी अपने विचार को पुनः व्यक्त किया था। इस दल ने यह भी विश्वास दिया था कि यह दल प्रत्येक सम्भव यत्न करेगा कि सभी अल्पसंख्यकों के विकास के लाभों को समरूप में मान सकें और किसी भी अल्पसंख्यक के विरूद्ध किसी प्रकार का भेदभाव न हो। इस दल ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अल्पसंख्यक स्वरूप (Minority Character of Aligarh Muslim University) को पुनः स्थापित करने का विश्वास दिया था।

6. **अनुसूचित जातियां, कबीले और पिछड़ी श्रेणियां (Schedule Castes, Tribes and Backward Classes)** – जनता दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में आर्थिक और सामाजिक पक्ष से पिछड़ी श्रेणियों की समस्याओं का समाधान करने का विश्वास दिया था। इस दल की सरकार ने अपने शासनकाल में श्री बी॰ पी॰ मण्डल के नेतत्व के अन्तर्गत पिछड़ी श्रेणियों सम्बन्धी आयोग (Backward Classes Commission) स्थापित किया था। इस दल ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों को भी विश्वास दिया था कि उनकी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के प्रति विशेष ध्यान दिया जायेगा। इस दल का विचार है कि जब इन जातियों के विरूद्ध सामाजिक भेदभाव कायम रहता है तब तक इन जातियों को संविधान के द्वारा दी गई विशेष सुविधाएं कायम रहेंगी। अन्य शब्दों में अनुसूचित जातियों और कबीलों के लिए संसद् और राज्य विधानमण्डलों में स्थान सुरक्षित रखे जाएंगे और इन जातियों के विकास के लिए आवश्यक अन्य सुविधाओं का विशेष प्रबन्ध किया जायेगा। इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी कहा था कि 'भूमि की सीमा सम्बन्धी कानून' (Land Ceiling Laws) को लागू करने के फलस्वरूप जो भूमि फालतू होगी उस भूमि को भूमिहीन व्यक्तियों में बांटते समय अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों के लोगों को प्राथमिकता दी जाएगी। कबायली क्षेत्रों में रहते

लोगों को अपने सभ्याचार के अनुसार विकसित होने, शोषण और कर्जदारी से बचने और विकास के मन्तव्य के लिए अपनी संस्थाएं स्थापित करने के योग्य बनाने के लिए विशेष कार्यवाही की जाएगी।

7. **विदेश नीति (Foreign policy)** – इस दल का यह दढ़ मत है कि राष्ट्रीय सुरक्षा (National Security) मुख्य रूप से चार आधारों पर नियमित करती है। राष्ट्रीय एकता (National Integration), आर्थिक विकास (Economic Development), कूटनीति (Diplomacy) और रक्षा (Defence) ये चार आधार हैं जो राष्ट्रीय सुरक्षा के चार स्तम्भों (Pillars) के रूप में कार्य करते हैं जहां तक जनता दल की विदेशी नीति का सम्बन्ध है यह दल ऐसी स्वतन्त्र विदेशी नीति ग्रहण करने का इच्छुक है जो विश्व शान्ति के विकास के लिए सहायक सिद्ध हो। इस कारण यह दल सैनिक दलबन्दियों की राजनीति (Politics of Military Bloc) के विरूद्ध है और एक वास्तविक दल बन्दी से रहित (Genuine Non-Alignment) विदेशी नीति के लिए वचनबद्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शन्तिपूर्वक ढ़ंग से हल करने के लिए, विश्व–व्यापार और सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए और प्रत्येक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग विकसित करने के लिए यह दल संयुक्त राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने का इच्छुक है। यह दल नस्लवाद और उपनिवेशवाद के समस्त रूपों का विरोधी और मानव अधिकारों का समर्थक है। यह दल सभी राष्ट्रों के साथ सामान्य विकासशील देशों के साथ विशेष करके मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। दक्षिणी एशिया (South Asia) के क्षेत्र के सभी देशों में क्षेत्रीय सहयोग को विकसित करने के लिए उत्साह देना, दक्षिणी पूर्वी और दक्षिणी पूर्वी और पश्चिमी एशिया (South East and West Asia) में इस प्रकार की कार्यवाहियों का समर्थन करना, हिन्द महासागर को शन्ति का क्षेत्र बनाने के लिए कार्य करना और दक्षिणी अफ्रीका में चल रहे स्वतन्त्रता संग्राम को पूर्ण सहयोग देना इस दल के कार्यक्रम में सम्मिलित है। यह दल भारत के पड़ोसी देशों के साथ और 'तीसरे विश्व' (Third World) के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का विशेष रूप में इच्छुक है। यहां यह वर्णन योग्य है कि तीसरे संसार में पिछड़े और विकासशील देशों के अतिरिक्त वे देश भी सम्मिलित हैं जो उपनिवेशवाद (Colonialism) का शिकार रहे हैं और उपनिवेशवाद से मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात् सर्वपक्षीय विकास के लिए यत्न कर रहे हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) – जनता पार्टी में सम्मिलित भिन्न–भिन्न राजनीतिक दल अपने पथक राजनीतिक अस्तित्व को पूर्णतया न कर सके। इसका निष्कर्ष यह निकला कि इस दल में राजनीतिक एकता और राजनीतिक एकरूपता स्थापित न हो सकी। दल के नेताओं की परस्पर राजनीतिक विरोधता दिन–प्रति–दिन बढ़ती गई। अन्त में इस दल के अनेकों विधायकों ने दल की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया। इसी कारण जुलाई, 1979 में प्रधानमन्त्री श्री देसाई को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा और इस प्रकार गैर कांग्रेसी राजनीतिक दल का शासन समाप्त हो गया। दल के नेताओं की आन्तरिक फूट के कारण इस दल के नेता इससे पथक् होते गये और उन्होंने अपने अलग राजनीतिक दल स्थापित कर लिये। वर्तमान समय में भारतीय राजनीति में इस दल को कोई विशेष महत्व प्राप्त नहीं है। केवल कर्नाटक राज्य में ही इस दल ने कुछ अन्य प्रान्तीय दलों की सहायता से सरकार का निर्माण किया है। देश के पर्याप्त बड़े भाग में इस दल का कोई विशेष राजनीतिक प्रभाव नहीं है, जिसके कारण यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह दल शायद ही कभी 1977 जैसी अपनी शानदार उपलब्धि को पुनः दोहरा सके।

भारतीय लोक दल
(Bhartiya Lok Dal)

भारतीय लोकदल सितम्बर, 1979 में अस्तित्व में आया था। इस दल का निर्माण करने में उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध किसान नेता का विशेष हाथ था। चौधरी चरण सिंह उस समय केन्द्र में निगरान सरकार (Caretaker Government) के प्रधानमन्त्री थे। लोकदल का निर्माण करने से प्रसिद्ध नेता श्री राजनारायण ने भी चौधरी चरणसिंह का साथ दिया था परन्तु शीघ्र ही श्री नारायण लोकदल से अलग हो गए।

लोकदल की नीतियां और कार्यक्रम (Policies and Progammes of Lok Dal) – जनवरी 1980 में हुए लोकसभा के चुनावों के समय लोकदल ने अपना चुनाव आविस–पत्र में इस ने यह भी कहा था कि यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि लोकदल राष्ट्रीय एकता, सभी धर्मो के लिए आदर, लोकतन्त्र का विकास और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक और आर्थिक एकता के अनुसार समाजवादी समाज की स्थापना के लिए लोक दल द्वारा जारी किए चुनाव आविस–पत्र में वर्णित इस दल की नीतियों और कार्यक्रमों को संक्षिप्त रूप मे हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर सकते है :–

1. **स्वच्छ और योग्य प्रशासन (A clean and efficient Administration)** – लोकदल ने उत्यधिक महत्ता एक ईमानदार और योग्य प्रशासन की स्थापना को दी है। लोक दल एक ऐसा प्रशासन स्थापित करना चाहता है जहां सरकारी कर्मचारी पूर्ण उत्तरादायित्व सहित अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण योग्यता सहित निभाएंगे और जिस प्रशासन में किसी प्रकार की देरी, फ्रजूलखर्ची और भ्रष्टाचार नहीं होगा। लोकदल का विश्वास है कि भ्रष्टाचार ऊपर से आरम्भ होता है और धीरे–धीरे समस्त समाज को भ्रष्ट कर देता है। इसलिए यदि जनतक जीवन के ऊपरी स्तरपर उच्चकोटि की निजी ईमानदारी का अस्तित्व नहीं होता तब तक प्रशासन में भ्रष्टाचार को समाप्त करना सम्भव नहीं हैं। इसलिए लोकदल ऐसी विशेष संस्थाएं स्थापित करनाचाहता है जो भ्रष्टाचार सरकार की ओर से की जाने वाली पहल कदमी का इन्तजार न करे। भ्रष्टाचार के अन्त के लिए यह दल अर्थव्यवस्था सम्बन्धी जिन वस्तुओं के नियन्त्रण (Controls) की आवश्यकता नहीं है उन नियन्त्रणों को समाप्त करना चाहता है और अधिकारियों की इच्छुक शक्तियां (Discretionary Powers) के प्रयोग सम्बन्धी स्पष्ट नियमों और विधियों को निश्चित करना चाहता है। इस देश का यह विचार है कि भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि दोषी और अयोग्य व्यक्तियें के विरूद्व कार्यवाही की जायेगी।

2. **कर प्रणाली (Taxation System)** – दल यह भी अनुभव करता है कि प्रचलित कर प्रणाली के अधीन करोड़ों रूपयों पर कोई कर नहीं लगाया जाता और करोड़ों ही रूपये के कर ठीक रूप में उगराहे नहीं जाते। इसलिए लोकदल प्रचलित कर प्रणाली की कीमतों को दूर करके ऐसी कर प्रणाली लागू करना चाहता है जिस कर के अन्तर्गत करों की चोरी या करों की अदायगयी सम्बन्धी हेराफेरी न हो सके। इस दल का यह विचार है कि आमदनी में से कुछ बचत करते है उस पर कर नहीं लगाना चाहिए, अपितु जो धन विभिन्न अवसरों पर धनी व्यक्तियों के द्वारा व्यय किया जाता है। उस व्यय पर कर लगाया जाना चाहिए। यह दल ऐसे अप्रत्यक्ष करों (Indirect Taxation) को कम करना चाहता है जिसका भार गरीब व्यक्तियों पर पड़ता है।

3. **चुनाव के लिए राज्य द्वारा वित्तीय सहायता (State Aid for Elections)** – इस दल का विचार है कि चुनावों में काले धन की महत्ता या भूमिका को समाप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि राज्य के द्वारा चुनाव लड़ने के लिए वित्तीय सहायता दी जाये। इस मन्तव्य के लिए यह दल एक सरकारी विधि (State Fund) निश्चित करना चाहता है जिसमें से चुनावों के समय प्रत्याशियों को वित्तीय सहायता दी जा सके। इसके अतिरिक्त इस दल का विचार है कि राजनीतिक दलों को अपने कार्य करने के लिए प्रत्येक वर्ष राज्य की और से वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए ओर कानून के द्वारा यह अवश्य निश्चित कर देना चाहिए कि राजनीतिक दल अपने हिसाब–किताब की जांच (Audit) करें और अपने समस्त लेखे को प्रकाशित करें।

4. **सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector)** – इस दल का मत है कि सार्वजनिक क्षेत्र भी राष्ट्र के धन की अत्यधिक बर्बादी करता हैं इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में कहा था कि 1971–72 तक सार्वजनिक क्षेत्र में समस्त निगम (Corporation) प्रत्येक वर्ष घाटा दिखा रहे थे। सार्वजनिक क्षेत्र के एकाधिकार पर प्रत्येक वर्ष खर्च बढ़ता जा रहा है, परन्तु उस खर्च की अपेक्षा राष्ट्र को उतना लाभ प्राप्त नहीं हो रहा जितना इन एकाधिकारों से होना चाहिए। लोकदल का विचार है कि सार्वजनिक क्षेत्र की निराशाजनक उपलब्धियों का इन एकाधिकारों में राजनीतिज्ञों और सेवकों का नाजायज हस्तक्षेप है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र के व्यापारों के प्रबन्धकों को इतनी अधिक सुविधाएं और इतना वेतन नहीं मिलता जितना कि निजी क्षेत्र के व्यापारों में कार्य कर रहे प्रबन्धकों को दिया जाता है। कम वेतन और उचित सुविधाओं के अस्तित्व के कारण कलाकुशल और योग्य व्यक्ति सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहते। लोकदल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी वचन दिया था कि यह दल जनमत क्षेत्रों के व्यापार की स्वाधीनता स्थापित करेगा और इसके हाथ ही इन व्यापारों के प्रबन्धकों को जिम्मेदार भी बनायेगा ताकि उनके द्वारा की गई गल्तियों या असावधानियों की जिम्मेदारी निश्चित की जा सके। यह दल इस विचार का भी समर्थक है कि यदि कोई सार्वजनिक व्यापार निरन्तर घाटा दिखा रहा है तो उस एकाधिकार को तुरन्त बन्द कर दिया जाना चाहिए। परन्तु यदि ऐसा एकाधिकार हमारी अर्थव्यवस्था के मौलिक ढांचे का अनिवार्य अंग है तो उसके द्वारा घाटा दिखाए जाने के बावजूद भी इसको कायम रखा जा सकता है। लोकदल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह स्पष्ट शब्दों में कहा था कि भविष्य में सार्वजनिक क्षेत्र में केवल ऐसे व्यापार और उद्योग स्थापित किए जाए जो राष्ट्रीय सुरक्षा के पक्ष से अनिवार्य है या जिनका स्वामित्व सार्वजनिक क्षेत्र में नहीं होना चाहिए या जिन व्यापारों पर अत्यधिक धन व्यय करना निजी क्षेत्र के लिए सम्भव नहीं है।

5. **चुनाव प्रणाली (Electoral System)** – इस दल ने अपने चुनाव आविस पत्र में यह स्पष्ट वर्णन किया था कि स्वतन्त्र और विशुद्ध चुनावों के बिना लोकतन्त्र एक ढोंग या दिखावा बन जाता है। इसलिए यह दल चुनाव प्रणाली में ऐसे सुधार करना चाहता है तो स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनावों को यकीनी बना सके और इस प्रकार देश में वास्तविक लोकतन्त्रीय पद्धति स्थापित करने में सहायक सिद्ध हो सके।

6. **प्रैस की स्वतन्त्रता (Freedom of Press)** – यह दल प्रैस की स्वतन्त्रता को लोकतन्त्र की सफलता के लिए एक अनिवार्य शर्त समझता है और इस कारण यह दल प्रैस की स्वतन्त्रता के लिए वचनबद्ध है। यह दल चाहता है कि सविधान में संशोधन करके मौलिक अधिकार वाले अध्याय में प्रैस की स्वतन्त्रता का स्पष्ट वर्णन किया जाना चाहिए।

7. **अन्तर-राजकीय विवाद (Inter-State Disputes)** – इस दल का यह विश्वास है कि शासक दल ने अन्तर–राजकीय विवादों का ठीक रूप में समाधान करने का गम्भीर यत्न कभी नहीं किया है, अपितु ऐसे विवादों को निरन्तर लटकाया हैं अन्तर–राजकीय झगड़ो के कारण कई बार 'जान नुकसा' भी हुआ है। इसलिए लोकदल अन्तर–राजकीय विवादों का निपटारा करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 363 के एक स्थायी आयोग (Permanent Commission) स्थापित करने का इच्छुक है। प्रत्येक प्रकार के अन्तर–राजकीय विवाद इस विभाग की सौपे जाएंगे और केन्द्रीय सरकार समेत सारे राज्यों के लिए इस आयोग के निर्णयों को स्वीकत करना अनिवार्य होगा।

8. **लोकदल की आर्थिक नीति (Lok Dal's Economic Policy)** – लोकदल ऐसी प्रणाली के पक्ष में भी नहीं है जिस प्रणाली के अन्तर्गत कुछ व्यक्तियों को अन्य लोगो की आर्थिक आवश्यकताओं के शोषण करने की असीमित स्वतन्त्रता प्राप्त हो। यह दल ऐसी प्रणाली के पक्ष में भी नहीं जिस प्रणाली के अन्तर्गत राज्य के पास समस्त लोगों की आर्थिक स्वतन्त्रता को नष्ट करने की असीमित या निरंकुश शक्ति प्राप्त हो। लोकदल ऐसे गांधीवादी अर्थव्यवस्था पर विश्वास रखता है जो मुख्य रूप में आत्म रोजगार (Self-Employment) पर आधारित हो। इस दल का विश्वास है कि सम्पति विस्तत रूप में फैली होनी चाहिए ताकि सम्पत्ति को शोषण का साधन न बनाया जा सके। इस दल ने यह विश्वास दिया था कि यदि इस दल के हाथों में राजनीतिक शक्ति आ गई तो यह दल भी लोगों को कार्य का अधिकार (Right to work) देगा। इस दल का मत है कि प्रचलित प्रणाली में अमीर अत्यधिक अमीर और गरीब अत्यधिक गरीब हो रहा है। इस दुःखदायक अवस्था का तब ही अन्त हो सकता है यदि ऐसी अर्थव्यवस्था स्थापित की जाए जिसमें काश्तकारी और घरेलू उद्योगों को प्रमुख स्थान प्राप्त हो। अन्य शब्दों में लोकदल का यह विचार है कि ऐसे व्यापार स्थापित किये जाने चाहिए जिनमें अधिक से अधिक श्रमिकों की भूमिका की आवश्यकता हो। अन्य शब्दों में यह दल बड़े–बड़े मशीनी उद्योगों के अधिक पक्ष में नही है। इस दल का यह मत है कि अर्थव्यवस्था को काश्तकारी और घरेलू अद्योगों पर आधारित करने के साथ ही निजी पूंजीवाद (Private Capitalism) और राज्य पूंजीवाद (State Capitalism) की बुराईयों पर काबू पाया ओर पूर्ण रोजगार को यकीनी बनाया जा सकता हें यह दल आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीयकरण करना चाहता हे और धन को केन्द्रित होने से ओर शक्ति के दुरूपयोग को रोकने के लिए यह दल गांधी जी द्वारा प्रभावित अमानतदारी प्रणाली (Trusteeship System) को अनुभव के तौर पर लागू करने के पक्ष में है। यहां यह वर्णन योग्य है कि लोकदल बड़े उद्योगों की स्थापना के विरूद्ध नहीं है, परन्तु यह दल काश्तकारी और घरेलू उद्योगों के विकास के प्रति विशेष ध्यान देना चाहता है।

9. **काश्तकारी का महत्व (Significance of Agriculture)** – लोकदल का यह विश्वास है कि काश्तकारी के विकास के बिना देश का आर्थिक विकास नहीं हो सकता। इसलिए यह दल काश्तकारी के विकास को प्राथमिकता देना चाहता हैं इस दल का यह मत है कि यदि हम अपनी जरूरत से अधिक अन्न का उत्पादन करेंगे तब ही हम अन्न को अन्य देशों को भेजने के योग्य हो सकेंगे। इस दल का यह भी मत है कि शीघ्र ही भविष्य में कुछ अन्य देशों को अनाज की अत्यधिक कमी होगी और ऐसी स्थिति में इन देशों में अन्न देकर हम अपनी आर्थिक समस्याओं का समाधान करने के योग्य हो सकेंगे। इसलिए लोकदल ने अपने चुनाव आविस पत्र में यह कहा था कि यह दल काश्तकारी के विकास के लिए कोई कमी नहीं रहने देगा और छोटे और साधारण कषकों को कर्जे की सुविधांए दी जायेंगी। इसके अतिरिक्त कषकों की अच्छी प्रकार के बीज, खाद और सिंचाई के साधनों की सेवाएं उचित दर पर देने का प्रबन्ध किया जायेगा। और काश्तकारी सम्बन्धी नवीनतम वैज्ञानिक ज्ञान प्रत्येक स्तर के कषकों तक पहुंचाने के लिए विशाल प्रबन्ध किये जाएंगे। जो काश्तकारी भूमि सरकार ने सार्वजनिक मन्तव्यों के लिए प्राप्त की हैं वह भूमि उसके स्वामियों को वापिस कर दी जाएगी या पट्टे पर दे दी जाएंगी यदि निश्चित समय के भीतर सरकार उस भूमि को प्रयोग में नही ले आती। इस दल

का मत है कि भूतकाल में भूमि के क्षय (Soil Erosion) प्रति सरकार ने बहुत कम ध्यान दिया है। परन्तु यदि भूमि के क्षय की गति इस प्रकार ही चलती रही तो हमारी भूमि कोई फसल देने के योग्य नहीं रहेगी। इसलिए इस दल का यह विचार है कि भूमि के प्रयोग के साथ–साथ भूमि की रक्षा भी उतनी ही अनिवार्य है। इस दल का विचार है कि राष्ट्र के अस्तित्व का मुख्य आधार भूमि है इसलिए लोकदल देश की भूमि की सुरक्षा के प्रत्येक सम्भव यत्न करेगा।

10. **काश्तकारी-उत्पादन का मूल्य (Pricing of Agricultural Production)** – लोकदल इस विचार का है कि कषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य प्राप्त नहीं होता। कषक उत्पादन के लिए आवश्यक सामग्री पर जो खर्च को मुख्य मानकर कषकों को उपनके उत्पादन का पारिश्रमिक मूल्य निश्चित करना लोकदल की महत्वपूर्ण नीति है। लोकदल यह नहीं चाहता कि कषक किसी विवशता के कारण अपने उत्पादन को कम मूल्य पर बेच दें। लोकदल इस विचार का समर्थक है कि यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए तो राजकीय संस्थाओं (State Agenicies) को कषकों की रक्षा के लिए उनके उत्पादन को उचित मूल्य पर क्रय करने के लिए मण्डी में प्रवेश करना चाहिए।

11. **भूमि सुधार (Land Reform)** – लोकदल का इस विचार का समर्थक है कि उत्पादन को बढ़ाने के लिए जहां काश्तकारी सम्बन्धी नयी मनोवैज्ञानिक विधियों को ग्रहण करने की आवश्यकता है वहां इस मन्तव्य के लिए काश्तकारी की मनोवत्ति को भी परिवर्तित करने की आवश्यकता है। इस दल का यह विचार है कि यदि काश्तकार को उस भूमि के टुकडें का स्वामी बना दिया जाये तो वह उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक उत्साहित होगा। इसलिए लोकदल मुजाहरों को भूमि का स्थायित्व सौपने के पक्ष में हैं और जागीरदारी प्रणाली को विल्कूल समाप्त करना चाहता है। यह दल केवल सेना में कार्य कर रहे सैनिकों को ही अपनी भूमि पट्टे पर देने को आज्ञा देता है ओर अन्य किसी भी कषक को ऐसा करने से रोकने के लिए अनिवार्य कानून के निर्माण करने के पक्ष में हें यह दल ऐसे व्यक्तियों को भी अपनी भूमि पट्टे पर देने की आज्ञा देता है जो व्यक्ति शारीरिक या मानसिक कारणों के कारण स्वयं काश्तकारी करने के योग्य नहीं है। भूमि सुधार सम्बन्धी सभी कानूनों को यह दल 9वी अनुसूची (9th Schedule) में अंकित करने का समर्थक है ताकि यह कानून न्यायालयों के न्यायिक पुनर्निरीक्षण के अधिकार क्षेत्र से बाहर रहें।

12. **औद्योगिकरण का नमूना (Pattern of Industrialisation)** – इस दल का विचार है कि औद्योगिक विकास के लिए पूंजी और श्रम दो 'तथ्यों की आवश्यकता है। हमारे देश में श्रम (Labour) बहुत सस्ती है और पूंजी की अपेक्षा इसकी प्राप्ति आसानी के साथ हो सकती है। इसलिए लोकदल ऐसी औद्योगिक नीति के पक्ष में नही है जिसके अन्तर्गत अत्यधिक पूंजी के द्वारा बड़े–बड़े अद्योग स्थापित किए जाएं और श्रम को अधिक से अधिक प्रयोग में न लाया जा सके। अन्य शब्दों में लोकदल पूंजी आधारित उद्योगों (Capital Intensive Industries) की अपेक्षा श्रम–आधारित उद्योगों (Labour Intensive Industries) को प्राथमिकता देता है। लोकदल ऐसी अर्थव्यवस्था के पक्ष में है जो घरेलू और निम्नस्तर के उद्योगों पर आधारित हो। इस दल का यह विचार है कि नगरी क्षेत्रों के मुकाबले ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक विकास के प्रति अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। परन्तु यह दल पूंजी पर आधारित बड़े–बड़े कारखानों की अपेक्षा ग्रामीण–क्षेत्रों में घरेलू और छोटे उद्योगों को स्थापित करना चाहता है। यह दल इस विचार का भी है कि यदि देश के हित बड़े–बड़े स्तर के उद्योगों (Large Scale Industries) की स्थापना की मांग करते है। तो ऐसे उद्योग भी स्थापित किए जा सकते है। परन्तु ऐसे उद्योग हमारे देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार नहीं होने चाहिए, अपितु घरेलू और छोटे उद्योग ही देश की अर्थ व्यवस्था मुख्य का आधार होने चाहिए। इसी कारण लोकदल ने अपने चुनाव आविस पत्र में स्पष्ट रूप में घोषणा की थी कि वह दल किसी ऐसे माल के उत्पादन के लिए पूंजी आधारित बड़े स्तर के उद्योग स्थापित नहीं करेगा जो अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों का अधिक से अधिक विकास हो सके, इस योजना के उद्देश्य स्थापित नहीं करेगा जो उद्देश्य या जिस माल का उत्पादन घरेलू या निम्न स्तर के उद्योगों के द्वारा किया जा सकता है।

13. **गांवों का कायाकल्प (Rejuvenation of Villages)** – लोकदल ने अपने चुनाव आविस पत्र में यह भी कहा था कि भारत की सम्पूर्ण स्थिति सम्बन्धी एक कड़वी सच्चाई यह है कि 5,75,000 गांवों के पास अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए आर्थिक सामर्थ्य नहीं है। ऐसी स्थिति में गांवो को कायाकल्प करने की विशेष आवश्यकता है। लोकदल के मत के अनुसार स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय गांवों और शहरों में आर्थिक अवस्थाओं सम्बन्धी पाये जाते परस्पर अन्तर स्वतन्त्रता के पश्चात् कम नहीं हुए है, अपितु इनमें वद्धि हुई है इसलिए लोकदल ने यह विश्वास दिया था कि लोकदल इन बढ़रहे अन्तरों को केवल रोकेगा ही नहीं, अपितु एक विशाल स्तर की योजना चलायेगा जिसके अन्तर्गत गांवों में रहते लोगों को रहने के लिए अच्छे मकान, पीने के लिए शुद्ध जल, सफाई की आधुनिक सुविधाओं, विश्वास योग्य बिजली की सुविधा, आवागमन

की अत्यधिक सुविधाएं, सेहत और शिक्षा सेवाओं आदि देने की व्यवस्था की जायेगी। इस योजना का उद्देश्य एक ऐसा ग्रामीण समाज स्थापित करना होगा जिसमें भूमि के स्वामित्व के आधार पर या जात–पात के आधर पर लोगों में भेदभाव या अन्तर न पाए जाते हों। इसके अतिरिक्त लोकदल गांवों को ऐसा रूप देना चाहता है कि गांव में ही ग्रामीण लोगों को रोजगार प्राप्त हो सके ओर आधुनिक जीवन की आवश्यक जरूरतें लोगों को मिल सकें। यह दल ग्रामीण क्षेत्र में ही ऐसे एकाधिकारी को भी स्थापित करना चाहता है जिनका काश्तकारी के साथ सम्बन्ध नहीं है। इस दल के विचार में ऐसा करने के साथ ग्रामीण क्षेत्र में लोगों को रोजगार प्राप्त होगा। परन्तु यहां वह वर्णन योग्य है कि यह दल पूंजी–आधारित एकाधिकारी के मुकाबले श्रम–आधारित एकाधिकारों को प्राथमिकता देता है।

14. **श्रम नीति (Labour Policy)** – लोकदल श्रम नीति का भी पुनः निर्माण ऐसे रूप में करना चाहता है जो औद्योगिक शांति को विकसित कर सके, उत्पादन को रोकने की सदभावनाओं को समाप्त कर सकें, उत्पादन और श्रमिकों की सामर्थ्य में वद्धि कर सके और श्रमिकों के साथ किए जाते दुर्व्यवहार को जड़ से समाप्त कर सकें। यह दल श्रमिकों के व्यापारिक संघ (Trade Unions) बनाने के अधिकार को स्वीकार करता है, परन्तु इस दल का यह विचार है कि यह श्रमिकों को व्यापारिक संघ के साधनों के ऐसे रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिए जिससे देश की अर्थ–व्यवस्था को क्षति हो। लोकदल यह भी चाहता है कि उत्पादन के विकास के साथ श्रमिकों के वेतन की वद्धि को जोड़ दिया जाना चाहिए। इस दल का यह विचार है कि औंद्योगिक प्रबन्ध में अनुशासन हीनता का मूख्य कारण यह है कि विभिन्न औद्योगिक या व्यापारिक एकाधिकारों में राजनीति कति व्यापारिक संघ (Politicised Trade Unions) मौजूद है। इसलिए लोकदल चाहता है कि कानून के द्वारा यह निश्चित कर देना चाहिए कि इस बड़े एकाधिकार में केवल एक ही व्यापारिक संघ हो सकता है। व्यापारिक संघ की मान्यता या निर्माण सम्बन्धी एकाधिकार के श्रमिकों के द्वारा किया जा सकता है। लोकदल शिशु–कत (Child Labour) और वचनबद्ध कत (Bonded Labour) पर तुरन्त कानूनी पाबन्दी लाना चाहता है।

15. **अनुसूचित जातियां और कबीले (Scheduled Castes and Tribes)** – लोकदल भारतीय समाज में जाति की प्रमुखता को समाप्त करना चाहता है। इस दल ने अपने चुनाव–आविस–पत्र में यह भी कहा था कि सरकारी गजटिंड पदों पर नियुक्तियाँ करते समय उनयुवकों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो अपनी जाति से बाहर शादी करते है। लोकदल ने यह भी विश्वास दिया था कि यह दल हरिजनों या अनुसूचित जातियों और कबीलों की भलाई के लिए विशेष कार्य करने का समर्थक हैं। यह दल इन जातियों और कबीलों के लिए सेवाओं में स्थान सुरक्षित रखने की प्रथा को जारी रखना चाहता है और इन सुविधाओं के अतिरिक्त लाइसैंस यापरमिट देने के मामलों सम्बन्धी भी इन जातियेां के लोगों ने विशेष संरक्षण (Safeguards) निश्चित करने का समर्थक है। अन्य शब्दों में परमिट या लाइसैंसो का कुछ हिस्सा इन जातियों के लोगों को सुरक्षित रखना लोकदल की नीति में शामिल है।

16. **विदेशी निति और सुरक्षा (Foreign Policy and Defence)** – लोकदल राष्ट्रीय हितों के अनुकूल विदेशी नीति ग्रहण करना चाहता है। यह दल उपनिवेशवाद, नव उपनिवेशवाद और नस्लवाद का विरोधी है। लोकदल सभी राष्ट्रों से मित्रता करना चाहता है और विदेशी क्षेत्र में यह दल गुटबन्दी से रहित नीति (Policy of Non-Alignment) के लिए वचनबद्ध है। अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तमयी रूप में हल करना एक नई और उचित अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था स्थापित करना और तीसरे संसार के राष्ट्रों से सहयोगी के रू‍प में कार्य करना लोकदल की विदेशी नीति की मुख्य विशेषताएं हैं। लोकदल भारत के पड़ोसी देशों के साथ चिरकाल से लटके आ रहे विवादों को निपटाना चाहता है और एक अच्छी पड़ोसी नीति को विकसित करने का इच्छुक है। सैनिक गुटबन्दियों को यह दल समाप्त करना चाहता है और विश्वव्यापी निःशस्त्रीकरण भी इस दल को विदेश नीति का महत्वपूर्ण भाग है। लोकदल सम्पूर्ण विश्व में मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए वचनबद्ध है। इस दल का यह भी मत है कि देश की अच्छी विदेशी नीति इसकी रक्षा का सबसे बड़ा साधन है। लोकदल भारतीय शस्त्रधारी सेनाओं का प्रत्येक पक्ष से आधुनिकीकरण करनाचाहता है और देश की रक्षा सामर्थ्य को पूर्ण रूप में विकसित करने का समर्थक है। यह दी भूतपूर्व सैनिकों की सेवाओं का प्रगतिशील कार्यो को प्रयोग में लेने का समर्थेक है।

निष्कर्ष (Conclusion) – भारतीय लोकदल का निर्माण करने वाले नेताओं ने जनता पार्टी का निर्माण करनेमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। परन्तु अन्य राजनीतिक दलों से मिलकर ये नेता जनता पार्टी को स्थिर न रख सके तथा जनता पार्टी से अलग होकर इस दल का निर्माण कर लिया। इस दल के निर्माण के समय यह आशा उत्पन्न हुई थी कि किसी समय यह राजनीतिक दल केन्द्र में कांग्रेस (आई) का विकल्प (Alternative) बन सकता है। परन्तु इस की गत चार वर्षो की कार्य प्रणाली ने इस आशा

को लगभग समाप्त ही कर दिया। उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा को छोड़कर शेष राज्यों में इस दल का कोई विशेष प्रभाव नहीं है।

भारत की वर्तमान दल राजनीति से यह अनुमान लगाना कुछ कठिन है कि भविष्य में लोकदल किस दिशा की ओर जायेगा। परन्तु लोकदल सम्बन्धी यह तथ्य बिना किसी वाद–विवाद के प्रायः स्वीकार किया जाता है कि विशाल स्तर के उद्योगों की विरोधता और घरेलू उद्योगों को भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल आधार बनाना इस दल की अत्यन्त दोषपूर्ण नीति है। आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी युग में विशाल स्तर के उद्योगों को महत्ता को झूठलाया नही जा सकता। यह ठीक है कि जब तक हमारे देश के ग्रामीण क्षेत्र का ठीक रूप मे विकास नहीं होता और कषकों को उनके परिश्रम कापूरा फल प्राप्त नही होता, तब तक भारत में समाजवादी समाज या समान (Equalitarian Society) की स्थापना नहीं हो सकती परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ग्रामीण क्षेत्र के विकास के साथ–साथ नगरों का सर्वोन्मुखी विकास के प्रति भी ध्यान देना अनिवार्य है। लोकदल की स्थापना सम्बन्धी यह तथ्य स्वीकार करने से कोई इन्कार नही कर सकता कि इस दल ने ग्रामीण क्षेत्र में चेतनता और जागति विकसित की है और प्रत्येक राजनीतिक आन्तरिक फूट का शिकार है। यदि लोक दल के संगठन को प्रभावशाली और शक्तिशाली बनाने के सच्चे यत्न किए जायें और इस दल में आन्तरिक एकता स्थापित करने के लिए लगन के साथ भरपूर यत्न किए जायें तो सम्भावना हो सकती है कि यह दल भारतीय राजनीति में शासक दल के लिए एक गम्भीर चुनौती के रूप में प्रकट हो सके।

भारतीय जनता पार्टी
(Bharatiya Janata Party)

मार्च 1977 के लोकसभा के चुनावों से पहले भारतीय राजनीति में भारतीय जनमत नाम का महत्वपूर्ण राजनीतिक दल मौजूद था। इस दल को जन्म देने वाले हिन्दू महासभा के प्रमुख नेता डॉ० श्यामा प्रसाद मुकर्जी थे। 21 अक्टूबर 1951 को दिल्ली में सम्मेलन हुआ जिसमें प्रमुख हिन्दू नेता विशेषतया सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन में ही भारतीय जनसंघ की स्थापना की गई और डॉ० श्यामा प्रसाद मुकर्जी को इस नये राजनीतिक दल का प्रथम प्रधान मनोनीत किया गया। कुछ लोगों का यह मत है कि जनसंघ हिन्दू महासभा का ही बच्चा था। विचारकों का एक और मत यह भी है कि जनसंघ का जन्म राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ (R.S.S.) में हुआ था क्योंकि जनसंघ के प्रमुख नेता और सदस्य राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सदस्य होते थे। 1977 में इस दल ने अन्य दलों के साथ मिलकर जनता पार्टी का निर्माण किया था। जुलाई 1979 तक जनता दल की सरकार केन्द्र में कायम रही और भूतपूर्व जन–संघ के प्रमुख नेता महत्वपूर्ण जनतक पदों पर सुशोभित रहे थे। जनता पार्टी आन्तरिक फूठ का शिकार थी और इसी कारण इस दल के नेता एक–दूसरे के विरूद्ध दोष लगाते रहते थे। जनता दल में भूतपूर्व भारतीय लोक दल (B.L.D.) और समाजवादी दल भी सम्मिलित हुए थे। इन दलों के नेता यह दोष प्रायः लगाते थे कि भूतपूर्व जनसंघ के सदस्य सरकारी दफ्तरों में अपना प्रभाव जमा रहे है और सरकार के प्रत्येक विभाग में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का प्रभाव बढ रहा है। भूतपूर्व भारतीय लोकदल और समाजवादी दल के नेता यह मांग करते थे कि जनता दल और राष्ट्रीय सेवक संघ में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। अन्य शब्दों में वे यह चाहते थे कि एक व्यक्ति केवल एक ही राजनीतिक दल का सदस्य हो सकता हैं और किसी अन्य ऐसी संस्था का सदस्य नहीं हो सकता जिसका स्वरूप अधिकांश भी साम्प्रदायिक या राजनीतिक हो। इसलिए यह नेता मांग करते थे कि जनता पार्टी में सम्मिलित हुए भूतपूर्व जनसंघ के सदस्यों को राष्ट्रीय स्वंय सेवक संघ (R.S.S.) से अपने सम्बध तोड़ लेने चाहिए। इसके साथ ही यह नेता जनता दल के अधिकारियों पर बल देते थे कि यह दोहरी सदस्यता (Dualmembership) पर पाबन्दी लगा दें। जनता दल की आन्तरिक फूट के और अनेकों कारणों में से एक कारण इस दल के कुछ सदस्यों की दोहरी सदस्यता का मामला था। जनता पार्टी अपने शासन काल में इस जटिल समस्या का कोई समाधान न ढूढ सकी।

जनवरी 1980 में लोकसभा के चुनाव हुए थे। इन चुनावों में जनता दल को अपमानजनक पराजय का मुख देखना पड़ा था। इस निराशाजनक पराजय ने जनता पार्टी के अधिकारियों को दल के सदस्यों को दोहरी सदस्यता के मामले को निटाने के लिए कुछ सीमा तक मजबूर कर दिया क्योंकि इस बात पर यह दोष लगने लगे थे कि यह दल भूतपूर्व जनसंघ के अतिरिक्त किसी अन्य वर्ग का विशेष प्रतिनिधित्व नहीं करता। अन्त में 19 मार्च, 1980 को जनता संसदीय बोर्ड (Janata Parliamentary Board) ने यह निर्णय लिया, इस दल का कोई भी विधायक या अधिकारी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की दैनिक गतिविधियों में हिस्सा नहीं लेगा। 4 अप्रैल 1980 को जनता दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी (National Executive) ने जनता संसदीय बोर्ड के उस निर्णय

की पुष्टि कर दी। जनता दल के भूतपूर्व जनसंघ सदस्यों को जनता दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी का यह निणर्य स्वीकार नहीं था। इसलिए उन्होने जनता पार्टी से त्याग पत्र दे दिए और 6 अप्रैल, 1980 को उन्होने दिल्ली से एक सम्मेलन किया। यह सम्मेलन 5 और 6 अप्रैल दो दिन चलता रहा और अन्त 6 अप्रैल, 1980 को भारतीय जनता दल (Bharatiya Janata Party) नाम का पथक राजनीतिक दल अस्तित्व में आया था। जनता सरकार के भूतपूर्व विदेश मन्त्री श्री अटल विहारी वाजपेयी (Attal Behari Vajpayee) को इस दल का सर्व सम्मति से प्रधान मनोनीत किया गया। यह ठीक है कि इस दल में राम जेठमलानी, श्री सिकन्दर बख्त, श्री शान्ति भूषण आदि जैसे गैर–जनसंघी सदस्य भी सम्मिलित हुए थे, परन्तु मुख्यतया भारतीय जनता दल की स्थापना भूतपूर्व भारतीय जनसंघ को पुनः जीवित करने के समान है। 24 अप्रैल 1980 को भारतीय जनता पार्टी को चुनाव आयेाग द्वारा मान्यता दे दी गई थी।

भारतीय जनता दल का कार्यक्रम (Programme of Bharatiya Janata Party) – यह दल जनवरी 1980 के चुनावों के पश्चात अस्तित्व में आया था। मई 1980 में 9 राज्यों के विधान सभाओं के चुनावों के समय इस दल को पथक–पथक राजय शाखाओं ने अपने चुनाव उद्देश्यों की घोषणा की थी। जब 6 अप्रैल, 1980 को यह दल अस्तित्व में आया था तब उस समय दल के प्रथम अध्यक्ष श्री वाजपेयी ने दल की नीतियों सम्बन्धी एक संक्षिप्त व्यान दिया था। उस ब्यान के आधार पर और मई, 1980 में 9 राज्येों के विधान सभाओं के चुनावों के समय इस दल की राज्य शाखाओं के द्वारा जारी किए चुनाव उद्देश्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि इसकी प्रमुख नीतियां इस प्रकार है :–

(1) यह दल वंश–तानाशाही का विरोधी है।

(2) श्री जय प्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रांति (Total Revolution) सम्बन्धी आदर्श को लागू करना इस दल का प्रमुख उद्देश्य है।

(3) राष्ट्रवाद, लोकतन्त्र और समाजवाद के आदर्शो को शक्तिशाली बनाना इस दल के कार्यक्रम में शामिल है।

(4) यह दल आर्थिक और राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीयकरण करना चाहता है।

(5) यह दल गैर–साम्प्रदायिक और सिद्धान्तपूर्ण राजीनति का समर्थक है।

(6) यह दल की नीतियों का मुख्य आधार और उद्देश्य–ग्रामीण क्षेत्र का विकास।

अस्तित्व में लाने के पश्चात इस दल ने अपनी नीतियों तथा कार्यक्रम सन्बन्धी कई प्रस्ताव पास किए तथा दल के अधिकारियों से समय–समय पर कुछ घोषणाएं भी की गई है। उन प्रस्तावों तथा घोषणाओं द्वारा इस दल ने निम्नलिखित नीतियों तथा कार्यक्रमों पर अपना विश्वास प्रकट किया है :–

1. **उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना (Establishment of National commission of North-East Region)** – 1979 से आयात राज्य में विदेशियों को राज्य में से निकालने सम्बन्धी आसामी विद्यार्थियों तथा कुछ दूसरे संगठनों द्वारा आन्दोलन चलाया जा रहा है। इस आन्दोलन के कारण आसाम में स्थिति बड़ी गम्भीर रूप की बनी हुई है। उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र के दूसरे राज्यों में भी शान्तिमयी स्थिति नहीं पाई जाती है। स्थिति की गम्भीरता तथा नाजुकता के कारण 15 जुलाई 1980 को इस दल के प्रधान श्री वाजपेयी ने अगरतला (Agartala) में भाषण देते हुए यह मांग की थी कि उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र की समूची समस्या का अध्ययन करने के लिए एक राष्ट्रीय आयोग नियुक्त किया जाये। यह दल याहता है कि शासकदल तथा दूसरे राजनीतिक दल राजनीतक भावनाओं से ऊपर उठ कर इस क्षेत्र की समस्याओं को हल करने के लिए यत्न करें इस दल का यह मत है कि यदि ऐसा न किया तो इस क्षेत्र की राजनीतिक समस्या देश की अखण्डता के लिए एक गम्भीर खतरा सिद्ध हो सकती है।

2. **गांधीवाद समाजवाद (Gandhian Socialism)** – 30 सितम्बर, 1980 को बम्बई में हुए इस दल के राष्ट्रीय सम्मेलन में इस दल ने गांधीवादी समाजवाद को अपनी राजनीतिक विचारधारा (Political Ideology) के रूप में स्वीकार किया थां इस दल का विचार है कि स्वतन्त्रता (Freedom) तथा रोजगार (Employment) गांधीवाद के दो प्रमुख सिद्धान्त है। यह दल चाहता है कि आर्थिक शक्ति न ही राज्य के पास और न ही विद्यार्थियों के हाथ में केन्द्रित हो। यह दल अहिंसक साधनों द्वारा सहयोगी स्वतन्त्र राज्य (Co-opoerative Commonwealth) स्थापित करना चाहता है।

3. **पांच वचनबद्धताएं (Five Commitments)** – 28 दिसम्बर से 30 दिसम्बर, 1980 तक इस दल का राष्ट्रीय सम्मेलन बम्बई में हुआ था। इस दल ने पांच सिद्धान्तों को अपनी नीतियों का मूल आधार बनाने की घोषणा की थी। इन पांचों

सिद्धान्तों की इस दल ने (हमारी पांच वचनबद्धताएं) (Our five commitments) का नाम दिया था। यह पांच सिद्धान्त या बचनबद्धताएं इस प्रकार है :–

1. राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय एकीकरण (Natiionalism and national integration).
2. लोकतन्त्र (Democracy)
3. सकारात्मक धर्म निरपेक्षता (Positive Secularism)
4. गांधीवाद समाजवाद (Gandhian Socialism)
5. मूल्यों या सम्मानों पर आधारित राजनीति (Value based politics)

4. **आर्थक नीति (Economic Policy)** – बम्बई में हुए राष्ट्रीय सम्मेलन में इस दल ने अपनी आर्थिक नीति ग्रहण की थी। उस आर्थिक नीति की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

(i) आर्थिक शक्ति का विशाल स्तर पर विकेन्द्रीयकरण।

(ii) एकाधिकारों (Monopolies) के विकास को रोकना।

(iii) शोषण को रोकने के योग्य प्रबन्ध करना।

(iv) उत्पादन को बढ़ाना तथा सामाजिक न्याय को विश्वासपूर्ण बनाना।

(v) ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में रोजगार के साधनों को काफी विशाल स्तर पर विकसित करके गरीबी को दूर करना।

(vi) राष्ट्रीय निवेश (National Investment) की समूची प्रणाली में प्रचण्ड परिवर्तन (Drastic Change) करना।

(vii) काले धन का अन्त करने के लिए कर प्रणाली में उचित सुधार करने तथा करों का उल्लंघन करने वालों को कठोर दण्ड देना।

(viii) सारी उपभोगी सामग्री (Consumer Goods) का उत्पादन घरेलू या छोटे क्षेत्र (Small Sector) में किया जायेगा।

(ix) सारी फालतू भूमि को भूमिहीन व्यक्तियों में बांटने के लिए तीन वर्षीय समयबद्ध योजना तैयार एवं लागू की जायेगी।

(x) ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार को विश्वासपूर्ण बनाने के लिए रोजगार गारन्टी योजना (Employment Gurarantee Scheme) लागू करना।

(xi) पशुओं तथा फसलों का बीमा करने सम्बन्धी योजनाएं लागू करना।

(xii) यह दल चाहता है कि औद्योगिक क्षेत्र में न तो सार्वजनिक क्षेत्र और न ही निजी क्षेत्र का एकाधिकार हो इस दल का विचार है कि हथियारों का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र में ही होना चाहिए।

(xiii) यह दल उपभोगी निगम (Consumer Corporation) स्थापित करना चाहता है। इस निगम का मुख्य काम उपभोगी सामग्री या वस्तुओं की उपलब्धि को उचित मूल्य को विश्वासपूर्ण बनाना होगा।

(xiv) यह दल चाहता है कि किसानों को उनके उत्पादन का लाभदायक मूल्य दिया जाये।

(xv) यह दल आयकर (Income Tax) के दरों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का समर्थक है।

5. **गरीबी जलावतन विधि (Banish Poverty Fund)** – यह दल पांच अरब रूपए की गरीबी जलावतन निधि स्थापित करना चाहता है। आरम्भ में यह निधि केवल एक वर्ष के लिए होगी तथा उसके बाद हर वर्ष इस निधि की रकम को बढ़ाया जा सकता है। इस निधि में आधा धन केन्द्रीय सरकार तथा आधा धन राज्य सरकार द्वारा दिया जाना चाहिए। यह निधि अति गरीब लोगों के वर्गों को ऊँचा उठाने के लिए प्रयोग की जाएगीं इस दल का यह विचार है कि यदि इस निधि का उचित संचालन किया जाए तो केवल पांच सालों के समय के अन्दर लगभग दस करोड़ व्यक्ति गरीबी सीमा (Poverty Line) से ऊपर उठाए जा सकते है।

6. **सत्तावाद के विरूद्ध (Against Authoritarianism)** – यह दल लोकतंत्र का समर्थक तथा सत्तावाद का विरोधी है। 28 दिसम्बर, 1980 को बम्बई में दल के राष्ट्रीय सम्मेलन को सम्बोधन करते हुए दल के प्रधान श्री ए० बी० वाजपेयी ने अपने प्रधानगी भाषण में कहा था कि उनका दल सत्तावाद तथा अराजकता का कठोर विरोधी है। यह दल बिना किसी

भेदभाव के सब भारतीयों को हर प्रकार के अधिकार प्रदान करने के पक्ष में है ताकि हमारे देश में प्रजातन्त्रीय प्रणाली स्थिर हो सके।

7. **अनुसूचित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखने के पक्ष में (In favour of Reservations for Scheduled Caste)**– 26 अप्रैल, 1981 को इस दल की राष्ट्रीय परिषद् (National Council) ने कोचीन में एक प्रस्ताव द्वारा यह घोषित किया था कि यह दल अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े हुए कबीलों के लिए स्थान सुरक्षित रखने के पक्ष में है। इसके साथ ही इस दल की राष्ट्रीय परिषद् ने यह मांग की थी कि उच्च शक्ति वाली एक समिति (A High Powered Committee) नियुक्त की जाये तथा वह समिति इस सम्बन्धी सिफारिशें करे कि स्थान सुरक्षित रखने की नीति के वास्तविक उद्देश्य किस तरह प्राप्त किये जा सकते है। इस दल ने केन्द्रीय सरकार से यह भी मांग की थी कि वह एक ऐसा दस्तावेज प्रकाशित करे जिसमें यह बताया जाये कि स्थान सुरक्षित रखने कि नीति को लागू करने से कौन–कौन से तथ्य सामने आये हैं तथा यह नीति किस सीमा तक ठीक रूप में लागू की गई हैं।

मई 1980 में हुए 9 राज्यों के विधान सभाओं के चुनावों में इस दल ने कोई विशेष महत्वपूर्ण विजय प्राप्त नहीं की थी। परन्तु इस सम्बन्धी हम यह कह सकते है कि उस समय इसकी आयु केवल दो महीने थी। इस अल्प समय में कोई भी राजनीतिक दल लोकप्रिय नहीं बन सकता। मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली में इस दल का अत्यधिक प्रभाव है। उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों के कई भागों में इस दल को कुछ प्रसिद्धि प्राप्त हैं। परन्तु अन्य राज्यों में इस दल का प्रभाव–क्षेत्र अभी स्थापित नहीं हुआ है। मई, 1982 के चुनावों में इस दल ने केरल में 68 उम्मीदवार खड़े किए थे, परन्तु इस दल का कोई भी उम्मीदवार सफल नहीं हुआ। हिमाचल प्रदेश में इस दल के 56 उम्मीदवारों में से 39 उम्मीदवार और हरियाणा में 23 उम्मीदवारों में 6 उम्मीदवार सफल हुए थे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह दल भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करने के योग्य हो सकता है, पर इस योग्य होने से पहले इस दल के नेताओं को लोगों को यह विश्वास करवाने के लिए कि यह दल भूतपूर्व जनसंघ का नया रूप नहीं है, इसके लिए बड़े कठोर और गम्भीर यत्न करने पड़ेंगे। यदि इस दल के नेता भारतीय लोगों को विश्वास न दिला सकें तो यह केन्द्रीय स्तर पर कोई विशेष भूमिका अभिनीत करने के योग्य नहीं हो सकेगा। राष्ट्रीय हित यह मांग करते हैं कि यह दल समस्त धर्मों तथा वर्गों के प्रतिनिधि के रूप में उभरने के लिए यत्न करे ताकि शासक दल को परिवर्तित चुनौति देने के योग्य हो सके।

12वीं लोकसभा के चुनाव (1998) और भाजपा का चुनाव घोषणा पत्र – भारतीय जनता पार्टी ने फरवरी 1998 लोकसभा चुनावों के लिए जारी किए गए घोषणा पत्र में उन सब मुद्दों का समावेश किया है जिन पर वह निरन्तर जोर देती रही है, और यह भी बताने का प्रयास किया है कि वह देश को किस दिशा में मोड़ना चाहती है। भाजपा ने घोषणा पत्र में पचास प्रमुख वायदे किए हैं। ये वायदे इस प्रकार है :–

(1) भाजपा प्रतिबद्ध है कि अयोध्या मे उस जन्म स्थान पर भव्य श्रीराम मन्दिर निर्माण हो सके जहां इस समय एक अस्थाई मन्दिर है। पार्टी मन्दिर के निर्माण के लिए आम सहमति, कानूनी एवं संवैधानिक मार्गों का पता लगाएगी।

(2) भाजपा 50 वर्षों के अनुभव के प्रकाश में भारत के संविधान की भली–भांति समीक्षा करने के लिए एक आयोग बनाएगी, जिसमें संविधान के विशेषज्ञ और प्रतिष्ठित संसद विज्ञ होंगे।

(3) भाजपा संविधान के अनुच्छेद 356 के दुरूपयोग को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाने के लिए प्रतिबद्ध है।

(4) भाजपा उत्तरांचल, वनांचल, विदर्भ और छत्तीसगढ़ की अलग राज्य के रूप में स्थापना करेगी। दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया जाएगा।

(5) भाजपा धारा 370 को समाप्त करेगी।

(6) भाजपा सत्ता में आने पर तुरन्त एक व्यापक चुनाव सुधार विधेयक पेश करेगी, जिसके लिए बहुत कुछ काम किया जा चुका है, परन्तु उस पर अमल नहीं किया गया है। भाजपा पार्टियों के लिए लेखा परीक्षित हिसाब–किताब सार्वजनिक जांच के लिए प्रस्तुत करने की अनिवार्य कर देगी।

(7) भाजपा आतंकवाद का सामना करने के लिए उपयुक्त कानून बनाएगी और साथ ही ध्यान रखेगी कि उस कानून के दुरूपयोग की कोई गुंजाईश न हो और शान्ति व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य सरकार को समय पर सहायता देगी। स्थानीय पुलिस बलों की मदद के लिए पर्याप्त केन्द्रीय पुलिस भेजेगी। हम एक दंगा मुक्त भारत बनाएंगे।

(8) भाजपा सरकारिया आयोग की सिफारिशों को तत्काल लागू करेगी। भाजपा राज्यपालों की नियुक्ति से पूर्व राज्य सरकारों से परामर्श करेगी और ऐसे उपाय ढूंढ़ेगी, जिनसे राजभवनों का दुरूपयोग राजनीतिक प्रयोजनों के लिए न किया जा सके। भाजपा राज्यों के लिए संसाधनों का आबंटन बढ़ाएगी।

(9) भाजपा प्रधानमन्त्री सहित सार्वजनिक पद पर प्रतिष्ठित किसी भी व्यक्ति के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए लोकपाल नियुक्त करेगी। भापजा प्रत्येक निर्वाचित प्रतिनिधि के लिए आवश्यक कर देगी कि वह अपनी तथा अपनी पति–पत्नी, आश्रित बच्चों और माता–पिता की आय और सम्पत्ति का ब्यौरा 90 दिन के अन्दर सार्वजनिक करे। इन घोषित ब्यौरों की सार्वजनिक जांच की जा सकेगी और इन्हें प्रतिवर्ष देना होगा।

(10) भाजपा ऐसी नीतियां अपनाएगी, जिससे सकल घरेलू उत्पाद की सतत 8–9 प्रतिशत की अभिवद्धि की वार्षिक दर बनाए रखी जा सके। इसका मतलब होगा कषि में वद्धि की कम से कम 5 प्रतिशत की वार्षिक दर और औद्योगिक वद्धि की कम से कम 12 प्रतिशत की वार्षिक दर बनाए रखी जाए।

(11) भाजपा सरकार प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के दायित्व की स्वेच्छा से निर्वहन की एक पद्वति तैयार करेगी, जिसमें कुछ चुने हुए मामलों में निर्धारित कर की परीक्षण के तौर पर जांच की जाएगी और करवंचको की दोष सिद्धि में शीघ्रता लाएगी।

(12) भाजपा सरकार जापान में एम.आई.टी.आई. की तरह एक ढ़ांचागत मंच के द्वारा भारतीय उद्योग के साथ दैनिक कार्यकारी सम्बन्ध सुनिश्चित करेगी।

(13) भाजपा प्रतिवर्ष एक करोड़ नौकरियों का सजन करेगीं। हम ऐसे क्षेत्रों पर बल देंगे जिनमें रोजगार की बहुत अधिक सम्भावनाएं हैं, जिनमें लघु कारीगर आधारित एवं ग्रामीण उद्योग, ढ़ांचागत सुविधाएं, आवास (शहरी एवं ग्रामीण), निर्माण, कषि, परती भूमि विकास तथा वान्निकी और निर्यात के लिए सघन श्रम शक्ति उत्पादन शामिल है।

(14) भाजपा लघु उद्योग के क्षेत्र को जो हमारी अर्थव्यवस्था और रोजगार की रीढ़ है, न ही देश के बड़े औद्योगिक घरानों और न ही विदेशी कम्पनियों की असमान स्पर्धा की मुसीबत में डालेगी।

(15) भाजपा भागीदारी (अनिगमित) क्षेत्र के लिए एक पथक विकास बैंक की स्थापना पर भी विचार करेगीं भागीदारी क्षेत्र के योगदान के बारे में एक चेतना उत्पन्न करने तथा राष्ट्रव्यापी शासकीय ज्यादतियों से इसकी रक्षा करने के लिए एक राष्ट्रीय कानून बनाने का कार्यक्रम भी शुरू किया जाएगा।

13वीं लोकसभा के चुनाव (सितम्बर–अक्टूबर 1999 और भाजपा) – 13वीं लोकसभा चुनावों के अवसर पर भाजपा ने अपना पथक् घोषणा–पत्र जारी नहीं किया। राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन का प्रमुख घटक होने के कारण पार्टी ने राजग घोषणा–पत्र के आधार पर ही चुनाव लड़ा। इस चुनाव में पार्टी ने राम मन्दिर, अनुच्छेद 370, समान नागरिक संहिता जैसे विवादास्पद मुद्दों को फिलहाल ठण्डे बस्ते में डाल दिया। 24 दलों के राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन को साथ लेकर अटल बिहारी वाजपेयी के नेतत्व में भाजपा ने 339 सीटों पर प्रत्याशी खड़े कर 182 सीटें (23.70% मतों के साथ) हासिल की। यह निश्चित रूप से अटल लहर वाला चुनाव था। वाजपेयी के मुकाबले दूसरे नेता बौने, क्षेत्रीय या महज अनुभवहीन दिखे। इन चुनावों में भाजपा ने दक्षिण में अपनी स्थिति मजबूत की और असम में नया आधार बनाया है।

चुनाव 1999 : राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के घोषणा-पत्र के प्रमुख बिन्दु

- विदेशी मूल के लोगों को विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका में उच्च पद देने पर पाबन्दी।
- लोकसभा अपना कार्यकाल पूरा करें, इसकी पक्की व्यवस्था।
- घरेलू उद्योगों को खास महत्व।
- नई सूचना प्रौद्योगिकी नीति।
- स्वरोजगार और महिलाओं के उद्यमों को कर्ज देने के लिए बैंक की स्थापना।
- राष्ट्रीय बचत को सकल घरेलू उत्पाद के 24 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत करना।
- योजना राशि का 60 प्रतिशत कषि और ग्रामीण विकास पर।
- निजी आपरेटरों को नियन्त्रित करने के लिए प्रसारण विधेयक।

इण्डिया टुडे ने लिखा है : "दशक (1990) शुरू होते ही कांग्रेस का परिवार राज खत्म हुआ और गठजोड़ा की राजनीति का दौर शुरू हुआ वक्त की नब्ज को भाजपा ने दूसरों के मुकाबले अच्छी तरह पकड़ा कांग्रेस के बाहरी समर्थन से चलने वाले 'तीसरे मोर्चे' के शासन को झेलने के बाद 1998 में भाजपा नेतत्व वाले गठबन्धन के लिए आधार बन गया। लेकिन अन्ना द्रमुक के साथ मंहगे गठबन्धन और सरकार गिरने के बाद भाजपा नेतत्व वाला इन्द्रधनुषी गठबन्धन दोबारा सत्ता में आ गया भाजपा अपनी भगवा विचारधारा को गौण करके इन्द्रधनुष के दोनों सिरों को पकड़े रखना सीख गई।"

भारतीय जनता पार्टी का चेन्नई घोषणा-पत्र

28–30 दिसम्बर, 1999 को भाजपा की राष्ट्रीय परिषद ने अपनी चेन्नई बैठक में चेन्नई घोषणा–पत्र को स्वीकति प्रदान की। गहमन्त्री लाल कष्ण आडवाणी के अनुसार यही घोषणा–पत्र अब भाजपा की आगे की सोच है। घोषणा–पत्र में राम जन्मभूमि सहित सभी विवादित मुद्दों को दरकिनार कर राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन (राजग) के एजेण्डे को निष्ठापूर्वक लागू करने का संकल्प व्यक्त किया गया है। प्रारूप में कहा गया है कि हर कार्यकर्त्ता को यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि राजग के एजेण्डे को छोड़कर पार्टी का अपना कोई एजेण्डा नहीं है। अल्पसंख्यकों के बार में पार्टी का दष्टिकोण स्पष्ट करते हुए घोषणा–पत्र में कहा गया है कि भाजपा कभी एक–दूसरे के धर्म में मतभेदों को राष्ट्र निर्माण के मार्ग में बाधक नहीं बनने देगी।

संक्षेप में, भाजपा ने अपने को नई सदी के लिए तैयार करने के लिए जारी 'चेन्नई घोषणा–पत्र' के प्रारूप में राम जन्मभूमि सहित सभी विवादित मुद्दों को अलग रखकर राजग के एजेण्डे को निष्ठापूर्वक लागू करने तथा देश को बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के कत्रिम विभाजन से मुक्त करने का संकल्प लिया है।

साम्यवादी
(Communist Party)

एन. एन. राय. की प्रेरणा से 26 दितम्बर, 1925 को भारत में साम्यवादी दल की स्थापना हुई। राय की सलाह से साम्यवादी दल कम्मुनिस्ट इण्टरनेशलन की शाखा मान लिया गया और सन् 1928 में कम्युनिस्ट इन्टरनेशलन ने ही भारत में साम्यवादी दल को कार्य प्रणाली निश्चित की। यथार्थ में भारतीय साम्यवादी आन्दोलन सोवियत संघ की देखरेख में ही शुरू हुआ और कई भारतीय साम्यवादियों को सोवियत संघ में प्रशिक्षण भी दिया गया। स्वाधीनता आन्दोलन के समय अनेक साम्यवादी नेताओं ने कांग्रेस के साथ मिलजुलकर कार्य किया, किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के समय कांग्रेस और साम्यवादी नेताओं के दष्टिकोणों में आकाश पाताल का अन्तर आ गया। जहां कांग्रेस जनता को ब्रिटिश राज के विरूद्ध संघर्ष का आह्वान कर रही थी वही साम्यवादी जनता से आग्रह कर रहे थे कि ब्रिटिश सरकार से सहयोग करे। इसका कारण यही था कि सोवियत संघ ओर ब्रिटेन मिलकर नाजी जर्मनी के विरूद्ध महायुद्ध लड़ रहे थे। दिसम्बर 1945 में कांग्रेस महासमिति ने सभी साम्यवादियों को अपने दल से निष्कासित कर दिया। जब भारत का नया सविंधान अस्तित्व में आया तो साम्यवादी दल ने इसे दासता का घोषणा–पत्र कहा।

संगठन – साम्यवादी दल के निम्न इकाई सेल है। इसमें दो या तीन सदस्य होते है। इसके बाद ग्राम, शहर, जिला एवं प्रान्तीय स्तर पर 'सम्मेलन' होते है। प्रत्येक स्तर के सम्मेलन की एक कार्यकारिणी समिति होती है। साम्यवादी दल की सर्वोच्च शक्ति अखिल भारतीय दल कांग्रेस में निहित होती है। इसके प्रेतिनिधि राज्य सम्मेलनों द्वारा भेजे जाते है। अखिल भारतीय कांग्रेस एक राष्ट्रीय परिषद का निर्माण करती है। और यह परिषदएक केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करता है। केन्द्रीय समिति में महा सचिव तथा दल के मुख्य नेता होते हैं। दल का एक केन्द्रीय नियन्त्रण आयोग भी होता है। साम्यवादी दल का संगठन लोकतान्त्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है।

भारतीय राजनीति में साम्यवादी दल – स्वाधीनता प्राप्ति के बाद साम्यवादी दल ने 14 से 17 फरवरी, 1948 को अपने 'कलकत्ता सम्मेलन में कलकत्ता थीसिस' के अनुसार 'स्वाधीनता' को सच्ची स्वाधीनता नहीं माना गया, नेहरू सरकार को पूंजीवादी हितों का रक्षक कहा गया और यह माना गया कि सरकार बड़े व्यावसायिक हितों का संरक्षण करने वाली है। साम्यवादी दल का यह विश्वासथा कि सरकार आंग्ल अमरीकी चुंगल में फंसी हुई है, अतः दल ने सभी क्रान्तिकारी तत्वों को संगठित करके एक लोकतान्त्रिक गठबन्धन तैयार करने का निर्णय चंगुल लिया दल के महासचिव रणदिवे ने तो यहाँ तक कहा कि भारत में रूस की अक्टूबर क्रांति के समतुल्य 'अन्तिम क्रांति' प्रारम्भ की जा सकती है। मार्च 1947 मं पश्चिमी बंगाल सरकार ने साम्यवादी दल को अवैध घोषित कर दिशा। कई साम्यवादी नेताओं को देश के विभिन्न भागों में गिरफ्तार भी कर लिया गया।

साम्यवादियों ने देश के विभिन्न भागों में हडताल बन्द भी आायोजित किये। तेलगाना प्रदेश में तो साम्यवादियों ने आतंक का राज्य ही स्थापित कर दिया। साम्यवाद की गतिविधियों से तंग आ करके केन्द्रीय सरकार ने उन्हें 'निवारक विरोध अधिनियम' के अन्तर्गत गिरफ्तार भी कर लिया। प्रथम आम चुनाव में साम्यवादी दल ने लोकसभा के 27 स्थानों पर विजय प्राप्त की और राज्य विधनमण्डलों में उसे 181 स्थान प्राप्त हुए। लोकसभा में सबसे बड़ा विरोधी दल होने के कारण उसके नेता ए.के. गोपालन ने गैर कांग्रेसी दलों का संयुक्त गठबन्धन बनाने का प्रयास भी किया। दूसरे जन निर्वाचन में दल को लोकसभा में 29 स्थान प्राप्त हुए। केरल राज्य में दूसरे चुनाव मे साम्यवादियों को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ और 5 अप्रैल, 1975 को उन्होने अपना मन्त्रिमण्डल बनाया। विश्व के इतिहास में पहली बार चुनावों के माध्यम से साम्यवादियों को सत्ता में आने का यह पहला मौका मिला था।

साम्यवादी दल में कई कारणों से दरार पड़ने लगी। दिसम्बर 1953 की तीसरी कांग्रेस में साम्यवादी नेताओं के मतभेद खुले तौर से सामने आने लगे। सर्वप्रथम राष्ट्रीय लोतान्त्रिक गठबन्धन के सवाल को लेकर नेताओं के बीच विवाद बढ़ा। अजय घोष, पी. सी. जोशी. आदि का कहना था कि नेहरू सरकार प्रगतिशील नीतियों में विश्वास करती है, अतः उसके साथ सहयोग किया जा सकता है। दूसरी और भूपेश गुप्त, रमन मूर्ति इत्यादि नेहरू सरकार को पूंजीवाद परस्त मानते थे औरउसका विरोध करना चाहते थे। साम्यवादी दल में मतभेद का दूसरा चरण खुश्चेव की निस्टालिनीकरण की नीति थी। 1962 के भारत चीन संघर्ष को लेकर भी गम्भीर मतभेद देखा जा सकता था। सन् 1964 के बाद तो साम्यवादी दल के दोनों गुटों में तनाव बहुत अधिक बढा। फरवरी 1963 में डांगे द्वारा लिखे कुछ पत्रों को लेकर साम्यवादी दल में गम्भीर वाद विवाद छिड़गया। दल का वामपन्थी गुट चाहता था कि डांगे अपने पद से त्यागपत्र दे दें, किन्तु डांगे उनकी बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे। ऐसी स्थिति में दल के कतिपय प्रमुख सदस्य जैसे सुन्दरैया, ज्योति वसु, ए. के. गोपालन, नम्बूद्रीप्रसाद, भूपेश गुप्त, प्रमोद दास गुप्ता, इत्यादि दल से अलग हो गये। दोनों गुटों में समझौते के प्रयास भी किये गये, किन्तु वामपन्थी गुट के लोगों ने गोपालन के नेतत्व में 11 सदस्यों का एक नया गुट संगठित कर लिया। इस गुट को भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) कहा जाने लगा।

विभाजन के पश्चात् साम्यवादी दल वैचारिक दष्टिकोण से सोवियत संघ ने निकट रहा है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि दल ने सत्ताधारी कांग्रेस दल के साथ सहयोग करनेकी नीति प्रारम्भ कर दी। साम्यवादी दल ने कांग्रेस से सहयोग करने की नीति की शुरूआत मोहन कुमार मंगलम् की 'थीसिस' के आधार पर की। कुमार मंगलम् के अनुसार साम्यवादी कांग्रेस में घुस करके अन्ततोगत्वा सत्ता परकब्जा कर सकते है। यह बात सर्वविदित है कि 1971 और 1972 के निर्वाचनों में साम्यवादी दल ने कांग्रेस के साथ न केवल सहयोग किया अपितु चुनाव–गठबन्धन भी किया। चुनावों के पश्चात् साम्यवादी दल ने केरल और पश्चिमी बंगाल में कांग्रेस से मिल–जुलकर मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया। साम्यवादी दल को अपनी रणनीति का तात्कालिक लाभ भी प्राप्त हुआ है। अनेक भूतपूर्व साम्यवादयिों को केन्द्र और राज्यों में मन्त्रिपदों पर भी नियुक्त किया गया।

सिद्धान्त और कार्यक्रम

भारत का साम्यवादी दल कार्ल मार्क्स व लेनिन के विचारों से प्रेरणा ग्रहण करता है। साम्यवादियों का उद्देश्य पुरानी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था को समाप्त करके एक ऐसे समाज का निर्माण करना है। जो मार्क्स व लेनिन के सिद्धान्तों पर आधारित हो। भारतीय साम्यवादी दल मजदूरों व किसानों के संरक्षण का दावा करता है। वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहता है जिसमें असमानता, जातपात, शोषण व सामाजिक कुरीतियों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। सभी नागरिकों को रोजगार के अवसर प्राप्त होगे तथा सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा की गारण्टी दी जायेगी। श्री डांगे के नेतत्व मेंसाम्यवादी दल ने चीनी कम्युनिस्ट की अपेक्षा रूसी कम्युनिज्म को चुना।

साम्यवादी दल ने हिंसातक कार्यवाहियों को त्याग दिया है। साम्यवादी दल कांग्रेस को प्रगतिशील दल मानता हैं और उसके साथ सहयोग करना चाहता है। वह संविधान में इस प्रकार का संशोधन चाहता है ताकि संविधान संशोधनों को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सके। दल ने सुझाव दिया है कि सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति संसद व विधानसभाओं द्वारा स्वीकत नामों की सुची में से की जाए। संसद को यह अधिकर होना चाहिए कि वह साधारण बहुमत के आधार पर प्रस्ताव पारित करके सर्वोच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश को हटा सके। दल का सुझाव है कि एकाधिकारी पूंजीपतियों, राजाओं तथा अन्य धनी व्यक्तियों के सम्पति के अधिकार को बहुत कड़ाई के साथ सीमित करने के लिए सविंधान में संशोधन किया जाये। जहां तक हो सके जन साधारण की जिसमें छोटी सम्पति रखने वाले सम्मिलित हैं। सम्पति को पूंजीपतियों, जमींदारों, सूदखोंरों आदि के हमलों से बचाया जाये। दल चाहता था कि मतदाताओं की आयु 21 वर्ष से घटाकर

18 वर्ष कर दी जाये। लोकतन्त्र व विधानसभाओं के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणााली को चालू किया जाये। राज्यपाल, विधानपरिषदों के पद भी समाप्त कर दिये जाये।

साम्यवादी दल चाहता है कि कषि में जोत की वर्तमान सीमा को काफी कम कर दिया जाये, जोत–सीमा के लिए परिवार को इकाई माना जाये ओर सीमाबन्दी से छूटों को समाप्त कर दिया जाये। औद्योगिक क्षेत्र में दल की मांग है कि एकाधिकार पूजींपतियों की कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। विदेशी तेल कम्पनियों और विदेशी बैंको का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। बेरोजगारी भत्ता दिया जाये। श्रमिकों, सरकारी कर्मचारियों, आदि को आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम बेतन दिया जाये। दल चाहता है कि उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के विरूद्ध तथा सोवियत रूस व अन्य समाजवादी देशों के साथ मैत्री पर आधारित शान्ति व गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी जायें रंगभेद के विरूद्ध और अधिक कार्यवाही की जाय ताकि भारत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से अलग हो जाये। दल ने अपने 1971 के घोषणा पत्र में कहा कि संविधान में यह आवश्यक संशोधन कर न्यायापलिका को इस बात के लिए विवश किया जाना चाहिए कि वह कानूनों की व्याख्या निहित स्वार्थे के हित में नही वरन् देश में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन लाने के लिए करे। साथ ही न्यायापालिका को संविधान की प्रस्तावना तथा निर्देशक सिद्धान्तों में मार्गदर्शन ग्रहण करना चाहिए।

साम्यवादी दल संवैधानिक तरीकों तथा लोकतन्त्र में विश्वास करता है। यह दल 'सर्वहारा वर्ग की तानाशाही', 'क्रांति की अनिवार्यता' को नहीं दोहराता है। 1971 में लोकसभा में इसके 23 सदस्य निर्वाचित हुए। इसने कांग्रेस के साथ सहयोग ओर समर्थन की नीति अपनायी। इस दल का प्रभाव आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी बंगाल व केरल राज्यों में अधिक है।

1977 के लोकसभा के चुनावों के समय श्रीमती गांधी के विरूद्ध रोष का बातावरण बन चुका था। इसलिए कम्युनिस्ट पार्टी को भी कोई विशेष कामयाबी हासिल नहीं हुई। 1977 मे गठित लोकसभा में साम्यवादी दल के केवल 7 सदस्य थे।

नवम्बर 1979 में श्री एस.ए.डांगे ने पार्टी के चेयरमैन पद से और केन्द्रीय समिति से त्यागपत्र दे दिया। श्री डांगे का मत था कि वामपन्थी ताकतें श्रीमती गांधी के नेतत्व में ही आगे बढ़ सकती है, परन्तु साम्यवादी दल के महासतिच राजेश्वर राव श्री डांगे की मान्यता (थीसिस) को सही नहीं समझते। उनके अनुसार आपातकाल में श्रीमती गांधी का समर्थन गलत था। 1980 में एस. ए. डांगे की पुत्री श्रीमती रोजा देश पाण्डे को पार्टी से निकाल दिया गया। उन्होंने और उनके साथियों ने मिलकर अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की।

1980 के लोकसभा चुनावों के लिए वामपन्थी र्मोचे का गठन किया गया था। कम्युनिस्ट पार्टी ने कुल मिलाकर 11 स्थानों पर विजय हासिल की। मई 1980 के विधानसभा चुनावों में कम्युनिस्ट पार्टी ने विहार में अपने प्रभाव को कायम रखा। तमिलनाडु और पंजाब में उसने क्रमशः 10 व 9 सीटें प्राप्त की। 1981 में श्री डांगे को कम्युनिस्ट पार्टी से निकाल दिया गया। पार्टी से निकालने के कई कारण बताये गये, जैसे दल विरोधी गतिविधियेां को प्रोत्साहन देना और श्रीमती रोजा देशपांडे द्वारा संस्थापित कम्युनिस्ट पार्टी के समारोह में भाग लेना।

कम्युनिस्ट पार्टी के अधिकांश नेता और सदस्य मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल ही गये है, इसलिए उसका जनाधार (mass base) जब नहीं के बराबर है। कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं का कहना है कि यदि दोनों पार्टियाँ एक हो जायें तो राष्ट्र की राजनीतिक स्थिति पर उसका जबर्दस्त असर पड़ेगा। मई 1982 में कम्युनिस्ट पार्टी ने मार्क्सवादी पार्टी के नेतत्व में चुनाव लड़ा। पश्चिम बंगाल में वामपन्थी मोर्चे को भारी बहुमत मिला, पर केरल में उन्हें पराजय का सामना करना पड़ा।

दिसम्बर 1984 के लोकसभा चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल ने 66 स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किये और 6 स्थानों पर उसके प्रत्याशी विजयी हुए। दल को 2.7 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। मार्च 1987 में कम्युनिस्ट पार्टी ने मार्क्सवादी पार्टी के नेतत्व में चुनाव लड़े। पश्चिमी बंगाल में वामपन्थी मोर्चे को भारी बहुमत मिला। उसने 294 स्थानों में से 251 पर सफलता प्राप्त की जिसमें 11 सीटें कम्युनिस्ट पार्टी की थी। केरल में मार्क्सवादी पार्टी के नेतत्व मे वामपंथी मोर्चे की सरकार बनी। कम्युनिस्ट पार्टी इस सरकार में शामिल हुई।

नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में साम्यवादी पार्टी ने 49 सीटों पर चुनाव लड़ा और उसे 12 सीटें हासिल हुई। 1891 के 10वी लोकसभा के चुनावों में पार्टी को 14 सीटें प्राप्त हुई ।

ग्यारहवीं लोकसभा के चुनाव (1996) और भारतीय साम्यवादी दल – भारतीय साम्यवादी दल ने 1991–95 के वर्षो में भारत सरकार की उदारवादी आर्थिक नीतियों का प्रबल विरोध किया और चुनाव के समय में जारी घोषणा–पत्र में कहा गया कि

पार्टी निर्वाध उदारीकरण की नीति कात्याग कर देगी, सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण रोक देगी और जीवन के लिए आवश्यक 14 वस्तुएं सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत लगभग 50 प्रतिशत कम मूल्य पर उपलब्ध कराएगी। चुनाव सुधार, भ्रष्टाचार निवारण, लोकपाल की स्थापना, अल्पसंख्यकों के जीवन तथा अधिकारों की रक्षा, भूमि सुधार कानूनों की कमियों को दूर कर उन्हें लागू करने तथा केन्द्र में संसाधनों के अति केन्द्रीकरण को राकेने आदि बातें कही गईं। उद्योगों के प्रबन्ध में मजदूरों की भागीदारी सुनिश्चित करने और भूमि, सम्पत्ति तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं को पुरूषों के बराबर हक दिलाने की बात भी कही गई हैं।

1996 में लोकसभा चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल ने 43 सीटों पर चुनाव लड़ा और 12 सीटों (2.0 प्रतिशत मत) पर उसे सफलता मिली। साम्यवादी दल संयुक्त मोर्चे में शमिल हुआ और श्री इन्द्रजीत गुप्त को गहमन्त्री तथा श्री चतुरानन मिश्र को कषि मन्त्री बनाया गया।

12वीं लोकसभा के चुनाव (फरवरी 1998) और भारतीय साम्यवादी दल – फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनावों में भारतीय साम्यवादी दल को 9 सीटें प्राप्त हुई इनमें से 3 सीटें पश्चिम बंगाल तथा 2.2 सीटें केरल और आन्ध्र प्रदेश से उसे मिली।

साम्यवादी दल (मार्क्सवादी)
(Communist Party Marxist)

सन् 1964 में साम्यवादी दल दो भागों में विभक्त हो गया तथा एक नये दल भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) का जन्म हुआ। इसके नेता प्रमोद दास गुप्ता, ज्योति बसु, ए.के. गोपालन तथा पी. राममूर्ति है। 1967 ई. के चुनावों में इस दल को भारतीय साम्यवादी दल के मुकाबले में अधिक सफलता मिली। इन को लोकसभा में 19 एवं राज्य विधानसभाओं में 126 स्थान प्राप्त हुए। केरल में नम्बूद्रीप्रसाद के नेतत्व में संयुक्त सरकार का निर्माण हुआ पश्चिमी बंगाल में अजय मुखर्जी की संयुक्त सरकार में मार्क्सवादी साम्यवादी दल की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सन् 1971 के चुनावों में इसकी शक्ति में वद्धि हुई और लोकसभा में इसके 25 सदस्य हो गये।

संगठन - मार्क्सवादी साम्यवादी दल का संगठन साम्यवादी दल की भांति ही सीढ़ीनुमा है। निम्न स्तर पर सैल होते है और उनके ऊपर ग्राम, शहर, तालुका, जिला एवं राज्य समितियां होती है। सभी समितियों की एक–एक कार्यकारिणी समिति होती है। केन्द्रीय समिति दल की सर्वोच्च संस्था है। केन्द्रीय समिति एक पोलिट ब्यूरो का चुनाव करती है। इसमें दल के प्रमुख नेता सम्मिलित है।

मार्क्सवादी दल का सामाजिक आधार व राजनीतिक उपलब्धि

किसी समय कम्युनिस्ट पार्टी संसद में प्रमुख विपक्षी दल की भूमिका निभा रही थी और कई राज्यों की विधानसभों में भी उसका अच्छा प्रभाव था। बाद में उनका एक बड़ा हिस्सा टूटकर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी बन गया। पहले जिन राज्यों में कम्युनिस्ट पार्टी प्रभावी थी, वहां अब मार्क्सवादियें की प्रधानता देखने को मिलती है। जैसे–जैसे भारतीय साम्यवादी पार्टी क्षीण होती गयी, वैसे–वैसे मार्क्सवादी आगे बढ़ते गये। अब केवल बिहार ही एक ऐसा राज्य है जहां मार्क्सवादी के मुकाबले कम्युनिस्टों का संगठन ज्यादा मजबूत है।

1971 के मध्यावधि चुनावों में मार्क्सवादी दल को लोकसभा में 25 सीटें मिली। पश्चिमी बंगाल इस दल का विशेष गढ़ है, परन्तु आन्ध्र प्रदेश, केरल व त्रिपुरा में इस दल का संगठन काफी मजबूत है। छठी लोकसभा में इस दल के 22 सदस्य थे। 1980 के लोकसभा चुनाव में मार्क्सवादी दल के 36 सदस्य चुनकर आये जिनमें से 27 पश्चिम बंगाल में चुने गये। मई 1980 के विधानसभाई चुनावों में पार्टी को कोई विशेष सफलता नहीं मिली। तमिलनाडु में मार्क्सवादी पार्टी ने 11 सीटें जीतीं और पंजाब में उसे 5 स्थानों पर विजय मिली। मई 1982 के चुनावों के वामपन्थी मोर्चे की पश्चिमी बंगाल में उल्लेखनीय सफलता मिली। वहां मोर्चे को तीन–चौथाई बहुमत मिला। मोर्चे के प्रमुख घटक मार्क्सवादी पार्टी को इतनी सीटें मिली कि विधानसभा से उसे अकेले बहुमत प्राप्त हो गया। केरल विधानसभा से वामपन्थी मोर्चे को प्राप्त 63 सीटों में से मार्क्सवादी पार्टी 26 सीटें ले पायी। जनवरी 1983 में त्रिपुरा में फिर से वाम मोर्चे की सरकार बनी जिसमें सबसे ज्यादा मन्त्री मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के थे।

विचारधारा, नीतियां तथा कार्यक्रम

मार्क्सवादी साम्यवादी पार्टी डांगे तथा सी. पी. आई. की ऐसे संशोधनवादियों के रूप में निन्दा करती है जो अपनी वर्ग सहयोग की अवसरवादी धारणा का अनुसरण करना चाहते हें यह सी. वी. आई. पर आरोप लगाती है कि उसने श्रीमती गांधी के अधीन कांग्रेस दुर्जूआ–जमींदार सरकार के साथ गठजोड किया जिसने आपातकालीन स्थिति की घोषणा की और सभी विरोधी नेताओं को जेलों में डाल दिया।

इस दल के नेता 'किसानों और मजदूरों की तानाशाही' कायम करना चाहते है। यद्यपि उन्होंने चुनाव की राजनीति कापरित्याग करना उचित नहीं समझा अर्थात वे चुनावों में भाग लेते है, परन्तु उनका असली झुकाव लोकतन्त्रीय व वैधानिक पद्धतियों की ओर न होकर प्रदर्शन, घेराव का मोर्चो की ओर है।

मार्क्सवादी पार्टी काफी समय तक जनवादी चीन की ओर झुकी रही, परन्तु अफगानिस्तान में रूसी कार्यवाही का संगठन करके उसने अपने को रूस के काफी निकट कर दिया। मार्क्सवादी पार्टी पर रूस की ओर से यह दबाव डाला जाता रहा कि वह कांग्रेस (आई) के प्रति नरम रूख अपनाये पर मार्क्सवादी पार्टी इसके लिए तैयार नहीं थी। पार्टी के विजयवाढ़ा सम्मेलन (1982) के बाद महासचित नम्बुद्रीप्रसाद ने कहा था, "रूस ने पार्टी का जनसमर्थन देखना शुरू कर दिया। हमारी पार्टी सोवियत रूस को मान्यता प्राप्त करने के लिए कांग्रेस (आई) के प्रति नरमी बरतने को तैयार नहीं हे। मार्क्सवादी पार्टी बिना सोवियत रूस की मान्यता के 18 वर्षो तक चलती रही है।"

यदि 1977–1980 व 1989 के चुनावों के लिए जारी किये गये घोषणा–पत्र को देखें तो इस दल के कार्यक्रम का निम्नलिखित रूप हमारे सामने आता है :–

संवैधानिक क्षेत्र में – मार्क्सवादी दल मजदूर वर्ग के नेतत्व में जन लोकतन्त्र स्थापित करना चाहता हैं। यह लोगो की प्रभुसत्ता के आधार पर एक नया विधान चाहता है जिसमें समानुपातिक प्रतिनिधित्व की अनुमति देगा ओर राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। इसके अनुसार राज्यपाल के पद और केन्द्रीय व राज्य विधानमण्डलों में दूसरें सदनों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यह राज्यों की और अधिक शक्तियां प्रदान करने, सभी नागरिकों को समान अधिकार, सभी भाषाओं के लिए समानता और राज्य सरकारों को भारतीय प्रशासनिक तथा भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखने का समर्थक है। इसके अनुसार काम करने के अधिकार को मूल अधिकारों की सूची में शामिल किया जाना चाहिए और बेरोजगारी भत्ते की व्यवस्था की जानी चाहिए।

राजनीतिक क्षेत्र में – मार्क्सवादी दल एक नयी शासन प्रणाली लाना चाहता है जिसे 'जन लोकतन्त्र' कहा जाता हैं इसके अनुसार एक सर्वहारा राज्य की स्थापना की जानी चाहिए जिसमें शोषण के लिए कोई स्थान न हो। यह समाजवाद के लिए संसदीय मार्ग को अस्वीकार करता है। मार्क्सवादी दल न्यायपालिका की प्रतिबद्धता ' पर बल देता हे। अभिप्राय यह है कि न्यायपालिका जनता की इच्छा के अनुरूप कार्य करे। सामाजिक सुधार लाने के लिए जो कानून बनाये जाये उन्हें अदालतों में चुनौती दी जा सके। मार्क्सवादी दल की मान्यता है कि राज्यों की शक्तिशाली बनाया जाये। उनका कहना है कि समवर्ती सूची में शामिल विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केवल राज्य विधानमण्डल को ही प्राप्त हो।

आर्थिक क्षेत्र में – (1) चीनी, कपड़ा, जूट सीमेण्ट व अन्य महत्वपूर्ण उद्योग–धन्धों का तुरन्त राष्ट्रीकरण किया जाय तथा विदेशों में भारतीयों की जो पूंजी है, उसपर सरकार का अधिकार स्थापित किया जाय, (2) कारखानों व अन्य क्षेत्रों में कर्मचारियों की 'प्रबन्ध कार्यो' में भाग लेने का अधिकार दिया जाय, छोटे किसानों को ऋण प्राप्त करने की सुविधाएं मिलें तथा गरीबों से कर न लेकर करों का बोझ अमीरों के ऊपर डाला जाय (3) जमींदारी प्रथा का पूर्ण खात्मा किया जाय तथा भूमिहीनों एवं समाज के कमजोर वर्गो के बीच तेजी से भूमि बांटने का काम किया जाय। किसानों, खेतिहर मजदूरों एवं गांवों की गरीब जनता पर जो ऋण हैं वे तत्काल रद्द किये जायें। उन्हें मकान बनाने के लिए निःशुल्क जमीनें दी जायें। गरीब किसानों को किसी भी अवस्था में उसके खेतों से बेदखल न किया जाय।

सामाजिक क्षेत्र में – मार्क्सवादियों ने निम्नलिखित कार्यक्रम पर बल दिया है : (1) हरिजनों, जनजातियों व पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों व विद्यालयों में स्थान आरक्षित किये जायेंगे। जिन हरिजन भाइयों ने बौद्ध धर्म अपना लिया है, उन्हें ये सुविधाएं बराबर मिलती रहनी चाहिए (2) मुसलमानों और उर्दू भाषा के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा (3) अहिन्दी भाषा–भाषियों पर हिन्दी नहीं लादी जायेगी।

विदेश नीति के क्षेत्र में – मार्क्सवादियों का कहना है कि भारत का हित इसी बात में है कि वह पूंजीवादी ताकतों का विरोध करे तथा समाजवादी देशों के साथ अपने सम्बन्ध मजबूत बनायें समाजवादी वियतनाम और कंपूचिया की हैंग सैमरिन सरकार के साथ उसे विशेष हमदर्दी थी। पार्टी तीसरी दुनिया के उन देशों का समर्थन करती है जो अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे है। पार्टी की यह मांग थी कि भारत सोवियत मैत्री सन्धि परपूरी तरह अमल किया जाय तथा चीन के साथ सम्बन्ध सामान्य बनाये जायें।

पश्चिम वंगाल के देहाती क्षेत्रों में भूमि सुधार कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करने में पार्टी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मार्क्सवादी दल वहां सभी जिलों में अपनी जड़ें जमाने में सफल हुआ है।

दिसम्बर 1984 के लोकसभा चुनावों में मार्क्सवादी पार्टी ने 64 स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किये और उसके 22 प्रत्याशी विजयी हुए। उसे 5.7 प्रतिशत मत मिले। मई 1987 में पश्चिम बंगाल में वामपन्थी मोर्चे ने लगातार तीसरी बार शानदार विजय हासिल की। इस विजय का मुख्य श्रेय मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को जाता है जिसे 294 विधानसभाई स्थानों में से 187 स्थान मिले। केरल में भी वामपन्थी मोर्चे की सरकार बनी, जिसका प्रमुख घटक मार्क्सवादी दल हैं त्रिपुरा में आयोजित विधानसभा चुनावों (अप्रैल, 1993) में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने अकेले 60 में से 36 सीटें जीतकर पूर्ण बहुमत हासिल कर लिया।

नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों मे माकपा ने 64 स्थानों पर अपने प्रत्याशी खड़े किये और उसे 33 सीटें प्राप्त हुई। दसवी लोकसभा चुनावों (1991) में पार्टी को 35 सीटें प्राप्त हुई।

ग्यारहवीं लोकसभा के चुनाव (1996) और मार्क्सवादी दल का चुनाव घोषणा पत्र – मार्क्सवादी दल ने अपने 46 सूत्री घोषणा पत्र में मतदाताओं से वायदा किया कि वह सत्ता में आने पर नरसिंह राव सरकार की 'निर्वाध उदारीकरण' की नीति को त्याग देगी, सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण रोक देगी, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत जीवन के लिए आवश्यक 14 वस्तुएं 50 प्रतिशत कम कीमत पर उपलब्ध कराएगी, पांचवे वेतन आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वित करेगी, संसद तथा विधानमण्डलों में महिलाओं के लिए एक–तिहाई स्थान आरक्षित कराएगी, सभी गांवों में पेयजल उपलब्ध कराएगी, राष्ट्रीय बजट का 10 प्रतिशत और राज्य के बजट का 30 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करेगी, रोजगार तथ आवास को मूल अधिकार का दर्जा देगी तथा धर्मान्तरण का ईसाई बने दलितों को अनुसूचित जातियों को मिलने वाली सुविधाएं प्रदान करेगी।

इसके साथ ही विदेशी निवेश को प्राथमिकता नहीं देने, सार्वजनिक क्षेत्र को स्वायत्तता देने, प्रबन्ध में मजदूरों की भागीदारी सुनिश्चित करने, सैन्य कर्मचारियों को एक पद के लिए एक वेतन देने, भूमि सुधार कानूनों की कमियों को दूर कर उन्हें सख्ती के साथ लागू करने, खेतिहर मजदूरों के लिए केन्द्रीय कानून बनाने, सम्पत्ति तथा भूमि में महिलाओं को पुरूषों के बराबर का हक दिलाने, अल्पसंख्यकों को जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा देने, चुनाव सुधार के लिए व्यापक विधेयक लाने, लोकपाल विधेयक लाने और उसके दायरे में प्रधानमन्त्री को लाने, केन्द्र में संसाधनों का अतिकेन्द्रीकरण रोकने, राजनीति का अपराधीकरण रोकने, आम जनता को शीघ्र तथा सस्ता न्याय दिलाने, राज्यों को अधिक अधिकार देने और पंचायतों को अधिकार सम्पन्न बनाने का भी वायदा किया है।

1996 के लोकसभा चुनावों में मार्क्सवादी साम्यवादी दल ने 75 सीटों पर अपने प्रत्याशी खड़े किए और 32 सीटों (6.1 प्रतिशत मत) पर उसके प्रत्याशी विजयी हुए। मार्क्सवादी दल ने केन्द्र में संयुक्त मोर्चे की सरकार को बाहर से समर्थन दिया।

12वीं लोकसभा के चुनाव (चुनाव 1998) और मार्क्सवादी दल – फरवरी 1998 में सम्पन्न लोकसभा चुनावों में मार्क्सवादी साम्यवादी दल को 32 सीटें प्राप्त हुई और दल कांग्रेस के नेतत्व में गैर–भाजपा सरकार को बाहर से समर्थन देने के लिए तैयार हो गया। सीताराम येचुरी और प्रकाश कारत सरीखे पदाधिकारी कांग्रेस को भाजपा से कम खतरनाक दुश्मन बताने लगे।

13वीं लोकसभा के चुनाव (सितम्बर-अक्टूबर 1999) और साम्यवादी दल – बार–बार खण्डित जनादेश के चलते 1996 से ही मार्क्सवादी साम्यवादी पार्टी की अगुआई में राष्ट्रीय राजनीति के मंच पर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता आ रहा वाममोर्चा 1999 में अपनी जोड़–तोड़ की क्षमता खो बैठा। 11वीं लोकसभा (1996–98) में वह सत्तारूढ़ संयुक्त मोर्चे को पीछे से चलाने वाला सशस्त चालक था।

13वीं लोकसभा के चुनावों में मार्क्सवादी साम्प्रदायी दल ने 72 प्रत्याशी खड़े किए और उसके 33 प्रत्याशी लोकसभा में पहुंचे। दल को 5.38% मत प्राप्त हुए। मई 2001 में सम्पन्न पं. बंगाल विधानसभा चुनावों में मार्क्सवादी पार्टी के नेतत्व में वाम मोर्चे को 294 में से 199 सीटों पर जीत हासिल हुई। अकेली मार्क्सवादी सा. पार्टी को 143 सीटें प्राप्त हुई।

माकपा ने 1977 में मोरारजी देसाई की सरकार को, 1989 में वी. पी. सिंह की सरकार को तथा 1996–97 में देवगौड़ा एवं गुजराल सरकारों को बाहर से समर्थन दिया था। देश में सबसे लम्बे सकय तक मुख्यमन्त्री रहने का रिकार्ड बनाने वाले नेता ज्योति बसु माकपा के ख्याति प्रात दिग्गज है।

भारत में क्षेत्रीय और राज्य स्तर की पार्टियां
(Regional and State Parties in India)

महाराष्ट्र में शिव सेना, कश्मीर में नेशलन कांफ्रेन्स, आंध्र प्रदेश में तेलगूदेशम, तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (अन्नाद्रमुक) तथा पंजाब में अकाली दल के प्रभाव के बाद यह सवाल उठना अस्वभाविक नहीं है कि क्या भारत में राज्य स्तरीय पार्टियाँ ही पनपेगी? राज्य स्तरीय पार्टियां नयी नहीं है। देश ने बंगला कांग्रेस, केरल कांग्रेस, उत्कल कांग्रेस जैसी कांग्रेस नामधारी क्षेत्रीय दलों तथा विशाल हरियाणा पार्टी, गणतन्त्रपरिषद, शेतकारी कामगार पार्टी, सम्पूर्ण महाराष्ट्र एकीकरण, महा गुजरात जनता परिषद्, जैसी राज्य पाटिर्यों का भी उतार–चढ़ाव देखा है। ऐतिहासिक परिस्थितियों में उनका विकास हुआ और अन्य परिस्थितियों में वे दूसरों से मिल गयाी या समाप्त हो गयी। सन् 1967 में पंजाब से लेकर पश्चिम बंगाल तक और बाद में मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में जो सरकार बनीं उन्हें संयुक्त विधायक दल का नाम दिया गया, परन्त उन दलों की बड़ी शक्ति राज्य स्तरीय पार्टियां ही थीं भले ही वह राव वीरेन्द्रसिंह की विशाल हरियाणा पार्टी हो, चौधरी चरणसिंह का भारतीय क्रान्ति दल हो, उड़ीसा के राजाओं की गणतन्त्र परिषद् या अजय मुखर्जी की बंगला कांग्रेस हो। दक्षिण में अत्रादुरै का द्रविड़ मुनेत्र कड़गम् शक्तिशाली बनी।

11वीं लोकसभा में राज्य स्तरीय (क्षेत्रीय) दलों का वर्चस्व स्थापित हुआ और यूनाइटेड फ्रण्ट के भागीदार के रूप में वे केन्द्र की मिलीजूली सरकार के आधार स्तम्भ बने। 13 पार्टी के यूनाईटेड फ्रण्ट में तेलगूदेशम्, द्रमुक, नेशलन कान्फ्रेन्स, तमिल मनीला कांग्रेस, समाजवादी पार्टी और असम गण परिषद् को भी केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में प्रतिनिधित्व मिला। आज उन्हें 'राष्ट्रीय हितों का पोषण करने वाली क्षेत्रीय पार्टियाँ' कहा जाने लगा है।

क्षेत्रीय दलों का उद्भव जन आन्दोलन से हुआ। द्रमुक अगर द्रविड़ कड़गम की ब्राह्मण विरोधी राजनीति की उपज है, तो तेलगूदेशम् का जन्म कांग्रेसी सरकारों द्वारा तेलगु 'स्वाभिमान' को ठेस पहुंचाने के कारण हुआ और 'विदेशियों' के खिलाफ अन्य जातियतावादी छाप आन्दोलन के कारण असम गण परिषद् अस्तित्व में आई।

'राज्य स्तरीय' दलों की 'क्षेत्रीय दल' सम्बोधित करने की हमारी आदत रही है। असल में असम गण परिषद् (असम), नेशनल कांफ्रेन्स (जम्मू–कश्मीर), डी. एम. के. (तमिलनाडु), अकाली दल (पंजाब), शिवसेना (महाराष्ट्र), सिक्कम संग्राम परिषद् (सिक्किम), आदि सभी राज्य स्तरीय दल हें ये अलग–अलग राज्यों में प्रभावशाली है। न कि किसी 'क्षेत्र' (Region) विशेष में।

क्षेत्रीय और राज्य स्तरीय दलों की विशेषताएँ
(Salient Features of Regional and State Parties)

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय और राजस्तरीय दलों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही हे। इन दलों की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं है :

(1) भारतीय राजनीति में राज्य दलों का वर्चस्व सन् 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के बाद बढ़ने लगा।

(2) भारत के क्षेत्रीय दल आमतौर से राज्य स्तरीय दल ही है।

(3) इन राज्य स्तरीय दलों की प्रमुख मांग राज्य स्वायतता है।

(4) इन राज्य स्तरीय दलों की प्रमुख प्रतिस्पर्द्धा कांग्रेस दल से रही है।

(5) राज्य स्तरीय दलों की संकुचित अपील और आधार होते है।, जैसे उपसंस्कति, जातीयता और धर्म के तत्व आदि।

(6) क्षेत्रवाद का उदय केन्द्र के खिलाफ विद्रोह से होता है।

(7) क्षेत्रवाद भी वस्तुतः सत्ता हासिल करने का वैसा ही शॉर्टकट है जैसे शॉर्टकट राष्ट्रीय राजनीति करने वाले दल अपनाते है।

1998 लोकसभा चुनावों के समय मान्यता प्राप्त राज्य स्तरीय दलों के नाम

1.	अ.कांगेस	अरूणाचल कांग्रेस
2.	अद्रमुक	अखिल भारतीय अत्र द्रविड़ मुनेत्र कपगम
3.	अ.ग.प.	असम गण परिषद्
4.	ई.कां(ध.नि.)	अखिल भारतीय इन्दिरा कांग्रेस (धर्मनिरपेक्ष)
5.	आ.स्टे.डि.क.	आटोनामस स्टेट डिमाण्ड कमेटी
6.	द्रमुक	द्रविड़ मुनेत्र कपगम
7.	फारवर्ड	आल इण्डिया फारवर्ड ब्लाक
8.	हि.स्टे.पी.डे.पा.	हिल स्टेट पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी
9.	ह.वि.पा.	हरियाणा विकास पार्टी
10.	ने.का.	जम्मू एण्ड कश्मीर नेशनल कॉन्फ्रेन्स
11.	झा.मु.मो	झारखण्ड मुक्ति मोर्चा
12.	ज.पा.	जनता पार्टी
13.	के.कां.	केरल कांग्रेस
14.	के.कां(एम)	केरल कांग्रेस (एम)
15.	म.गोमा.	महाराष्ट्रवादी गोमांतक
16.	मि.फ्रंट	मिजो नेशलन फ्रंट
17.	म.पी.पा.	मणिपुर पीपुल्स पार्टी
18.	मु.लीग	मुस्लिम लीग केरल स्टेट कमेटी
19.	ते.देशम.(ल.पा.)	एन टी आर तेलुगुदेशम पार्टी (लक्ष्मी पार्वती)
20.	प.म.क.	पट्टाली मक्कल कल्वी
21.	रि.पा.ई.	रिपब्लिकन पार्टी आफ इण्डिया
22.	रि.सो.पा.	रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी
23.	शि.अ.द.	शिरोमणी अकाली दल
24.	सि.डे.फ्रंट	सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रंट
25.	शिवसेना	शिवसेना
26.	स.पा.	समाजवादी पार्टी
27.	ते.देशम	तेलगु देशम पार्टी
28.	त.म.कां.(मू)	तमिल मनिला कांग्रेस (मूपनार)
29.	यू.डे.पा.	यूनाइटिड डेमोक्रेटिक पार्टी
30.	यू.गो.डे.पा.	यूनाइटिड गोअन्स डेमोक्रेटिक पार्टी

भारत मे प्रमुख राज्य स्तरीय दल
(Major State Parties in India)

भारत में प्रमुख रूप से तीन प्रकार के राज्य स्तरीय दल है। पहले प्रकार के राज्य स्तरीय दल वे है जो वास्तव में जाति, धर्म, क्षेत्र अथवा सामुदायिक हितों काप्रतिनिधत्व करते है और उन पर आधारित है। इसके प्रमुख उदाहरण द्रविड़ मुन्डें कड़गम् या अन्नाद्रमुक (तमिलनाडु), अकाली दल (पंजाब), नेशनल कांफ्रेन्स (जम्मू–कश्मीर), शिव सेना (महाराष्ट्र), झारखण्ड पार्टी (बिहार) तथा उत्तर पूर्व में कुछ आदिवासी संगठन जैसे नगालैण्ड नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी, मिजो नेशनल फ्रण्ट, आदि है। दूसरे

प्रकार के राज्य दल वे है जो किसी समस्या विशेष को लेकर अथवा सदस्यों की क्षुब्धता के कारण राष्ट्रीय दलों विशेष रूप से कांग्रेस से अलग होकर बने है। इनमें से अधिकतर दल केवल कुछ समय के लिए राष्ट्रीय रहे।, कुछ ने स्वयं को राष्ट्रीय

अकाली दल सिक्खो की मख्य राजनीति व सामाजिक संस्था है। अकाली दल राज्य स्तरीय दल है क्योंकि यह पंजाब तक ही सीमित है। गुरूद्वारों (सिक्ख मन्दिरों) को परम्परानिष्ठ सिक्ख समुदाय के अधिकार क्षेत्र में लाने के लिए एक सुधार समूह का गठन किया गया। सन् 1925 में अकाली प्रत्यक्ष कार्यवाही के द्वारा गुरूद्वारों को वयस्क मताधिकार द्वारा सिक्ख समुदाय में से चुनी हुई एक समिति के अधिकार क्षेत्र में लाने में सफल हुए। समितियों के सौ से अधिक गुरूद्वारों पर नियन्त्रण तथा उनकी दान सम्पति ने पंजाब में अकाली दल की स्थिति का प्रयोग शक्तिशाली बना दिया। धार्मिक दष्टिकोण से यह "पन्थ की सुरक्षा" (सिक्ख धार्मिक दल या समुदाय) के लिए बना है। राजनतिक दष्टि से अपने संविधान के अनुसार यह एक ऐसे "वातावरण के निर्माण के लिए बचाया गया जिसमें सिक्ख राष्ट्रीय अभिव्यक्ति को पूरी सन्तुष्टि प्राप्त हो सके। "इनके राजनीतिक उद्देश्यों ने पंजाबी सूबे या पंजाबी भाषायी राज्य की मांग का मार्ग प्रशस्त किया।

जब पंजाब द्विभाषी राज्य था तब अकाली दल ने सरकार के साथ सन्धि घोषित कर दी तथा 1957 के चुनावों के समय कांग्रेस के साथ मिल गये। फिर भी 1960 में पंजाबी सूबे के समर्थन मे प्रदर्शन बढ़ गये। लेकिन इसके फलस्वरूप अकालियों के बीच गुटबन्दी का जन्म हुआ। लगभग तीस वर्षो तक मास्टर तारासिंह अकाली दल के एक प्रभावशाली नेता रहे । फिर भी 1962 में उनके प्रमुख अनुयायी सन्त फतेहसिंह ने अकाली दल की एक प्रतिद्वन्दी शाखा की स्थापना की जो शीघ्र मास्टर तारासिंह के दल पर पूरी तरह छा गयी। 1966 में अलग पंजाब राज्य की रचना करके पंजाबी सूबे के लिए अकाली दल की चिरकालिक तथा आग्रहपूर्ण मांग मंजूर कर ली। 1998 मे मास्टर तारासिंह की मत्यु हो गई तथा अकाली दल के दोनों पक्ष फिर से एक हो गये। 1969 के मध्यावधि चुनाव में विधानसभा में दोबारा गठित दल के कांग्रेस से अधिक सदस्य चुने गये। जनसंघ के साथ एक आश्चर्यजनक मेल कर अकाली दल ने पंजाब में सरकार बनायी। 1977 के चुनावों में अकाली दल ने जनता सरकार का समर्थन किया। जूलाई 1979 में जनता पार्टी सरकार पर संकट के समय अकाली दल ने उसका साथ छोड़ दिया। जनवरी 1980 के लोकसभा चुनाव में दल को भारतीय असफलता की स्थिति कासामना करना पड़ा। मई 1980 के विधानसभा चुनाव इस दल ने भारतय साम्यवादी दल ओर मार्क्सवादी दल के साथ समझौते के आधार पर लडे और दल ने पंजाब के ग्रामिण अंचलों में अपनी लोकप्रियता का परिचय दिया। चुनाव परिणामों से यह स्पष्ट है कि पंजाब में कांग्रेस (ई) को चुनौती देने की क्षमता रखता है।

पहले चुनाव से ही अकाली दल पंजाब में कांग्रेस के पश्चात् दूसरे सबसे बड़े दल के रूप में सफल रहा है। वास्तव में अकाली दल और तीसरे नम्बर के दल के बीच का अन्तर कांग्रेस और अकाली दल के बीच के अन्तर से कही अधिक रहा। सन् 1952 में अकाली दल को वैध मतों का 24 प्रतिशत प्राप्त हुआ। सन् 1957 के चुनाव से पहले अकाली दल कांग्रेस में सम्मिलित हो गया और इसने एक अलग राजनीतिक दल के रूप में चुनाव नहीं लड़ा। सन् 1962 में दल को 20.7 प्रतिशत, 1967 में 24. 7 प्रतिशत और 1969 में 19.5 प्रतिशत मत मिलें। सन् 1972 में अकाली दल को 27.7 प्रतिशत और 1977 में 31.4 प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

ऊपर वर्णित चुनाव सफलताओं के विश्लेषण से अकाली समर्थन के बारे में कुछ विशेषताएं देखने को मिलती है। पहली बात तो यह है कि पंजाब में इस दल का निश्चित आधार है जो दलीय व्यवस्था में उथल–पुथल के बावजूद इस दल को समर्थन देता है। अध्ययनों से पता चलता है कि यह आधार मुख्य रूप से ग्रामीण सिक्ख कषक वर्ग का हैं अकाली दल इस वर्ग का आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सभी क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी विशेषता यह है कि सदैव दूसरे नम्बर का दल रहने के बावजूद अकाली दल की चुनाव जीतने की क्षमता सीमित है। सन् 1977 के चुनाव को छोड़कर इस दल का मत प्रतिशत कभी भी 30 प्रतिशत से ऊपर नहीं गया इसका कारण इसकी केवल एक ही धार्मिक सम्प्रदाय से अपील और आर्थिक कार्यक्रम में वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व है।

जून 1980 के चुनावों में पराजय के बाद अकाली नेताओं को निराशा ने घेर लिया। अकाली दल कई धड़ों में बँट गया। मुख्य धड़े का नेतत्व सन्त हरचन्द सिंह लोगोवाल और पंजाब के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री प्रकाश सिंह बादल कर रहे थे। कई मुद्दों को लेकर उन्होंने पंजाब की कांग्रेस (आई) सरकार और भारत सरकार के विरूद्ध आन्दोलन छेड़ दिया। अकाली दल की मुख्य मांगें रही है : (1) हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान के पंजाबी भाषी इलाके पंजाब में शामिल किये जायें (2) चण्डीगढ़ को अकेले पंजाब की राजधानी स्वीकत किया जाय (3) भाखड़ा नांगल जैसे जल विद्युत केन्द्र पंजाब के नियन्त्रण में रहें

(4) पंजाब में भारी उद्योगों की स्थापना की जाये (5) गुरूद्वारों की प्रबन्ध समितियों व सिक्खों के अन्य धार्मिक मामलों में सरकार हस्तक्षेप न करे। इन मांगों को लेकर अकाली दल ने न केवल धरने दिये और प्रदर्शन किया, बल्कि 'रास्ता रोको' और 'रेल रोको'जैसे आन्दोलन भी चलाये। धीरे–धीरे अकाली आन्दोलन एक खतरनाक मोड़ पर पहुंच गया। सन्त लोंगोवाल आन्दोलन शान्तिपूर्ण ढंग से चलाना चाहते थे, पर अकाली दल के भीतर उन लोगों की संख्या बढ़ी जो 'संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न सिख राज्य' का समर्थन करते थे। पंजाब के उग्रवादियों की बागडोर सन्त जरनेल सिंह भिण्डरावाला के हाथों में आ गई। कई पुलिस अधिकारी, सरकारी कर्मचारी और निर्दोष व निहत्थे लोग उग्रवादियों की हिंसा का निशाना बने। फलस्वरूप जून 1984 में पंजाब में फौजी कार्रवाई की गयी। स्वर्ण मन्दिर में सेना के प्रवेश और भिण्डरावाले के अन्त के बाद पंजाब की समस्या के राजनतिक समाधान की जरूरत थी। 24 जुलाई, 1985 को अकाली दल और केन्द्र सरकार के बीच एक समझौता हुआ। समझौते के अन्तर्गत चण्डीगढ़ शहर पंजाब को और उसके बदले मे पंजाब के हिन्दी भाषी इलाके हरियाणा को दिये जाने हैं। श्रीमती गांधी की हत्या के बाद नवम्बर 1984 में हुए दंगो की जांच के लिए एक आयोग की स्थापना की गई तथा अकालियों का आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव सरकारिया आयोग को विचार के लिए सौंप दिया गया।

अकाली दल के चुनाव घोषणा–पत्र में दावा किया गया है कि अकाली दल आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कतिक न्याय के आधाार पर खड़ा राजनीतिक दल है, जिसका उद्देश्य अधिनायकवाद का विरोध और व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा करना है। अकाली दल संविधान के संघीय स्वरूप, राज्यों की स्वायतता और अल्पसंख्यकों के समाजिक, धार्मिक, सांस्कतिक, भाषायी हितों की रक्षा के मुद्दों पर विशेष बल देता है। यह दल पंजाब और अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों में गुरूमुखी भाषा और लिपि के अधिकारिक प्रयोग का विशेष समर्थक है।

अकाली दल प्रमुखतया पंजाब के कषकों का राजनीतिक दल हैं अपने आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत इसके द्वारा भुमि सुधर कानूनों की क्रियान्विति, कषि के आधुनिकीकरण, कषकों को उनकी उपज का उचित मूलय दिलवाने, उर्वरकों के दाम घटवाने और ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के विकास की बात कही गयी है। सन् 1962 के चुनाव में जब अकाली दल को ग्रामीण कषक वर्ग का अधिक समर्थन प्राप्त हुआ है दल की नीतियों में तदानुसार परिवर्तन देखनेको मिलते हैं अब अकाली दल तथाकथित अनावश्क भूमि सुधारों का विरोध करता है और शहरी सम्पति की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के लिए तत्पर हैं इसी प्रकार उचित दाम पर अनाज की बिक्री के स्थान पर आज इसकी मांग किसानों को उचित न्यूनतम कीमत प्राप्त करवाने की है। अकाली दल 10 एकड़ तक की भूमि पर राजस्व की छूट, सिंचाई की अधिक सुविधाएं, गांव में बिजली, सस्ते दामों पर खाद, कषकों को बैंको और अन्य संस्थाओं से ऋण की सुविधाओं, आदि के लिए विशेष प्रयत्नशील है। अब उसकी दूसरी रूचि पंजाब के औद्योगिकरण भी है क्योंकि अनेक बड़े किसानों के पास खेतों से कमाया व्यापक धन उद्योगों में लगाने के लिए उपलब्ध है।

पंजाब में रहने वाले हिन्दू–हरिजन और एक सीमा तक शहरी सिक्ख अकाली दल को समर्थन नहीं देते। इसी का दूसरा पहलू यह है कि अकाली दल अपनी संकीर्णता के बावजूद अकेले विधानसभा में बहुमत नहीं प्राप्त कर सकता।

सितम्बर 1985 के विधानसभा एवं लोकसभा चुनावों में अकाली दल को पंजाब में ऐतिहासिक सफलता प्राप्त हुई। विधानसभा के 115 स्थानों में से 73 तथा लोकसभा के 13 स्थानों में से 7 स्थान जीतकर राज्य में पहली बार उसने अपने बलबूते पर सरकार बनायी। काफी संख्या में हिन्दू मतदाताओं ने भी अकालियों को मत दिये। 1987 में पंजाब में राष्ट्रपति शासन लागू किया गया जो नवम्बर 1991 तक जारी रहा। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में अकाली दल (मान गुट) को 7 स्थान प्राप्त हुए।

अकाली दल में सदैव से ही दो या अधिक गुटों में विभाजन की स्थिति रही है और फरवरी 92 से पंजाब विधानसभा और पंजाब से लोकसभा चुनाव के समय चार अकाली दल थे : अकाली दल (मान), अकाली दल (लोगोंवाल–बरनाला), अकाली दल (बादल तलवण्डी), और अकाली दल (के अर्थात काबुल सिंह) इनमें से केवल अकाली दल (के) ने ही विधानसभा और लोकसभा चुनावों में भाग लिया तथा उसे भी असफलता ही हाथ लगी। अन्य अकाली दलों ने फरवरी 92 के विधानसभा चुनावेां का बहिष्कार किया।

फरवरी 1997 में सम्पन्न पंजाब विधानसभा के चुनावों में अकाली दल भाजपा गठबन्धनों को शानदार सफलता मिली। गठबन्धन को 117 सीटों पर हुए चुनावों में 93 सीटें तथा 45.8 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। अकेले शिरोमणि अकाली दल को 75 सीटै। मिली और अकाली नेता श्री प्रकाशसिंह बादल के नेतत्व मे अकाली भाजपा गठबन्धन सरकार अस्तित्व में आई।

फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनाव अकाली दल ने भाजपा के साथ मिलकर लड़े और 13 सीटों में से 8 सीटें अकाली दल का प्राप्त हुई।

सितम्बर–अक्टूबर 1999 में 13वी लोकसभा के चुनाव अकाली दल ने भाजपा के साथ मिलकर राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के तले लड़े और मात्र 2 सीटों पर विजय प्राप्त हुई।

द्रविड़ मुनेत्र कड़गम तथा अत्रा द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (D.M.K. and A.D.M.K.)

तमिलनाडु राज्य में द्रविड़ कड़गम एक स्थानीय द्रविड़ आन्दोलन की राजनीतिक शक्ति का प्रतीक है। इसकी मूल जड़े जस्टिस पार्टी (दक्षिण भारतीय उदारवादी संघ) में भी जो एक गैर ब्राहाण आन्दोलन था। परिसर के नाम से विख्यात ई.बी. रामास्वामी नाइकरजो 1938 में जस्टिस पार्टी के अध्यक्ष थे, ने राजनीति को तमिल रूप देने का कार्यक्रम शुरू किया और तमिलनाडु में एक नेय राजय द्रविड़िस्तान बनाने की मांग रखी। 1944 मे पेरियर ने दल का द्रविड़ कड़गम के नाम से पुनः निर्माण किया और अपना लक्ष्य एक स्वतन्त्र द्रविड़िस्तान की प्राप्ति रखा। इसने तमिल समुदाय को एक पूर्ण इकाई के रूप मे राजनीतिक गतिविधियों के द्वारा ऊंचा उठाने के लिए प्रोत्साहित किया। द्रविड़ कड़गम एक ब्राह्मण विरोधी और धर्म विरोधी दल था।

जस्टिस पार्टी के सक्रिय सदस्य और पेरियर के मुख्य समर्थक तथा द्रविड़ कडगम के एक समूह के नेता सी. एन. अन्नादुराई ने 1949 में एकनेय दल द्रविड़ मुनेत्र कड़गम का गठन किया। यह एक प्रकार से पेरियर की प्रजातन्त्र विरोधी नीति के विरूद्ध विरोध था। अत्रादुराई जनता के प्रिय महान नेता व ओजस्वी वक्ता थे, उन्होंने जल्दी ही द्रविड़मुनु कड़गम को तमिल राजनीति में विशिष्ट स्थान दिला दिया। 1957 में पहली बार द्रविड़ मुनेत्र कड़गम ने चुनावों में हिस्सा लिया और 15% मत प्राप्त किये। इसके पश्चात इसने तीव्र प्रगति की तथा 1967 के आम चुनाव में डी. एम. के. दल की पूर्ण बहुमत की सरकार बनायी। फरवरी 1969 में अत्रादुाई की मत्यु के पश्चात दल में व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धाएं तथा मतभेद प्रारम्भ हो गये। अन्त में करूणानिधि दल के नेता बने तथा 1967 से 1978 तक तमिलनाडु के मुख्यमन्त्री बने रहे। जनवरी 1967 में केन्द्रीय सरकार ने डी. एम. के. सरकार को भंग कर दिया। जून 1976 के चुनाव में राज्य विधानसभा में डी. एम. के. को 48 स्थान प्राप्त हुए। हिन्दी विरोध और आगे चलकर 'राज्यों के लिए स्वतन्त्रता' इस दल की नीति और कार्यक्रम के प्रमुख आधार रहे है।

अन्ना डी. एम. के. – डी. एम. के. अध्यक्ष करूणानिधि और कोषाध्यक्ष एम. जी. रामचन्द्रन के बीच मतभेद उत्पन्न हो जाने पर अक्टूबर 1972 में एम. जी. राजचन्द्रन ने डी. एम. के. से अलग होकर अन्ना डी. एम. के. का निर्माण किया। अन्ना डी. एम. के. एक क्षेत्रीय दल है जिसका प्रभाव क्षेत्र तमिलनाडु और पाण्डिचेरी में हैं। जून 1977 के राज्य विधानसभा चुनावों में अन्ना डी. एम. के. ने 130 स्थान प्राप्त किये तथा एम. जी. रामचन्द्रन के नेतत्व में राज्य मन्त्रिमण्डल का गठन किया। अपनी स्थापना के समय से ही अन्ना डी. एम. के. की मूलनीति यथासम्भव केन्द्र के शासक दल के साथ सहयोग करने की रही हैं इसी कारण 1977 के लोकसभा तथा विधानसभा चुनाव इसने सत्ता कांग्रेस के साथ सहयोग करते हुए लड़े, लेकिन जब केन्द्र मेंजनता पार्टी की सरकार बन गयी तो जनता पार्टी के समीप आने का कार्य किया और और जब इसका पतन हो गया तो जनता 'एस' के साथ सरकार में भागीदारी की। मई 1980 के विधानसभा चुनावों में तमिलनाडु में दो गठबन्धन थे – पहला, कांगेस डी. एम. के. गठबन्धन तथा दूसरा वामपन्थी तथा अन्य छोटे दलों के साथ अन्ना डी. एक. के गठबन्धन। इसमें अन्ना डी. एम. के. गठबन्धन ने सफलता प्राप्त कर तमिलनाडु में अपनी सरकार का निर्माण किया।

तमिलनाडु के दोनों राज्य स्तरीय दलों की राज्य में नीति एक सी है और दोनो ही अखिल भारतीय सन्दर्भ में केन्द्र में सत्तारूढ दलों – चाहे कांग्रेस हो या जनता पार्टी साथ देते रहे है या साथ देने के इच्छुक रहे है। रॉबर्ट हार्डग्रेव के अनुसार, "डी. एन. के. आर. के एक दूसरे के प्रतिद्धन्द्धी जरूर है पर इन दोनों दलों की नीतियों में कोई विशेष अन्तर नहीं हे।" दोनों दलों के कार्यक्रम के खास–खास मुद्दे इस प्रकार है। – (1) समाज के पिछडें वर्गो को समान अवसर दिये जाये तथा छुआछुत कोपूरी तरह से समाप्त किया जाये। यहां यह उल्लेखनीय है कि सरकार ने राज्य के लगभग 65 हजार निर्धन बच्चों को दोपहर का भोजन मुफ्त देने की योजना लागू करके एक साहसिक कदम उठाया। 1982–83 के बजट में इसके लिए एक अरब रूपये की व्यवस्थाकी गयी (2) अन्धविश्वास नष्ट किये जायं तथा हर क्षेत्र में 'बुद्धिवाद' (Rationalism) और वैज्ञनिक दष्टिकोण अपनाया जाये, (3) तमिल भाषा और संस्कति का प्रचार किया जाये तथा हिन्दी के जबरन लादे जाने का विरोध किया जाये (4) डी. एम. के. की एक प्रमुख मांग यह रही है कि राज्यो को अधिक स्वायत्तता और वित्तीय साधन किये जाये। 1970 में डी. एम. के. ने 'राज्य स्वायत्तता सम्मेलन' आयोजित किया। राजपन्नार समिति प्रतिवेदन के आधार पर अपनी राज्य स्वायत्तता की मांग को तार्किक आधार प्रदान किया।

दिसम्बर 1984 में तमिलनाडु विधानसभा चुनावों में अन्नाद्रमुक को 11 सीटें प्राप्त हुई। वैसे उसने लोकसभा की 12 सीटों के लिए ही चुनाव लड़ा था। राज्य विधानसभा को 234 सीटों में से उसे 133 सीटें प्राप्त हुई और इस प्रकार तमिलनाडु में राज्य राजनीति की बागडोर पुनः अन्ना डी. एम. के. दल के हाथों में आ गयी।

फरवरी 1989 में तमिलनाडु विधानसभा में डी. एम. के. दल को 147 स्थान प्राप्त हुए और करूणानिधि के नेतत्व में 13 वर्ष बाद दल ने शासन की बागडोर संभाली। डी. एम. के. को 33.4 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। इसके विपरीत अन्नाद्रमुक (जयललिता) को 21.7 प्रतिशत मत और 27 स्थान एवं अन्ना द्रमुक (जानकी) को 9.1 प्रतिशत मत और 1 स्थान मिला। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में डी. एम. के. को एक भी सीट प्राप्त नहीं हुई जबकि अन्ना डी. एम. के. (जयललिता) को 13 सीटें मिली। 1991 में द्रमुक सरकार को बर्खास्त कर राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। तमिलनाडु विधानसभा चुनावों में जयललिता और अन्नाद्रमुक को अप्रत्याशित सफलता मिली। जहां द्रमुक को मात्र एक सीट मिली वहां अन्ना द्रमुक को 163 सीटें मिली ओर जयललिता मुख्यमंत्री पद पर आसीत हुई। जयललिता लोगों को यह विश्वास दिलाने में कामयाब रही कि द्रमुक ने राज्य में उग्रवादी गतिविधियों को शह दी। मार्च '93 में अन्ना द्रमुक की नेता जयललिता ने औपचारिक घोषणा कर कांग्रेस (ई) के साथ गठबन्धन की स्थिति को समाप्त कर दिया।

1996 के लोकसभा तथा तमिलनाडु विधानसभा चुनाव डी. एम. के. तमिल मनीला कांग्रेस के साथ गठबन्धन तथा सिनेमाई व्यक्तित्व रजनीकान्त के समर्थन से बड़े और भारी सफलता अर्जित की। संयुक्त मोर्चे के एक भागीदार दल के रूप में डी. एम. के. देवगौड़ा और इन्द्रकुमार गुजराल के नेतत्व में बनने वाली केन्द्रीय सरकार का सहभागी दल था। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनाव अन्ना डी. एम. के. ने भाजपा के साथ मिलकर लड़े और 18 सीटें प्राप्त हुई जबकि डी. एम. के. की मात्र 5 सीटें मिली। डी. एम. के. ने तमिल मनीला कांग्रेस के साथ मिलकर चुनाव लड़ा था।

सितम्बर–अक्टूबर 1999 में सम्पन्न 13वीं लोकसभा के चुनाव द्रमुक ने राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन के तहत लड़े और 12 सीटों पर उसके प्रत्याशी विजयी हुए। द्रमुक के प्रतिनिधि वाजपेयी मन्त्रिमण्डल में भी शामिल हुए। अन्नाद्रमुक ने अप्रैल 1999 में वाजपेयी सरकार से समर्थन वापिस लेकर उसे गिराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 13वीं लोकसभा के चुनाव अन्नद्रमुक ने कांग्रेस के साथ तालमेल कर लड़े और उसके 10 प्रत्याशी विजयी हुए।

मई 2001 में सम्पन्न तमिलनाडु विधानसभा के चुनावों में अन्ना द्रमुक के नेतत्व वाले गठबन्धन ने मुख्यमंत्री करूणानिधि के नेतत्व को शिकस्त देकर सत्ता पर अधिकार कर लिया। राज्य विधान की 234 सीटों हेतु सम्पन्न चुनावों में अन्ना द्रमुक को 196 तथा द्रमुक मोर्चे को केवल 36 सीटें प्राप्त हुई इनमें अकेले अन्ना द्रमुक को 27 सीटों पर सफलता मिली।

नेशनल कांफ्रेन्स
(National Conference)

नेशनल कांफ्रेन्स की मूल जड़ 1930 के दशक में 'वाचनालय दल' के रूप में थी। लेख मोहम्मद अब्दुल्ला इस छोटे से दल के राजनीतिक वाद–विवादों का नेतत्व करते रहे। 'वाचनायल दल' शीघ्र ही अखिल जम्मू व कश्मीर मुस्लिम कांग्रेस में बदल गया। 1938 में अपने पहले अधिवेशन में नेशनल कांफ्रेन्स ने वयस्क मताधिकार की तथा अल्पसंख्यकों के लिए स्थानों के आरक्षण की सिफारिश की। भारतके विभाजन के समय नेशनल कांफ्रेन्स के नेता जेल में थे। भारतीय संघ में कश्मीर के विलय के बाद शेख अब्दुल्ला प्रधानमन्त्री बने। उन्होंने भारतीय विधानसभा पर अनुच्छेद 370 को अंगीकार करने के लिए जोर डाला, जिसके अन्तर्गत जम्मू व कश्मीर राज्य के भारत गणराज्य के साथ विशेष सम्बन्ध स्थापित किये गये।

केन्द्रीय सरकार के साथ कश्मीर के मामलों के एकीकरण की प्रक्रिया का शेख अब्दुल्ला और उनकी नेशनल कांफ्रेन्स ने विरोध किया तथा इससे इन्हें अगस्त 1953 में कैद व नजरबन्द कर दिया गया। जनवरी 1964 में मुख्यमन्त्री सादिक ने नेशलन कांफ्रेन्स 'कश्मीर स्वतन्त्रता आन्दोलन के सबसे पुराने दल' के उन्मूलन पर अध्यक्षता की। भूतपूर्व प्रधान वख्शी गुलाम मुहम्मद ने स्वयं अपने नेतत्व में नेशनल कांफ्रेन्स को पुनजीवित करने का निर्णय किया।

जम्मू एवं कश्मीर विधानसभा के लिए 1967 के आम चुनावों में वख्शी की नेशनल कांफ्रेन्स ने केवल आठ स्थान प्राप्त किये, हालांकि इसने कुल मतों का 34% प्राप्त किये। यह जनतामें असन्तोष का केन्द्र बिन्दु बन गयी।

1968 के शुरू में शेख अब्दुल्ला को बिना शर्त रिहा कर दिया। सितम्बर 1972 में कश्मीर में हुए नागरिक मतदान में उसके समर्थकों की लगभग सम्पूर्ण विजय ने नेशनल कांफ्रेन्स की राजनीतिक शक्ति के पुनः उभर आने की घोषणा की। फरवरी 1975

में शेख अब्दुल्ला तथा प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी के बीच समझौता सम्पन्न हुआ। इस समझौते के परिणामस्वरूप शेख अब्दुल्ला तथा उनकी नेशनल कांफ्रेन्स ने आत्म–निर्णय जनमत संग्रह का नारा छोड़ दिया। इस समझौते के आधार पर शेख के द्वारा जम्मू–कश्मीर में कांग्रेस के सहयोग से सत्ता ग्रहण की गयी, लेकिन नेशनल कांफ्रेन्स और कांग्रेस दल के सम्बन्ध तनावपूर्ण बनते गये। मार्च 1977 के चुनावें में स्वतन्त्रता के बाद पहली बार शेख अब्दुल्ला तथा उनका दल नेशनल कांफ्रेन्स ने डाले गये मतों का 48% प्राप्त किया तथा मुख्यमन्त्री शेख अब्दुल्ला के नेतत्व में सरकार का गठन किया गया।

जून 1983 में कश्मीर विधानसभा चुनावों में सत्तारूढ़ नेशनल कांफ्रेन्स और कांग्रेस (ई) में जबरदस्त टक्कर हुई। नेशनल कांफ्रेन्स को 64 स्थान प्राप्त हुए और डॉ. फारूख अब्दुल्ला पुनः मुख्यमन्त्री पद पर आसीत हुए। उसके बाद नेशनल कांफ्रेन्स का स्वर केन्द्र विरोधी होता रहा और डॉ. फारूख 'राज्य स्वायत्तता' की मांग करने लगे।

अक्टूबर 1983 में श्रीनगर में प्रतिपक्षी नेताओं का सम्मेलन आयोजित करके उन्होंने राज्य स्वायत्तता और केन्द्र राज्य सम्बन्धों के पुनः निर्धारण का जोरदार समर्थन किया।

जुलाई 1984 में नेशनल कांफ्रेन्स से दल बदल के कारण डॉ. फारूख की सरकार अल्पमत में आ गयी और राज्यपाल जगमोहन ने उसे बर्खास्त कर दिया। केन्द्र ने फारूख अब्दुल्ला पर यह आरोप लगाया था कि वह पथकतावादी तत्वों से मिले हुए है और भारत विरोधी गतिविधियों में संलग्न है। जम्मू–कश्मीर की बागडोर जी. एम. शाह के हाथों में सौंप दी गयी जो नेशनल कांफ्रेन्स के प्रतिद्धन्द्धी गुट के नेता थे। दिसम्बर 1984 के लोकसभा चुनावों में नेशनल कांफ्रेन्स ने 4 प्रत्याशी खड़े किये और तीन स्थानों पर उसे विजय प्राप्त हुई। नवम्बर 1986 में कश्मीर में राष्ट्रपति शासन की जगह लोकप्रिय सरकार का गठन किया गया जिसका नेतत्व डॉ. फारूख अब्दुल्ला कर रहे थे। सरकार मे नेशनल कांफ्रेन्स और कांग्रेस (इ) दोनो ही दलों के व्यक्ति शामिल थे। मार्च 1987 के विधानसभा चुनाव में दो दलों के इस मोर्चे को भारी सफलता मिली और कश्मीर में पुनः एक मिली–जुली सरकार का गठन किया गया। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में नेशनल कांफ्रेन्स को 6 में से 3 सीटें प्राप्त हुई।

1990–96 की कालावधि में जम्मू–कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियां बड़े पैमाने पर शुरू हुई। जनवरी, 1990 में वहां राष्ट्रपति शासन लागू किया गया और जुलाई, 1990 से 8 अक्टूबर, 1996 तक वहां राष्ट्रपति शासन लागू रहा। सितम्बर 1996 में लगभग 9 वर्ष बाद वहां विधानसभा की 87 सीटों के लिए चुनाव सम्पन्न हुए। चुनाव परिणामों से स्पष्ट होता है। कि कश्मीर की जनता ने पुनः सत्ता डॉ. अब्दुल्ला की नेशनल कांफ्रेन्स को सौंपने का निश्चय किया। उनकी पार्टी को 57 सीटें प्राप्त हुई। 9 अक्टूबर, 1996 को डॉ. फारूख अब्दुल्ला ने मुख्यमन्त्री पद की शपथ ली।

12वी लोकसभा मेंनेशनल कांफ्रेन्स के 3 प्रत्याशी चुनाव जीतकर पहुचे जबकि 1999 में सम्पन्न 13वीं लोकसभा के चुनावों में 4 सीटों पर नेशनल कांफ्रेन्स के प्रत्याशी विजयी हुए। 1998 में नेशनल कांफ्रेन्स ने भाजपा गठबन्धन को समर्थन प्रदान किया और 1999 में राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन में शामिल होकर राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका के निर्वाह का प्रयत्न किया है।

मुस्लिम लीग
(Muslim League)

सन् 1906 में स्थापित यह दल देश के विभाजन के बाद भारत से लगभग समाप्त हो गया। 1970 के लगभग यह पहले केरल और फिर तमिलनाडु में सक्रिय हो गया। मार्च 1977 के चुनावें में इसने लोकसभा को दो सीटें (तमिलनाडु और केरल) जीती। केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर भारत के कुछ राज्यों में यह दल अपने प्रभावके लिए सचेष्ट है। मुस्लिम लीग का मुख्य उद्देश्य भारतीय मुसलमानों के हितों और मुस्लिम समुदायों के विशेष सामाजिक कानूनों आदि की रक्षा है जनवरी 1980 के चुनावों में मुस्लिम लीग ने लोकसभा की 3 सीटें जीती इनमें 2 केरल से तथा 1 तमिलनाडु से मिली। 1996 तथा 1998 के लोकसभा चुनावों में मुस्लिम लीग को क्रमशः 2–2 सीटें प्राप्त हुई। 1999 के लोकसभा चुनावों में मुस्लिम लीग के दो सदस्य लोकसभा में जीतकर पहुंचे। केरल में इसका अच्दा प्रभाव है। वस्तुतः इसने मालाबार जैसे केरल के कुछ भागों और तमिलनाडु के मुस्लिम बहुल इलाके में अपना स्थायी निर्वाचन आधार बना लिया है। 1981–82 में लीग के नेता मोहम्मद कोया केरल के मुख्यमन्त्री भी रह चुके है। केरल में मिली–जुली सरकारों के निर्माण में लीग कासहयोग एक प्रभावक तत्व है। इसने राष्ट्रीय स्तर पर अधिकतर कांग्रेस इ का समर्थन किया है। अपने कार्यक्रम और लक्ष्य से यह एक समुदाय अभिमुख दल है।

तेलगूदेशम्
(Telgu Desham)

तेलगूदेशम् आंध्र प्रदेश में नवनिर्मित राज्य स्तरीय दल है। जनवरी 1983 के आंध्र विधान सभा के चुनावों के 9–10 माह पूर्व इस दल की स्थापना की गयी। आध्र प्रदेश कांग्रेस का गढ़ रहा है और तेलगूदेशम् की स्थापना कांग्रेस शासन की प्रतिक्रिया रही है। आमतौर पर यह माना जाता है कि अकेले रामाराव ने तेलगूदेशम् पार्टी का गठन किया। मगर वास्तविकता यह है कि इस राजनीतिक दल की स्थापना में आंध्र प्रदेश के मुछ महतवपूर्ण व्यक्तियों का हाथ है जिनकी राजनीतिक आकांक्षाएं किसी से छिपी नही। इसी सिलसिले में 'ई–नाडु' तेलुगू समाचार पत्र के संस्थापक राजजीरान का नाम चर्चित हो गया है जो क्षेत्रीय समस्याओं के प्रकाशन से ही लोकप्रिय हो गया। राजजीराव और उनके साथियों ने कई वर्षो से पूरे आन्ध्र प्रदेश में क्षेत्रीय दल का गठन कर सकते थे क्योंकि वे समझ चुके थे कि कांग्रेस के शासन से प्रदेश के लोग क्षुब्ध है मगर कोई व्यावहारिक विकल्प न होने के कारण लोगों को बार–बार श्रीमती गांधी के करिश्मे की शरण लेनी पड़ती थी।

जनवरी 1983 के आंध्र विधानसभा के चुनावों में तेलगूदेशम् को भारी बहुमत प्राप्त हुआ। उसने 289 स्थानों पर चुनाव लड़ा और 294 सदस्यीय विधानसीाा में उसके 202 सदस्य निर्वाचित हुए। एन. डी. रामाराव मुख्यमन्त्री बने।

तेलगूदेशम् का चुनावी कार्यक्रम इस प्रकार था :

(1) उनकी पार्टी राज्य को स्वच्छ और स्थिर प्रशासन प्रदान करेगी।

(2) लोगों को चावल दो रूपये प्रति किलो की दर से उपलब्ध कराया जायेगा।

(3) अफसरों की जवाबदेही पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

(4) निरर्थक और अलाभकारी खर्चो की कटौती होगी।

(5) उद्योगों, कषि, सिंचाई बिजली और ग्रामीण विकास, आदि क्षेत्रों में सलाह–मशविरे के लिए आवश्यक मंच बनाये जाएगे, जिससे जन प्रतिनिधियों को शामिल कियाा जाएगा।

(6) उन सभी नियमों को खत्म कर दिया जायेगा जिन पर बेकार का खर्चा होता है।

(7) प्राथमिक पाठशालाओं के छात्रों को दोपहर का भोजन देने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम बनाया जायेगा।

(8) तेलगू प्रदेश की सरकारी भाषा होगी, सभी कामकाज इसी भाषा में किया जायेगा। मगर अन्य राज्यों और केन्द्र से हिन्दी ही सम्पर्क भाषा है। अंग्रेजी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है।

सतारूढ़ होने के बाद तेलगूदेशम् ने पड़ोसी राज्यों और प्रतिपक्षी दलों के साथ सहयोग की नीति अपनायी। रामाराव ने मन्दिरो की नगरी तिरूपति में एक महिला विश्वविधालय की स्थापना करवायी। वे छः हजार रूपये वार्षिक आय से कम वाले परिवारों को दो रूपये प्रति किलो की दर पर चावल दिलवाने लगे।

तेलगूदेशम् दल राज्य स्वायत्तता का प्रबल समर्थक है। विजयवाड़ा और श्रीनगर मे आयोजित सम्मेलनों में दल ने केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर पुनर्विचार कर मांग की।

दिसम्बर 1984 के लोकसभा चुनावों में तेलगूदेशम् ने 32 स्थानों पर चुनाव लड़ा और उसे 28 सीटें प्राप्त हुई। आठवीं लोकसभा में तेलगूदेशम् सबसे बड़े विपक्षी दल के रूप में उभरा। मार्च 1989 के राज्य विधानसभा चुनावों में तेलगूदेशम् ने विधानसभा की दो तिहाई से अधिक सीटे जीती। नवम्बर 1989 के राज्य विधानसभा चुनावों में तेलगूदेशम् को भारी पराजय का मुंह देखना पड़ा। लोकसभा को 42 सीटों में तेलगू देशम को सिर्फ 2 सीटें मिली। विधानसभा चुनाव मेंयह पार्टी हार गई तथा 5 वर्ष बाद आंध्र प्रदेश में पुनः कांग्रेस सरकार लौट आई। 1991 के लोकसभा चुनावों में इसे मात्र 13 सीटें मिली। मार्च 1992 में इस पार्टी का विभाजन हो गया। लोकसभा में इसके 5 सदस्यों ने पथक गुट बनाकर तेलगूदेशम् से नाता जोड़ लिया। दिसम्बर 1994 में हुए विधानसभा चुनावों में एन. डी. रामाराव के नेतत्व में तेलगूदेशम् अप्रत्याशित बहुमत से विजयी हुई। पार्टी को 294 में से 225 सीटैं प्राप्त हुई। अगस्त 1995 में तेलगूदेशम् का पुनः विभाजन हो गया। सत्तारूढ़ तेलगूदेशम् से अलग हुए गुट के नेता चन्द्रबाबू नायडू को एन. टी. रामाराव के स्थान पर पार्टी का अध्यक्ष चुन लिया गया। तेलगूदेशम् के विभाजन का मूल कारण रामाराव की दूसरी पत्नी लक्ष्मी पार्वती की राजनीतिक महत्वाकांक्षी थी। लक्ष्मी पार्वती की ओर से राजनीति में जो भूमिका

निभाई गई उससे विधायक और मंत्रीगण नाराज हो गये। तेलगू देशम् का विभाजन पार्टी के नेता रामाराव की कार्य शैली के खिलाफ पार्टी में आन्तरिक विद्रोह का भी परिणाम कहा जा सकता है।

1996 के लोकसभा चुनावों में तेलगूदेशम् को 16 सीटें प्राप्त हुई। मुख्यमंत्री चन्द्रबाबू नायडू के सक्रिय प्रयत्नों के केन्द्र में यूनाईटेड फ्रण्ट की सरकार बनी जिसमें तेलगूदेशम् एक सहभागी दल था। श्री चन्द्रबाबू नायडू यूनाईटेड फ्रन्ट की संचालन समिति के संयोजक थे तथा देवगौड़ा सरकार के त्यागपत्र के बाद प्रधानमन्त्री पद पर इन्द्रकुमार गुजराल के पक्ष में आम सहमति तैयार करने में उनकी प्रभावी भूमिका रही। फरवरी 1998 मे सम्पन्न 12वी लोकसभा के चुनावें में तेलगूदेशम् को यद्यपि 12 सीटें प्राप्त हुई। किन्तु केन्द्र मे सरकार बनाने की चाबी उसके नेता चन्द्रबाबू नायडू के हाथों में आ गई। 13 माह की वाजपेयी सरकार में उनका आचरण प्रशंसनीय रहा। 1999 के लोकसभा एवं विधानसभा चुनाव चन्द्रबाबू नायडू के लिए नई प्रौद्योगिकी से लैस प्रशासन पर जनमत संग्रह थे। आन्ध्र प्रदेश में तेलगूदेशम् ने भाजपा से समझौता करयह चुनाव लड़ा। 294 सदस्यीय राज्य विधानसभा के लिए सम्पन्न चुनावों में तेलगूदेशम् पार्टी की 179 सीटों पर विजय प्राप्त हुई। लोकसभा के लिए उसके 29 प्रत्याशी विजयी हुए। उसके प्रत्याशी जी. एन. बालयोगी लोकसभा के स्पीकर पद पर आसित है।

असम गण परिषद् – असम का प्रमुख क्षेत्रीय दल असम गण परिषद है। जिस तेजी से इसका उत्थान हुआ उतनी ही तेजी से इसके प्रभाव का ह्रास भी हुआ। असम गण परिषद का उदय असम आन्दोलन (1979–1985) की कोख से हुआ। 1979–85 मे असमिया मूल के लोगों में यह आशंका घर कर चुकी थी कि वे अल्पसंख्यक बन जायेंगे क्योंकि भारत की सीमा पार लाखों लोग आकर बसते जा रहे है। इसलिए 1979 में वहां एक विशाल आन्दोलन की शुरूआत हुई। इस आन्दोलन का नेतत्व शुरू से आखिर तक विद्याार्थियों ने किया। विद्यार्थी नेताओं ने अन्त तक इस आग्रह को कायम रखा कि वे राजनीतिक दल से कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे। अगस्त 1985 में असम समझौता हुआ जिसके तहत् व्यवस्थित रूप से चुनाव हुए। उसम आन्दोलनकारियों ने चुनाव लड़ने के लिए असम गण परिषद के नाम से एक क्षेत्रीय दल का गठन किया जिसने विधानसभा में पूर्ण बहुमत हासिल किया। प्रफुल्ल कुमार महन्त, जो विद्यार्थी आन्दोलन का नेतत्व कर रहे थे, 24 दिसम्बर 1985 को असम के मुख्यमन्त्री बने। बाद में असम गण परिषद राष्ट्रीय मोर्चे का घटक बन गया और विश्वनाथ प्रतापसिंह सरकार मे उसके प्रतिनिधि शामिल हुए।

असम गण परिषद की सरकार वोडो आन्दोलन से निबटने में असमर्थ रही। उल्फा के नेतत्व में चलाने जा रहे अलगाववादी आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया था अतः चन्द्रशेखर सरकार ने असम सरकार को बर्खास्त कर राष्पति शासनलागू कर दिया। जून 1991 के चुनावों में असम गण परिषद् को 121 में से 19 सीटें ही प्राप्त हुई और राज्य में कांग्रेस इ सत्तारूढ़ हो गई।

असम गण परिषद के युवा नेता अपने पांच वर्ष के शासनकाल में जनता का विश्वास खोने लगे थे। वे भ्रष्टाचार के दलदल में फंसते गये। वे विदेशियों की समस्या को भूल गये, जिसके लिए छः वर्षो तक आन्दोलन किया था।असम गण परिषद विभाजित हो गई और उसका करिश्मा लुप्त होने लगा।

1995 में असम गण परिषद में पुनः एकता स्थापित हो गई और परिषद ने विधानसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर लिया। 1996 के लोकसभा चुनावों में उसे 5 सीटें प्राप्त हुई ओर केन्द्र मे युनाइटेड फ्रण्ट की मिलीजुली सरकार मे असम गण परिषद के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वी लोकसभा तथा 1999 मं सम्पन्न 13वी लोकसभा के चुनावों में असम गण परिषद् को एक भी सीट हासिल नहीं हुई।

मई 2001 में सम्पन्न असम विधानसभा चुनावों मे असम गण परिषद को 126 सदस्यीय विधानसभा में केवल 20 सीटों पर विजय प्राप्त हुई। मुख्यमन्त्री प्रफुल्ल कुमार स्वयं गुवाहाटी के दिसपुर निर्वाचन

बहुजन समाज पार्टी
(Bahujan Samaj Party)

बहुजन समाज पार्टी की स्थापना 14 अप्रैल, 1984 को पंजाब में जन्में कांशीराम ने डॉ. भीम राव अम्बेडकर के जन्म दिन के अवसर पर उत्तर प्रदेश में की। इस पार्टी की स्थापना में दो दबाव समूहों यमसैफ (BAMCEF-Backward and Minority Communities employees Federation) और डी. एम–4 (DS-4) ने मिलकर की थी। बहुजन समाज पार्टी जिसे बसपा कहा जाता है का पहला नाम डी. एस.–4 (DS-4) था, जिसका अर्थ है दलित, शोषित समाज, संघर्ष समिति (Dalit, Shoshit Samaj] Sangharsh Samiti) यह पार्टी साहू महाराज, महात्मा फूले, महात्मा रामस्वामी नयनार, डॉ. भीम राव अम्बेडकर जैसे समाज

सुधारकों के विचारों में आस्थारखते है। पार्टी के संस्थापक और वर्तमान अघ्यक्ष कांशीराम के अनुसार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन–जातियों शैक्षणिक ताकि समाजिक रूप से पिछडें वर्ग अल्प संख्यक कारीगर और वे भी सारे दलित जिनका पूंजीपतियों ने शोषण किया है, बहुजन समाज है। बहुजन समाज पार्टी की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक नीतियों एवे कार्यक्रमों के प्रति सहमति रखने वाला कोई भी व्यक्ति पार्टी का सदस्य बन सकता है। यह पार्टी सामाजिक परिवर्त न की समर्थक है इस पार्टी पर जाति विशेष के आधार पर संगठित होने का आक्षेप लगाया जाता है लेकिन यह पार्टी सभी कमजोर वर्गो के प्रतिनिधित्व का दावा करती है। प्रारंभ में बहुजन समाज पार्टी का प्रभाव केवल पंजाब तक ही सीमित था लेकिन धीरे–धीरे इसका प्रभाव देश के अन्य राज्यों विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हरियाणा आदि में फैल गया। 1994 से यह दल भारतीय राजनीति को बहुत अधिक प्रभावित कर रहा है।

बहुजन समाज पार्टी को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता
(Recognition of Bahujan Samaj Party as National Political party)

चुनाव आयेग ने 28 नवम्बर 1997 को बहुजन समाज पार्टी को राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान की। चुनाव आयोग के निणर्य के अनुसार बहुजन समाज पार्टी के रूप में असम, सिक्किम और पांडिचेरी को छोड़कर सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में अपने चुनाव चिन्ह 'हाथी' का प्रयोग कर सकेगी।

पार्टी का चुनाव निशान और झण्डा
(Election Symbol and Flag of the Party)

बहुजन समाज पार्टी को चुनाव आयेग ने हाथी का चुनाव चिन्ह प्रदान किया है। लेकिन, पार्टी इस चुनाव चिन्ह का प्रयोग असम, सिक्किम और पांडिचेरी में नही कर सकेंगी। पार्टी का झण्डा नीले रंग का है जिस पर हाथी का निशान है।

पार्टी के पदाधिकारी
(Office Bearers of the Party)

बहुजन समाज पार्टी के वर्तमान अध्यक्ष कांशी राम है और सुश्री मायावती इसकी उपाध्यक्षा है। अरविन्द नेताम तथा तीन अन्य पार्टी के महासचिव है।

बहुजन समाज पार्टी की नीतियां और कार्यक्रम
(Policies and Progammes of Bahujan Samaj Party)

बहुजन समाज पार्टी का उद्देश्य बहुजन समाज को समानता व न्याय की अधिकार दिलाना है। पार्टी संविधान निर्माता डॉ. भीम राव अम्बेडकर के द्वारा दलितों के उद्धार के लिए चलाए गए संघर्ष को आगे बढ़ाने के विश्वास करती है। पार्टी दलितों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन जातियों, तथा पिछड़े वर्गो के सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक विकास के लिए अपनी वचनबद्धता रखती है। बहुजनपार्टी की नीतियों और कार्यक्रमों का वर्णन इस प्रकार है।

(1) **सामाजिक कार्यक्रम (Social Programme)**–बहुजन समाज जार्टी महात्मा फूले, महात्मा रामास्वामी नयनार, डॉ. भीम राव अम्बेदकर आदि समाज सुधारकों की विचारधारा में विश्वास रखती है। वसपा दलित वर्गो, अनुसूचित जातियों तथा पिछडें वर्गो की सामाजिक न्याय दिलाने के लिए वचनबद्ध है। इस पार्टी का सामाजिक कार्यक्रम निम्नलिखित है।

1. छुआछुत को समाप्त करना और छुआछुत का पालन करने वालों के विरूद्ध कठोर कानूनी कार्यवाही करना।
2. धर्म, जाति, जन्म, नस्ल आदि के आधार पर किए जा रहे भेदभाव को समाप्त करना।
3. दलितों के सामाजिक तथा आर्थिक शोषण को समाप्त करना।
4. दलितों के शारीरिक और मानसिक विकास के लिए विशेष योजनाओं को लागू करना।
5. दलित वर्गो तथा पिछड़े वर्गो की स्त्रियों की स्थिति में सुधार करना तथा इसके लिए विशेष योजनाओं का निर्माण करना और उन्हें लागू करना।
6. मनुवादी तथा ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था को समाप्त करना।
7. डॉ. भीम राव अम्बेडकर के नाम पर शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना।

8. दलित वर्गो के विद्यार्थियों के लिए तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा का विशेष रूप से प्रबन्ध करना।
9. दलितों को प्रशासन में उचित प्रतिनिधित्व देना।
10. अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों के विकास के लिए विभिन्न आयोग गठित करना।

2. **राजनीतिक कार्यक्रम (Political Programme)**–बहुजन समाज पार्टी अवसर वादी राजनीति में विश्वास करती है। इसलिए इस पार्टी का राजनीतिक कार्यक्रम स्पष्ट व निश्चित नहीं है। पार्टी का राजनतिक कार्यक्रम अग्रलिखित प्रकार से है :

1. 12वी और 13वी लोकसभाके अवसर पर अनेक स्थानों पर जन सभाओं को सम्बोधित करते हुए पार्टी अध्यक्ष कोंशी राम ने कहा था, "हम अवसरवादीराजनीति करते है। हमारा लक्ष्य देश में चलती फिरती मजबूत सरकार देखना है ताकि जल्दी चुनाव हों। अब सत्ता उच्च जाति के लोगों के हाथों से निकल कर हमारे दलित हाथों में आनी चाहिए।" सितम्बर–अक्टूबर 1999 में 13वी लोकसभा के चुनाव प्रचार के दौरान भी कांशी राम ने कहा था कि, "हम मजबूत नही मजदूर सरकार देखना चाहते है।" कांशी राम के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वसपा का राजनीतिक लक्ष्य केवल सत्ता हथियाना है।
2. बहुजन समाज पार्टी वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में विश्वास रखती है और इसमें लोकतान्त्रिक साधनों द्वारा परिवर्तन लाने के पक्ष में है।
3. पार्टी मजबूत केन्द्र के पक्ष में हैं
4. लोकतन्त्र को मजबूत बनाने के लिए चुनाव प्रणाली में सुधार किया जाए।
5. प्रशासनिक तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए कड़ी कानूनी कार्यवाही करने तथा जनमत को जागत करने पर जोर दिया जाएगा।
6. अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को संवैधानिक तरीकों से हल किया जाना चाहिए।

(3) **आर्थिक कार्यक्रम (Economic programme) :** बसपा का आर्थिक कार्यक्रम अथवा नीतियां इस प्रकार है :

1. उत्पादन के साधनों पर थोड़े से व्यक्तियों के स्थान पर बहुजन समाज का नियन्त्रण स्थापित करना।
2. दलितों तथा गरीबों को जमीदारों, साहूकारों तथा रजवाड़ों के शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए विशेष प्रयास करना।
3. ऐसी अर्थवव्यवस्था की स्थापना करना जिसके अन्तर्गत आर्थिक शोषण न किया जा सके।
4. भूमिहीन किसानों और छोटे किसानों की स्थिति में सुधार करने के लिए विशेष कार्यक्रम बनाना तथा उसे लागू करना।
5. बेरोजगारी को दूर करने के लिए तथा रोजगार के अधिक अवसर पैदा करने के लिए उद्योगों की स्थापना करना।
6. बाल श्रम को समाप्त करना।
7. सार्वजनिक क्षेत्र को सुदढ़ व शक्तिशाली बनाना।
8. लघु तथा कुटीर उद्योगों का विस्तार करना।
9. देश के भौतिक साधनों तथा प्राकतिक संसाधनों का प्रयोग इस ढ़ंग से करना ताकि समस्त समाज की भलाई हो।
10. देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए योजनाओं को अधिक अच्छे ढ़ंग से लागू करना।

विदेश नीति (Foreign Policy) : बहुजन समाज पार्टी गुटनिरपेक्ष नीति का समर्थन करती है और सभा पड़ोसी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के पक्ष में है।

चुनाव सफलताएं (Election Successes) : बहुजन समाज पार्टी ने दलितों के दबाव समूह के रूप में भारतीय राजनीति में पर्दापण किया था। इस पार्टी का तीव्रता से विकास हुआ और उसका प्रभाव यह है कि यह पार्टी आज राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुकी है। इस पार्टी की पकड़ समाज के दलित वर्ग पर है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के अधिकांश मतदाता जो पहले कांग्रेस पार्टी के समर्थक थे अब इस

पार्टी के समर्थक बन गए हैं। इसलिए इस पार्टी के विकास से कांग्रेस को धक्का लगा है। क्योंकि कांग्रेस के एक बड़े वोट बैंक पर बसपा का कब्जा हो गया है।

बहुजन समाज पार्टी ने 1985 में पहली बार पंजाब विधान सभा की सभी सीटों के लिए चुनाव लड़ा। परन्तु इसे कोई भी सन्तुष्ट नहीं मिली। 1989 के लोकसभा चुनाव में पार्टी ने पंजाब में 1 सीट प्राप्त की और 1992 में पंजाब विधान सभा के चुनाव में 12 सीटें प्राप्त की । 1989 में बहुजन समाज पार्टी ने समाजवादी पार्टी के साथ मिलकर समाजवादी पार्टी के नेता मुलायम सिंह यादव के नेतत्व में सरकार बनाई 3 जून, 1995 को बहुजन समाज पार्टी की नेता कु. मायावाती भारतीय जनता पार्टी के समर्थन से उत्तर–प्रदेश की मुख्यमन्त्री बनी। मायावती के नेतत्व वाली सरकार 16 अक्तूबर, 1995 तक चली।

मई–जून, 1996 के 10वीं लोकसभा के चुनाव में बहुजन समाज पार्टी को 3 स्थान प्राप्त हुए। बहुजन समाज पार्टी ने 1996 का दसवीं लोकसभा का चुनाव शिरोमणि अकाली दल के साथ मिलकर लड़ा था।

इन चुनावों में बहुजन समाज पार्टी को 12 सीटें प्राप्त हुई। मार्च, 1997 में इस पार्टी ने भारतीय जनता पार्टी के साथ मिलकर कु. मायावती के नेतत्व में उत्तर प्रदेश में तीसरी बार सरकार बनाई। इस पार्टी ने भारतीय जनता पार्टी के साथ समझौता किया था कि दोनों पार्टियों में से प्रत्येक का नेता छः माह की अवधि के लिए मुख्यमन्त्री बनेगा। समझौते के अनुसार 20 सितम्बर, 1997 को मुख्यमन्त्री मायावती ने अपने पद से त्याग–पत्र दे दिया और उसके स्थान पर भारतीय जनता पार्टी के नेता कल्याण सिंह उत्तर–प्रदेश के मुख्य मन्त्री बने। यद्यपि कल्याण सिंह की सरकार में बहुजन समाज पार्टी के कई सदस्यों को सम्मिलित किया गया था, लेकिन फिर भी बहुजन समाज पार्टी ने कल्याण सिंह की सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया। इसके परिणामस्वरूप बहुजन समाज पार्टी में फूट पड़ गई और इसके 12 विधायकों ने कल्याण सिंह सरकार को समर्थन दिया।

बहुजन समाज पार्टी को 1997 के पंजाब विधान सभा चुनावों में कोई खास सफलता नहीं मिल सकी। पार्टी को केवल 1 सीट ही मिल सकी। फरवरी–मार्च, 1998 में 12वीं लोक सभा के चुनावों में बहुजन समाज पार्टी ने पंजाब में कांग्रेस के साथ हरियाणा में हरियाणा लोकदल (राष्ट्रीय) के साथ मिल कर चुनाव लड़ा। इन चुनावों में पार्टी को केवल 5 सीटें ही मिल पाईं और यहां तक की पार्टी अध्यक्ष कांशी राम स्वयं भी चुनाव हार गए। 1999 में हुए 13वीं लोकसभा के चुनावों में बसपा को 14 सीटें प्राप्त हुई। 13वीं लोकसभा के साथ हुए पांच राज्य–कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, अरूणाचल प्रदेश और सिक्किम विधानसभाओं में भी बसपा को कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं हुई। इन चुनावों में यद्यपि इस पार्टी को लोक सभाा में अधिक सीटें नहीं मिल सकीं, लेकिन पंजाब, हरियाणा, उत्तर–प्रदेश, महाराष्ट्र मध्य प्रदेश, बिहार आदि राज्यों में इसको प्राप्त वोटों का प्रतिशत काफी ज्यादा था। इस पार्टी को अवसरवादिता, कांशीराम की हठधर्मिता तथा पार्टी का अस्थिरता का नारा पार्टी को कम सीटें दिलाने के लिए उत्तरदायी है।

यद्यपि बहुजन समाज पार्टी की सफलताएं कोई ज्यादा उल्लेखनीय नहीं हैं फिर भी इस पार्टी का भारतीय राजनीति में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस पार्टी का महत्व इस बात में है कि इसने वर्षों से दलित, शोषित, पीड़ित तथा अपमान सहने वाले उस समाज में एक नई जागति पैदा की है जिसके लिए गांधी जी तथा अम्बेडकर आदि समाज सुधारकों ने पूरा जीवन लगा दिया।

अन्य राज्यों में क्षेत्रीय और राज्य स्तर के दलों के परिदश्य
(The Phenomenon of Regional or State Parties in Other States)

क्षेत्रीय दलों में विशाल हरियाणा राज्य में एक समय अपना अच्छा प्रभाव रखती थी और जून 1977 के हरयिाणा विधानसभा चुनावों में इसने 4 स्थान प्राप्त किये। बंसीलाल के नेतत्व में बनी हरियाण विकास पार्टी हरियाणा का एक क्षेत्रीय दल है। 11वीं लोकसभा चुनाव तथा हरियाणा विधानसभा चुनाव (1996) में इस पार्टी ने भाजपा के साथ गठबन्धन स्थापित किया और इस गठबन्धन से दोनों दलों को लाभ हुआ। महाराष्ट्रवादी गोमांतक दल का गोवा में प्रभाव है वहां यह दल सत्ता में भी रहा है। मार्च 1977, में इसने लोकसभा में एक सीट जीती। रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया का प्रभाव महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश और पंजाब में है। इसका एकमात्र ध्येय अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा करना है। फरवरी 1998 में सम्पन्न 12वीं लोकसभा के चुनावों में इस दल को 4 स्थान प्राप्त हुए।

केरल राज्य अन्य राज्यों की तुलना में बहुत छोटा है पर वहां बहुत–सी क्षेत्रीय पार्टियां हैं। कांग्रेस नाम से ही कम से कम चार पार्टियां हैं – कांग्रेस (आई), कांग्रेस (एस), केरल कांग्रेस (मणिगुट), और केरल कांग्रेस (जीजेफ गुट)। कम्युनिस्ट

पार्टी के नाम से दो पार्टियां है। इसी प्रकार मुस्लिम लीम के नाम पर दो दल हैं। जाति और सम्प्रदाय के आधार पर जितने दल केरल में हैं उतने किसी अन्य राज्य में नहीं। कर्नाटक में स्वर्गीय देवराज अर्स ने कांग्रेस गतिविधियों से निराश होकर 'क्रान्तिरंगा' की स्थापना की। जनवरी 1983 के कर्नाटक विधान सभायी चुनावों में जनता–क्रान्तिरंगा गठबन्धन को 224 सीटों में से 95 स्थान मिले।

मेघालय की तीन प्रमुख क्षेत्रीय पार्टियां हैं – आल पार्टी हिल लीडर्स कांफ्रेन्स, हिल स्टेट डेमोक्रेटिक पार्टी तथा हिल्स पिपुल यूनियन मेघालय की तीनों क्षेत्रीय पार्टियां स्थानीय स्वायत्तता की मांग तो अवश्य करती हैं, पर वे देश की एकता व अखण्डता का विरोध नहीं करती। 2 मार्च 1983 को इन दोनों पार्टियों ने मिलकर लिंगदोह के नेतत्व में एक मिली–जुली सरकार बनायी जो सिर्फ एक महीना चल पायी। इस समय मणिपुर में कई प्रादेशिक दल विद्यमान हैं, जैसे–मणिपुर हिल यूनियन (M.H.U.) कूकी नेशनल एसेम्बली (Kuki National Assemble) मणिपुर जनमुक्ति सेना पूरी तरह से अतंकवादियों के नियन्त्रण में है और वह देश की एकता के लिए एक बड़ा खतरा है। नागालैण्ड में इस समय कई प्रादेशिक दल सक्रिय हैं, जिस नागा नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी (Naga National Democractic Party), यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रण्ट (United Democractic Front) तथा नागा नेशनल काउन्सिल (Naga National Council), त्रिपुरा में एक प्रमुख प्रादेशिक दल 'त्रिपुरा उपजाति युवा समिति' है। कांग्रेस (आई) ने 1983 के विधानसभाई चुनावों के लिए इस पार्टी के साथ गठबन्धन किया था। मिजोरम में भी कई प्रादेशिक दल विद्यमान हैं, जिनमें पिपुल्स कांफ्रेन्स (People's Conference) तथा मिजो यूनियन पार्टी (Mizo Union Party) उल्लेखनीय हैं। ये दोनों दल पूर्णतया राष्ट्रवादी हैं। यहां पिछले 15 वर्षों से 'मिजो नेशनल फ्रण्टः भी सक्रिय है। लाल डेंगा के नेतत्व में इसने हिंसा तथा तोड़–फोड़ की नीति अपनायी थी। परन्तु, जून 1986 में एक समझौता हुआ जिसके तहत मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा दिये जाने का आश्वासन दिया गया। फरवरी 1987 में मिजोरम भारत का 23वां राज्य बना और विधानसभा चुनावों में मिजो नेशनल फ्रण्ट को पूर्ण बहुमत मिला और उसके नेता लाल डेंगा ने राज्य की बागडोर संभाली।

निष्कर्षः कांग्रेस के कमजोर होने से क्षेत्रीय एवं राज्य स्तरीय दलों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। शिव सेना, तेलगूदेशम्, अन्ना द्रमुक, अकालीदल, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, लोकशक्ति, तणमूल कांग्रेस, बीजू जनता दल जैसे दल आज भी अपने–अपने प्रभाव वाले राज्यों में राज्य राजनीति की प्रमुख धुरी हैं।

अध्याय-15
भारत में चुनाव सुधार
(Electoral Reforms in India)

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है और संविधान के लागू होने से लेकर देश में तेरह आम चुनाव व अनेक विधान सभा चुनाव हो चुके हैं, जिनके द्वारा मतदाताओं ने कई बार सत्ता परिवर्तन भी किया है। परन्तु फिर भी यहां की चुनाव प्रणाली में बहुत सी खामियां है, जिनसे चुनावों के प्रति लोगों की आस्था कम होती जा रही है। यदि इन खामियों को दूर नहीं किया गया तो आने वाले समय में चुनावों से जनता का विश्वास पूर्ण रूप से उठ जाएगा। चुनावों में काले धन, बाहुबल का प्रयोग, हिंसा, मतदान केन्द्रों पर कब्जा, सरकारी मशीनरी का दुरूपयोग, फर्जी मतदान, चुनाव नियमों का उल्लंघन, चुनाव अधिकारियों द्वारा पक्षपात तथा निर्वाचन अधिकारियों पर राजनीतिक दबाव आदि ये ऐसी प्रवत्तियां बढ़ती जा रही है। एल० एम० सिंघवी के अनुसार, ''हमारे संविधान ने आधुनिक उदारवादी दर्शन के सार, तत्व सार्वभौम व्यस्क मताधिकार को अपनाया है, परन्तु इसके पूरे अर्थ का अभी उद्घाटन होना है, अभी इसे न्याय, स्वतंत्रता तथा क्षमता के उदात्त लक्ष्यों की सिद्धि का शासन बनाना शेष है। यदि हमें इस महत् तथा भव्य आदर्श को यथार्थ के धरातल पर लाना है, तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम अपने निर्वाचन–प्रक्रमों के वास्तविक स्वरूप तथा त्रुटियों एवं विकतियों का परिचय प्राप्त करें और उनकी शुद्धता की रक्षा के लिए पथक् प्रयास करें।'' इन त्रुटियों को दूर करके भारत की लोकतांत्रिय व्यवस्था को और भी अधिक मजबूत किया जा सकता है।

चुनावों से सम्बन्धित इन समस्याओं को देखते हुए इनके विवेचन तथा सुधार के लिए समय–समय पर अनेक समितियों को गठित किया गया है। जिनमें से सर्वप्रथम तारकुण्डे समिति ने चुनाव सुधारों की तरफ घ्यान दिया। इसके बाद 1990 में श्री दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में गठित समिति ने चुनाव सुधारों पर अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत किए। मुख्य निर्वाचन आयुक्त (सेवा शर्ते) अधिनियम 1991 तथा लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम 1996 से इस समिति की अनेक सिफारिशों लागू हो गई है। इसलिए चुनाव सुधारों से सम्बन्धित समितियों तथा अधिनियमों का उल्लेख निम्नलिखित हैः–

चुनाव सुधार से सम्बन्धित अध्ययन के लिए सिटिजन्स फॉर डेमोक्रेसी (Citizens for Democracy) नामक संगठन की तरफ से सन् 1974 में श्री जयप्रकाश नारायण ने समिति का गठन किया, जिसके अध्यक्ष महाराष्ट्र उच्च न्यायलय के भूतपूर्व न्यायधीश श्री वी०एम० तारकुंडे थे। इस समिति का मुख्य लक्ष्य चुनावों से सम्बन्धित कमियों को दूर करना थ, उनकी मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैः–

1. मताधिकार 21 वर्ष के बजाय 18 वर्ष की आयु में ही दे दिया जाए।
2. आय के स्त्रोतों का उल्लेख तथा आय–व्यय का पूरा हिसाब लिखना समस्त राजनीतिक दलों के लिए अनिवार्य कर दियाजाये और निर्वाचन आयोग इसकी जांच कराये। उम्मीदवारों के चुनाव–खर्च के हिसाब की जांच करायी जाये। राजनीतिक दलों द्वारा उम्मीदवारों पर किया जाने वाला खर्च उम्मीदवारों के हिसाब में जोड़ा जाये तथा चुनाव खर्च की वर्तमान सीमा को दुगुना कर दिया जाये।
3. प्रत्येक उम्मीदवार को सरकार की ओर से छपे हुए मतदान–कार्ड निःशुल्क दिये जायें तथा प्रत्येक मतदाता के नाम का कार्ड बिना टिकट लगाये डाक से भेजने की छूट दी जाये। इसके अलावा प्रत्येक उम्मीदवार को छूट हो कि वह अपने निर्वाचन–क्षेत्र के प्रत्येक मतदाता के नाम 5० ग्राम तक प्रचार सामग्री डाक से निःशुल्क भेज सके। निर्वाचन–क्षेत्र के मतदाताओं की सूचियों की 12 प्रतियां प्रत्येक उम्मीदवार को सरकार की ओर से निःशुल्क दी जायें।

4. जो लोग राजनीतिक दलों को वर्ष में एक हजार रुपया दान दें, उन्हें इस राशि पर आय–कर की छूट दी जाये तथा कम्पनियों पर यह प्रतिबन्ध जारी रखा जाये कि वे राजनीतिक दलों को दान नहीं दे सकती। कम्पनियों द्वारा विज्ञापनों के रूप में राजनीतिक दलों को दी जाने वाली सहायता पर भी पाबन्दी लगायी जाये।

5. लोकसभा अथवा विधानसभा के विघटन और नये चुनावों की घोषणा के बाद से सरकार कामचलाऊ सरकार की तरह काम करें वह न नयी नीतियों की घोषणा करे, न उन्हें लागू करे, न नयी परियोजनाएं चालू करे, न उनका वादा करे, न नये ऋण अथवा भत्ते दे और न वेतन वद्धि की घोषणा करे तथा ऐसे सरकारी समारोह आयोजित न करे, जिनमें मन्त्री, राज्यमंत्री, उपमंत्री अथवा संसदीय सचिव भाग लें।

6. चुनाव के दौरान मन्त्रिमण्डल के सदस्य सरकारी खर्च पर यात्रा न करें। सरकारी सवारी और विमान प्रयोग मे न लायें, उनकी सभाओं के लिए सरकारी मंच न बनायें और उनके दौरों के समय सरकारी कर्मचारी तैनात न किये जायें।

7. जमानत की रकम लोकसभा के उम्मीदवारों के लिए 500 से बढ़ाकर 2,000 रुपये और विधानसभाओं के उम्मीदवारों के लिए 200 से बढ़ाकर 1,000 रुपये कर दी जाये।

8. आकाशवाणी के सम्बन्ध में 'चन्दा समिति' की रिपोर्ट पर अमल किया जाये तथा आकशवाणी को निगम का रूप दिया जाये। जिस तरह ब्रिटेन में बी.बी.सी. पर राजनीतिक दलों को पिछले चुनावों में प्राप्त मतों के अनुपात में प्रचार का समय दिया जाता है, उसी प्रकार भारत में भी उन्हें रेडियो और टेलिविजन पर समय दिया जाये।

9. राज्यों में निर्वाचन आयोग स्थापित किये जोयें, केन्द्रीय निर्वाचन आयेाग में एक के बजाय तीन सदस्य हों तथा उनकी नियुक्ति राष्ट्रपति केवल प्रधानमंत्री के परामर्श पर नहीं, अपितु तीन व्यक्तियों की एक समिति की सिफारिश पर करें। इस समिति में प्रधानमंत्री, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा लोकसभा में विरोध पक्ष का नेता अथवा विरोध पक्ष का प्रतिनिधि हो।

1०. निर्वाचन आयेाग की सहायता के लिए केन्द्र और राज्यों में निर्वाचन परिषदें बनायी जायें, जो उसे सलाह दें। इन परिषदों में विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि हों। इनके अलावा 'मतदाता परिषदें' भी बनायी जायें, जो निर्वाचन के समय होने वाली बुराइयों पर निगाह रखें तथा निर्वाचकों की निष्पक्षता की रक्षा करें।

22 अप्रैल, 1975 को प्रधानमंत्री के साथ चर्चा के समय आठ राजनीतिक दलों की ओर से सरकार को एक संयुक्त स्मरण पत्र दिया गया, जिसमें निर्वाचन से सम्बन्धित निम्नलिखित बातो पर जोर दिया गया थाः–

1. विशेषज्ञों की एक ऐसी समिति नियुक्त की जाये, जो वर्तमान निर्वाचन–प्रणाली का ऐसा विकल्प तलाशे जिससे जनता की इच्छा चुनाव–परिणामों में अधिक प्रामाणिकता के साथ 'प्रतिबिम्बित' हो सके।

2. मताधिकार प्राप्ति की आयु 21 के बजाय 18 वर्ष मानी जाये।

3. आम निर्वाचनों के बीच उठने वाले सार्वजनिक प्रश्नों पर संविधान में लोकनिर्णय (रेफरेण्डम) की व्यवस्था की जाये।

4. प्रतिनिधियों के प्रत्यावर्तन का सिद्धान्त अच्छा है, लेकिन एक सर्वदलीय समिति बनाकर उसे इस बारे में सिफारिश करने का काम सौंपा जाये।

5. निर्वाचन आयोग बहु–सदस्यीय हो तथा उसकी नियुक्ति तीन सदस्यों की चयन समिति की सिफारिश के आधार पर करे, इस समिति में प्रधानमंत्री, भारत के मुख्य न्यायाधीश और विरोधी दल का नेता या प्रतिनिधि हों।

6. मुख्य निर्वाचन आयुक्त राज्यों अथवा क्षेत्रों के लिए स्थायी निर्वाचन आयोग नियुक्त करे।

7. चुनावों में गड़बड़ की शिकायतों की जांच के लिए केंद्र और राज्यों में जनता के प्रतिनिधियों और प्रमुख निर्दलीय व्यक्तियों की निर्वाचन परिषदें कायम की जायें और उन्हें वैधानिक स्तर दिया जाये।

8. आकाशवाणी और टेलीविजन को निगम का रूप दिया जाये और उन पर सभी राजनीतिक दलों को प्रचार के लिए बराबर समय दिया जाये।

9. देश–भर में एक दिन में ही चुनाव कराया जाये, हर मतदाता–केंन्द्र पर केवल एक मतपेटी हो और मतगणना केन्द्र–वार हो।

61वें संविधान संशोधन, 1988 द्वारा संविधान के अनुच्छेद 326 में संशोधन कर मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई है।

1990 में श्री दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में चुनाव सुधारों के सम्बन्ध में एक समिति का गठन किया गया और इस समिति अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत किए, जिनमें से प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैः–

1. निर्वाचन आयोग तीन सदस्यीय निकाय होना चाहिए। जो 1 अक्टूबर, 1993 को तीन सदस्यीय निकाय बना दिया गया।
2. दल–बदल कानून के अन्तर्गत अयोग्यता, केवल स्वेच्छा से त्यागपत्र देने और विश्वास प्रस्ताव, धन विधेयक अथवा राष्ट्रपति के धन्यवाद प्रस्ताव के मामलों में दल–सचेतक के विरुद्ध मतदान करने या अनुपस्थिति रहने को ही माना जाना चाहिए। राष्ट्रपति या राज्यपाल को निर्वाचन आयोग की राय जानने के पश्चात् ही अयोग्यता के मामले में निर्णय लेना चाहिए। इस बारे में अभी तक कोई अन्तिम निर्णय नहीं लिया गया हे।
3. बहुउद्देशीय फोटो पहचान पत्र प्रदान करना। इस योजना को सरकार ने स्वीकार कर लिया और 28 अगस्त, 1993 को मुख्य निर्वाचन आयुक्त टी०एन० शेषन ने यह आदेश जारी किया कि 1 जनवरी, 1995 के बाद होने वाले प्रत्येक चुनाव में हर नागरिक के पास अपना फोटो पहचान पत्र का होना जरूरी होगा।
4. किसी भी व्यक्ति को दो से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों पर चुनाव लड़ने की अनुमति न देना। इस सिफारिश को लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1996 के अन्तर्गत लागू किया गया है।
5. मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों का कार्यकाल 5 वर्ष या 65 वर्ष की आयु तक जो भी बाद में हो, होना चाहिए और किसी भी हाल में 65 वर्ष की आयु या 10 वर्ष से अधिक समयावधि तक उन्हें पद पर नहीं बने रहना चाहिए। इस सम्बन्ध में मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्तों की (सेवा–शर्तें) संशोधन अधिनियम, 1994 में इनका कार्यकाल 6 वर्ष या 65 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, निर्धारित कर दिया गया है।
6. कम गंभीर उम्मीदवारों को हतोत्साहित करना। स्वतंत्र उम्मीदवारें की जमा राशि को बढ़ाया जाये। इस सम्बन्ध में लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1996 के तहत प्रावधान किया गया है।
7. मतदान केन्द्रों पर कब्जा करने तथा मतदाताओं को प्रभावित करने और डराने–धमकाने से छुटकारा पाने के लिए विधायी उपाय करने चाहिए। इस सम्बन्ध में भी लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1996 के तहत प्रावधान किया गया है।
8. मतदान के दिन मोटर गाड़ियां चलाना, आग्नेय शस्त्र लेकर चलना, शराब की बिक्री और वितरण चुनावी अपराध होना चाहिए। यह प्रावधान भी लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1996 में किया गया है।
9. मतदाता सूची को तैयार करने, अद्यतन करने, आदि सम्बन्धी सरकारी ड्यूटी का उल्लंघन करने पर दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए।
10. आयोग के पर्यवेक्षकों को कानूनी हैसियत प्रदान करना। और उन्हें कुछ हालातों में मतगणना रोकने के अधिकार दिए जाने चाहिए।
11. मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के सभी उम्मीदवारों को मत–पत्र में दूसरे सभी उम्मीदवारें से ऊपर रखना चाहिए।
12. स्थान रिक्त होने की 6 महीने की अवधि के अन्दर उप–चुनाव होना चाहिए।
13. चुनाव सभाओं में व्यवधान उत्पन्न करने पर सजा को बढ़ाया जाना चाहिए।
14. किसी भी मतदान केन्द्र सपर मतदाताओं को निशुल्क ले जाने के लिए वाहनों को अवैध रूप से किराए लेने पर दण्ड को बढ़ाया जाना चाहिए।
15. मतदान की समाप्ति से 48 घण्टे पहले चुनाव के सम्बन्ध में जुलूस या आम बैठकें करने की मनाही होनी चाहिए।
16. लोक प्रतिनिधित्व, 1951 की धारा 135 में संशोधन होना चाहिए।
17. प्राधिकत व्यक्ति के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति के लिए शस्त्र लेकर मतदान केन्द्र के नजदीक जाने की रोक होनी चाहिए।
18. मतदान के दिन किसी औद्योगिक उपक्रम अथवा संस्था के कर्मचारियों को वेतन सहित अवकाश मिलना चाहिए।

19. राष्ट्रीय मान अधिनियम, 1971 की धारा 2 और 3 के अन्तर्गत दोषी जाए जाने पर, दोषी पाए जाने की तिथि से 6 वर्ष की समयावधि के लिए अयोग्य करार दिया जाना चाहिए।
20. मतदान के दिन मतदान केन्द्र के अन्दर किसी भी भोजनालय आदि में शराब या अन्य कोई नशीला पदार्थ बेचने अथवा वितरण पर रोक लगाई जानी चाहिए।
21. किसी भी स्वतंत्र उम्मीदवार के निधन पर चुनाव रद्द न होना चाहिए।
22. वर्तमान चुनाव प्रणाली में परिवर्तन के प्रश्न पर आगे और विचार करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया जाना चाहिए।
23. सभी चुनावी मुद्दों की जांच के कार्य के लिए संसद की एक स्थायी समिति का गठन होना चाहिए।
24. मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को एक निश्चित सीमा तक राज्य की ओर से धनराशि मिलनी चाहिए।
25. डाले गए मतों के एक चोथाई भाग से कम मत प्राप्त करने पर उम्मीदवार की जमा राशि जब्त करनी चाहिए।
26. वर्ष 1981 की जनगणना के आधार पर नया परिसीमन करना तथा अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों में क्रमावर्तन करना चाहिए।
27. आदर्श आचार संहिता के महत्वपूर्ण प्रावधानो के लिए सांविधिक समर्थन देना चाहिए।
28. मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्तों को न केवल सरकार के अन्तर्गत किसी नियुक्ति बल्कि राज्यपाल के पद सहित किसी अन्य पद के लिए अयोग्य घोषित करना चाहिए।
29. मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायधीश और विपक्ष के नेता के साथ विचार–विमर्श से की जानी चाहिए। और अन्य सदस्यों की नियुक्ति मुख्य निर्वाचन आयुक्त के विचार विमर्श पर की जानी चाहिए।
30. भविष्य में होने वाले सभी चुनावों में इलैक्ट्रॉनिक मशीन का प्रयोग होना चाहिए। इस सम्बन्ध में लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में मार्च, 1992 में विशेषज्ञ प्रावधान के द्वारा इलैक्ट्रानिक मशीन का चुनावों में प्रयोग का अधिकार दिया गया और नवम्बर, 1998 में हुए विधान सभा चुनावों में इस मशीन का प्रयोग किया गया।

नोटः–

1. प्वाइंट 6 से 21 तक सिफारिशों से सम्बन्धित प्रावधान लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) विधेयक, 1996 में किए गए है।
2. प्वाइंट 22 सं 39 तक अभी कोई निर्णय नहीं लिया गया है।

31 जुलाई, 1996 को संसद द्वारा चुनावों से सम्बन्धित बिल पास कर लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 में संशोधन किया गया है, जो लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1996 बना जिसके द्वारा श्री दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता वाली समिति की अनेक सिफारिशें लागू की गई।

लोक प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम 1996 द्वारा अधिनियमित किए गए चुनावी सुधारों पर प्रस्ताव

1. मतदाता सूची को तैयार करने सम्बन्धी सरकारी ड्यूटी का उल्लंघन करने पर दण्ड का बढ़ावा जाना।
2. राष्ट्र गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 की धारा 2 और 3 के अन्तर्गत दोषी पाए गए व्यक्तियों को अयोग्य घोषित करना।
3. भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा नियुक्त पर्यवेक्षकों को सांविधिक समर्थन देना और उन्हें यह अधिकार देना कि वे रिटर्निंग अधिकारी को यह निर्देश दे सकें कि यदि बहुत बड़े पैमाने पर मतदान केन्द्रों पर कब्जा हुआ है तो भारत के निर्वाचन आयोग के निर्णय के लम्बित रहने तक मतगणना और परिणाम की घोषणा रोक दी जाए।
4. न्यूनतम प्रचार अवधि को घटाकर 14 दिन कर दिया जाए।
5. प्रतिमूर्ति राशि को बढ़ाना और स्वतंत्र उम्मीदवार के मामले में प्रस्तावकों की संख्या 10 की जाए।
6. एक उम्मीदवार को एक श्रेणी के दो से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध लगाना।

7. मतदान पत्र पर मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों के नाम स्वतंत्र उम्मीदवारों के नामों से पहले रखना।
8. मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल के उम्मीदवार के निधन के मामले में भी चुनाव रद्द (काउन्टरमांड) न किया जाए।
9. चुनाव समाप्त होने से 48 घण्टे पहले चुनाव सम्बन्धी सार्वजनिक सभाओं और अन्य प्रकार से चुनाव प्रचार करने पर प्रतिबन्ध लगाने से सम्बन्धित प्रावधान का विस्तार करना।
10. चुनाव सभाओं में गड़बड़ी करने पर दण्ड को बढ़ाना और अपराध को संज्ञेय बनाना।
11. मतदान केन्द्र पर मतदाताओं को लाने और वापस भेजने के लिए निःशुल्क सवारी उपलब्ध कराने के लिए किसी वाहन को किराए पर लेने अथवा हासिल करने के अपराध की सजा को बढ़ाना।
12. मतदान के दिन मतदान केन्द्र पर तथा उसके नजदीक शस्त्र लेकर जाने पर प्रतिबन्ध लगाना और इसे चुनावी अपराध बनाना।
13. मतदान केन्द्र से मतपत्रों के हटाने के अपराध के प्रावधान का विस्तार करना।
14. मतदान केन्द्रों पर कब्जा करने के अपराध का विस्तार करना और इस अपराध को संज्ञेय बनाकर इसके लिए दण्ड का बढ़ाया जाना।
15. (1) मतदान के दिन किसी व्यावसायिक, व्यापारिक औद्योगिक उपक्रम अथवा अन्य संस्थान के कर्मचारियों को वेतन सहित अवकाश देना।
    (2) मतदान समाप्त होने से 48 घण्टे पूर्व शराब की बिक्री/वितरण पर प्रतिबन्ध लगाना।
16. 6 महीने की अवधि के भीतर उप–चुनाव कराना।

1998 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी सरकार के सत्ता मे आने पर दिनेश गोस्वामी समिति की कार्यान्वित नहीं हो पाने वाली सिफारिशों पर प्राथमिकता के आधार पर विचार विर्मश शुरु हुआ। गहमंत्री की पहल पर उन प्रस्तावों पर नए सिरे से चर्चा करने के लिए 22 मई, 1998 को विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं के साथि एक बैठक हुई बैठक में लिए गए निर्णयों का सारांश इस प्रकार हैः–

1. वर्तमान में संसदीय और विधानसभा निर्वाचन–क्षेत्रों की संख्या जारी रहेगी जब कि वर्तमान संवैधानिक उपबन्धों के अनुसार नया परिसीमन तय नहीं हो जाता है।
2. लोकसभा और विधानसभाओं का चुनाव लड़ने के लिए उम्र घटाकर 21 वर्ष और विधानपरिषदों और राज्यसभा के चुनावों के लिए उम्र घटाकर 25 वर्ष कर दी जाए।
3. एक प्रत्याशी को दो निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ने के लिए वर्तमान स्थिति को जारी रखना और फिलहाल इसे एक क्षेत्र तक सीमित नहीं किया जाए।
4. लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8–क के सम्बन्ध में यथास्थिति बनाये रखी जाए।
5. जमानत राशि बचाने के लिए डाले जाने वाले अपेक्षित वोटों की न्यूनतम संख्या के सम्बन्ध ने यथास्थित बनाए रखना।
6. मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों का राज्य निधीयन उपलब्ध कराने के लिए ठोस उपायों का सुझाव देने तथा राजनीतिक दलों द्वारा लेखों के रख–रखाव तथा उनकी लेखापरीक्षा कराने, राजनीतिक दलों को कम्पनियों द्वारा दिए जाने वाले चन्दे पर प्रतिबन्ध लगाने, चुनाव खर्चों' पर रोक के लिए प्रत्याशियों के चुनाव खर्च में राजनीतिक दलों के खर्चों को शामिल करने तथा प्रत्येक आम चुनाव से पहले भारत के निर्वाचन आयोग को चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा निर्धारित करने की शक्ति प्रदान करने सम्बन्धी प्रस्तावों के सम्बन्ध में सिफारिश करने के लिए श्री इन्द्रजीत गुप्त, संसद सदस्य की अध्यक्षता में एक समिति का गठन करना।
7. भारत के निर्वाचन आयोग से अनुरोध किया जाए कि वह राजनीतिक दलों के परामर्श से आदर्श आचार संहिता की पुनरीक्षा करके उसको सपुनः तैयार करे।
8. निर्वाचन आयोग से अनुरोध किया जाए कि वह राजनीतिक दलों के परामर्श से चुनाव चिन्हों के आरक्षण और आबंटन के सम्बन्ध में अपने आदेश की पुनरीक्षा करे।

9. मतदान को अनिवार्य नहीं बनाया जाये।

22 मई, 1998 की विभिन्न दलीय बैठक में लिए गए एक निर्णय के आधार पर श्री इन्द्रजीत गुप्त, संसद सदस्य की अध्यक्षता में एक उच्च अधिकार प्राप्त समिति गठित की गई थी जिसे मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को राज्य निधिकरण उपलब्ध कराने के लिए ठोस उपायों को सुझाव देने को कहा गया।

इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 14 जनवरी, 1999 को पेश की जिसकी मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैः–

राजनितिक दलों द्वारा लेखों के रख–रखाव तथा उनकी लेखा परीक्षा होनी चाहिए।

राजनीतिक दलों को कम्पनियों द्वारा दिए जाने वाले चन्दे पर रोक लगानी चाहिए।

राजनीतिक दलों द्वारा 10000 रुपये से ज्यादा के चन्दों को चैक या ड्राफ्ट के रूप में लेना चाहिए।

चुनाव व्यय सम्बन्धी प्रत्याशियों के चुनाव खर्च की अधिकतम सीमा में राजनीतिक दलों के खर्चों को शामिल किया जाना चाहिए।

राजनीतिक दलों को प्रत्येक वर्ष के लेखे आयकर अभिकरण को जमा कराने चाहिए।

जीवन रैड्डी समिति, 1999

न्यायमूर्ति जीवन रैडी की अध्यक्षता में भारतीय कानून आयोग ने चुनाव सुधार के लिए मूलभूत सुझाव दिए जो इस प्रकार हैः–

1. आंशिक सूची व्यवस्था शुरू की जाए और उन दलों को समाप्त कर दिया जाए जो कुल मतों का 5 प्रतिशत भी प्राप्त न कर पाए।
2. यदि कोई भी सांसद चुनाव से पहले किए गए गठबन्धन को छोड़ता है तो उसकी सीट जब्त कर ली जाए।
3. प्रधानमन्त्री के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव तब तक पास नहीं किया जाना चाहिए जब तक उसका उत्तराधिकारी में लोक सभा अपना विश्वास प्रकट न कर दे।
4. लोक सभा तथा राज्य की विधान सभाओं की सदस्य संख्या में 25 प्रतिशत बढ़ोतरी की जाए।
5. स्वतंत्र उम्मीदवारों पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।
6. दल–बदल विरोध कानून से स्पलिट या समायोजन का प्रावधान समाप्त किया जाए।
7. जिन पर गंभीर अपराधों के लिए न्यायालय में आरो पत्र दाखिल हो चुका है, चुनाव न लड़ने दिया जाए।
8. संविधान की धारा 331 को समाप्त कर दिया जाए जिसके तहत एंग्लो–इंडियन समुदाय के दो सदस्य मनोनीत किए जाते है।

चुनाव-सुधार अध्यादेश, 2002

लोक प्रतिनिधित्व संशोधन अध्यादेश 24 अगस्त 2002 को लागू किया गया है जिसके तहत :–

1. यदि किसी व्यक्ति को फौजदारी मामले में 2 वर्ष का कारावास हो गया है तो वह चुनाव लड़ने के अयोग्य होगा।
2. चुनाव के फौरन पश्चात सभी चुने हुए सदस्य अपनी सम्पदा की घोषणा स्पीकर को कर देगे।

सर्वोच्च न्यायालय निर्णय, 2002

28 अक्तूबर, 2002 को सर्वोच्च न्यायालय ने चुनाव आयोग के गुजरात में चुनावों को स्थगित करने के निर्णय को उचित ठहराते हुए कहा कि चुनाव संचालन का कार्य पूर्णतया चुनाव आयोग के क्षेत्राधिकार में ही है।

निर्वाचन आयोग

भारत में संसदीय लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली की स्थापना की गई है, जिसमें जनता एक निश्चित समय के लिए अपने प्रतिनिधित्वों का चुनाव करती है। चुनाव व्यवस्था लोकतान्त्रिक व्यवस्था का प्राण है। प्रत्येक शासन व्यवस्था में किसी न किसी प्रकार की चुनाव–प्रक्रिया के महत्व को स्वीकार किया जाता है, किन्तु निर्वाचन प्रक्रिया तथा उस प्रक्रिया का संचालन करने वाली मशीनरी लोकतान्त्रिक व्यवस्था का बुनियादी आधार है। लोकतन्त्र में यह महत्वपूर्ण नहीं है कि चुनाव होते हैं बल्कि इससे

भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि चुनाव किस प्रकार होते हैं, चुनाव कितने निष्पक्ष होते हैं और प्रत्येक मतदाता का निर्वाचन व्यवस्था का संचालन करले वाले अभिकरण की निष्पक्षता तथा ईमानदारी पर कितना विश्वास है। भारतीय संविधान सभा में हृदयनाथ कुंजरू ने चुनाव–तन्त्र के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि, ''अगर चुनाव तन्त्र दोष पूर्ण है या कुशल नहीं है या गैर–ईमानदार लोगों द्वारा संचालित होता है तो प्रजातन्त्र उत्पत्ति के स्रोत पर ही विषमय हो जाएगा, जनता चुनावों में यह सीखने के बदले कि वह अपने मतों का प्रयोग किस प्रकार करे, और उनका न्यायपूर्ण मतदान किस प्रकार संविधान में परिवर्तन और प्रशासन में सुधार ला सकता है, वह केवल यह जानने लगती है कि किस प्रकार षडयन्त्रों पर आधारित दलों का निर्माण किया जा सकता है और अपने आप लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किन–किन गलत तरीकों को अपनाया जा सकता है।''

संविधान में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के लिए उपबंध किया गया है। प्रत्येक नागरिक को, जिसकी आयु 18 वर्ष है, मत देने का अधिकार प्रदान किया गया है। नागरिक मताधिकार का प्रयोग चुनाव के माध्यम से करते हैं। चुनावों को निष्पक्ष एवं निर्बध करवाने के लिए एक स्वतंत्र प्राधिकरण के अधीक्षण और निर्देशन की जरूरत पड़ती है और यह प्राधिकरण निर्वाचन आयोग कहलाता है। भारत जैसे विशाल आकार वाले, भारी जनसंख्या वाले तथा इतने अधिक मतदाताओं वाले देश में निर्वाचन करवाना एक बहुत बड़ा कार्य है। यहां केन्द्र, प्रदेश तथा स्थानीय स्तर पर आए दिन चुनाव होते रहते हैं। इसलिए जल्दी–जल्दी चुनाव होने और राजनीतिक दलों में विभाजन से देश का निर्वाचन आयोग एक ऐसा सत्ता केन्द्र के तौर पर उभर रहा है, जो चुनाव के पहले राजनीतिक दलों के आचरण और सरकार के कामकाज पर कड़ी नजर रखता है। स्वतंत्र निर्वाचन तन्त्र के महत्व को स्वीकार करते हुए भारतीय संविधान के एक पथक अध्याय अनुच्छेद 324 से 329 में निर्वाचन तन्त्र से सम्बन्धित सम्पूर्ण व्यवस्था की गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अब तक भारत में सम्पन्न हुए तेरह लोकसभा तथा विभिन्न राज्यों के विधानमंडलों के चुनावों को सम्पन्न कराने में निर्वाचन आयोग ने जिस क्षमता का परिचय दिया है, उसकी देश–विदेश में भारी प्रशंसा हुई है। जैसे अक्तूबर 2002 में जम्मू एवम् कश्मीर विधान सभा के चुनावों को जिस तत्परता ओर सुचारू रूप से सम्पन्न किया गया है, उससे निर्वाचन आयोग तथा मुख्य चुनाव आयुक्त जे॰ एम॰ लिंगदोह की निष्पक्षता, दढ़ता और कार्य कुशलता की पूरी–पूरी प्रशंसा की गई है।

भारत में चुनाव आयोगः संरचना एवम् संगठन

संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान की धारा 324 (2), (3) और (4) में निर्वाचन आयोग की रचना तथा संगठन का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार हैः–

(अ) निर्वाचन आयोग में एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा कुछ अन्य निर्वाचन आयुक्त होंगे, जिनकी संख्या राष्ट्रपति समय–समय पर निर्धारित करेगा। चुनाव आयोग के समस्त सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति संसद् द्वारा इस सम्बन्ध में निर्मित कानून की धाराओं के अनुसार करेगा। अन्य निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति होने की अवस्था मे मुख्य निर्वाचन आयुक्त चुनाव आयोग का सभापति होगा।

(ब) चुनाव आयोग की सहायता के लिए लोकसभा व राज्य विधानमण्डलों के चुनावों से पूर्व राष्ट्रपति को प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्त नियुक्त करने का अधिकार होगा।

(स) राष्ट्रपति संसद् द्वारा इस सम्बन्ध में निर्मित कानून के अनुसार निर्वाचन आयुक्तों तथा प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्तों के कार्यकाल तथा सेवाकाल सम्बन्धी शर्ते भी निश्चित करेगा।

व्यवहारिक स्थिति

सन् 1951 में पहली बार संविधान के अन्तर्गत निर्वाचन आयोग का गठन किया गया और उसी समय से निर्वाचन आयोग 'एक सदस्यीय आयोग' के रुप में कार्य करता रहा। 1952 में आम चुनावों के संचालन हेतु दो प्रादेशिक आयुक्तों की नियुक्ति की गई। प्रादेशिक निर्वाचन उपयुक्तों की व्यवस्था को लाभदायक नहीं समझा गया और द्वितीय आम–चुनाव के समय इसे निरस्त कर दिया गया। सन् 1956 में प्रादेशिक निर्वाचन आयुक्तों के स्थान पर उपनिर्वाचन आयुक्त के पद सजित किये गए। विभिन्न चुनावों में उपनिर्वाचन आयुक्त के पद का उपयोग किया जाता रहा है। वैसे यह संवैधानिक पद नहीं है, इसका उल्लेख जन प्रतिनिधि अधिनियम में किया गया है। सन् 1957 , 1962 तथा 1967 के निर्वाचनों का संचालन करने हेतु दो उपनिर्वाचन आयुक्तों

की नियुक्ति की गई है। 1969 के मध्यावधि चुनावों के समय मुख्य निर्वाचन आयुक्त को सहायता देने के लिए केवल एक ही उप निर्वाचन आयुक्त, अपर सचिव, शोध अधिकारी, आदि पद उपलब्ध कराए गए हैं।

16 अक्टूबर 1989 को राष्ट्रपति ने निर्वाचन आयोग को और अधिक मजबूत बनाने के लिए दो निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति की। परन्तु 2 जनवरी 1990 को राष्ट्रपति ने चुनाव आयुक्तों के रूप में श्री एस॰ एस॰ धनोवा तथा श्री वी॰ एल॰ सैगल की नियुक्तियों को रद्द कर दिया, इसके साथ ही बहुसदस्यीय आयोग फिर एक सदस्यीय हो गया। अक्तूबर, 1993 में केन्द्र सरकार ने दो नए चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति पर चुनाव आयेग को तीन सदस्यीय बनाने का महत्वपूर्ण कदम उठाया। राष्ट्रपति ने अध्यादेश जारी कर कृषि सचिव जी॰ वी॰ जी॰ कृष्णमूर्ति को चुनाव आयुक्त नियुक्त किया। चुनाव आयोग को बहुसदस्यीय बनाने सम्बन्धी विधेयक को संसद् ने 20 दिसम्बर, 1993 को पास कर दिया। 14 जुलाई, 1995 को सर्वाच्च न्यायालय ने अपना ऐतिहासिक फैसला सुनाते हुए टी॰ एन॰ शेषन व अन्य दोनों आयुक्तों को एक समान दर्जा देने की व्यवस्था सम्बन्धित राष्ट्रपति के अध्यादेश को वैद्य ठहराया। इससे मुख्य चुनाव आयुक्त टी॰ एन॰ शेषण का यह दावा रद्द हो गया कि वह चुनाव आयोग में सर्वोच्च है। अपने फैसले के साथ ही न्यायालय ने यह आशा व्यक्त की कि आयोग के सदस्य अब एक–दूसरे के प्रति सन्देह की भावना से ऊपर उठकर सद्भावना पूर्ण वातावरण में कार्य करेंगे।

कार्यकाल तथा सेवा सम्बन्धी शर्ते

सन् 1972 से पहले मुख्य निर्वाचन आयुक्त के कार्यकाल और सेवा शर्ते के बारें विशेष व्यवस्था नहीं थी। परन्तु 1972 में यह कानून बना दिया गया कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त अपने पद पर 65 वर्ष की आयु तक या 6 वर्ष तक (जो पहले पूण्र हो जाए) रह सकता है। अक्टूबर 1973 को चुनाव आयेाग को बहुसदसीय बनाने की अधिसूचना के आधार पर 'मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं अन्य निर्वाचन आयुक्त (सेवा–शर्ते) अधिनियम 1991 में संशोधन किया गया। इस संशोधन के उपरान्त वेतन एवं अन्य सेवा शर्तो के अतिरिक्त अन्य चुनाव आयुक्त, मुख्य चुनाव आयुक्त तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश के समकक्ष हो गए। अध्यादेश में मुख्य चुनाव आयुक्त तथा अन्य चुनाव आयुक्तों के बीच कार्य विभाजन को भी परिभाषित किया गया। केवल पद नाम को छोड़कर शेष सभी क्षेत्रों में मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य दो चुनाव आयुक्तों के मध्य कोई अन्तर नहीं रह गया है, निर्णय अब एकमत से लिए जा सकते है। यदि मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य आयुक्तों में किसी मामले पर मतभेद होता है तो बहुमत का निर्णय मान्य होगा। इसी अध्यादेश में मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य चुनाव आयुक्तों का वेतन भी समान ञ(30,000 रुपये) हो गया। मुख्य चुनाव आयुक्त अपने पद से उन्हीं कारणों पर और उन्हीं रीतियों से हटाया जायेगा जिन कारणों और रीति से सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जा सकता है। अर्थात् सिद्ध कदाचार या असमर्थता के आधार पर राष्ट्रपति के आदेश द्वारा मुख्य निर्वाचन आयुक्त को अपने पद से हटाया जा सकता है। इस प्रकार के महाभियोग की कार्यविधि निश्चित करने का अधिकार संसद को प्राप्त है। कार्यविधिर चाहे जो हो, लेकिन संसद के दोनों सदनों को अलग–अलग अपने कुल सदस्यों की संख्या के बहुमत और उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो–तिहाई मत से प्रस्ताव पारित करना होगा और वह प्रस्ताव राष्ट्रपति को भेजा जाएगा। उसके पश्चात् राष्ट्रपति मुख्य निर्वाचन आयुक्त की पदच्यूति का आदेश जारी करेगा। अभी तक किसी भी मुख्य चुनाव आयुक्त को समय से पहले नहीं हटाया गया है। मुख्य चुनाव आयुक्त को पद ग्रहण करते समय कोई शपथ नहीं लेनी पड़ती। उसे सेवानिवति के पश्चात् केन्द्र तथा राज्यों में किसी भी सरकारी पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता।

चुनाव आयोग के कार्य

चुनावों से सम्बन्धित समस्त व्यवस्था करना निर्वाचन आयोग का कार्य है। इस सम्बन्ध में प्रमुख रूप से उसके निम्नलिखित कार्यो का उल्लेख किया जा सकता हैः–

1. **चुनाव क्षेत्रों का परिसीमन या सीमांकन करनाः**–चुनाव क्षेत्रों का सीमांकन करना निर्वाचन आयोग का सर्वप्रथम कार्य है। प्रथम आम चुनाव में निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन 'जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950' के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए आदेश के आधार पर किया गया था, लेकिन यह व्यवस्था सन्तोषजनक सिद्ध नहीं हुई, अतः संसद ने 'परिसीमन आयोग अधिनियम, 1952 पारित कर यह प्रावधान किया कि दस वर्ष बाद होने वाली प्रत्येक जनगणना के उपरान्त निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन किया जाना चाहिए। मुख्य चुनाव आयुक्त इस परिसीमन आयोग का अध्यक्ष होता है और दो सर्वोच्च न्यायलय अथवा उच्च न्यायलयों की अवकाश प्राप्त न्यायाधीश इसके सदस्य होते हैं। आयोग की सहायता

के लिए प्रत्येक राज्य से 2 से 7 तक सहायक सदस्यों का प्रावधान हैं ये सहायक सदस्य सम्बन्ध राज्य से लोक सभा या राज्य विधान सभा के लिए निर्वाचित सदस्यों में से चुने जाते है। जनता के सुझावों व आपत्तियों को खुली बैठकों में विचार विमर्श किया जाता है। इसके उपरान्त ही आयोग 'सीमांकन आदेश' की घोषणा करता है, इसके विरुद्ध किसी भी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती है।

2. **मतदाता सूचियां तैयार करनाः**—चुनाव आयोग के द्वारा प्रत्येक जनगणना के बाद और आम चुनाव या मध्यावधि चुनाव से पूर्व मतदाताओं की सूची में संशोधन किए जाते है। इन सूचियों में नए मतदाताओं के नाम शामिल किए जाते है और जो नागरिक मर चुके है, उनके नाम इस सूची से निकाले जाते हैं। मतदाता सूची तैयार होने पर चुनाव आयोग द्वारा जनता की तरफ से आपत्तियां मांगी जाती है और उन्हें दूर किया जाता है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य यह है कि कोई भी मताधिकार की योग्यता रखने वाला व्यक्ति मताधिकार से वंचित न रहे।

3. **राजनीतिक दलों को मान्यता देनाः**—चुनाव आयोग यह एक महत्वपूर्ण कार्य है कि वह समय—समय पर पिछले आम चुनावों में मिले मतों के आधार पर राष्ट्रीय और राज्य स्तर के दलों को मान्यता प्रदान करता है। इस सम्बन्ध में आयोग द्वारा कोई भी आधार निश्चित किया जा सकता है और इसमें परिवर्तन किए जा सकते है। जैसे 197 में चुनाव आयोग ने लोकसभा के चुनावों के अवसर पर 7 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय स्तर पर और 36 राजनीतिक दलों को राज्य स्तर पर मान्यता दी थी। 1999 में 13वीं लोकसभा चुनावों के अवसर पर 6 राजनीतिक दल राष्ट्रीय स्तर पर और 48 राजनीतिक दल क्षेत्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त थे। 29 दिसम्बर, 2००० को चुनाव आयोग ने 6 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय एवं 44 को राज्य स्तरीय दल के रूप में मान्यता प्रदान की।

4. **राजनीतिक दलों को आरक्षित चुनाव चिन्ह प्रदान करनाः**—निर्वाचन आयोग राजनीतिक दलों को चुनाव चिन्ह आरक्षित करता है। यदि चुनाव चिन्ह के प्रश्न पर यदि किन्ही दो या दो से अधिक राजनीतिक दलों मे कोई विवाद पैदा हो जाता है तो उस स्थित मे आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह निष्पक्ष और न्यायिक ढंग से निपटारा करेगा और अगर कोई राजनीतिक दल या उसके प्रत्याशी आयोग द्वारा निश्चित किए गए व्यवहार के आदर्श नियमों का उल्लंघन करते है तो चुनाव आयोग उनकी मान्यता रद्द भी कर सकता है, यह व्यवस्था 16 फरवरी, 1994 को चुनाव आयेाग ने 1968 के चुनाव चिन्ह सम्बन्धी आदेश में संशोधन करके की। इस सम्बन्ध में आयोग के निर्णय के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय मे अपील भी की जा सकती है।

5. **पुनः मतदान कराना या चुनाव रद्द करनाः**—चुनाव आयोग देश के किसी भी क्षेत्र मे पुनः मतदान कराने के आदेश दे सकता है और किसी उप चुनाव को रद्द कर सकता है। जैसे मार्च 199० मे चुनाव आयोग ने हरियाणा में मध्य विधानसभा उप—चुनाव को रद्द करने का फैसला लिया था। इसी प्रकार 19 मई, 1993 को हरियाणा में कालका विधानसभा उप—चुनाव को रद्द किया था। अप्रैल—मई, 1996 में लोकसभा चुनाव में प्रारम्भिक रिपोर्टो के आधार पर चुनाव आयोग ने 2०24 से अधिक मतदान केन्द्रों पर पुनः मतदान करवाने का निर्णय लिया था जिसमें अकेले बिहार में 1274 मतदान केन्द्रों पर पुनः मतदान हुआ। फरवरी, 1998 का चुनाव आयोग ने 9 राज्यों के 599 मतदान केन्द्रों पर पुर्नमतदान के आदेश दिए। तेरहवीं लोकसभा चुनाव के प्रथम दौर (6 सितम्बर, 1999) के बाद 184 स्थानों तथा दूसरे दौर (12 एवं 13 सितम्बर) के मतदान के बाद 94 मतदान केन्द्रों पर पुनः मतदान के बाद 94 मतदान केन्द्रों पर पुनः मतदान के आदेश दिए गए थे।

6. **स्वतंत्रता एवं निष्पक्ष चुनाव के लिए आवश्यक निर्देशन देनाः**—चुनाव आयोग स्वतंत्रता तथा निष्पक्ष चुनाव करवाने के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों, अधिकारियों, उम्मीदवारो तथा सरकारों को आवश्यक निर्देश जारी करता है। उदाहरण के लिए जनवरी, 1994 में चुनाव आयोग ने यह निर्देश जारी किया कि सभी प्रत्याशी चुनाव के लिए नामांकन पत्र भरने से लेकर चुनाव परिणाम घोषित होने तक खर्च का लेखा—जोखा आयोग ने राज्य तथा संघीय क्षेत्रों की सरकारों का निर्देश दिया कि 12वीं लोकसभा की चुनावी प्रक्रिया पूर्ण होने तक अन्य पिछड़े वर्ग की सूचियों में कोई परिवर्तन न किया जाए, सरकारी अधिकारियों के स्थानांतरण पर रोक तथा प्रधानमंत्री के अतिरिक्त अन्य मंत्रियों के सरकारी जहाज के प्रयोग पर रोक लगाने सम्बन्धी निर्देश जारी किया। 21 जनवरी, 1998 को चुनाव आयोग ने मतदान व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव की आशंका को देखते हुए यह निर्देश दिया कि संभावित परिणामों के सम्बन्ध में अनुमानित सर्वेक्षण प्रकाशित नहीं किए जाने चाहिए।

7. **चुनाव कानून व आचार संहिता के उल्लंघन के आरोपों की जांच करना:**—चुनाव आयोग द्वारा चुनाव आचार संहिता के उल्लंघन सम्बन्धित आरोपों की जांच की जाती है। उदाहरणस्वरूप नवम्बर, 1984 के लोकसभा चुनाव की घोषणा के बाद मध्य प्रदेश व गुजरात सरकारों पर कुछ वर्गों को रियायत देने के आरोप पर चुनाव आयोग सने तत्परता से इसकी जांच के लिए कदम उठाए थे। इसी प्रकार फरवरी, 1995 में छः विधानसभाओं के चुनावों की घोषणा के बाद बिहार सरकार द्वारा कर्मचारियों के तबादलों पर चुनाव आयोग ने सरकार को इन तबादलों से दूर रहने के निर्देशन जारी किए थे।

8. **अर्द्धन्यायिक कार्य:**—संविधान द्वारा अनुच्छेद 103 के अन्तर्गत राष्ट्रपति से संसद के सदस्यों तथ अनुच्छेद 192 के अनतर्गत राज्य पालों से विधानमण्डलों के सदस्यों की अयोग्यताओं के सम्बन्ध में चुनाव आयेाग परामर्श कर सकता है।

9. **अन्य कार्य:**—निर्वाचन आयोग को उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्य भी सौंपे गए है, जो इस प्रकार हैः—

   1 चुनाव आयोग स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव करवाने के लिए पर्यवेक्षकों को नियुक्त करता है, जैसे अक्तूबर 2००2 में जम्मू कश्मीर विधान—सभा चुनावों में पर्यवेक्षकों को नियुक्त किया था।

   2 केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा चुनाव कार्यों के लिए दिए गए कर्मचारियों को नियंत्रित करना।,

   3 चुनाव आयोग सीमा निर्धारण आयोग की लेख सम्बन्धी गलतियों के ठीक कर सकता है।

   4 राजनीतिक दलों को आकाशवाणी पर चुनाव प्रचार की सुविधाएं दिलवाना।

   5 राजनीतिक दलों को पंजीकत करना। जैसे 30 सितम्बर 2000 तक चुनाव आयेाग के पास 682 राजनीतिक दलों के नाम पंजीकत थे।

   6 चुनाव याचिकाओं आदि के सम्बन्ध में सरकार को आवश्यक परामर्श देना।

   7 चुनाव आयोग को चुनाव—सम्बन्धी सभी मामलों पर निरीक्षण, निर्देशन तथा नियन्त्रण का अधिकार प्राप्त है।

   8 चुनाव आयोग विभिन्न चुनाव क्षेत्रों में चुनाव करवाने की तिथि निश्चित करता है।

   9 चुनाव आयोग राज्यों के मुख्य चुनाव अधिकारियों पर चुनाव से सम्बन्धित नियन्त्रण रखता है।

   1० चुनाव आयोग चुनाव करवाने के लिए रिटर्निंग अफसरों तथा सहायक रिटर्निंग अफसरों को नियुक्त करता है।

   11 चुनाव आयोग मनोनयन पन्नों के दाखले की अन्तिम तिथि निश्चित करता है।

   12 चुनाव आयोग उम्मीदवारों के नाम वापस लेने की तिथि भी निश्चित करता है।

   13 चुनाव आयोग संसद तथा राज्य विधानमंडलों के सदस्यों के चुनाव का पूरा प्रबन्ध करता है।

   14 राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के पदों पर चुनाव करवाने का काम भी आयोग को सौंपा गया है।

   15 चुनाव आयेाग मत—पेटियों की सुरक्षा तथा मतों की गिनती निष्पक्षता से करवाने के लिए उत्तरदायी है।

   16 चुनाव आयोग मतदान के लिए मतदान केंन्द्र स्थापित करता है।

   17 चुनाव आयोग राष्ट्रपति के क्षेत्रीय चुनाव आयोगों की नियुक्ति के बारें में परामर्श दे सकता है।

   18 चुनाव आयेाग समय—समय पर चुनाव में सुधार करने के लिए सुझाव देता है। उदाहरणतया मार्च, 1988 में चुनाव आयोग ने सरकार से इलैक्ट्रॉनिक मशीन, मतदाता की आयु 18 वर्ष करने व चुनाव क्षेत्रों के पुनर्गठन करने आदि के बारे में आग्रह किया। निर्वाचन आयोन ने बहु—उद्देशीय पहचान—पंत्र और चुनाव याचिकाओं के शीघ्र निपटारें के लिए तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्तियां करने की भी सिफारिश की।

इन सबके अतिरिक्त आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह समय—समय पर सरकार को अपने कार्यों के सम्बन्ध में प्रतिवेदन देता रहेगा।

निर्वाचन आयोग की आलोचना

भारत में समय—समय पर चुनाव आयोग की भूमिका पर उंगलियां उठती रही है और इसकी निष्पक्षता तथा स्वतंत्रता के लिए इसकी आलोचना होती रही है जैसे 1971 के लोकसभा चुनाव के बाद चुनाव आयोग पर आरोपों में वद्धि हुई और नवम् लोकसभा

चुनाव (नवम्बर 1989) के दौरान भी आयोग पर कई आरोप लगाए गए। आयोग के बारे में निम्नलिखित आलोचनाएं की जाती है:–

1. **निर्वाचन आयोग सत्तारूढ़ दल का कठपुतली के रूप में:** सैद्धान्तिक रूप से यह कहा जाता है कि भारत में चुनाव की तिथियां व समय चुनाव आयोग द्वारा निर्धारित की जाती है, परन्तु मूल रूप से ये तिथियां सत्तारूढ़ दल की इच्छा व लाभ को मध्यनजर रखते हुए निश्चित की जाती है जैसे 22 जून 1991 को पंजाव में लोकसभा व विधानसभा के चुनाव होने थे। 21 जून प्रातः मुख्य चुनाव आयुक्त टी० एन. शेषन ने 25 सितम्बर के लिए मतदान स्थगन की घोषणा कर दी क्योंकि कांग्रेस (ई) ने इन चुनावों का बहिष्कार किया था। अगर 22 जून को चुनाव हो जाते तो कांग्रेस को 22 मतों की कमी पड़ने लगती। शेषन कांग्रेस के लिए अल्पमत की पूर्ति तो नहीं कर सके, परन्तु अल्पमत की वद्धि रोक सके।
2. **मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति पर आलोचना:**–आलोचकों के अनुसार इस पद के लिए आमतौर पर भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है जैसे सुकुमार सेन और के० वी० के० सुन्दरम् दोनों ही भारतीय लोक सेवा के सदस्य थे। श्री एस०पी०जेन वर्मा कानून विभाग के सचिव तथा टी० स्वामीनाथन केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के सचिव थे। इस पद पर उन अधिकारियों को नियुक्त किया जाता है जो शासक दल के प्रति निष्ठावान होते है और जो उनके कहे हुए कार्यों को किसी भी कीमत पर करने को तैयार रहते है।
3. **मुख्य निर्वाचन आयुक्त की योग्यताओं सम्बनधी आलोचना:**–संविधान में मुख्य निर्वाचन आयुक्त की योग्यताओं का कोई वर्णन नहीं किया गया है और न ही नियुक्ति प्रक्रिया का परिभाषित किया है। यह सब कुछ राष्ट्रपति पर छोड़ दिया गया है। भारत में संसदीय शासन प्रणाली के अनुसार इसकी नियुक्ति की जिम्मेदारी केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में निहित है। अतः इसकी नियुक्ति में राजनीतिक प्रभाव की संभावना है।
4. **निर्वाचन आयोग के पास स्वतंत्र कर्मचारी तंत्र का न होना:**–निर्वाचन आयोग के पास निर्वाचन कार्यों के लिए स्वयं का कर्मचारी तंत्र नही है। निर्वाचन कार्यों के लिए आयोग के राज्य सरकार के कर्मचारियों पर निर्भर रहना पड़ता है। ये कर्मचारी आयोग के प्रति इतने समर्पित नहीं होते हैं। जैसे नौवीं लोकसभा चुनाव के समय प्रधानमंत्री के निर्वाचन क्षेत्र अमेठी मे फर्जी मतदान तथा बूथ पर कब्जा करने की घटनाएं हुई उससे स्थानीय कलैक्टर और पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट की उदासीनता को देखते हुए चुनाव प्रक्रिया सम्पन्न होने से पूर्व ही उनका स्थानान्तरण कर्मचारीतंत्र की पक्षपातपूर्ण भूमिका का पर्दाफाश कर देता है।
5. मुख्य निर्वाचन आयुक्त को बिना उसकी योग्यताओं और पूर्ववर्ती सफलताओं को महत्व दिए वह दर्जा देना, जो कि सर्वोच्च न्यायलय के न्यायाधीशें तथा महालेखा परीक्षक को प्राप्त है, न्याय की दष्टि से गलत है।
6. सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायधीशों तथा महालेखा परीक्षक के लिए तो पद ग्रहण की शपथ लेना जरूरी है, परन्तु मुख्य चुनाव आयुक्त के लिए यह अनिवार्य नहीं है।
7. यदि महालेखा परीक्षक तथा लोकसेवा आयेाग के अध्यक्ष को सेवा निवत्ति के पश्चात् कोई सरकारी नौकरी स्वीकार करने का अधिकार नहीं तो उसी स्तर के इस पदााधिकारी को यह छूट देना सैद्धान्तिक रूप से गलत है।

निष्कर्षतः इन आलोचनाओं के बावजूद भी चुनाव आयोग की अहम् भूमिका रही है। भारत में अभी तक 13 आम चुनाव हो चुके हैं ओर आयोग के चुनौतीपूर्ण कार्य को देखते हुए यह अवश्य कहा जा सकता है कि निर्वाचन क्षेत्र में परिसीमन के कार्य से लेकर निर्वाचन अधिनियम तक के कार्य को चुनाव आयोग ने सामान्यतया कुशलता निष्पक्षता तथा ईमानदारी से निभाया है। आर० पी० भल्ला के अनुसार, ''देश के प्रशासनिक ढांचे में निर्वाचन आयेाग ने विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है। शिकायत होने की अवस्था में कोई भी राजनीतिक दल या उम्मीदवार या नागरिक इसका सहारा लेने में संकोच नहीं करता। इसने जनता में यह विश्वास उत्पन्न किया है कि निर्वाचन पद्धति उन्हें अपनी पसन्द की सरकार का निर्माण करने में हर संभव सहायता देगी। देश की कुछ प्रमुख संस्थाओं मे निर्वाचन आयोग एक ऐसी संस्था है जिसके काम की देश की भीतर तथा बाहर श्लाघा हुई है।'' इस प्रकार से चुनाव आयोग की निष्पक्षता एवं कुशलता इन उदाहरणों से झलकती है, जब 1996 के आम चुनाव के दौरान आचार संहिता के पालन की वजह से दिल्ली किराया कानून लागू नहीं किया जा सकता। जनवरी 1998 में आचार संहिता के कारण टाटा एयरलाइन्स को विदेशी निवेश प्रोत्साहन बोर्ड की अनुमति रूक गई। जनवरी 2000 में निर्वाचन आयेाग ने बिहार सरकार के वर्ष 2000–2001 बजट को पेश करने पर लगाई और कहा कि इस समय ऐसा करना आदर्श आचार

संहिता का उल्लंघन करना है। आयोग के निर्देश पर राबड़ी सरकार राज्यपाल के अभिभाषण में प्रमुख नीतिगत घोषणाएं न करने पर सहमत हो गई। इसी प्रकार अक्तूबर 2002 में जम्मू–कश्मीर विधानसभा चुनावों को जिस तत्परता और सुचारू ढंग से पूर्ण किया गया इस प्रकार के उदाहरणों से चुनाव आयोग की प्रतिष्ठा ओर भी बढ़ जाती है।

अध्याय-16
जातिवाद
(Casteism)

I. जातिवाद और भारतीय राजनीति
(Casteism and Indian Politics)

प्रोफेसर वी०के० मेनन का यहा कथन ठीक है कि स्वतन्त्रता प्रप्ति के बाद से राजनैतिक क्षेत्र में जातिवाद का प्रभाव दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है। जहाँ सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में जाति की शक्ति घटी है वहाँ राजनीति और प्रशासन में वद्धि हुई है। कुछ विद्वान यह सोचते है कि भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के कारण, जिसके अनुसार पाश्चात्य ढ़ंग की राजनैतिक संस्थाएँ और लोकतन्त्रीय मूल्य अपनाए गए है, जातिवाद का अन्त हो जाएगा। परन्तु यह बात ठीक नहीं दिखाई देती। रजनी कोठारी का इस विषय में मत है कि – प्रथम, कोई भी सामाजिक ढ़ाँचा कभी भी पूरी तरह से समाप्त नहीं होता। इसलिए यह सोचना कि भारत में जाति का लोप हो जाएगा, गलत है। दूसरे, जाति–व्यवस्था आधुनिकीकरण और सामाजिक परिवर्तन के विकास में कोई बाधा नहीं डालती, बल्कि उसकी वद्धि करने में सहायक होती है। राज्य स्तर की राजनीति में जाति और समुदाय शासन की निर्णय प्रक्रिया को उसी प्रकार प्रभावित करते हैं जिस प्रकार से दबाव–समूह करते हैं। भारत की राजनैतिक व्यवस्था की एक विशेषता है कि राजनीतिज्ञ निश्चित रूप से जाति की नीति का तो विरोध करते हैं, परन्तु चुनाव के समय जाति के आधार पर ही वोट माँगते हैं।

जाति की राजनीति का उदय और प्रभाव

भारत में जाति–व्यवस्था एक प्राचीन संस्था है। ब्रिटिश काल में स्वतन्त्रता संग्राम के समय जातिवाद का प्रभाव कम होने लगा था। परन्तु स्वतन्त्रता–प्रप्ति के बाद जातिवाद का प्रभाव फिर बढ़ने लगा है। यद्यपि संविधान के द्वारा भारत को एक धर्म–निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है परन्तु राजनैतिक और सामाजिक जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जो जातिवाद से प्रभावित न हो।

संविधान के वयस्क मताधिकार द्वारा जो सभी नागरिकों को देश की राजनीति में भाग लेने का अधिकार दिया उससे निम्न और मध्य स्तर के लोगों में राजनैतिक शक्ति के प्रति लगाव पैदा हुआ। इससे जातियों के प्रभाव क्षेत्र में वद्धि होने लगी। शुरू में तो आर्थिक और सामाजिक दष्टि से उच्च जातियाँ ही राजनीति में प्रभावित रहीं और राजनैतिक शक्ति उन्हीं तक सीमित रही, परन्तु समय के विकास के साथ मध्यम और निम्न जातियाँ भी राजनैतिक प्रभाव को बढ़ाने का प्रयत्न करने लगी। दूसरे, संविधान के द्वारा नागरिकों को जो समानता का अधिकार दिया गया उससे भी निम्न जातियों में राजनीतिकरण हुआ। इस प्रकार भारत की राजनैतिक व्यवस्था में जातिवाद का उदय लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के विकास के रूप में हुआ है। प्रो० रूडोल्फ के अनुसार, "भारत के राजनैतिक लोकतन्त्र के सन्दर्भ में जाति वह धुरी है जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों और तरीकों की खोज की जा रही है। यथार्थ में यह एक ऐसा माध्यम बन गई है कि इसके जरिए भारतीय जनता को लोकतान्त्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है।" तीसरे, डॉ० इकबाल नारायण के अनुसार जातीय राजनीति को प्रोत्साहन जातीय संरक्षण की उस व्यवस्था से भी मिला है जिसके द्वारा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीले आदि को संरक्षण दिया गया है। इस व्यवस्था ने जाति को प्रभावशाली बनाया और राजनीति पर जाति की पकड़ और भी मजबूत हो गई। इस वर्णन का स्पष्ट कि जातिवाद की राजनीति का उदय और विकास स्वतन्त्र भारत में हुआ है।

II. जाति का राजनैतिक रूप
(Political Dimensions of Caste)

प्रोफेसर रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक 'Caste in Indian Politics' में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का वैज्ञानिक ढ़ंग से वर्णन किया है। उनके अनुसार राजनीति में जातिवाद का अर्थ जाति का राजनीतिकरण है। जाति को अपने दायरे में खींचकर राजनीति उसे अपने काम में लाने का प्रयत्न करती है जबकि जाति या बिरादरी को राजनीति के द्वारा देश की व्यवस्था में भाग लेने का अवसर मिलता है। राजनीतिज्ञ भी जातिवाद से लाभ उठाते है।

जाति–व्यवस्था और राजनीति में अन्तःक्रिया के सन्दर्भ में डॉ० रजनी कोठारी ने जाति–प्रथा के तीन रूपों का वर्णन किया है

1. **जाति-व्यवस्था का लौकिक रूप (Secular Aspect of Caste System)** – जाति–प्रथा के लौकिक रूप का डॉ० कोठारी ने व्यापक दष्टिकोण से अध्ययन किया है। उनका कथन है कि जाति–व्यवस्था की सामाजिक बातों, जैसे जाति के अन्दर विवाह, रीति–रिवाज आदि, को तो मान्यता दी गई है परन्तु इस बात की उपेक्षा कर दी गई है कि जातियों में आपसी गुटबन्दी रही है और वे लगातार अपनी प्रतिष्ठा तथा पद को बढ़ाने का प्रयत्न करती है। उदाहरण के लिए, विभिन्न राज्यों में, विशेषकर बिहार में, ऊँची जातियों और पिछड़ी जातियों के मध्य लगातार संघर्ष चलता रहता है। जाति–व्यवस्था के लौकिक पक्ष के दो रूपों का उल्लेख किया गया है। प्रथम, शासकीय रूप अर्थात् जाति की पंचायत और गाँव की पंचायत। दूसरे, राजनैतिक रूप, जिसमें जाति की आन्तरिक गुटबन्दी और जातियों से गठजोड़ होता रहता है। इन जातियों का सम्बन्ध अब लोकसभा और विधानसभाओं से हो गया है।

2. **जाति-व्यवस्था का एकीकरण रूप (Integrating Aspect of Caste System)** – जाति का दूसरा राजनैतिक रूप एकीकरण या समाज को बाँधने का है। जाति–प्रथा जन्म के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का समाज में स्थान तथा व्यवसाय और भूमिका निश्चित कर देती है। सभी मनुष्यों को जाति के प्रति लगाव रहता है और यही लगाव राजनैतिक व्यवस्था के प्रति भी विकसित होता है। इस प्रकार जातियाँ जोड़ने वाली कड़ी के रूप में कार्य करती हैं। भारत की लोकतन्त्रीय व्यवस्था में सत्ता प्राप्त करने के लिए जातियों में प्रतिद्वन्द्विता होती है, गठजोड़ होते हैं जो बदलते रहते है।

3. **जाति-व्यवस्था का चैतन्य रूप (Consciousness Aspect of Political System)** – जाति–व्यवस्था का तीसरा रूप चेतना बोध है। राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के कारण जाति विशेष की स्थिति भी बदलती है। कुछ जातियाँ अपने को उच्च समझती है और उनकी समाज में विशेष प्रतिष्ठा भी होती है। इस कारण वे अन्य जातियों को अपने साथ जोड़ने की कोशिश करती है। इससे व्यवहार में अलग–अलग स्तर पर जाति–व्यवस्था में लोच आ जाती है। इस कार्य के लिए चार साधन अपनाए जाते हैं। प्रथम, संस्कतिकरण, जिसके अनुसार छोटी जातियाँ सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों के रीति–रिवाजों की नकल करती है। इसे ब्राह्मणीकरण कहा जाता है। दूसरे, लौकिकीकरण, जिसके अनुसार अब्राह्मण जातियाँ ब्राह्मणों की नकल करने की प्रवत्ति छोड़ देती है। यें जातियाँ अपनी उच्चता सिद्ध करने के लिए अपना सम्बन्ध पौराणिक पुरूषों से जोड़ने का प्रयत्न करती है। तीसरे, राजनीति में भागीदारी का ढ़ग है। इसमें कुछ जातियाँ राजनीति में भाग लेने लगीं और उन्हें समाज में उच्च स्थिति प्राप्त हो गई। आन्ध्र प्रदेश और बिहार इसके उदाहरण हैं। यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि जातियों की राजनीति में स्थिति परिवर्तित होती रहती है।

III. जाति और राजनीति में अन्तःक्रिया के तीन चरण
(Three Stages of Interaction between Caste and Politics)

डॉ० कोठारी ने जाति और राजनीति में अन्तःक्रिया के तीन चरणों का वर्णन किया है जो निम्न प्रकार है :

1. **प्रथम चरण** – प्रथम चरण में शक्ति और प्रभाव समाज की प्रतिष्ठित जातियों तक ही सीमित रहे। जिन जातियों ने उच्च शिक्षा प्राप्त करके आधुनिक बनने का प्रयत्न किया वे प्रतिष्ठित जातियों में गिनी जाने लगी। इन जातियों ने अधिकार और पद को प्राप्त करने के लिए राजनैतिक संगठन बनाए जिसके कि दो जातियों में प्रतिद्वन्द्वता आरम्भ हो गई। उदाहरण के लिए मद्रास और महाराष्ट्र में ब्राह्मण और अब्राह्मण के मध्य, राजस्थान में राजपूत और जाटों के मध्य, आन्ध्र प्रदेश में कमा और रेड्डी के मध्य प्रतिद्वन्द्विता चलती रही।

2. **दूसरा चरण** – इस चरण में पद और लाभ के आकांक्षियों की संख्या में वद्धि हुई और विभिन्न जातियों मे प्रतिद्वन्द्वता के साथ–साथ जाति के अन्दर भी गुट बनने लगे। प्रतिद्वन्द्विता नेताओं के पीछे गुट बन जाते हैं। इन गुटों में विभिन्न जातियों के लोग होते हैं। चुनाव में समर्थन प्राप्त करने के लिए अन्य जातियों को भी राजनैतिक पद और लाभ में हिस्सा देकर मिलाने का प्रयत्न किया जाता है। कभी–कभी विभिन्न जातियों में भी प्रतिस्पर्धा पैदा करने के लिए संगठन बनाए जाते हैं। इस चरण में ब्राह्मण और कायस्थों के स्थान पर व्यावसायिक और कषक जातियों के नेताओं के संख्या में वद्धि हुई।

3. **तीसरा चरण** – तीसरे चरण में एक और तो राजनैतिक मूल्यों की प्रधानता हुई और जाति–पाति से लगाव कम हुआ वहाँ दूसरी ओर शिक्षा, नये–शिल्प और शहरीकरण के कारण समाज में परिवर्तन आया। पुराने पारिवारिक बन्धन टूटन लगे। लोग काम–धन्धों के लिए शहरों में जाकर बसने लगे जिससे कि जाति की भावना ढ़ीली पड़ने लगी और सामाजिक व्यवहार अपनी जाति तक सीमित न रहा। राजनैतिक संस्थाओं का ढ़ाँचा व्यापक होने लगा और जाति को नया रूप प्राप्त हुआ। आधुनिक राजनीति में भाग लेने की दष्टि में परिवर्तन हो गया। जाति अब राजनैतिक समर्थन या शक्ति का आधार नहीं रही यद्यपि इसका अधिक–से–अधिक प्रयोग हो रहा है। इस चरण में चुनाव की राजनीतियों में अनेक जातियों का गुट बनता है। इससे स्पष्ट है कि तीसरे चरण में जातिवाद की राजनीति में परिवर्तन हो गया है।

इस वर्णन के आधार पर यह कहा जा सकता है। कि जाति और राजनीति ने एक–दूसरे को प्रभावित किया है। रजनी कोठारी के अनुसार, "राजनीति में जातिवाद और जाति का राजनीतिकरण दोनों प्रक्रियाएँ एक साथ दिखाई देती हैं।

डॉ० कोठारी के अनुसार राजनीति में जाति सम्बन्धी निष्कर्ष का वर्णन निम्नलिखित भागों में किया जा सकता है :

(1) वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था में भाग लेने के कारण पहले तो जाति–प्रथा पर पथकता की प्रवत्ति का प्रभाव पड़ा, बाद में जाति भावना का सामंजस्य हुआ और इसने राजनैतिक संगठन में सहायता दी।

(2) राजनीति में भाग लेने से लोगों की दष्टि में परिवर्तन हो गया। वे समझ गए कि केवल जाति और सम्प्रदाय से काम नहीं चल सकता है। इसलिए उन्होंने विभिन्न जातियों के साथ मेल करना शुरू किया जिससे कि जाति–भावना ढ़ीली पड़ने लगी।

(3) जातियों के आधार पर संगठन बनते हैं और वे दबाव–समूहों के रूप में कार्य करते हैं।

(5) जातियों और सम्प्रदायों के फलस्वरूप विभिन्न जातियों में राष्ट्रीय भावनाओं का उदय हुआ है जिससे उनकी पथकता कम हो गई और उनका राजनैतिक एकीकरण हुआ है।

जाति के राजनीतिकरण की विशेषता

भारतीय राजनीति में जाति की विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित भागों में किया जा सकता है :

(1) जाति व्यक्ति को बाँधने वाली कड़ी है जिसने जातीय संघो और जातीय पंचायतों की राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं को बढ़ाया है। जैस लिगांयत, कबीर पंथी, सिक्ख आन्दोलन आदि।

(2) शिक्षा, शहरीकरण और आधुनिकीकरण से जातियाँ समाप्त नहीं हुई है परन्तु उनमें एकीकरण की प्रवत्ति बढ़ी है।

(3) राजनीति में प्रधान जाति की भूमिका इस आधार पर निर्भर है कि किसी क्षेत्र में उस जाति की संख्या कितनी है।

(4) जातियों में गुटबन्दी के कारण विभिन्न जातियों को कुछ सुविधाएँ प्रदान होती है।

(5) चुनाव में राजनीतिज्ञ जातियों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

(6) जाति और राजनीति के सम्बन्ध परिवर्तनशील हैं।

(7) जाति की भूमिका राष्ट्रीय स्तर पर इतनी प्रभावशाली नहीं है जितनी कि स्थानीय राजस्तर पर है।

भारतीय राजनीति में 'जाति' की भूमिका
(Role of 'Caste' in Indian Politics)

जयप्रकाश नारायण में एक बार कहा था कि 'जाति भारत में अत्यधिक महत्वपूर्ण दल है'। हेरल्ड गोल्ड के शब्दों में, 'राजनीति का आधार होने के बजाय जाति उसको प्रभावित करने वालों एक तत्व है।'

जाति–व्यवस्था भारतीय समाज का परम्परागत पक्ष है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात संविधान और राजनीतिक संस्थाओं के निर्माण से आधुनिक प्रभावों ने भारतीय समाज में धीरे–धीरे प्रवेश करना आरम्भ कर दिया। आधुनिक प्रवेश करना आरम्भ कर दिया। आधुनिक प्रभावों के फलस्वरूप वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन प्रारम्भ हुए और जातिगत संस्थाएं सहायक महत्वपूर्ण बन गयी क्योंकि उनके पास भारी संख्या में मत थे और लोकतन्त्र में सत्ता प्राप्ति हेतु इन मतों का मूल्य था। जिन्हें सत्ता की आकांक्षा थी उन्हें सामान्य जनता के पास पहुंचने के लिए सम्पर्क सूत्र की भी आवश्यकता थी। सामान्य जनता को अपने पक्ष में मिलाने के लिए यह भी जरूरी था कि उनसे उस भाषा में बात की जाए जो उनकी समझ में आ सके। जाति–व्वस्था इस बात को प्रकट करती थी। इस पष्टभूमि का अध्ययन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है :

1. **निर्णय प्रक्रिया के जाति की प्रभावक भूमिका (Influential Role of Caste in Decision Making Proccss) :** भारत में जातियां संगठित होकर राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ, संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण के प्रावधान रखे गए है जिनके कारण से जातियां संगठित होकर सरकार पर दबाव डालती है कि इन सुविधाओं को अधिक वर्षो के लिए अर्थात जनवरी 2010 तक के लिए बढ़ा दिया जाए। अन्य जातियां चाहती है कि आरक्षण समाप्त किया जाए अथवा इसका आधार सामाजिक आर्थिक स्थिति ही अथवा उन्हें आरक्षित सूची में शामिल किया जाए ताकि वे इसके लाभ से वंचित न रह जाए।

2. **राजनीतिक दलों में जातिगत आधार पर निर्णय (Caste oriented decisions at the level of Political Parties)** – भारत में सभी राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियों का चयन करते समय जातिगत आधार पर निर्णय लेते हे। प्रत्येक दल किसी भी चुनाव क्षेत्र में प्रत्याशी मनोनीत करते समय जातिगत गतधत का अवश्य विश्लेषण करते हे। 1962 में गुजरात के चुनाव में स्वतन्त्रपार्टी की सफलता का राज उसका क्षेत्रीय जाति के समर्थन में छिपा हुआ था। हरिजन–मुसलमान–ब्राह्मण शक्तिपुंज बनाकर ही 1971 का आम चुनाव कांग्रेस ने जीता था। 1977 में जनता पार्टी की विजय का कारण उसक मुसलमानों ओर हरिजनों के साथ उच्च जातियों का प्राप्त समर्थन था। जनवरी 1980 के समय लोकसभा चुनावों में कांग्रेस (इन्दिरा) की विजय का कारण था कि श्रीमती गांधी हरिजनों, ब्राह्मण और मुसलमानों का जातीय समर्थन जुटाने में सफल हो गयी। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावों में उत्तर प्रदेश और विहार में जनता दल की अपूर्व विजय का एक कारण जाट–राजपूत समर्थन था। कांग्रेस सहित सभी राजनीतिक दलों में जातीय आधार पर अनेक गुट पाए जाते है जिनमें प्रतिस्पर्द्धा विद्यामान रहती है।

   "लोगो की जाति–पाति के प्रति निन्दा को राजनीतिज्ञों ने थोक वोट के रूप में देखा, सत्ता में आने के लिए सदनों में बहुमत प्राप्त करने के उद्देश्य से राजनीतिज्ञों ने जाति–पाती के आधार पर उम्मीदवारों के चयन और सत्ता में आने पर उन्हें मन्त्रिपद एवं अन्य लाभ के पद उपलब्ध कराए।"

(3) **जातिगत आधार पर मतदान व्यवहार (Caste oriented voting behavior)** –भारत में चुनाव अभियान में जातिवाद को साधन के रूप में अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव लड़ रहा है उस निर्वाचन क्षत्रों में जातिवादी भावना को प्रायः उकसाया जाता है ताकि सम्बन्धित प्रत्याशी की जाति के मतदाताओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके। जनवरी 1980 के चुनावों में उत्तर प्रदेश और कुछ बिहार के हिस्सो में लोकदल की सफलता पिछड़ी जातियों की राजनीतक महत्वाकांक्षाओं का प्रतीक है। उत्तर प्रदेश के चुनावों में चरणसिंह की सफलता सदैव ही जाट जाति के मतों की एकजुटता पर निर्भर रही है। केरल के चुनावों में साम्यवादी और मार्क्सवादी दलों से भी वोट जुटाने के लिए सदैव जाति का सहारा लिया है।

   "मंडल विवाद के कारण 1990–91 में समाज जाति के आधार पर दो भागों में बंट गया और गांवो शहरों में जातियुद्ध या छिड़ गया। राजनीतिक पार्टियों सिर्फ एक चुनावी मुद्दे पश्चात करने लगी–पिछड़े बनाम आगडें का।

   भाजपा के अयोध्या आन्दोलन की प्रतिक्रिया में देश के दो बड़े राज्यों– उत्तर प्रदेश और विहार में–जहां लोकसभा की 139 सीटे है, एक अनूठे सामाजिक, राजनीतिक गठजोड़ का जन्म हुआ जिसके जनक क्रमशः मुलायमसिंह यादव और लालू प्रसाद यादव थे। मुसलमानों और यादवों को मिलाकर बने इस 'माइ' गठजोड़ से दोनों राज्यों के मतदाताओं का एक बड़ा हिस्सा एकजुट हो गया।

   जिस प्रकार जापान में मतदान समूह–निर्धारित (group determinant) है, ब्रिटेन में यह वर्ग निर्धारित है, अमेरिका में यह प्रजाति निर्धारित है, उसी प्रकार भारत में जाति निर्धारित है जो जातियां जातिय संस्तरण में सबसे नीचे है, उनके लिए

मतदान की प्रक्रिया कई प्रकार से एक शक्तिशाली क्रिया हो सकती है। जाति का सामाजिक व आर्थिक स्तर जिनका निम्न होगा उतना ही उनक के मत का अधिक महत्व होगा। कोहन, मेयर, कोठारी, वर्मा और भांभरी, रामाश्रय राय आदि अनेक विद्वानों के भारत में कहन अध्ययनों से पता चलता है कि जातियां अपनी मत शक्ति के कारण प्रभाव डालने में सक्षम भूमिका निभाती रही है और शक्ति सौदेबाजी के लाभ प्राप्त करती रही है। ये जातियां राजनैतिक संस्थाओं में उच्च जातियों के नेतत्व की चुनौती देती रही है, यद्यपि उन्हें सदैव सफलता प्राप्त नहीं होती है। रजनी कोठारी की भी मान्यता है कि जातियां अपनी पहचान बनाए रखती है और सत्ता के लिए संघर्ष करती है। आन्द्रे बेतेई ने कहा है कि मतदान में जाति निष्टाओं (loyalties) का शोषण किया जाता है। जातियों को तोड़कर नवीन गठबन्धन भी स्थापित होते हैं। रूडोल्फ (Rudolph) का मत है कि जाति संघों ने जाति की स्फूर्ति प्रदान की है और भारत में जनतन्त्र ने जातियों को महत्वपूर्ण राजनैतिक भूमिका निभाते के योग्य बनाया है। जाति संगम (Federations) एक जाति से ही नहीं बल्कि अनेक जातियों से मिलकर बनते है। कभी–कभी उनके राजनैतिक उद्देश्य एक समान होते है, उदाहरणार्थ, हरियाणा में गूजरों, जाटों और राजपूतों ने 1989 के चुनावों में इसी प्रकार क जाति संगम बना लिए थे।

डी.एल.सेठ (Econimic and Political Weekely, Janaury 1970) ने 1967 में भारत के विविध चुनाव क्षेत्रों के 2287 व्यक्तियों का उध्ययन यह पता लगाने के लिए किया कि मतदान को प्रभावित करने वाले कौन–कौन से कारक है। उन्होंने अपने अध्ययन से पाया कि केवल 1.0% मामलों में परिवार के वद्ध जनों की सलाह को ममहत्व दिया गया, 20% मामलों में पारिवारिक विचार–विमर्श को, और 49% मामलों में मतदाता के स्वयं के निर्णय को महत्व प्रदान किया गया था। 4% मामलों में निर्धारक कारक का निश्चित ज्ञान न हो सका। इसके विपरीत मउसी वर्ष पूना में 1000 व्यक्तियों के इसी प्रकारके अध्ययन से ज्ञात हुआ कि जाति ने 58% प्रभावित किया, 42% मामलों में धन ने, 36% मामलों में पार्टी संगठन ने, 21% में पार्टी विचारधारा (ideology) ने तथा 21 मामालों में प्रत्याशी की पष्ठभूमि ने प्रभावित किया। रामाश्रय राय ने 1969 में चार राज्यों–बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब व पश्चिम बंगाल में हुए मध्यावधि चुनावों का एक अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि 14% मामलों में समूह के दबाव (जाति और परिवार) ने मतदान को प्रभावित किया, जबकि 23% मामलों में प्रत्याशी की ख्याति ने, 38% मामलों में पार्टी निष्ठा ने, और 9: मामलों में विविध कारकों, ने 15% मामलों में सही कारक का पता न लग सका।

चुनाव के लिए प्रत्याशी के चुनने में राजनैतिक दल अकसर चुनाव क्षेत्र की जाति–संरचना पर अधिक ध्यान देते है। इस तथ्य ने अनेक निम्नस्तरीय–जातियों को उनकी संख्यात्मक शक्ति के आधार पर राजनैतिक दष्टि से प्रभावशाली बना दिया हे। 1960 व 1970 के दशकों में भारत में सम्पन्न हुए चुनाव पर हुए अध्ययन से ज्ञात होता है कि : (1) मध्य व निम्न जाति के लाग कांग्रेस की और झुके हुए थे, (2) उच्च जाति के लोग विरोधी दलों का चोट देले के पक्ष में थे और (3) अनुसूचित जाति के लोग कांग्रेस के पक्ष में थे। किन्तु 1980 दशक के अन्त में और 1990 दशक के आरम्भ के चुनावों में उपरोक्त सिद्धान्त निरर्थक सिद्ध हुए। कोठारी ने हाल में लिखा है कि राष्ट्रीय राजनीति में जाति का महत्व कम होता जा रहा है। हैरोल्ड गूल्ड (Economic and Political Weekly August, 1977) भी इसी विचार के है कि भारत में अब राजनीतिक निर्धारक के रूप में जाति का महत्व कम हो रहा है। परन्तु कुछ विद्वानों को मान्यता है कि दिसम्बर 1994 में उसराज्यों में होने वाले चुनावों में दो तीन राज्यों में जाति का वोटो पर प्रभाव अवश्य दिखाई देता है। आज जो वास्तविक कारक मतदाता को प्रभावित करते है उनमें से कुछअचेतन व कुछ संचेत शक्तियां है, जिनमें से कुछ को सरलता से पहचाना जा सकता है, जबकि दूसरी भ्रमक है, यद्यपि वे भी समान रूप से महत्वपूर्ण निर्धारक हो सकता है।

(4) **मन्त्रिमण्डलों के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व (Caste representation in the ministry making)**–राजनीतिक जीवन में जातीयता का सिद्धान्त इतना गहरा धस गया है कि राज्यों के मन्त्रिमण्डल में प्रत्येक प्रमुख जाति का मन्त्री होना चाहिए। यह सिद्धान्त प्रान्तों की राजधानियों से ग्राम पंचायतों तक स्वीकत हो गया कि प्रत्येक स्तर पर प्रधान जाति को प्रतिनिधित्व मिलना ही चाहिए। यहां तक कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में भी हरिजनों, जनजातियों, सिक्खों, मुसलमानों, बाह्मण, जाटों, राजपूतों और कायस्थों को किसी न किसी रूप में स्थान अवश्य दिया जाता है।हाल ही में अजीतसिंह को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में जातीय पष्टभूमि और उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में जातीय समीकरण को पुख्ता करने की मंशा से ही शामिल किया गया है।

(5) **जातिगत दबाव समूह (Caste as Pressure Groups)** – मेयर के अनुसार, "जातीय संगठन राजनीतिक महत्व के दबाव समूह के रूप में प्रतत्त है।" जातिगत दबाव समूह अपने न्यस्त स्वार्थो एवं हितों की पूर्ति के लिए नीति निर्माताओं को जिस ढंग से प्रभावित करने का प्रयत्न करते है उससे तो उनक तुलना यूरोप और अमरीका में पाए जाने वाले ऐच्छिक समुदायों से की जा सकती है।

अनेक जातीय संगठन और समुदाय जैसे तमिलनाडु में नाडार जाति संघ, गुजरात में क्षैत्रिय महासंघ, बिहार में कायस्थ संभा, आदि राजनीतिक मामलों में रूचि लेने लगते है और अपने–अपने संगठित बल के आधार पर राजनीतिक सौदेबाजी भी करते है। यद्यपि देश की सभी प्रमुखजातियों को इस प्रकार पूर्णतया संगठित नहीं किया जा सका है। मगर जो जातियां इस प्रकार संगठित नहीं हो सकीं, वे राजनीतिक सौदेबाजी में सफल नहीं रही और उनके सदस्यों को अपनी आवाज उठाने के लिए उपद्रव और तोड–फोड का सहारा लेना पड़ा।

(6) **जाति एवं प्रशासन (Castes and Administration)** – लोकसभा और विधानसभाओं के लिए जातिगत आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है, केन्द्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियों एवं पदोन्नति के लिए जातिगत आरक्षण का प्रावधान है। मेडिकल एवं इन्जीनियरिंग कॉलेजों की भर्ती हेतू आरक्षण के प्रावधान मौजूद है। चरणसिंह सरकार ने भी अल्पकाल में एक अध्यादेश के माध्यम से पिछड़ी जातियों के लिए केन्द्रीय सरकार की सेवा में आरक्षण व्यवस्था घोषित करने की मंशा प्रकट की थी और इस सम्बंध में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की भी ताक में रख दिया था। यदि यह अध्यादेश लागू हो मध्यम जातियों, जैसे अहीर, कुर्मी आदि को भी आरक्षण के अवसर मिल जाये। राष्ट्रीय मोर्चो सरकार ने अगस्त 1991 में मण्डल रिपोर्ट लागू कर नौकरियों में पिछड़ी जातियों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया। ऐसा भी माना जाता है कि भारत में स्थानीय स्तर के प्रशासनिक अधिकारी निर्णय लेते समय तथा निर्णयों के क्रियान्वयन में प्रधान और प्रतिष्ठित अथवा संगठित जातियों के नेताओं से प्रभावित हो जाते है।

(7) **राज्य राजनीति मे जाति (Caste in State Politics)** – माईकल ब्रेचर के अनुसार अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीति पर जातिवाद का प्रभाव अधिक है। यद्यपि किसी भी राज्य की राजनीति जातिगत प्रभावों को अछूती नही रही है तथापि बिहार, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा, राजस्थान और महाराष्ट्र राज्यों की राजनीति के राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ और जनजाति प्रमुख प्रतिस्पर्द्धा जातियां है। पथक झारखण्ड राज्य की मांग वस्तुतः एक जातीय मांग ही रही है।

राज्य की मांग ही रही है। केरल मे साम्यवादी की सफलता का राज यही है कि उन्होने इजावहा जाति को अपने पीछे संगठिमत का लिया। आन्ध्र प्रदेश की राजनीति काम्मा और रेड्डी जातियों के संघर्ष की कहानी है। काम्माओं ने सामयवादी दल का समर्थन दिया तो रेड्डी जाति ने कांग्रेस दल का। महाराष्ट्र की राजनीति मे मराठों, ब्राह्मणों और महरों में प्रतिस्पर्द्धा रही है। गुजरात की राजनीति में दो ही जातियां प्रभावी है– पाटीदार और क्षेत्रिय। केरल की राजनीति में अन्तिम दो समुदायों के इर्द–गिर्द घूमती रही है–हिन्दू, क्रिश्चियन और मुसलमान। केरल की राजनीति से अन्तिम दो प्रमुख राजनीतिक शक्तियों के रूप में सक्रिय है। कहने की तो वहां सभी प्रकार के राजनीतिक दल हे, किन्तु उन्हें ध्यानपूर्वक देखा जाए तो पता चलेगा कि वे सब जातीय संगठन है। मुस्लिम लीग मुसलमानों की हे, साम्यवादी दलों में इजावाहा जाति के अलावा हिन्दुओं के कुछ प्रमुख वर्गो का प्रभाव देखा जा सकता है। राजस्थान की राजनीति में जाट राजपूत जातियों की प्रतिस्पर्द्धा प्रमुख रही है। संक्षेप में राज्यों की राजनीति में शांति का प्रस्ताव इतना अधिक प्रतीत हो रहा है कि टिंकर जैसे विद्वानों ने राज्यों की राजनीति को जातियों की राजनीति की संज्ञा दे डाली है।

देश के सर्वाधिक आबादी वाले राज्यों उत्तर प्रदेश और बिहार में जाति की राजनीति ज्यादा ही खुलकर सामने आती रही। उत्तर प्रदेश में चरणसिंह और विहार में कर्पूरी ठाकुर के नेतत्व में जात–पात की खुलकर बढ़वा दिया। देवी लाल ने भी हरियाणा में जाति की बैसाखियों पर ही सत्ता के शिखर छूने का प्रयास किया। बिहार में लालूप्रसाद यादव के नेतत्व में जाति की राजनीति की जड़ मजबूत हुई, तो उत्तर प्रदेश में मुलायमसिंह यादव व कांशीराम को प्रतिनिधि मायावती ने अपने–अपने जातीय केन्द्र बैकों के आधार पर राज्य की जातीय संघषों को और धकेल दिया।

मुख्य राज्यों में जाति एवं राजनीति?

1. **तमिलनाडू:** यद्यपि जाति के प्रति निष्ठा प्रत्येक राज्य में पाई जाती है, परन्तु मद्रास में यह सबसे अधिक उग्र रूप में है। मद्रास में ब्राह्मणों का एक वर्ग बन गया जो ब्राह्मणों के अस्तित्व का ही विरोधी है। इस वर्ग के उदय ने द्रविड़ों के

पथक्तावादी आन्दोलन को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। मॉरिस जोन्स (Morris Jones) के कथनानुसार, "यह कहा जा सकता है कि प्रायः सभी स्थानों पर राजनीतिक सम्बन्धों में जाति के प्रति वफादारी एक कारक के रूप में पाई जाती है, मद्रास जैसे राज्य में ब्राह्मणों के वेगपूर्ण उदय ने राज्य की राजनीतिक में प्रधानता ही प्राप्त नहीं की है, वरन् द्रविड़ स्थान के पथकतावादी आन्दोलन में महत्वपूर्ण योग दिया है, जिसकी अभिव्यक्ति द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के रूप में हुई है।" (It can be said while caste loyalty is almost everywhere present as a factor of political relations, in a State like Madras, the rapid rise of the non-Brahmins has not merely dominated the whole shape of Madras politics but has in particulars made a significant contribution to the movement for Dravidian separatism now expressed by the Dravid Munetra Kadgham.)

1909 में मार्ले–मिण्टो सुधारों के लागू होने के पश्चात् मद्रास में भी साम्प्रदायिकता की लहर फैली। 1909 से पूर्व मद्रास में गैर–ब्राह्मण जातीय समूहों की वहां की राजनीति में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं थी। गैर–ब्राह्मण लोगों के हितों की उपेक्षा की जाती थी। ऊंचे–ऊंचे पदों पर ब्राह्मण ही आसीन थे। धीरे–धीरे गैर–ब्राह्मण जातीय समूहों में जागति पैदा हुई। श्री शंकरन नायर, श्री पी.थेगोरायो चेट्टी तथा डॉ. टी.एस.नायर जैसे नेताओं ने गैर–ब्राह्मण आन्दोलन चलाया, जिसके फलस्वरूप 1916 में जस्टिस पार्टी (Justice Party) की स्थापना हुई।

जस्टिस पार्टी का उद्देश्य मद्रास में ब्राह्मणों को सत्ता में आने से रोकना था। गैर–ब्राह्मणों का विचार था कि यदि तत्कालीन परिस्थितियों में 'श्वशासन' (Self Government) की स्थापना हुई तो ब्राह्मणों का शासन स्थापित हो जाएगा। इतना ही नहीं, वे कांग्रेस पार्टी को भी ब्राह्मणों की पार्टी मानते थे। दूसरी ओर कांग्रेस जस्टिस पार्टी के विरूद्ध थी, क्योंकि जस्टिस पार्टी का लक्ष्य बड़ा संकुचित था। जस्टिस पार्टी ने मुस्लिम लीग की तरह गैर–ब्राह्मणों के लिए पथक चुनाव क्षेत्रों के लिए आन्दोलन शुरू किया और उन्हें सफलता भी मिली। 1919 के भारत सरकार अधिनियम के अधीन विधानसभा में जस्टिस पार्टी के लिए स्थान सुरक्षित रखे गए। पथक् निर्वाचन क्षेत्रों के फलस्वरूप जस्टिस पार्टी की शक्ति में वद्धि हुई।

बाद में 'द्रविड़ कड़गम' (Dravid Kadgham) की नींव पड़ी। 'द्रविड़ कड़गम' आन्दोलन के जन्मदाता श्री रामास्वामी नायर थे। श्री सी.एन. अन्नादुराई उनके मुख्य सहायक थे। 'द्रविड़ कड़गम पार्टी' ने छोटे स्तर के लोगों की भावनाओं को उत्तेजित किया और उन्हें उत्तरी भारत के लागों के विरूद्ध एक शक्ति के रूप में खड़ा कर दिय। 1938 में मद्रास में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के नेतत्व में कांग्रेस की सरकार स्थापित हुई और हिन्दी का अनिवार्य विषय (Compulsory Subject) का दर्जा दिया गया। यहां से मद्रास में हिन्दी–विरोधी आन्दोलन शुरू हुआ। रामास्वामी नायर ने 72 वर्ष की आयु में 28 वर्ष की युवती से शादी कर ली, जिस पर सी.एम. अन्नादुराई के नेतत्व में बहुत लोगों ने 'द्रविड़ कड़गम' पार्टी को छोड़ दिया और नई पार्टी 'द्रविड़ मुनेत्र कड़गम' की स्थापना की। अन्नादुराई ने दक्षिण एवं उत्तर के प्रश्न पर पार्टी का संगठन किया। 1967 में इस पार्टी का भारी सफलता मिली और अन्नादुराई के नेतत्व में 'द्रविड़ मुनेत्र कड़गम' की सरकार बनी। 1972 में 'द्रविड़ मुनेत्र कड़गम' में फूट पड़ गई और एक नए दल अद्रमुक (A.D.M.K.) का निर्माण हुआ। 1977, 1980, 1985 और 1991 के चुनाव में अद्रमुक का स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ और इस दल की सरकार का निर्माण हुआ। अतः तमिलनाडू में जातिवाद की प्रमुख भूमिका रही है।

(2) **कर्नाटकः** कर्नाटक अर्थात् मैसूर में जातिवाद की जड़ें बहुत गहरी हैं। कर्नाटक राज्य की 5 करोड़ की जनसंख्या में लगभग 42 जातियां हैं, जिनमें लिंगायत तथा ब्राह्मणों का महत्वपूर्ण प्रभाव है। यहां विभिन्न राजनीतिक दलों, शिक्षा–संस्थाओं, जातीय कोष, पंचायतों आदि द्वारा जातीयता को बढ़ावा दिया गया है। मैसूर में मठाधीश राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं तथा चुनावों को प्रभावित करते है। राजनीतिक नेता इन धार्मिक नेताओं से सम्बन्ध बनाए रखते हैं, ताकि चुनाव के समय इनका लाभ उठाया जा सके। आज तक वहां पर वहीं मुख्यमंत्री सफल रहा है जिसने जातीय हितों के लिए कार्य किया है। 1947 के चुनाव में के.पी.रेड्डी मुख्यमंत्री बने, जो वोक्कालिग जाति के थे। 1950 में मैसूर 'बी' वर्ग के राज्यों में आ गया और कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बना। 1952 में मैसूर विधानसभा के चुनाव में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ और हनुमन्तैय्या अपनी जाति (वोक्कालिग) के समर्थन के आधार पर मैसूर के मुख्यमंत्री बने। हनुमन्तैय्या की सरकार ने अपनी जाति के हितों की ओर ध्यान न देकर सार्वजनिक हितों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें त्याग–पत्र देना पड़ा। 1957 के पश्चात् सत्ता वोक्कालिगों के हाथ से निकल कर लिंगायतों के हाथ आ गई, क्योंकि 1957 में कन्नड़–भाषी क्षेत्र को मैसूर में सम्मिलित किया गया। निजलिंगप्पा मैसूर के मुख्यमंत्री बने, परन्तु उन्हें 15 महीने के बाद ही त्याग–पत्र देना पडत्र क्योंकि उन्होंने मुख्यमंत्री बनने के पश्चात् जातिवाद के स्थान पर उदारवादी रूख

अपनाया था। 1962 के चुनाव के पश्चात् निजलिंगप्पा पुनः मुख्यमंत्री बने और उनके मन्त्रिमण्डल मे अधिकांश सदस्य लिंगायत जाति के थे। निजलिंगप्पा के बाद बी.डी.जत्ती और एस.आर. कान्ति मुख्यमंत्री बने और इन दोनों मुख्यमंत्रियों के काल में लिंगायतों का प्रभाव रहा। 1967 के चुनाव के पश्चात् वीरेन्द्र पाटिल मुख्यमंत्री बने। इस प्रकार 1972 तक लिंगायतों का प्रभाव बना रहा। 1972 के चुनाव में श्रीमती गांधी ने नेतत्व में कांग्रेस को मैसूर में सफलता मिली और देवराज अर्स को मुख्यमंत्री बनाया गया। अतः कर्नाटक की राजनीति में जातिवाद का बोलबाला है।

(3) **बिहारः** तमिलनाडू व कर्नाटक के समान बिहार की राजनीति में भी जाति का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है और आज भी है। डॉ. सुभाष कश्यप के विचारानुसार, बिहार उन राज्यों में से है, जहां सबसे पहले जाति का राजनीतिकरण हुआ। ब्रिटिश शासनकाल में बिहार को एक पथक प्रान्त बनाने के कायस्थ जाति की महत्वाकांक्षाओं का विशेष योग था। इस जाति ने बिहार की सारी नागरिक संस्थाओं पर अपनी प्रभुता स्थापित कर रखी थी। कायस्थ शिक्षा के क्षेत्र मे काफी आगे बढ़े हुए थे और अधिकांश सरकारी नौकरियों पर और विधि, चिकित्सा तथा अध्यापन जैसे व्यवसायों में भी उन्होंने अपना अधिपत्य जमा रखा था। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहारों, राजपूतों और ब्राह्मणों की प्रभुसत्ता थी। आज भी बिहार की राजनीति पर जाति का बहुत प्रभाव है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों का राजनीतिक क्षेत्र में काफी प्रभाव है। राजपूतों और भूमिहरों में आपस के सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे हैं।

बिहार में जाति–आधार पर हमेशा कांग्रेस में गुटबन्दी की राजनीति पनपी है। जातीय गुटबन्दी न केवल सरकार में बल्कि कांग्रेस के संगठन मे भी रही। कांगेस का एक गुट एस.के.सिन्हा का समर्थन करता था तथा दूसरा गुट ए.के.सिन्हा का। पं. जवाहर लाल नेहरू ने 1952 में स्वयं हस्तक्षेप किया, जिसके फलस्वरूप कांग्रेस के दोनों गुटों ने एस.के. सिन्हा को अपना नेता मान लिया। 1956 में जातीय गुटबन्दी का बहुत बोलबाला था। कांग्रेस हाईकमाण्ड ने 'पाटस्कर कमीशन' (Patskar Commission) को नियुक्त किया, जिसने अपनी रिपोर्ट में कहा कि के.वी. सहाय के अपने दल के ही उम्मीदवार ए.पी.सिन्हा ने के.वी.सहाय के विरुद्ध कार्य किया है। 1962 में बिहार ही राजनीति में परिवर्तन आया, जब विनोदानन्द को कांग्रेस विधायक दल का नेता चुना गया। विनोदानन्द के नेता चुने जाने पर ब्राह्मणों और भूमिहरों के सम्बन्धों में तनाव आ गया। 1967 के चुनाव के पश्चात् किसी दल को भी स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। अतः संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी, जिसके नेता महामाया प्रसाद सिन्हा थे। परन्तु महाया प्रसाद की सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रास होने पर कांग्रेस ने शोषित दल के साथ मिलकर सरकार बनाई। परन्तु यह सरकार भी अधिक दिनों तक न चल सकी और भोला पासवान शास्त्री बिहार के मुख्यमंत्री बने। यह दूसरा अवसर था जब पिछड़ी जाति का कोई व्यक्ति मुख्यमंत्री बना। यह सरकार भी अधिक दिन न चली और राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। मध्यावधि चुनाव के पश्चात् भी कोई सरकार स्थायी न बन सकी।

(4) **हरियाणाः** हरियाणा की राजनीति जातियों की राजनीति से अलग नहीं है। उदाहरण के लिए गुड़गांव और महेन्द्रगढ़ के जिलों में अहीर, अहीर उम्मीदवार को ही मत देता है, अन्य किसी को नहीं। यही बात राज्य के अन्य लोगों की अन्य जाति समूहों पर भी लागू होती है। चुनावों के समय प्रायः यह नारा सुनाई पड़ता है– "जाट की बेटी जाट को, जाट का वोट जाट को।" जाति की यह बीमारी केवल हिन्दूओं में ही नहीं, बल्कि मुसलमान भी अपनी जाति के उम्मीदवार को ही वोट डालते हैं। जून 1991 अप्रैल, 1996, 1997 ओर 2000 में विधानसभा के चुनाव में जाति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उम्मीदवारों का चयन जाति के आधार पर किया गया और मतदान को भी जाति ने बहुत अधिक प्रभावित किया।

(5) **पंजाबः** पंजाब की राजनीति में सामाजिक और व्यावसायिक दष्टि में रहने वाले क्षेत्रीय जाति के लोग अधिक प्रभावशाली रहे हैं। पिछले 30 वर्षों में पंजाब की राजनीति पर जाट जाति का नियन्त्रण हो गया है। जाट जाति का प्रभाव बढ़ने के दो कारण हैं – (1) गांवों में जाटों की जनसख्या बहुत अधिक है और (2) सिखों के धार्मिक मामलों पर अधिकतर जाटों का नियन्त्रण है। प्रताप सिंह कैरों, सन्त फतेह सिंह, गुरनाम सिंह, लछमन सिंह गिल, ज्ञान सिंह राड़ेवाला सभी जाट जाति के थे और आज भी जाट जाति का प्रभुत्व है।

अकाली दल जाति और धर्म के नाम पर चुनाव में लोगों से वोट मांगता है। 1967 के विधानसभा के आम चुनाव में अकाली दल को भारी सफलता मिली और जस्टिस गुरनाम सिंह के नेतत्व में सरकार का निर्माण हुआ। परन्तु अकालियों की आपसी फूट और श्रीमती इन्दिरा गांधी की राष्ट्रीय नीति के कारण मध्यावधि चुनाव में अकालियों को कोई विशेष सफलता न मिली और कांग्रेस की सरकार बनी। 1977 के चुनाव में अकाली दल को महान सफलता मिली और श्री प्रकाश सिंह

बादल के नेतत्व में अकाली दल ने जनता पार्टी के साथ मिलकर सरकार का निमा०ण किया। सितम्बर, 1985 में पंजाब विधानसभा के चुनाव में अकाली दल को महान सफलता मिली और अकाली दल के नेता व अध्यक्ष सरकार सुरजीत सिंह बरनाला मुख्यमंत्री बने। वास्तव में अकाली दल की सफलता जाटों पर निर्भर करती है। फरवरी, 1992 में पंजाब विधानसभा के चुनावों का सभी अकाली दलों ने बहिष्कार किया और जाटों व सिखों को चुनावों में भाग लेने से मना किया, जिस कारण केवल 28 प्रतिशत ही मतदान हुआ और कांग्रेस (इ) के बेअंत सिंह के नेतत्व में सरकार बनी। बेअंत सिंह की हत्या के बाद जाट समुदाय के हरचरण सिंह बराड़ पंजाब के मुख्यमंत्री बने। 1997 में पंजाब विधानसभा के चुनाव में अकाली दल को बहुमत प्राप्त हुआ और अकाली दल के नेता प्रकाश सिंह बादल मुख्यमंत्री बने।

अध्याय-17
धर्म एवं साम्प्रदायिकता
(Religion and Communalism)

भारतीय संविधान ने भारत को धर्म–निरपेक्ष (Secular) राज्य घोषित किया है परन्तु स्वतंत्रता–प्राप्ति के 46 वर्ष के बाद भी धर्म–निरपेक्ष समाज की स्थापना नहीं हो सकी। देश में साम्प्रदायिकता एक संक्रामक रोग की तरह फैल रही है। धार्मिक विभिन्नताओं के कारण तनाव पैदा होते रहते हैं, हिंसात्मक कार्यवाही होती हैः लागों की हत्यायें की जाती हैं तथा सम्पत्ति को लूटा व जलाया जाता है। जो समुदाय पहले कभी एक–दूसरे के समीप रहे हैं तथा जिनमें शादी–विवाह जैसे सामाजिक सम्बन्ध थे और जो अपने बच्चों को सहयोगी धर्म में बदलवा लिया करते थे, वे भी साम्प्रदायिकता की लपेट में आ गए हैं। साम्प्रदायिकता भारत के लोकतंत्र के लिए एक अभिशाप है। यदि इस समस्या का निराकरण नहीं किया गया, तो यह घातक सिद्ध होगी।

साम्प्रदायिकता का अर्थ
(Meaning of Communalism)

'साम्प्रदायिकता' शब्द का साधारण अर्थ सामाजिक–धार्मिक समूह की वह प्रवत्ति है जिसके अनुसार वह अपनी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक शक्ति के दूसरे ऐसे ही समूहों की तुलना में बढ़ाता है। विसेट स्मिथ के अनुसार, "एक साम्प्रदायिक व्यक्ति या व्यक्ति–समूह वह है जो कि प्रत्येक धार्मिक या भाषायी समूह को एक ऐसी पथक् सामाजिक तथा राजनैतिक इकाई मानता है जिसके हित अन्य समूहों से पथक होते हैं या विरोधी भी हो सकते हैं।" भारतीय राजनैतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में 'साम्प्रदायिकता' शब्द नकारात्मक रूप में समझा जा सकता है। साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत वे सभी भावनाएँ व कार्य शामिल हैं जिसमें किसी धर्म या भाषा के आधार पर किसी समूह विशेष के हितों पर बल दिया जाता है और उन हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर भी प्राथमिकता दी जाए तथा उस समूह में पथकता की भावना पैदा हो जाए या उसको प्रोत्साहन दिया जाए।

सम्प्रदायवादी दष्टिकोण राष्ट्र–विरोधी दष्टिकोण तक हो सकता है। उनको राष्ट्र–विरोधी इसलिए कहा जा सकता है कि वे राष्ट्रीय हितों की अवहेलना करके ऐसी मांगों के लिए कार्यवाही कर सकते हैं जो राष्ट्र की अखण्डता के लिए हानिकारक हों। भारत में साम्प्रदायिकता एक भयंकर समस्या है। इसके समूल नाश के लिए पहले यह आवश्यक है कि इसके उदय के कारणों को जाना जाए, इसके सभी पहलुओं–सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा राजनैतिक–का अध्ययन किया जाए और उन्हें दूर करने के उचित कदम उठायें जाएँ।

भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता
(Communalism in Indian Politics)

स्वतन्त्रता–प्राप्ति से पहले जहाँ भारत में साम्प्रदायिकता के कारण हिन्दू–मुस्लिम दंगे एक आम बात थी, वहाँ इसके कारण अब भी दंगे होते रहे हैं। प्रमुख समुदायों ने अपने को साम्प्रदायिक तथा धार्मिक कट्टरता के आधार पर संगठित किया है जिससे कि विभिन्न समुदायों में लड़ाई–झगड़े तथा हिंसात्मक कार्यवाहियाँ होती हैं। साम्प्रदायिक कट्टरता तथा मौलिकतावाद में दिन–प्रतिदिन वद्धि हो रही है जिसका प्रभाव देश की राजनीति पर पड़ रहा है। उनकी विचारधारा से उत्पन्न उनके कार्यो का उल्लेख निम्नलिखित भागों में किया जा सकता हैः

1. **साम्प्रदायिक हिंसा (Communal Violence)**: भारत एक सम्प्रदाय बहुल–राष्ट्र हैं जिसमे हिन्दुओं की जनसंख्या सबसे अधिक है। इसके बाद मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी, जैन, बौद्ध आदि हैं। इस प्रकार हिन्दुओं को छोड़कर शेष अल्पसंख्यक हैं। इस दष्टि से भारत को अल्पसंख्यकों का देश कहा जा सकता है। इसी कारण साम्प्रदायिकता एक भयंकर समस्या बन गई है। स्वतन्त्रता–प्राप्ति, 1947 से लेकर 1978 तक 9,500 साम्प्रदायिक घटनाएँ घटीं जिनमें 150 व्यक्ति मारे गए तथा 2,953 घायल हुए। ये साम्प्रदायिक दंगे दक्षिण तथा उत्तर भारत दोनों में ही हुए। 1978 में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु में दंगे हुए। 1982 में हिन्दुओं और ईसाइयों के मध्य कन्याकुमारी में दंगे हो गए थे। दिसम्बर, 1982 में हैदराबाद तथा ट्रावनकोर कोचीन में झगड़े हुए। 1979 में कश्मीर, बिहार, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, त्रिपुरा, असम, गुजरात, महाराष्ट्र आदि में भी दंगे हुए। इस वर्णन से स्पष्ट है कि साम्प्रदायिक दंगे भार के किसी एक क्षेत्र तक सीमित न होकर सम्पूर्ण देश में होते रहते हैं। दंगों के लिए अलीगढ़, मेरठ, मुरादाबाद, बड़ौदा तथा हैदराबाद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 1984 में भी पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में कुछ दंगों को छोड़ कर सम्पूर्ण देश में साम्प्रदायिक स्थिति अपेक्षाकृत शान्त रही। 1990 में भारम में भयंकर रूप से साम्प्रदायिक दंगे हुए और हिंसात्मक घटनाएँ हुई। दिसम्बर 1992 में अयोध्या में बाबरी मस्जिद के ढाँचे को गिराने के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता की भावना को बहुत ही प्रबल शक्ति प्राप्त हुई तथा स्थान–स्थान पर साम्प्रायिक दंगे भी हुए। इसी साम्प्रदायिक भावना के कारण बम्बई में बम विस्फोट काण्ड हुआ जिसमें सैकड़ों लोगों की जानें गयीं। बम्बई के दंगों के विषय में ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि हजारों लोग इन दंगों में मारे गए। कहने का अर्थ यह है कि भारत की राजनीति में साम्प्रदायिकता अपना भयंकर रूप धारण कर चुकी है।

2. **पंथों सम्बन्धी दंगे (Sectarian Riots)**: धर्म के आधार पर सम्प्रदायों में अनेक पंथ भी हैं जिसमें आपस में दंगे रहते हैं। उदाहरण के लिए, लखनऊ में शिया और सुन्नियों (जो मुस्लिम सम्प्रदायों के पंथ हैं) में प्रतिवर्ष झगड़े होते हैं। कानपुर और अमतसर में सिक्खों और सिक्खों के ही पंथ–राधास्वामियों के मध्य दंगे होते हैं। यद्यपि सिक्किम में कोई दंगे नहीं हुए परन्तु वहाँ दो संगठन– लेपचा तथा भूटियों के संगठित हो रहे हैं। मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा आदि में कबीलों और गैर–कबीलों में झगड़े हो जाते है।

3. **मुस्लिम बहुमत क्षेत्र का गठन (Creation of Muslim Majority Region)**: सम्प्रदाय के आधार पर क्षेत्र का गठन बहुत हानिकारक है। परन्तु केरल में एक जिला मुस्लिम बहुमत का बनाया गया। केरल में 1982 में ईसाई बहुमत जिले की मांग की गई थी।

4. **धार्मिक स्थानों पर राजनैतिक उद्देश्यों के लिए दुरूपयोग (Misuse of Religious Places for Political Purposes)**: धार्मिक स्थानों का दुरूपयोग भी साम्प्रदायिकता का एक रूप है। उदाहरण के लिए अकाली दल अमतसर के 'स्वर्ण मंदिर' का दुरूपयोग राजनैतिक मांगों की पूर्ति के लिए कर रहा था। बहुत–से उग्रवादी मंदिर में रहते हुए राष्ट्र–विरोधी गतिविधियों में भाग ले रहे थे। परिणामस्वरूप, भारत सरकार को उग्रवादियों को मन्दिर से निकालने के लिए सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकता भारतीय लोकतन्त्र के विकास में बाधक बन रहा है। इस व्यवस्था को एकदम समाप्त करना कठिन है परन्तु इस पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है। इसलिए इसके कारणों का अध्ययन भी अनिवार्य है।

भारत में साम्प्रदायिकता के कारण
(Causes of Communalism in India)

भारत में स्वतन्त्रता से पूर्व ब्रिटिश सरकार ने नीतियों में बढ़ते हुए राष्ट्रवाद को रोकने के लिए 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को अपनाते हुए सम्प्रदायवाद को बढ़ावा दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यद्यपि संविधान ने भारत को एक धर्म–निरपेक्ष राज्य घोषित किया, परन्तु 43 वर्ष के बाद सम्प्रदायवाद की समस्या पहले से भी अधिक बढ़ गई है। यद्यपि सम्प्रदायवाद की समस्या एक औपनिवेशिक विरासत है परन्तु भारतीय भी इस समस्या के लिए कम उत्तरदायी नहीं हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि हमने भले ही भारत को धर्म–निरपेक्ष घोषित किया हो परन्तु धर्म–निरपेक्ष समाज की स्थापना करने में असफल रहे। भारत में सम्प्रदायवाद के कारणों का वर्णन निम्नलिखित भागों में किया जा सकता है:

1. **औपनिवेशिक विरासत (Colonial Legacy)**: स्वतंत्रत भारत को सम्प्रदायवाद की समस्या एक विरासत के रूप में प्राप्त हुई है। ब्रिटिश सरकार ने भारत में 1857 ई० के प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद शासन नीति का आधार 'फूट डालो

और शासन करो' (Divide and Rule) निश्चित किया था। अंग्रेज 1857 के विद्रोह को मुस्लिम विद्रोह मानते थे, यद्यपि इस विद्रोह में हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर अंग्रेजों का विरोध किया था। इस कारण उन्होंने मुसलमानों के विरोध और दमन की नीति अपनाई तथा हिन्दुओं को गले लगाया। जब भारत में राष्ट्रवाद की भावना बढ़ने लगी तो उसे रोकने के लिए मुसलमानों का समर्थन आरम्भ कर दिया। अंग्रेजों के समर्थन पर ही सर सैयद अहमद खाँ ने 1857 ई० में अलीगढ़ में एम०ए० ओ० कॉलेज की स्थापना की जिसके प्राचार्य एक अंग्रेज आर्कवोल्ड नियुक्त किए गए। गवर्नर–जनरल लॉर्ड कर्जन ने मुसलमानों को खुश करने तथा उनकी राज–भक्ति प्राप्त करने के लिए 1905 ई० में बंगाल का विभाजन किया जिसके अनुसार मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्त का निर्माण किया गया। यद्यपि 1911 ई० में इस विभाजन को समाप्त कर दिया परन्तु सम्प्रदायवाद का आरम्भ हो चुका था। ब्रिटिश सरकार के ही सुझावों पर 1906 ई० में मुसलमानों के राजनैतिक अधिकारों की रक्षा के लिए 'आल इण्डिया मुस्लिम लीग' की स्थापना की गई। इसी प्रकार गवर्नर–जनरल लॉर्ड मिण्टों के सुझावों पर भारत परिषद् कानून, 1909 के द्वारा मुसलमानों को जहाँ साम्प्रदायिक चुनाव की व्यवस्था की गई वहाँ उनकी जनसंख्या के अनुपात से अधिक विधान–परिषदों में प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई। भारत सरकार ने कानून, 1919 के द्वारा सिक्खों, यूरोपियन तथा आंग्ल–भारतीयों के लिए अलग से प्रतिनिधि चुनने की व्यवस्था की। मैकडोनाल्ड अवार्ड 1932 के द्वारा हरिजन वर्ग को अलग प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया जिसे पूना पैक्ट के द्वारा संशोधित कर दिया गया।

भारत सरकार कानून, 1935 के अनुसार 1937 में प्रान्तों की विधान–सभाओं के जो चुनाव हुए उनमें मुस्लिम लीग को कोई विशेष सफलता नहीं मिली। मुस्लिम लीग और उसके प्रमुख नेताओं जिन्ना ने मुसलमानों में सम्प्रदायवाद का जोरदार प्रचार किया। 1940 में मुस्लिम लीग ने अलग राष्ट्र पाकिस्तान की मांग की। यह मांग भी ब्रिटिश सरकार के समर्थन पर की गई थी। 1940-47 के मध्य ब्रिटिश सरकार ने इस प्रकार की स्थिति पैदा कर दी जिससे मुस्लिम सम्प्रदायवाद इतना तीव्र हो गया कि भारत का विभाजन निश्चित हो गया। विभाजन के बाद साम्प्रदायिक दंगे हुए जिसमें लाखों हिन्दू तथा मुसलमान मारे गये। बहुत से मुसलमान पाकिस्तान चले गए। जो भारत में रह गये उन्हें संदिग्ध दष्टि से देखा जाने लगा। इससे उनकी राजनैतिक और आर्थिक स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ा।

2. **राष्ट्रीय आन्दोलन की नकारात्मक विरासत (Negative Legacy of National Movement)**: साम्प्रदायिकता की समस्या राष्ट्रीय आन्दोलन के नकारात्मक विरासत के रूप में मिली है। भारत में राष्ट्रवाद के उदय से पहले विभिन्न समुदायों, विशेष रूप से हिन्दू और मुसलमानों, में धार्मिक सुधार आन्दोलन शुरू हुए थे। इसका प्रभाव यह हुआ कि प्रत्येक सम्प्रदाय अपने धर्म, संस्कृति और सभ्यता को श्रेष्ठ मानने लगा। इधर भारत में राष्ट्रवाद का उदय ब्रिटिश सरकार की उपनिवेशवादी नीतियों के विरूद्ध हुआ था। इस कारण भारतीय लोग विदेशी धर्म (ईसाई), विदेशी संस्कृति और विदेशी शासन का विरोध कर रहे थे। इस विरोध के कारण भारत में एक नये प्रकार के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उदय हुआ। जैसे–जैसे राष्ट्रवाद की भावना में तीव्रता आई, धर्म और संस्कृतिक का आधार मतबूत होता गया। उग्रवादी काल में उग्रवादी नेताओं ने हिन्दू धर्म के आधार पर ही अपने को संगठित किया जिसे मुसलमानों ने संदेह की दष्टि से देखा। ब्रिटिश सरकार की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति ने इस संदेह की भावना को साम्प्रदायिकता की भावना में बदल दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ–साथ साम्प्रदायिक प्रक्रिया भी बढ़ती रही। महात्मा गाँधी ने जब असहयोग आन्दोलन चलाया तो उसके साथ खिलाफल आन्दोलन भी चलाया गया। खिलाफत आन्दोलन का उद्देश्य साम्प्रदायिक था। इसका प्रभाव भविष्य में हानिकारक हुआ। ब्रिटिश सरकार की नीति सफल हो रही थी और वे काफी सीमा तक मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रखने में सफल हो रहे थे तथा मुसलमानों में साम्प्रदायिकता का विशाल वक्ष बना रहे थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता इस समस्या को सुलझाने में असमर्थ रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् 1947 में भारत का विभाजन हो गया। पाकिस्तान का निर्माण ही मुस्लिम साम्प्रदायिकता के आधार पर हुआ है।

3. **मुसलमानों में अलग रहने की भावना (Muslim's Tendency to keep Aloof)**: स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मुसलमान अपने को राष्ट्रीय धारा में शामिल नहीं कर सके। अनेक मुस्लिम नेताओं ने इस बात का प्रचार किया कि मुसलमानों को ऐसे राजनैतिक दलों में शामिल होना चाहिए जो धर्म–निरपेक्षता, समाजवाद और आर्थिक न्याय में विश्वास करते हैं। परन्तु इसका उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत, अनेक मुस्लिम नेताओं ने मुसलमानों के हितों से रक्षा के लिए मुस्लिम संगठनों में शामिल होने का प्रचार किया। जमायते इस्लाम ने मुसलमानों का सलाह दी कि उन्हें चुनाव में भाग नहीं लेना चाहिए। सन् 1961 में 'अखिल भारतीय मुस्लिम लीग' की स्थापना की गई और प्रचार किया गया कि वही

मुसलमानों के हितों की रक्षा कर सकती है। कहने का अर्थ यह है कि मुसलमानों में जो राष्ट्रीय धारा से अलग रहने की प्रवति है उससे सम्प्रदायवाद की वद्धि होती है।

4. **मुसलमानों का आर्थिक दष्टि से पिछड़ापन (Economic Backwardness of the Muslims)**: अंग्रेजों के शासनकाल में वैसे तो सारा भारतवर्ष ही आर्थिक दष्टि से पिछड़ा हुआ था, परन्तु मुसलमान लोग हिन्दुओं से अधिक पिछड़े हुए थे। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद यह आशा की गई थी कि मुसलमान अवसरों का पूरा लाभ उठाएँगे, परन्तु वे ऐसा न कर सके। शिक्षा की दष्टि से पिछड़े होने के कारण सरकारी नौकरियों, व्यापार और उद्योग–धन्धों में उनकी स्थिति नहीं सुधरी। उनका आधुनिकीकरण नहीं हो पाया है। हिन्दुओं और मुसलमानों में आर्थिक दष्टि से बहुत अन्तर हो गया है। मुसलमान यह समझते हैं कि उनका आर्थिक शोषण किया जा रहा है। इससे उनमें असन्तोष पैदा होता है, सम्प्रदायवाद की वद्धि होती है, जो कभी भी हिंसा का रूप ले लेती है।

5. **पाकिस्तान द्वारा प्रचार (Propaganda by Pakistan)**: पाकिस्तान की स्थापना इस आधार पर की गई थी की हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं जो आपस में मिलकर नहीं रह सकते। पाकिस्तान की स्थापना के बाद यह आशा की जाती थी कि वह अपने राष्ट्र निर्माण के लिए कार्य करेगा और भारत के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा, परन्तु पाकिस्तान अपने को भारत के मुसलमानों का रक्षक समझता है। इसी कारण भारत में जब कभी हिन्दू–मुस्लिम तनाव की कोई घटना हो जाती है तो पाकिस्तान रेडियो और समाचार–पत्र इसका बड़े जोर–शोर से प्रचार करते हैं। पाकिस्तान भारत सरकार की आलोचना करता है और हिन्दुओं को ही उत्तरदायी ठहराता है। इससे भारतीय मुसलमानों की साम्प्रदायिक प्रवति को प्रोत्साहन मिलता है।

6. **संकुचित हिन्दु राष्ट्रवाद (Hindu Fanaticism)**: भारत में हिन्दू सम्प्रदाय में भी ऐसे लोग और संस्थाएँ हैं जो संकुचित राष्ट्रवाद में विश्वास रखते हैं। वे सभी मुसलमानों को भारत के विभाजन के लिए उत्तरदायी मानते हैं। हिन्दू महासभा ऐसा ही संगठन है। वह प्रचार करती है कि भारत हिन्दुओं का देश है और हिन्दुओं को ही इस देश मे रहने का अधिकार है। इससे हिन्दुओं में सम्प्रदायवाद की भावना पैदा होती है। हिन्दुओं में सम्प्रदायवाद का विकास मुस्लिम सम्प्रदायवाद की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ है। इसका परिणाम यह होता है कि हिन्दू मुस्लिम दंगे हो जाते हैं जिससे सम्प्रदायवाद को और भी प्रोत्साहन मिलता है।

7. **सरकार की उदासीनता (Indifferent Attitude of the Government)**: सरकार और प्रशासन की उदासीनता के कारण भी साम्प्रदायिक दंगे हो जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों में, जिनमें दंगे हो चुके हैं, भविष्य में नियंत्रण के लिए सरकार उचित व्यवस्था नहीं करती। इसके अलावा, मुसलमानों की छोटी–सी शिकायत– कि उर्दू के लिए उचित प्रचार नहीं हो रहा है– आज तक दूर नहीं की गई। जो संगठन सम्प्रदायवाद का बढ़ावा देते हैं उन पर भी रोक नहीं लगाई गई है।

8. **साम्प्रदायिक शिक्षा संस्थाएँ (Communal Institutions)**: देश में अनेक शिक्षा संस्थाएँ, जैसे स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय, साम्प्रदायिक आधार पर बनाई गई हैं। ये संस्थाएँ विशेष सम्प्रदाय के व्यक्तियों द्वारा चलाई जाती हैं, उसी सम्प्रदाय के अध्यापक और प्राध्यापक इनमे नियुक्त किए जाते हैं तथा उनके माध्यम से सम्प्रदायवाद का प्रचार किया जाता है। ऐसी संख्याएँ–हिन्दू कॉलेज, हिन्दू स्कूल, मुस्लिम स्कूल, मुस्लिम कॉलेज, ईसाई स्कूल, ईसाई कॉलेज, खालसा स्कूल, मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़, हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस आदि हैं।

9. **धार्मिक कट्टरता (Religious Fanaticism)**: विभिन्न सम्प्रदायों की धार्मिक कट्टरता भी सम्प्रदायवाद में वद्धि करती है। उदाहरण के लिए, बड़ौदरा में 1981-82 में 15 हिन्दू–मुस्लिम दंगे हुए। गणपति, नवरात्रि और ताजिया जुलूस निकाले गए। शिवाजी जयन्ती, जो पहले कभी नहीं मनाई गई थी, बड़े जोर–शोर से मनाई गई थी। इसी प्रकार केरल में रातो – रात गिरजाधर बना दिया गया। इस प्रकार की धार्मिक कट्टरता से भी सम्प्रदायवाद को बढ़ावा मिलता है।

10. **सामाजिक कारण (Social Causes)**: भारत में सम्प्रदायवाद के विकास के कारणों में से एक कारण सामाजिक कारण भी है। भारत में मुसलमान हिन्दुओं को अपने धर्म में परिवर्तित करते है, उससे भी दोनों सम्प्रदायों में तनाव पैदा होता है।

11. **राजनैतिक कारण (Political Causes)**: स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद मुसलमान लोग भी स्थानीय क्षेत्र की राजनीति मे भाग लेने लगे हैं, जिसे कुछ साम्प्रदायिकता हिन्दू नेता पसन्द नहीं करते। आपसी राजनैतिक तनाव साम्प्रदायिक तनाव मे बदल जाता है।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि भारत में सम्प्रदायवाद के अनेक कारण हैं। भारत की एकता और अखण्डता के लिए आवश्यकता है कि सभी सम्प्रदाय आपस में मिलकर रहें और अपने सम्प्रदाय के हितों को राष्ट्रीय हितों से ऊपर न समझें। यद्यपि सम्प्रदायवाद की समस्या एक सामाजिक समस्या थी परन्तु वह अब राजनैतिक समस्या बन चुकी है जो राष्ट्र के लिए बहुत हानिकारक है। इससे विघटनकारी शक्तियाँ पैदा होती हैं जो राष्ट्र की अखंडता के लिए हानिकारक हैं। यदि समय रहते सम्प्रदायवाद को समाप्त नहीं किया गया तो राष्ट्र की अखंडता खतरे में पड़ सकती है।

धर्म और राजनीति में अन्तः क्रिया
(Interactions Between Religion and Politics)

भारतीय राजनीति के निर्धारक तत्वों में 'धर्म और साम्प्रदायिकता' अत्यन्त प्रभावशाली तत्व माना जाता है। धर्म का प्रयोग राजनीति में जहाँ एक ओर तनाव उत्पन्न करने के लिए किया जाता है वहां दूसरी ओर प्रभाव और शक्ति अर्जित करने का भी धर्म माध्यम मान लिया जाता है। जामा मस्जिद के शाही इमाम अब्दुल्ला बुखारी और जय गुरूदेव की राजनीतिक शक्ति की आधारशिला उनके अपने–अपने सम्प्रदायों में अनुयायियों का संख्या बल है। धर्म के आधार पर राजनीतिक दलों का निर्माण होता है, चुनावों में समर्थन और मत प्राप्त करने के लिए धर्म का सहारा लिया जाता है। जनता से की जाने वाली अपीलों, उन्हें दिए जाने वाले आश्वासनों, निर्वाचनों में प्रत्याशियों के चयन तथा मतदान व्यवहार में धर्म का राजनीतिक स्वरूप देखने को मिलता है। स्वतन्त्रता के 55 वर्षो के बाद भी हिन्दू और मुसलमानों के बीच ऐसा एकीकरण विद्यमान था, उदाहरणार्थ, हिन्दुओं और सिक्खों में, वहां भी इसे रूढ़िवाद एवं साम्प्रदायिकता के बढ़ते हुए विरोध का खतरा पैदा हो गया है। धर्म और सम्प्रदाय पंथनिरपेक्ष संविधान अपनाए जाने के बाद भी भारतीय राजनीति के स्वरूप को निम्नलिखित ढंग से प्रभावित करते रहे हैं

1. **धर्म और राजनीतिक दलः** स्वाधीनता के बाद पंथ और सम्प्रदाय के आधार पर भारत में राजनीतिक दलों का गठन हुआ है। मुस्लिम लीग, शिरोमणि अकाली दल, राम राज्य परिषद्, हिन्दू महासभा, आदि राजनीतिक दलों के निर्माण में पंथिक और साम्प्रदायिक तत्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यदि साम्प्रदायिकता एक रोग है और वह भी संक्रामक तो इन दलों के शासन और राजनीति पर प्रभाव को सहज ही आंका जा सकता है। ये साम्प्रदायिक दल पंथ को राजनीति में प्रधानता देते हैं, पंथ के आधार पर चुनावों में प्रत्याशियों का चुनाव करते हैं, और सम्प्रदाय के नाम पर वोट मांगते है। चुनावों में धार्मिक मुद्दों जैसे गौ–वध को बन्द करवाने, राम मन्दिर का निर्माण, आदि का प्रयत्न करते हैं। प्रो० मॉरिस जोन्स ने लिखा है, "यदि साम्प्रदायिकता को संकुचित अर्थ में लिखा जाए अर्थात् कोई राजनीतिक पार्टी किसी विशेष पंथिक समुदाय के राजनीतिक दावों की रक्षा के लिए बनी हो तो कुछ पार्टियां ऐसी हैं जो स्पष्ट रूप से अपने को साम्प्रदायिक कहती हैं जैसे मुस्लिम लीग जो भारत में सिर्फ दक्षिण भारत में रह गयी है और जो मालाबार मोपला समुदाय के बल पर केवल केरल में ही शक्तिशाली है सिक्खों की अकाली पार्टी जो सिर्फ पंजाब में ही है, हिन्दू महासभा जो सिद्धान्त रूप में एक अखिल भारतीय पार्टी है, किन्तु मुख्य रूप से मध्य प्रदेश और उसके आस–पास इलकों में शक्तिशाली है" जनसंघ दल के बारे में मॉरिस जोन्स लिखते हैं, "जब तक कट्टरता की मनोवति से पूर्ण आर० एस० एस० जिसमें हिन्दू सांस्कृतिक जोश और सैन्यवादी ट्रेनिंग दोनों का संयोग है जनसंघ की आड़ में जुटकर काम करता रहेगा, तब तक साम्प्रदायिकता इस पार्टी का एक महत्त्वपूर्ण पहलू बनी रहेगी।"

   यदि साम्प्रदायिकता को व्यापक अर्थ में लिया जाए अर्थात् सम्पूर्ण हिन्दू समाज के ही भीतर किसी सामाजिक–धार्मिक समुदाय के साथ सम्बन्ध के रूप में लिया जाए तो सभी पार्टियों में किसी न किसी स्तर पर और कुछ न कुछ मात्रा में ऐसी साम्प्रदायिकता अवश्य मिलेगी, यहा तक कि कांग्रेस भी इससे मुक्त नहीं है। केरल में ईसाई समुदाय के साथ कांग्रेस का ऐसा गठजोड़ रहा है कि इसे संकुचित दष्टि से भी साम्प्रदायिक कहा गया है। यहां तक कि साम्यवादियों ने भी कुछ जगहों पर और कतिपय प्रयोजनों के लिए साम्प्रदायिक क्षेत्र तैयार कर लिए हैं।

2. **धर्म और निर्वाचनः** भारत में अधिकांश राजनीतिक दल और उनके नेता चुनावों में पंथ और सम्प्रदाय की दलीलों के आधार पर वोट मांगते है। वोट के लिए मठाधीशों, इमामों, पादरियों और साधुओं के साथ सांठ–गांठ की जाती है। मतदान के अवसर पर मत मांगने वाले और मतदान करने वालों के आचरण पर पंथिक तत्व छाए रहते हैं। मार्च 1977 और जनवरी 1980 के लोकसभा चुनावों के दिनों में दिल्ली की जामा मस्जिद के शाही इमाम की भूमिका से आसानी से यह समझा जा सकता है कि पंथिक नेता राजनीतिक दलों से मुस्लिम सम्प्रदाय के वोटों का किस प्रकार सौदा करते हैं? राजनीतिक नेता की भांति शाही इमाम ने चुनाव सभाओं में भाषण दिए और मुस्लिम सम्प्रदाय के मतदाताओं को किसी विशेष

राजनीतिक दल के पक्ष में मतदान करने के लिए प्रेरित किया। किसी संवाददाता ने लिखा है, "सवाल उठता है कि समाजवाद और गणतन्त्र की बात करने वाले अगर इमाम के नाम से वोट पाना चाहेंगे तो हो सकता है कि बलराज मधोक जैसे लोग शंकराचार्य के नाम पर वोट मांगने लगें। फिर क्या इस देश को इमाम और शंकराचार्य के बीच चुनाव करना पड़ेगा? मिजोरम के चुनाव में जारी एक पर्चे में कांग्रेस (इ) ने कहा था कि वह ईसाई अधिकारों के लिए लड़ेगी। धर्मनिरपेक्षता का हलफ उठाने के बाद भी वी० पी० सिंह लोकसभा चुनावों से पूर्व अब्दुल्ला बुखारी जैसे कट्टरवादियों से रिश्ते बनाते हैं तो स्पष्ट है कि राजनीतिक दलों की निगाहें करीब 100 महत्त्वपूर्ण चुनाव क्षेत्रों में मुस्लिम सम्प्रदाय के 20 प्रतिशत वोट हथियाने के लिए लालायित हैं।

3. **राजनीति में धार्मिक दबाब गुटः** साम्प्रदायिक संगठन भारतीय राजनीति में सशक्त दबाव समूहों की भूमिका अदा करने लगे हैं। ये पंथिक गुट शासन की नीतियों को प्रभावित करते हैं और कभी–कभी अपने पक्ष में अनुकूल निर्णय भी करवाते हैं। उदाहरणार्थ, हिन्दुओं की आपत्ति और आलोचना के बावजूद 'हिन्दू कोड बिल' पास कर दिया गया, किन्तु दूसरे सम्प्रदाय के सम्बन्ध में ऐसा कोई महत्त्वपूर्ण कदम नह उठाया जा सका। स्वतन्त्रता के बाद अनेक मुस्लिम संगठनों; जैसे जमीयत–उल–उलेमा–ए–हिन्द, अमारते शरिया, जमायते इस्लामी; आदि ने कम से कम तीन बातों के लिए सरकारी नीतियों को प्रभावित कर 'दबाव गुटों' की भूमिका अदा की है। ये तीन बातें हैं–उर्दू को संविधानिक संरक्षण दिया जाए, अलीगढ़ विश्वविद्यालय का अल्पसंख्यक स्वरूप स्थापित किया जाए और मुस्लिम पर्सनल लॉ के बारे में कोई तब्दीली न की जाए।

4. **धर्म के आधार पर पथक् राज्यों की मांगः** कई बार परोक्ष रूप से पंथ के आधार पर पथक् राज्यों की मांग भी की जाती रही है। अकाली दल द्वारा पंजाबी सूबे की मांग ऊपरी तौर से भाषायी आधार की मांग नजर आती है, किन्तु यथार्थ में यह पंथ के आधार पर ही पथक् राज्य की मांग थी। 2 नवम्बर, 1949 को मास्टर तारासिंह ने पूर्वी पंजाब में एक 'सिक्ख प्रान्त' की मांग करते हुए कहा कि पूर्वी पंजाब के हिन्दू 'संकीर्ण हृदय वाले सम्प्रदायवादी' हो गए हैं और 'सिक्खों को उनसे उचित व्यवहार की आशा नह रह गयी।' सन्त फतेहसिंह के अनुयायी सिक्ख 'होम लैण्ड' की मांग करने लगे। उनका कहना था कि 'उत्तर भारत में एक समाजवादी लोकतन्त्रीय सिक्ख होम लैण्ड' की स्थापना ही सिक्ख राजनीति का वास्तविक एवं एकमात्र लक्ष्य है। पुराने पंजाब राज्य का विभाजन वस्तुतः पंथ के आधार पर ही हुआ था। इसी प्रकार नागालैण्ड के ईसाइयों की पथक् राज्य की मांग का आधार भी पंथगत निष्ठाएं ही थ।

5. **मन्त्रिमण्डल के निर्माण में पंथिक आधार पर प्रतिनिधित्वः** केन्द्र और राज्यों में मन्त्रिमण्डल बनाते समय सदैव इस बात को ध्यान में रखा जाता है कि प्रमुख सम्प्रदायों और पंथिक विश्वासों वाले व्यक्तियों को उनमें प्रतिनिधित्व मिल जाए। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में अल्पसंख्यकों; जैसे मुसलमानों, सिक्खों, ईसाइयों को सदैव प्रतिनिधित्व दिया जाता है।

6. **धर्म और राष्ट्रीय एकताः** पंथ और साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता के लिए घातक माने जाते हैं। धार्मिक मतभेदों के परिणामस्वरूप ही हमारे देश का विघटन हुआ था और उसी के कारण आज भी विघटनकारी तत्व सक्रिय हैं।

7. **राज्यों की राजनीति में धर्म की प्रभावक भूमिकाः** पंथ और साम्प्रदायिक समुदायों का भारतीय राजनीति में कितना प्रभाव है, केरल और पंजाब राज्यों की राजनीति इसके लिए सन्दर्भ प्रस्तुत करती है। केरल की राजनीति का ऊपरी आवरण चाहे वामपन्थी रंग में रंगा हुआ नजर आए, किन्तु उसका अन्तरंग धार्मिक और साम्प्रदायिक गुटों के गठजोड़ से बनता है। राज्य–राजनीति में दो प्रकार के दबाव समूह पाए जाते हैं–साम्प्रदायिक और व्यावसायिक। साम्प्रदायिक दबाव समूहों में नय्यर सर्विस सोसायटी, श्रीनारायण धर्म परिपालन युगम और अनेक ईसाई संगठन प्रमुख हैं। जमदार, धनिक वर्ग, व्यापारी, आदि इन्ह संगठनों से जुड़े हैं, अतः ये साम्प्रदायिक व धार्मिक गुट शासन की निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। प्रगतिशील समझे जाने वाले साम्यवादी दल भी केरल में पंथिक दबाव गुटों से अपना तालमेल बिठाकर चुनावी रणनीति तैयार करते हैं।

पंथ और राजनीति की अन्तःक्रिया को समझने के लिए पंजाब राज्य की राजनीति विशिष्ट महत्व रखती है। पंजाब की राजनीति सदा ही अकाली दलों की आन्तरिक राजनीति तथा सशक्त और समद्ध शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्ध समिति के निर्वाचनों के इर्द–गिर्द घूमती रही है। अधिक दूर न जाकर पिछले एक दशक की राजनीतिक घटनाओं का विश्लेषण करें तो धर्म की राजनीतिक भूमिका का अनुमान लगाया जा सकता है।

शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के चुनाव प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अकाली दल की राजनीति को प्रभावित करते हैं और अकाली दल पंजाब की राजनीति को। सिक्ख पंथ के सर्वोच्च धार्मिक नेताओं द्वारा अकाल तख्त से जारी किए गए फरमान ने अकाली दल के प्रधान का चुनाव रोक दिया। स्वर्ण मन्दिर के सामने स्थित अकाल तख्त की स्थापना गुरु गोविन्दसिंह ने एक राजनीतिक शक्ति के रूप में की थी। पंजाब की राजनीति में अकाल तख्त का स्वरूप एवं भूमिका एक समानान्तर सरकार की भांति है जिस पर समकालीन सरकार के आदेश लागू नह होते। अनेक बार धार्मिक विवादों के साथ–साथ राजनीतिक विवादों के बारे में भी फैसले अकाल तख्त करता है।

साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान
(Solution of Problem of Communalism)

राष्ट्र की एकता और उन्नति के लिए साम्प्रदायिकता को समाप्त करना अति आवश्यक है। 31 दिसम्बर, 1973 को प्रैस सम्मेलन में श्रीमती गांधी ने कुछ दिन पूर्व हुए साम्प्रदायिक दंगे–फसादों पर गहरी चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि इस प्रकार के दंगे–फसादों में किसी को लाभ नह होगा। 18 दिसम्बर, 1978 को प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई ने मुख्यमन्त्रियों और विपक्षी दलों के नेताओं के एक सम्मेलन में बोलते हुए राजनीतिक दलों से अपील की कि वे साम्प्रदायिकता के प्रश्न का दलगत उद्देश्यों के लिए लाभ उठाने का प्रयास न करें। उन्होंने कहा कि राजनीतिक भावनाओं से ऊपर उठकर एक समान आचरण संहिता बनाई जाए जिसका हर कोई पालन करे। श्री देसाई ने कहा कि साम्प्रदायिकता का कैंसर राष्ट्र जीवन से निकाल फेंकना जरूरी है और इसके लिए यह उचित है कि सभी नेता मिल कर उपाय करें। 25 जनवरी, 1993 को गणतन्त्र दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्र के नाम संदेश में राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा ने कहा कि जब तक साम्प्रदायिकता की समस्या से हमें मुक्ति नह मिलती है तब तक एक राष्ट्र के रूप में हम अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं का उपयोग नह कर पाएंगे। राष्ट्रपति ने साम्प्रदायिकता को समूल नष्ट करने की आवश्यकता से देशवासियों को अवगत करवाया। यह एक ऐसा काम है जो राजनीति से नितान्त ऊपर है। साम्प्रदायिकता एक ऐसी चुनौती है जिसका स्थायी हल आवश्यक है। साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं:

1. **शिक्षा द्वारा (By Education):** साम्प्रदायिकता को दूर करने का सबसे अच्छा साधन शिक्षा का प्रसार है। जैसे–जैसे शिक्षित व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जाएगी धर्म का प्रभाव भी कम हो जाएगा और साम्प्रदायिकता की बीमारी भी दूर हो जाएगी। सही शिक्षा से राष्ट्रीय भावना पैदा होती है।
2. **प्रचार के द्वारा (By Propaganda):** समाचार–पत्रों, रेडियो तथा टेलीविज़न के द्वारा साम्प्रदायिकता के विरूद्ध प्रचार करके भ्रातत्व की भावना उत्पन्न की जा सकती है।
3. **नागरिक अपने दायित्त्व पूरे करें (Citizens should fulfil their Responsibility):** दंगों का जारी रहना यह भी दर्शाता है कि हमारा समाज सब कामों के लिए प्रशासन तथा राजनीतिक नेतत्व पर अधिक भरोसा करके सामाजिक नेतत्व के महत्त्व को भूल गया है। नागरिकों को अपने दायित्त्व के प्रति सचेत होना चाहिए और शान्ति स्थापना में प्रशासन की मदद करनी चाहिए। प्रशासन दंगों को दबा सकता है, नागरिकों की मदद के लिए गश्त की व्यवस्था भी कर सकता है, लेकिन सन्देह का वातावरण खत्म करना नागरिकों का दायित्त्व है।
4. **साम्प्रदायिक दलों का अन्त करके (By abolishing Communal Parties):** सरकार को सभी ऐसे दलों को समाप्त कर देना चाहिए, जो साम्प्रदायिकता पर आधारित हों। भूतपूर्व प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई के मतानुसार चुनाव आयोग को साम्प्रदायिक पार्टियों को मान्यता नह देनी चाहिए। श्री मोरारजी देसाई के विचारानुसार किसी भी राष्ट्रीय दल को साम्प्रदायिक पार्टियों से गठजोड़ नह करना चाहिए और न ही साम्प्रदायिक पार्टियों को चुनाव लड़ने की आज्ञा दी जानी चाहिए। सभी साम्प्रदायिक संगठनों पर प्रतिबन्ध लगाने चाहिए। 10 दिसम्बर, 1992 को केन्द्र सरकार ने पांच संगठनों–राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद्, बजरंग दल, जमायते इस्लामी हिन्द तथा इस्लामिक सेवक संघ को साम्प्रदायिक करार देकर अवैध गतिविधि निवारक अधिनियम 1967 के तहत उन पर प्रतिबन्ध लगाया। न्यायाधीश पी० के० बाहरी न्यायाधिकरण ने 4 जून, 1993 को विश्व हिन्दू परिषद् पर लगे प्रतिबन्ध को वैध ठहराया लेकिन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और बजरंग दल पर लगे प्रतिबन्ध को रद्द कर दिया।

5. **आपसी विवाह के द्वारा (By Inter-Religious Marriages):** अन्तर्जातीय विवाह करके साम्प्रदायिकता को समाप्त किया जा सकता है।

6. **धर्म और राजनीति को अलग करके:** साम्प्रदायिकता को रोकने का एक महत्त्वपूर्ण उपाय यह है कि राजनीति को धर्म से अलग रखा जाए। 25 फरवरी, 1987 को संसद् में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव पर चर्चा के दौरान सदस्यों ने धर्म को राजनीति से अलग रखने पर ज़ोर दिया। प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने कई बार अपने भाषणों में धर्म को राजनीति से अलग करने पर ज़ोर दिया था।

7. **सुरक्षा बलों में सभी धर्मों का प्रतिनिधित्त्व:** साम्प्रदायिक दंगों को रोकने में सुरक्षा बलों का विशेष उत्तरदायित्त्व है। अतः साम्प्रदायिक दंगों को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि सुरक्षा बलों में सभी धर्मों व जातियों को जहां तक हो सके, समान प्रतिनिधित्व देना चाहिए।

8. **सामाजिक तथा आर्थिक विकास:** साम्प्रदायिक दंगों को कम करने का एक महत्त्वपूर्ण उपाय पिछड़े लोगों का सामाजिक तथा आर्थिक विकास करना है। अधिकांश साम्प्रदायिक दंगों में ग़रीब और पिछड़े लोग ही सम्मिलित होते हैं। अतः साम्प्रदायिक दंगों को कम करने के लिए लोगों का तेज़ी के साथ सामाजिक तथा आर्थिक विकास करना अति आवश्यक है।

9. **साम्प्रदायिकता विरोधी सम्मेलनों का आयोजन (Anti-Communalism Conventions):** साम्प्रदायिकता को समाप्त करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन साम्प्रदायिकता विरोधी सम्मेलनों का आयोजन करना है। अब तक इस प्रकार के कई सम्मेलन किए जा चुके हैं–नई दिल्ली (1956), नई दिल्ली (1968), इलाहाबाद (1970), भोपाल (1972), नई दिल्ली (1972) आदि। सम्मेलनों में हर बार कुछ प्रस्ताव पास किए गए हैं। कुछ दलों को फासिस्ट कहा गया और कुछ पर साम्प्रदायिक घणा फैलाने, दंगे, हिंसा और तोड़–फोड़ के आरोप लगाए हैं। इन प्रस्तावों में मांग की गई है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, शिव सेना, आनन्द मार्ग और जमायते–इस्लामी आदि संगठनों को ग़ैर–कानूनी घोषित किया जाना चाहिए। 19 दिसम्बर, 1992 को देश के 11 राजनीतिक दलों और 30 लोक संगठनों ने देश भर में साम्प्रदायिकता के विरूद्ध संयुक्त अभियान चलाने के लिए एक राष्ट्रीय अभियान समिति का गठन किया।

10. **दलगत राजनीति:** *न्यायमूर्ति विद्यातिल* ने सिफारिश की थी कि "राजनीतिक दल अपने दलगत हितों को बढ़ाने के लिए पुलिस का इस्तेमाल न करें और पुलिस प्रशासन में हस्तक्षेप करने से बाज़ आएं।"

11. **साम्प्रदायिक दंगों के लिए सरकार के विरूद्ध कार्यवाही:** 1968 में राष्ट्रीय एकता परिषद् की श्रीनगर बैठक में तत्कालीन उप–प्रधानमन्त्री श्री देसाई ने कहा था कि जो फैसला किया गया, "उसमें यह भी निहित है कि जो सरकार दंगों को रोकने में विफल हो, वह हर्जाना दे और ज़िम्मेदार मन्त्री अपने पद से इस्तीफा दे दें। हमें तो इस प्रसंग में समूची सरकार के पद त्याग पर विचार करना चाहिए।" परन्तु यह फैसला और इसमें निहित सिद्धान्त आज तक 'किताबी ज्ञान' बना रहा, जिसको व्यवहार में लाने का साहस किसी राजनीतिज्ञ ने नह किया।

12. **शान्ति रक्षा बल:** 12 सितम्बर, 1980 को केन्द्रीय सरकार ने साम्प्रदायिक दंगों से निपटने के लिए शान्ति रक्षा बल की तीन बटालियनें गठित करने की स्वीकृति दे दी। शान्ति रक्षा बल में देश के विभिन्न भागों से मुख्य रूप से अल्पसंख्यक, हरिजन तथा आदिवासी समुदायों के सदस्य लिए जाएंगे। गह मन्त्रालय के एक प्रवक्ता के अनुसार उनका दष्टिकोण सम्भवतः राष्ट्रीय, धर्म–निरपेक्ष तथा जाति, धर्म और क्षेत्रीय संकीर्णताओं से ऊपर होगा। सरकारी प्रवक्ता के अनुसार शान्ति रक्षा बल के जवानों का विशेष रूप से प्रशिक्षण होगा। उनको न केवल साम्प्रदायिक दंगों से निपटने के लिए तैयार किया जाएगा, बल्कि उन्हें यह भी सिखाया जाएगा कि ऐसे दंगों के दौरान निर्दोष पीड़ित व्यक्तियों की कैसे सहायता की जाए। साम्प्रदायिक दंगों से निपटने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा त्वरित कार्य बल (Rapid Action Force) की स्थापना की गई है जो कि तेज़ी से कार्यवाही करके साम्प्रदायिक दंगों से निपटता है।

13. **गह-मन्त्रालय का 10 सूत्री कार्यक्रम:** जुलाई, 1981 में गह–मन्त्रालय ने साम्प्रदायिक दंगों की रोकथाम के लिए राज्य सरकारों को एक 10 सूत्री कार्यक्रम भेजा। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण सुझाव यह है कि धार्मिक जुलूसों के मार्गों का पहले से निर्धारण कर दिया जाना चाहिए। एक सुझाव यह भी है कि पुलिस दल तथा गुप्तचर विभाग में अल्पसंख्यकों को पूरा प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए जिससे कि पुलिस की निष्पक्षता में उनका विश्वास पैदा हो। साम्प्रदायिक समाचार–पत्रों पर कड़ी नज़र रखने का सुझाव देते हुए केन्द्र ने इनके विरूद्ध प्रभावी कार्यवाही करने का भी सुझाव दिया है।

14. जून, 1989 में राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों के मुख्य सचिवों के सम्मेलन ने देश की साम्प्रदायिक स्थिति पर कड़ी निगरानी रखने तथा साम्प्रदायिक घटनाओं को रोकने के लिए संगठित ढंग से एक–दूसरे राज्यों में गुप्तचर सूचनाओं का आदान–प्रदान करने का सुझाव दिया। सम्मेलन में इस बात पर आम सहमति व्यक्त की गई कि राज्यों में गुप्तचर एजेन्सियों की मशीनरी और गतिविधियों को तेज़ किया जाए।

15. **विशेष अदालतें:** साम्प्रदायिक दंगे–फसादों के दोषी व्यक्तियों को दण्ड देने में बहुत देरी हो जाती है क्योंकि मुकद्दमों का फैसला वर्षों तक नह होता। इसलिए साम्प्रदायिक दंगों से सम्बन्धित मुकद्दमों की सुनवाई और दोषी व्यक्तियों को कड़ी सज़ा देने के लिए विशेष अदालतों की स्थापना की जानी चाहिए।

16. **घणा फैलाने वाले प्रचार पर रोक:** अप्रैल, 1991 में चुनाव आयोग ने आचार संहिता लागू की, जिसके अन्तर्गत चुनाव में मत प्राप्त करने के लिए जाति या साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारने वाले आह्वानों पर प्रतिबन्ध लगाया गया। चुनाव प्रचार के लिए मन्दिर, मस्जिद या दूसरे धार्मिक स्थलों के मंच के रूप में प्रयुक्त करने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

17. "राजनीतिक दलों और 30 लोक संगठनों ने देश भर में साम्प्रदायिकता के विरूद्ध संयुक्त अभियान चलाने के लिए 19 दिसम्बर, 1992 को एक राष्ट्रीय समिति की स्थापना की।"

18. दिसम्बर, 1992 में संसद् के दोनों सदनों ने प्रस्ताव पारित कर अयोध्या में बाबरी मस्जिद गिराए जाने की घटना की आलोचना की और देश की जनता से अपील की कि वह साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखें।

संक्षेप में, साम्प्रदायिकता को समाप्त करना राष्ट्र की एकता के लिए अति आवश्यक है। सरकार को उन अधिकारियों को कड़ा दण्ड देना चाहिए जो धर्म के नाम पर पक्षपात करते हैं। सभी सरकारी नियुक्तियां योग्यता के आधार पर की जानी चाहिए। हमारी सरकार को सरकारी नौकरियों के फार्म से धर्म का कालम हटाना चाहिए। यह बात बड़ी अजीब लगती है कि एक तरफ तो सरकार धर्म–निरपेक्षता का दावा करती है और दूसरी तरफ सरकारी नौकरियों के उम्मीदवारों से पूछा जाता है कि आपका धर्म क्या है। जो लोग साम्प्रदायिक भावनाओं को बढ़ावा देते हैं, उनको भी सख्त सजाएं देनी चाहिए। परन्तु यह तभी हो सकता है जब सत्तारूढ़ दल स्वयं धर्म से बिल्कुल छुटकारा पा जाएं। अफसोस की बात है कि कांग्रेस ने एक तरफ तो साम्प्रदायिक दलों जैसे कि मुस्लिम लीग और शिव सेना की समय–समय पर आलोचना की और दूसरी तरफ अपने हित के लिए चुनावों में इनके साथ समझौता भी किया। मुसलमानों को भी यह समझ लेना चाहिए कि उनका भविष्य हिन्दुओं के साथ है, न कि उनसे अलग रहने पर। *Richard A. Schermerhorn* ने ठीक ही कहा है, "The Muslims must realise that their future is bound up with the future of secularism and they should support and strengthen the Hindus and others, who have launched a crusade against communalism. Without the minorities support this crusade may not succeed."

19 महीने के आन्तरिक आपात्काल में मुस्लिम और हिन्दुओं दोनों ने इकट्ठे यातनाएं सह। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जमायते–इस्लामी के सदस्य इकट्ठे जेलों में रहे, जेल में दोनों ने विचार–विमर्श खुले रूप में किया और एक–दूसरे के विरूद्ध उनके दिलों में घणा की जो भावना थी, उसका अन्त किया। जब आपात्काल को समाप्त किया गया और लोकसभा तथा 10 राज्यों की विधानसभाओं और 2 संघीय क्षेत्रों के लिए चुनाव करवाए गए तब हिन्दुओं और मुसलमानों ने सम्प्रदाय की भावना से ऊपर उठकर मतदान किया। मुसलमानों के नेता जामा मस्जिद के शाही इमाम अब्दुल बुखारी (Abdul Bukhari) ने जनता पार्टी के समर्थन में जनता पार्टी के प्लेटफार्म से ही जनता पार्टी के नेताओं के साथ भाषण दिए। मार्च, 1977 से जुलाई, 1978 तक के काल में बिल्कुल दंगे–फसाद नह हुए।

प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने अगस्त तथा सितम्बर, 1980 के दंगों के दौरान कई बार कहा कि हम साम्प्रदायिक एकता और शान्ति बनाए रखने के लिए दढ़ प्रतिज्ञ हैं। प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी ने जातिवाद, साम्प्रदायिकता तथा अन्धविश्वास को आधुनिक समाज में असंगत बताते हुए लोगों के मन से इन्हें दूर करने की जरूरत पर बल दिया था।

जून, 1986 में प्रधानमन्त्री राजीव गांधी ने वाराणसी में गंगा की सफाई के दूसरे चरण का उद्घाटन करते हुए साम्प्रदायिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता कायम करने के लिए आह्वान किया। 28 जून, 1993 को अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति ने साम्प्रदायिक ताकतों को चुनाव से अलग रखने का प्रस्ताव पास किया।

आज आवश्यकता इस बात की है कि सभी राजनीतिक दल मिलकर साम्प्रदायिक दंगों को सदैव के लिए समाप्त करने के उपाय ढूंढें और उन पर अमल करें। राष्ट्रहित की यही मांग है।

अध्याय-18
भारतीय राजनीति में भाषा
(Language in Indian Politics)

प्रो. मॉसिक जोन्स लिखते हैं, "क्षेत्रवाद और भाषा के सवाल भारतीय राजनीति के इतने ज्वलन्त प्रश्न रहे हैं और भारत के हाल के राजनीतिक इतिहास की घटनाओं के साथ इनका इतना गहरा सम्बन्ध रहा है कि अक्सर ऐसा लगता है कि यह राष्ट्रीय एकता की सम्पूर्ण समस्या है।"

भारत एक बहुभाषी देश है। सन् 1902 की एक गणना के अनुसार भारत में 179 भाषाएं एवं 544 स्थानीय भाषाएं (Dialeets) थीं और सन् 1951 की जनगणना के अनुसार भारत में 771 भाषाएं एवं स्थानीय भाषाएं विद्यमान थीं। 1961 और 1971 की जनगणनाओं ने मातभाषाओं के रूप में 152 भाषाओं की गणना की थी। यदि इन स्थानीय और क्षेत्र विशेष की भाषाओं को छोड़ भी दें तो भारत में प्रमुख रूप से प्रचलित भाषाओं की संख्या 18 है, जिनके अन्तर्गत देश की लगभम 90 प्रतिशत जनता आ जाती है। प्रारम्भ में हमारे संविधान में 14 भाषाओं को स्वीकार किया गया जिनके नाम है– असमी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, तमिल, तेलुगू, संस्कत एवं उर्दू। बाद में सिन्धी भाषा को भी संविधान में सम्मिलित कर लिया गया। अतः संख्या 15 हो गयी। अगस्त 1992 में हुए 71वें संविधान संशोधन के अनुसार कोंकणी, मणिपुरी व नेपाली को भी सम्मिलित कर लिया गया, अब यह संख्या 18 हो गयी है। भौगोलिक दष्टि से भारत में पूर्वी तट की चार भाषाएं क्रमशः तमिल, तेलुगू, उड़िया और बंगला पश्चिमी तट की चार भाषाएं क्रमशः कन्नड़, मलयालम, मराठी एवं गुजराती, ठेट उत्तर में कशमीरी एवं उत्तर–पश्चिम में पंजाबी और मध्य क्षेत्र की भाषा हिन्दी है। हिन्दी से सम्बन्धित राज्य है हरियाणा, राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश एवं केन्द्रशासित दिल्ली, चण्डीगढ़ आदि। उर्दू, संस्कत तथा सिन्धी भाषा से सम्बन्धित कोई विशेष भाग नहीं है, परन्तु थोड़ी–बहुत मात्रा में इनका सर्वत्र प्रयोग होता है।

भारत की राजनैतिक व्यवस्था में भाषा की समस्या
(Problem of Language in Indian Political System)

भाषा किसी भी राज्य की राष्ट्रीय एकता के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण तत्त्व है। भारत एक बहुलवादी राज्य है जिसमें अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। वर्तमान समय में भारत में 179 भाषाएँ तथा 544 बोलियाँ है। इनमें से 18 भाषाओं को संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त है। भाषा की एकता से लोगों में विचारों की एकता पैदा होती है जो राष्ट्रीय एकता में सहायक होती है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि किसी भी राष्ट्र भाषा का होना बहुत आवश्यक है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व राष्ट्रीय भाषा के विषय में विचार – राष्ट्रीय भाषा के प्रश्न पर विचार राष्ट्रीय आन्दोलन के समय ही किया जाने लगा था। उस समय में प्रचलित अंग्रेजी भाषा के विषय में राष्ट्रवादियों का विचार था कि इस भाषा से समाज दो वर्गों–शासक और शोषित–में बँट जाता है। महात्मा गाँधी ने 1981 में राष्ट्रीय भाषा के विषय में कहा था कि यह मेरा दढ विश्वास है कि जब तक हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा और प्रान्तों में प्रान्तीय भाषाओं को नहीं अपनाया जाएगा तब तक स्वराज्य के बारे में बातचीत करना व्यर्थ है। 1920 में पं० जवाहर लाल नेहरू ने भी एक प्रस्ताव द्वारा इस बात का समर्थन किया कि प्रान्तों का गठन भाषाओं के आधार पर होना चाहिए। 1923 में कांग्रेस ने अपने वार्षिक अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया कि, जहाँ तक सम्भव हो, अधिवेशन की कार्यवाही हिन्दुस्तानी में की जाए। प्रान्तों की कांग्रेस समितियाँ पहले से ही अपने प्रान्त की भाषाओं में कार्य कर रही थी। 1928 की नेहरू रिपोर्ट में भी इसी बात का समर्थन किया गया।

भाषा से सम्बन्धित संवैधानिक प्रावधान
(Constitutional Provisions Regarding Language)

भारत के संविधान के भाग 17 में अनुच्छेद 343 से लेकर 351 तक भाषा सम्बन्धी विषयों का उल्लेख किया गया है। इसका वर्णन निम्नलिखित है :

1. अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राज्य भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग करने वाले अंको का रूप अन्तर्राष्ट्रीय होगा।
2. संविधान के आरम्भ में 15 वर्ष की अवधि तक संघ में उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिसका प्रयोग पहले से हो रहा था।
3. अनुच्छेद 344 के अनुसार राष्ट्रपति इस संविधान के आरम्भ में 5 वर्ष की समाप्ति पर एक आयोग गठित करेगा जिसमें एक अध्यक्ष और आठवीं अनुसूची में विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले अन्य सदस्य भी शामिल होंगे। इस आयोग का कर्त्तव्य होगा कि सरकारी उद्देश्यों के लिए हिन्दी भाषा का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाए तथा अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर प्रतिबन्ध के लिए सुझाव दिया जाए।

   दूसरे इस आयोग की सिफारिशों की जाँच करने के लिए एक संयुक्त संसदीय समिति की नियुक्ति की जाएगी जिसमें कुल 30 सदस्य लोकसभा के और 10 सदस्य राज्यसभा के होंगे जिनका निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होगा। यह समिति आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करके अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को देगी।
4. संविधान के अनुच्छेद 345 के अुनसार यह व्यवस्था की गई है कि राज्य का विधानमण्डल एक या एक से अधिक भाषाओं को राज्य के सरकारी कार्यो के लिए निश्चित कर सकता है। यदि राज्य का विधानमण्डल चाहे तो वह हिन्दी भाषा को भी अपना सकता है।
5. अनुच्छेद 346 के अुनसार राज्य और केन्द्र में आपसी व्यवहार के लिए सरकारी भाषा वह होगी जिस भाषा को केन्द्र द्वारा मान्यता दी गई है परन्तु यदि दो या दो से अधिक राज्य इस बात पर सहमत हो जाते है कि उनके प्रयोग की राज्य भाषा हिन्दी भाषा हो तो उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।
6. अनुच्छेद 347 के अनुसार यह व्यवस्था की गई है कि यदि किसी राज्य की जनसंख्या का एक बड़ा भाग यह चाहता है कि उसकी बोली को भाषा के रूप में मान्यता दी जाए, तो राष्ट्रपति से इस प्रकार की मांग करने पर वह ऐसा आदेश दे सकता है।
7. संविधान के अनुच्छेद 348 के अनुसार यह व्यवस्था की गई कि उच्चतम न्यायालय और अधीनस्थ न्यायालयों में सभी कार्यवाहियाँ अंग्रेजी भाषा में होगीं।
8. अनुच्छेद 350 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शिकायत दूर करवाने के लिए संघ या राज्य सरकार के अधिकारी को संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भी भाषा मे प्रार्थना–पत्र देने का अधिकार होगा।
9. अनुच्छेद 350(क) और (ख) के अनुसार अल्पसंख्यक वर्गों को अपने बच्चों को मात भाषा में शिक्षा दिलाने का अधिकार होगा। इसके अलावा भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा।
10. संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार करे, उसका विकास करे, जिससे कि वह भारत की संस्कति के सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि संविधान के विभिन्न प्रावधानों द्वारा या प्रयत्न किया गया है कि देश की राज्य भाषा हिन्दी बने। इसके साथ ही आठवीं अनुसूची में लिखी गई सभी 18 भाषाओं का पर्याप्त विकास हो। इसके साथ ही अलपसंख्यक अपनी भाषा का विकास कर सकें इसकी भी उचित व्यवस्था की गई है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से संविधान लागू होने के 15 वर्ष बाद अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को राज्य भाषा बन जाना था। परन्तु भाषा की राजनीति ने यह सम्भव नहीं होने दिया।

अल्पसंख्यकों के लिए भाषायी संवैधानिक व्यवस्थाएँ
(Constitutional Provisions for Minorities Regarding Their Language)

भारत के संविधान निर्माता राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता के विषय में अत्यधिक चिन्तित थे। वे देश के बहुलवादी स्वरूप से अच्छी तरह परिचित थे। वे जानते थे कि भारत में भाषा, धर्म, सम्प्रदाय आदि की विभिन्नताएँ हैं। इसी के साथ ही भारत में बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक समुदाय (Community) भी है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर कि विभिन्नताओं में एकता स्थापित हो तथा बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों के हितों की अवहेलना न कर सकें, संविधान में अल्पसंख्यकों की संस्कति और शिक्षा सम्बन्धी सुरक्षा की व्यवस्था की। संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों के लिए भाषा सम्बन्धी निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गई है :

संविधान के भाग तीन में मूलाधिकारों के रूप में अल्पसंख्यक वर्गों को संस्कति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार के रूप में निम्नलिखित सुरक्षाएँ प्रदान की गई है।

1. अनुच्छेद 29(1) के अनुसार, "भारत के राज्य–क्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी विभाग की, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा।"

   अनुच्छेद 29(2) के अनुसार, "राज्य द्वारा पोषित या राज्य–निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूल वंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी एक के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।"
2. अनुच्छेद 30(1) के अनुसार, "धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।
3 अनुच्छेद 30(2) के अनुसार, "शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरूद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है।"

संविधान के भाग 17 के अध्याय 4 के अनुच्छेद 350(क) तथा 350(ख) द्वारा तो अल्पसंख्यकों को विशेष शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। ये सुविधाएँ निम्नलिखित हैं :

1. अनुच्छेद 350(क) के अनुसार प्रत्येक राज्य तथा उस राज्य का प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के चालकों को प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर मात–भाषा में शिक्षा उपलब्ध करने का प्रयास करेगा। इस व्यवस्था को कार्यान्वित करने के लिए राष्ट्रपति आवश्यकतानुसार राज्य को निर्देश दे सकता है।
2. अनुच्छेद 350(ख) के अनुसार व्यवस्था की गई है कि भाषायी अल्पसंख्यक वर्गों के लिए एक विशेष पदाधिकारी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाएगा। उसका कर्त्तव्य होगा कि वह भाषायी अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित सभी विषयों की रिपोर्ट तैयार करके राष्ट्रपति के सम्मुख पेश करेगा। राष्ट्रपति उस रिपोर्ट को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा तथा वह रिपोर्ट सम्बन्धित राज्यों को भी भेजी जाएगी।

   इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि संविधान द्वारा भाषायी अल्पसंख्यको को संविधान द्वारा पर्याप्त सुरक्षाएँ प्रदान की गई हैं। इन सुरक्षाओं का उद्देश्य था कि अल्पसंख्यक भी अन्य वर्गों की तरह राष्ट्र की धरा में रहते हुए राष्ट्र की एकता को दढ़ करेंगे। परन्तु उन्होंने भाषा के आधार पर अपनी भावनात्मक एकता तो मजबूत की, परन्तु राष्ट्रीय एकता की अवहेलना कर दी। इससे भारतीय राजनैतिक व्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। भाषा की भावनात्मक एकता ने इतना उग्र रूप धारण किया है कि अन्य भाषाओं की अवहेलना ही नहीं, बल्कि उनका अपमान किया जाने लगा। यह प्रवत्ति दोषपूर्ण है। राष्ट्र की सभी भाषायें हमारी हैं और उनका उचित आदर होना आवश्यक है। इस व्यवस्था का उत्तरदायित्व राजनेताओं पर है।

भाषा का भारतीय राजनीति पर प्रभाव
(Effect of Language on the Politics of India)

भाषा ने भारतीय राजनीति को निम्नलिखित ढंगों से प्रभावित किया हैः

1. **राष्ट्रीय एकता को खतरा (Danger to National Integration):** राष्ट्रीय एकता के लिए एक सामान्य भाषा का होना अति आवश्यक है। संविधान निर्माताओं ने यही बात सोच कर हिन्दी को राष्ट्र भाषा घोषित किया था। परन्तु भाषा के

विवाद ने राष्ट्रीय एकता व अखण्डता को करारी चोट पहुंचाई है। दक्षिण के राज्यों और उत्तर के राज्यों में मुख्य विवाद का कारण भाषा है। हिन्दी राज्य हिन्दी के पक्ष में है जबकि दक्षिण के गैर हिन्दी भाषा राज्य हिन्दी विरोधी हैं।

2. **भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन (State's Reorganisation on the basis of Language) :** संविधान के लागू होने के बाद शीघ्र ही राज्यों के भाषायी आधार पर पुनर्गठन की मांग जोर पकड़ती गई और सरकार ने भारत के राज्यों का पुनर्गठन करने के लिए 1953 के आधार पर भारत को 14 राज्यों तथा 6 संघीय क्षेत्रों में विभाजित किया। परन्तु राज्य के 1956 के पुनर्गठन से यह समस्या समाप्त नहीं हुई बल्कि उसके बाद भी अनेक राज्यों का पुनर्गठन किया गया और आज भारत में 28 राज्य और 7 संघीय क्षेत्र हैं। आज भी अनेक क्षेत्रों में भाषा के आधार पर अलग राज्य बनाने की मांग उठाई जाती है। उदाहरण के लिए आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना, महाराष्ट्र में विदर्भ (Vidarabhs), गुजरात में सौराष्ट्र, उत्तरप्रदेश में बुंदेलखण्ड, जम्मू–कश्मीर में लद्दाख और जम्मू अलग राज्य की मांग कर रहे हैं। इससे भारत की एकता कमजोर पड़ती है।

3. **क्षेत्रीयवाद की भावना का विकास (Development of the feeling of Regionalism):** भाषा के आधार पर ही लोगों में क्षेत्रीयवाद की भावना का विकास हुआ है और विभिन्न भाषा बोलने वाले पथक राज्य की मांग करते है। परन्तु यदि सभी पथक भाषा बोलने वालों की मांग को स्वीकार कर लिया जाए तो भारत अनेक छोटे–छोटे राज्येां में बंट जाएगा और भारत की एकता भी खतरे में पड़ सकती है।

4. **सीमा विवाद (Regional Dispute):** भाषा के कारण अनेक राज्यों में सीमा विवाद उत्पन्न हुए हैं ओर आज भी अनेक राज्यों के बीच यह विवाद चल रहे हैं। उदाहरणस्वरूप पंजाब और हरियाणा, महाराष्ट्र और कर्नाटक और केरल इत्यादि में सीमा विवाद विद्यमान हैं। पंजाब और हरियाणा के भाषायी क्षेत्रों के विवाद को हल करने के लिए कई आयोग स्थापित किए जा चुके हैं परन्तु अभी तक समस्या का समाधान नहीं हुआ है। 21 जून, 1986 को केन्द्र ने सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश डी.ए. देसाई अध्यक्षता में न्यायिक समिति की नियुक्ति की ताकि वह पता लगा सके कि पंजाब के कौन से हिन्दी भाषी क्षेत्र हरियाणा को चण्डीगढ़ के बदले दिए जाने चाहिए।

5. **संकीर्ण देशभक्ति की भावना (Feeling of Narrow Patriotism):** भाषा व्यक्ति संकीर्ण देशभक्ति की भावना का विकास करती है। लोग राष्ट्र हित को भूल कर अपने स्वार्थी हितों के चक्कर में फंस जाते हैं। भारत में रहने वाले भिन्न–भिन्न लोग अपनी प्रान्तीय भाषाओं के प्रति अधिक वफादार है और हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। इससे ज्यादा शर्म की बात और क्या हो सकती है कि ऐसे लोग विदेशी भाषा अंग्रेजी पढ़ने के लिए हिन्दी का विरोध करते हैं।

6. **भाषायी अल्पसंख्यकों की समस्या (Problem of Linguistic Minorities):** भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन से एक महत्वपूर्ण समस्या पैदा हो गई है और यह है भाषायी अल्पसंख्यक। चाहे राज्यों का पुनर्गठन भाषा के आधार पर किया जाता है फिर भी प्रत्येक राज्य में अन्य भाषाओं के लोग भी रहते हैं। अल्पसंख्यकों को बहुमत भाषी बाहर के लोग समझते हैं और उनके साथ भेद भाव किया जाता है। उदाहरण के लिए 1966 में महाराष्ट्र में शिव सेना की स्थापना की गई जिसने नारा दिया, महाराष्ट्र मराठियों के लिये और दक्षिण भारत के विरूद्ध आन्दोलन किया ताकि वे महाराष्ट्र से चले जाए।

7. **आन्दोलन, हिंसा, व्रत आदि का प्रभाव (Effects of Movements, Violence, Fasts etc.):** भाषा के विवादों ने आन्दोलनों हिंसा इत्यादि को जन्म दिया है। भाषायी समूह के लोगों ने केन्द्र से अपनी मांगे मनवाने के लिए आन्दोलनों का सहारा लिया और कई नेताओं ने मरण व्रत भी रखे। कई बार इन हिंसक हिन्दी विरोधी आन्दोलनों में हजारों लोगों की मत्यु हुई और करोड़ो की सम्पत्ति बर्बाद हुई। तमिलनाडु में कई बार हिन्दी विरोधी आन्दोलन हुए हैं। दिसम्बर, 1986 में गोवा में कोंकणी को राज्य की सरकारी भाषा घोषित करने के लिए आन्दोलन हुए। 71वें संशोधन द्वारा कोंकणी को आठवी अनुसूची में सम्मिलित कर लिया गया है।

8. **सामाजिक तनाव (Social Tensions):** भाषायी आन्दोलनों से सामाजिक तनाव की वद्धि हुई है। गोवा में कोंकणी और मराठी भाषा को लेकर दिसम्बर, 1986 में सामाजिक तनाव उत्पन्न हो गया। उत्तर भारत और दक्षिण भारत में भाषा को लेकर कई बार सामाजिक तनाव उत्पन्न हो जाता है।

9. **सारांश (Conclusion):** उपरलिखित वर्णन ने स्पष्ट है कि भाषा ने भारतीय राजनीति को बहुत ही प्रभावित किया है और यह भारतीय एकता के रास्ते में एक बड़ी बाधा है। भाषा की समस्या आम चुनावों के दिनों में और भी उग्र हो जाती है, क्योंकि राजनीतिक दल विभिन्न भाषायी लोगों की भावनाओं को उत्तेजित करके अपना स्वार्थ पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। भारत से अंग्रेज गए तो अंग्रेजी को भी एक दिन जाना होगा। यदि दक्षिण भारत के पांच मुख्यमन्त्री हिन्दी को धीरे–धीरे लाने के लिए कुछ रचनात्मक सुझाव देंते तो वह तर्कसंगत होता, परन्तु जिस तरह से उन्होंने हिन्दी का विरोध किया है और केन्द्र पर दोषारोपण किया है, वह नितान्त बेतुका और राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित है। इन लोगों ने अपनी राजनीतिक गद्दी को बरकरार रखने के लिए हिन्दी को एक शस्त्र के रूप में अपना रखा है और अपनी भोली–भाली जनता को हिन्दी के द्वारा उत्तर के साम्राज्यावाद का हौवा दिखा कर और उससे उसकी रक्षा करने वाले मसीहा का बाना पहन कर हमेशा बहकाने की चेष्टा की है। तमिलनाडु का तमिल के लिए आग्रह तो समझ आता है, पर अंग्रेजी के लिए आग्रह की क्या तुक है? हिन्दी के विकास में जितना योग हिन्दी भाषियों का है, उससे कहीं अधिक गैर हिन्दी भाषियों का है। वास्वत में तमिलनाडु के हिन्दी विरोधी नेता भी वास्तविकता से बेखबर नहीं है। इसीलिए वे घर के बाहर मंच पर आकर हिन्दी का विरोध करते हैं। किन्तु घर के अन्दर अपने बच्चों को हिन्दी पढ़ाते हैं। इसलिए हिन्दी से वंचित रखकर अपने बच्चों का भविष्य वे नहीं बिगाड़ना चाहते, किन्तु जनता को हिन्दी के विरोध के लिए प्रलोभन दे कर केन्द्र की कमजोरी से राजनीतिक लाभ प्राप्त करने में भी वे पीछे नहीं रहना चाहते। आवश्यकता इस बात की है कि दुराग्रही हिन्दी–हन्ताओं को इसके विरूद्ध प्रचार करने का कोई अवसर न दिया जाए।

(घ) अन्तर्राज्यीय विवाद (Inter-state Disputes)।

(ङ) राज्य के लोगों के हितों की रक्षा के लिए आन्दोलन (Movements for the protection of the interests of the People of the State)।

(क) **भारतीय संघ से पथक होने की माँग (Secession from the Indian Union):** कई बार क्षेत्रीय आन्देलन संघ से अलग होने के लिए किए जाते रहे हैं।

(i) ***तमिलनाडु में आन्दोलनः*** संघ से अलग होने की आवाज़ सर्वप्रथम मद्रास राज्य के लोगों ने उठाई। 1960 में D.M.K. तथा अन्य तमिल दलों ने इस माँग को पूरा करवाने के लिए व्यापक आन्देलन संगठित किया। 1962 के चुनाव में D.M.K दल को मद्रास विधानसभा में पचास स्थान प्राप्त हुए, जबकि 1957 के चुनाव में इस दल को 15 स्थान प्राप्त हुए थे। DMK Party के नेता अन्नादुराई (Annadurai) ने संघ से अलग होने की माँग को दोहराया। स्वर्गीय प्रधानमंत्री नेहरू ने इस माँग को अनुचित बताया। मद्रास के वातावरण को देखते हुए संसद् ने 1963 में संविधान में 16वां संशोधन पास किया। इस संशोधन के अनुसार संसद को अधिकार दिया गया कि वह भारत की प्रभुसत्ता को ललकारने वाले व्यक्ति को सज़ा देने के लिए कानून बनाए। इस संशोधन के अनुसार संसद तथा अन्य राज्य विधानसभा के चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को संविधान के प्रति और राष्ट्र की प्रभुसत्ता व एकता को बनाए रखने के लिए शपथ लेनी होगी। इस संशोधन के फलस्वरूप D.M.K ने भारत से अलग होने की माँग को छोड़ दिया। परन्तु 1971 में तमिलनाडु (मद्रास) के मुख्यमन्त्री करुणानिधि (Karunanidhi) ने कहा कि तमिलनाडु का भारत से अलग होना निश्चित एवं अनिवार्य है।

(ii) ***पंजाब आन्दोलनः*** मद्रास राज्य की तरह पंजाब में मास्टर तारा सिंह ने पंजाब को एक अलग सिख राज्य बनाने की माँग रखी। 1950 से लेकर 1966 तक अकाली दल ने पंजाबी सूबा बनाने के लिए कई आन्देलन चलाए। नवम्बर, 1966 को पंजाब का पुनर्गठन करके पंजाब और हरियाणा दो राज्यों की स्थापना की गई। 1971 में डॉ. जगजीत सिंह ने खालिस्तान की माँग को दोहराया जिसकी पंजाब के नेताओं ने कड़ी आलोचना की। 1973 में पास किए गए आनन्दपुर प्रस्ताव के आधार पर अकाली दल ने भारत के भीतर ऐसे सिख राज्य की स्थापना की माँग की जिसमें चार विषयों–प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, मुद्रा और यातायात व संचार साधनों को छोड़कर अन्य सभी विषय राज्य सरकार को सौंप देने चाहिएँ। अपनी इस माँग को पूरा करवाने के लिए अकाली दल के एक धड़े ने जत्थेदार जगदेव सिंह के नेतत्व में आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन के अतिरिक्त 8 अगस्त, 1982 को एक अन्य आन्दोलन अमतसर से आकली दल ने आरम्भ किया। इस आन्दोलन में दमदमी टकसाल के मुखिया संत जरनैल सिंह भिंडरावाले और उनके समर्थक भी सम्मिलित थे। जून, 1984 में सरकार को विवश होकर आतंकवादियों को पकड़ने के लिए स्वर्ण मन्दिर परिसर में तथा अन्य स्थानों पर सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी। जुलाई, 1985 में शिरोमणि अकाली दल के प्रधान संत हरचंद सिंह लौंगोवाल और प्रधानमंत्री राजीव गांधी में एक समझौता हुआ जिसको पंजाब समझौता कहा जाता है।

(iii) ***मिज़ो आन्दोलनः*** असम के मिज़ो हिल (Mizo Hill) ज़िले के लोगों ने भारत से अलग होने की माँग की और इस माँग को पूरा करवाने के लिए उन्होंने Mizo National Front की स्थापना की। चीन के आक्रमण के समय M. N. F को अवैध घोषित कर दिया गया और मिज़ो हिल (Mizo Hills) को संघीय क्षेत्र (Union Territory) बना दिया गया। इस संघीय क्षेत्र को मिज़ोरम (Mizoram) का नाम दिया गया और इसका उद्घाटन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने 21 जनवरी, 1972 को किया। मिज़ो नैशनल फ्रन्ट ने लालडेंगा के नेतत्व में स्वतन्त्र मिज़ोरम के लिए अपनी आतंकवादी गतिविधियां जारी रखीं। 1972 में लालडेंगा इंग्लैण्ड भाग गए और वहाँ से मिज़ो नैशनल फ्रन्ट को निर्देश देते रहे। 1976 और 1980 में लालडेंगा के समझौते के लिए बातचीत हुई जो विफल रही। तीसरी बार बातचीत अक्टूबर, 1984 में आरम्भ हुई और 25 जून, 1986 को केन्द्रीय सरकार और मिज़ो फ्रन्ट में समझौता हुआ और लालडेंगा को मुख्यमंत्री बनाया गया और 1987 में मिज़ोरम को पूर्ण राज्य बनाया गया।

(iv) ***नागालैण्ड आन्दोलनः*** मिज़ो लोगों की तरह असम के नागा पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने स्वतंत्र नागरा राज्य की माँग की। उन्होंने नागा राज्य की माँग को मनवाने के लिए 'नागा नैशनल कौंसिल' (Naga National Council) की स्थापना की। नागों ने अपनी माँगों को पूरा करवाने के लिए हिंसक तथा अराजकता की कार्यवाही की, जिससे सेना को बुलाना पड़ा। 1962 में 13वें संशोधन द्वारा नागालैंड को भारतीय संघ का 16वां राज्य बनाया गया। इसके बाद भी नागालैंड में कई विद्रोही नागाओं ने अपना आन्दोलन जारी रखा।

(v) ***आज़ाद कश्मीर की माँगः*** जम्मू–कश्मीर में अलगाववाद की जड़ें बड़ी गहरी हैं। 1947 में शेख अब्दुल्ला जम्मू–कश्मीर के शासक बने और उन्होंने 1951 से स्वतंत्र कश्मीर का सपना देखना शुरू कर दिया। इसीलिए अगस्त, 1953 में शेख अब्दुल्ला को बंदी बनाया गया। कश्मीर में अलगाववाद का एक महत्त्वपूर्ण कारण भारतीय संविधान का अनुच्छेद 370 है जिसने कश्मीर को विशेष दर्जा दे रखा है। 1987–88 से अलगाववादी गतिविधियाँ तेज़ हो गईं। इन अलगाववादियों को पाकिस्तान का पूर्ण समर्थन प्राप्त है जिस कारण ये कश्मीर के विभिन्न स्थानों पर आतंकवादी गतिविधियाँ कर रहे हैं। उन्हें पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षण, सहायता और प्रोत्साहन मिल रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय विरोधी तत्त्व विदेशी पर्यटकों का अपहरण करके उनकी हत्या कर देते हैं। उन अलगाववादियों से निपटने के लिए प्रशासन बड़े पैमाने पर कार्यवाही कर रहा है। उनकी मुख्य माँग कश्मीरियों को आत्मनिर्णय का अधिकार देना और आज़ाद कश्मीर की है। इस माँग की पूर्ति के लिए ये अलगाववादी तत्त्व पाकिस्तान की उकसाहट के कारण खूनी संघर्ष का रास्ता अपनाए हुए हैं।

(ख) **पथक् राज्यत्व को प्राप्त करने की माँग (Demand for Separate Statehood):** कई बार क्षेत्रीयता आन्दोलन अलग राज्य की स्थापना के लिए किया जाता रहा है। 1956 के राज्यों के पुनर्गठन से प्रत्येक राज्य सन्तुष्ट नहीं था। बम्बई राज्य के लोगों ने पहले अलग राज्य की माँग की, जिसके फलस्वरूप दो नए राज्यों–महाराष्ट्र व गुजरात की स्थापना हुई। पंजाब में अकाली दल ने पंजाबी सूबा की माँग की। 1966 में अकाली दल की माँग को स्वीकार किया गया और पंजाब दो राज्यों में विभक्त कर दिया गया–पंजाब व हरियाणा। पंजाब के पहाड़ी इलाके हिमाचल प्रदेश में मिला दिए गए।

(i) ***गोरखालैंड आन्दोलनः*** 1985 ई. में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग पर्वतीय क्षेत्र के निवासियों ने सुभाष घीसिंग के नेतत्व में गोरखालैंड राज्य बनाए जाने की माँग की। गोरखा नैशनल लिबरेशन फ्रंट ने गोरखा राज्य के लिए व्यापक आंदोलन चलाया और अन्त में अगस्त, 1988 में एक समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत दार्जिलिंग पर्वतीय गोरखा परिषद् की माँग को स्वीकार कर लिया गया। दार्जिलिंग पर्वतीय गोरखा परिषद् के चुनाव दिसम्बर, 1988 में हुए जिसमें गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे को 28 सीटें प्राप्त हुईं।

(ii) ***बोडो आन्दोलनः*** 1987 में असम में बसे बोडो कबीले के लोगों ने 'बोडोलैंड' की माँग को लेकर –'आल बोडो–स्टूडैंट्स यूनियन' (All Bodo Students Union) के नेतत्व में आन्दोलन शुरू किया। आल बोडो स्टूडैंट्स यूनियन ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी किनारे पर बसे बोडो कबीले के लोगों के लिए अलग राज्य की माँग कर रही है ताकि वे अपनी संस्कृति एवं भाषा की रक्षा कर सकें और अपना सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास कर सकें। 15 अगस्त, 1989 को अखिल बोडो छात्र संघ ने 'एक हजार घण्टे' के असम बन्द का आन्दोलन शुरू किया। इस आन्दोलन में बोडो और गैर–बोडो समुदायों में हिंसक घटनाएं हुईं। 28 अगस्त, 1989 को नई दिल्ली में त्रिपक्षीय वार्ता हुई और बोडो आन्दोलनकारी बातचीत के लिए उचित वातावरण बनाने के उद्देश्य से अपना आन्दोलन स्थगित करने तथा हिंसक गतिविधियाँ रोकने पर सहमत हो गए। बोडोलैंड आन्दोलन, 20 फरवरी को आन्दोलन के नेताओं, केन्द्र और राज्य सरकार के बीच हुए एक समझौते के साथ ही समाप्त हो गया। समझौते के अनुसार असम राज्य में बोडो लोगों की आशाओं को पूरा करने और सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए एक 40 सदस्यीय स्वायत्तशासी परिषद् बनाई जाएगी। इस परिषद् के 35 सदस्य निर्वाचित होंगे तथा 5 सदस्यों को राज्यपाल मनोनीत करेगा। 19 मई, 1993 को बोडोलैण्ड अन्तरिम परिषद् की स्थापना की गई। अन्तरिम परिषद् का गठन बोडो समझौते के पालन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

(iii) ***झारखण्ड आन्दोलनः*** झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और मध्य प्रदेश के 21 ज़िलों को मिलाकर झारखण्ड राज्य की स्थापना की माँग कर रहा है। झारखण्ड मुक्ति मोर्चा ने पिछले 4–5 वर्षों में कई

अध्याय-20
गरीबी उन्मूलन
(Poverty Alleviation)

मानव इतिहास के प्रारम्भ से ही निर्धनता विद्यमान रही है। ज्यों–ज्यों समय गुजरता गया और जनसंख्या में भी वद्धि होती गई, गरीबी बड़े पैमाने में दिखाई देने लगी। निर्धनता पर सबसे पहली बार ध्यान तब दिया गया, जब सामाजिक रूप में उसे व्यक्तिगत समस्या से भिन्न देखा गया। परन्तु इसने निराशावाद को भी जन्म दिया। उस समय जो आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाएँ थी, तथा जो वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी ज्ञान उपलब्ध था उससे गरीबी की व्यापकता में कमी न हो सकी क्योंकि जनसंख्या में लगातार वद्वि होती गई। भाग्यवश, मानव की वैज्ञानिक ज्ञान की सत्त खोज ने इस निराशा को कम किया। उसने वस्तु और सेवाओं के उत्पादन तेजी से बढ़ाने के लिए प्राकतिक तथा मानव संसाधनों के इस्तेमाल के नए और क्रान्तिकारी तरीके खोज निकाले। इस मूलभूत परिवर्तन के कारण ही निर्धनता को सामाजिक बुराई मानकर उसका उन्मूलन करने के लिए सार्थक कार्य करने का सिलसिला आरम्भ हुआ।

गरीबी शब्द ग्रामीण भारत के लोगों के लिए अपरिचित नहीं है। देश में गरीबी एवं गरीब लोग अनादि काल से रह रहे हैं। जनसंख्या का एक बड़ा भाग नग्न गरीबी में जीवन यापन कर रहा है चाहे वह मन्द गति से होनी वाले आर्थिक विकास का परिणाम ही क्यों न हो। दाण्डेकर एवं रथ के अनुसार, "भारत में गरीबी की समस्या निम्न राष्ट्रीय आय तथा इसके असमान वितरण की मन्द गति तथा विकास के छोटे लाभों का भी असमान वितरण है।" भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में संघन गरीबी दशकों से एक कहावत रहा है। साढ़े पांच दशक की स्वतन्त्रता के योजनाबद्ध विकास का सर्वाधिक दुखद और चिन्तनीय पहलू यह है कि गरीबी भारत के लोगों के चेहरों पर हुक्मनाम की तरह है। ग्रामीण जनता उन अधिकांश सुविधाओं से वंचित है। जिन्हें जीवन के मापदण्डों के अनुसार न्यूनतम आवश्यक समझा जाता है। ग्रामीण लोग अपनी भाग्यवादी प्रवत्ति के बोझ से दबे हुये हाने के कारण जहां एक और गरीबी से मेलमिलाप करके आत्मसात हो जाते हैं, वहां दूसरी और यह महसूस करते हैं कि गरीबी से छुटकारा पाने के लिए कुछ नहीं किया जा सकता है क्योंकि शायद पूर्व जन्मों के कारण उसे गरीबी से पीड़ित होना पड़ रहा है। इन सब धाराणाओं से प्रतीत होता है कि भारतीयों ने गरीबी के साथ जीना सीख लिया है। गरीबी की समस्या की इस फबकती हुई विशालता से सम्भवतः इसके समाधान को भी नकारा है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आर्थिक नियोजन न केवल आर्थिक विकास बढ़ाने के उपाय के रूप में अपनाया गया बल्कि गरीबी उन्मूलन भी इसका मूख्य लक्ष्य रहा, परन्तु गरीबी पर बराबर प्रहार करने के लिए कुछ अन्य बातों की भी आवश्कता होती है। पहला, गरीबी का पता लगाने के निश्चित मापदंड और दूसरा गरीबों का जीवन–स्तर उठाने के लिए ऐसी कार्यनीति जिसमें निश्चित कार्यक्रम है। इसके अतिरिक्त तीसरी आवश्यकता यह है कि गरीबी उन्मूलन कार्य में जो सफलताएँ मिली उनका अवधिक मूल्यांकन। इससे यह पता चल सकेगा कि जो कार्यनीति और कार्यक्रम अपनाए गए हैं, वे कितने प्रभावी सिद्ध हुए हैं।

राज्यवर ग्रामीण गरीबी सारिणी 1 में दिया गया है।

सारिणी 1

(प्रतिशत् गरीब)

राज्य	1987-88	1999-2000
आन्ध्र प्रदेश	11.9	45.8
असम	13.4	53.4

बिहार	8.6	47.9
गुजरात	16.3	41.2
हरियाणा	3.7	41.2
कर्नाटक	10.0	32.0
केरल	8.4	65.0
मध्य प्रदेश	15.2	30.8
महाराष्ट्र	19.6	41.7
उड़ीसा	13.8	40.8
पंजाब	5.9	56.7
राजस्थान	6.4	21.0
तमिलनाडू	17.9	63.4
उत्तर प्रदेश	4.9	34.6
पश्चिमी बंगाल	11.0	53.4
भारत	11.3	42.4

स्रोत : राष्ट्रीय मानव विकास प्रतिवेदन–2001, योजना आयोग, भारत सरकार, मार्च 2002

निर्धनता की संकल्पनाएँ और मापदण्ड

(तुलनात्मक) और पूर्ण निर्धनता

आम भाषा मे ंगरीब और अमीर दो ऐसे शब्द हैं जिनका एक दूसरे से संबध है। गरीब की परिभाषा करने के साथ–साथ अमीर की परिभाषा भी जरूरी है, क्योंकि हम गरीब और अमीर की तुलना करते हैं। भारत में गरीबी के बारे में सबसे पहले दादाभाई नौरोजी ने 1871 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'पावर्टी एण्ड अन–ब्रिटिश रूल इन इण्डिया' में विचार किया जिसमें उन्होंने भारत में प्रति व्यक्ति आय का उल्लेख किया है। उन्होंने यह दिखाया है कि ब्रिटेल की तुलना में भारत बहुत निर्धन है। अंतराष्ट्रीय स्तर की तुलना में भारत में यह स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है, (ब्रिटेन की प्रति व्यक्ति आय 8,870 डालर, अमरीका की 17,480 डालर की तुलना में भारत की प्रति व्यक्ति आय केवल 290 अमीरकी डालर है) आज भी भारत 20 गरीब देशों में है। वस्तुतः इस तरह की तुलना में गरीबी को सापेक्ष दष्टि से देखते हैं। या इसी प्रकार का सापेक्ष दष्टिकोण किसी देश के व्यक्तियों या समूह की पारस्परिक तुलना के लिए अपनाया जा सकता है। सापेक्ष निर्धनता हमेशा रहेगी क्योंकि कुछ देशों या व्यक्तियों की अन्य की तुलना करने पर गरीब हमेशा रहेंगे। इस दष्टि से यह निर्धनता की अपेक्षा असमानता का सूचकांक अधिक बनता है, जिसकी परिभाषा मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक समझे जाने वाले जीवन निर्वाह के न्यूनतम स्तर के संदर्भ में की जाती है। निर्धनता के इसी आधार पर परिभाषा करने का अर्थ है, हम किसी पूर्व–निर्धारित स्तर या मापदण्ड से उसे तौल रहे है। हाल ही के कुछ वर्षों से पूर्ण निर्धनता पर विजय पाने का लक्ष्य सामने रखा गया है।

पूर्ण निर्धनता से अभिप्राय है, जीवन–यापन का स्तर इतना नीचा है जिसमें मानव व्यक्तित्व–अर्थात् शारीरिक, सामाजिक और मानव के स्वाभाविक विकास में बाधा आती है। पूर्ण निर्धनता की रेखा का अभिप्रायः निर्धनता की उस संकल्पना से है जिससे दो व्यक्तियों/वर्गों के बीच अन्तर किया जा सके जो गरीब है और जो गरीब नहीं है। सामान्यः गरीबी रेखा आमदनी के उस स्तर से आँकी जाती है जो किसी व्यक्ति के लिए उपभोग के न्यूनतम स्तर की वस्तूएँ खरीदने के लिए पर्याप्त हो। न्यूनतम आवश्यकता का अर्थ है, उतनी उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धि, जो व्यक्ति के सामान्य विकास के लिए पर्याप्त हो। जिन लोगों की आय गरीबी रेखा से नीचे हैं उन्हें गरीब कहते है और सभी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में इसी वर्ग की गरीबी को दूर करना लक्ष्य माना गया है।

निर्धनता के आयाम

यद्यपि गरीबों की पहचान उनकी आमदनी के आधार पर की जाती है। परन्तु निर्धनता के कई पहलू है। शारीरिक दष्टि से कुपोषण और रहन–सहन से अस्वस्थ इसके मापदण्ड हैं, जिनकी कारण बीमारियाँ अधिक होती हैं और मत्यु दर बढ़ जाती

है तथा औसत आयु घट जाती है। अतः निर्धनता का अर्थ है, देश में शारीरिक क्षमता का निम्न स्तर। मानव क्षमता के संदर्भ में यह शिक्षा और कुशलता के अभाव का द्योतक है जिसके कारण न तो उत्पादन बढ़ पाता है और न नही अधिक मजदूरी के अल्प उत्पादकता से है। गरीबों के पास श्रम के भिन्न संसाधन भी सीमित होते है। इसलिए उनका स्वरोजगार भी अधिक उत्पादन नही होता। सामाजिक और सांस्कतिक और सास्कतिक ढ़ाँचे कमजोर होने के कारण निर्धन का शोषण होता है, सामाजिक दष्टि से उसकी हैसियत निम्न होती है, उसके साथ भेदभाव का बर्ताव होता है और सांस्कतिक क्षेत्र में उसकी उपेक्षा होती है।

गरीबों की पहचान करना एक बहुत ही अहम बात है। गरीबी उन्मूलन के सभी कार्यक्रमों का लक्ष्य उन लोगों की मदद करना है जो जरूरतमंद हैं। अतः गरीबों की पहचान की समस्या काफी महत्व रखती है। भारत में 'गरीबी रेखा' संकल्पना काफी महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि इसी के द्वारा सबसे अधिक तथा दूसरों के बीच भेद किया जाता है। जब निर्धनतम लोगों का पता लग जाए तब उनके उत्थान के लिए निश्चित कार्यक्रम अमल में लाए जा सकते हैं। इससे यह भी सुनिश्चित होता है कि दुर्लभ संसाधन समाज के सभी वर्गों में बराबर थोड़ा–थोड़ा न पहुँचे बल्कि उन्हें दिए जाए जिन्हें इनकी सख्त जरूरत है।

निर्धनता की जो बातें उभरी हैं या स्पष्ट हुई हैं, उन सबको मिलाकर गरीबों का पता लगाने के लिए कोई व्यावहार्य सूचकांक नहीं बनाया जा सकता। इसके लिए हमें दूसरी सबसे अधिक अच्छी प्रक्रिया, आय को आधार बनाना होगा। आय के आधार पर हम यह निर्धारित कर सकते हैं कि कौन गरीब है और कौन गरीब नहीं है। इसी कारण योजनाकारों ने इस प्रक्रिया को अपनाया है। परन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी आवश्यक होगी कि गरीबी की कुछ बातें सामाजिक कारणों से भी प्रभावित होती हैं। निर्धनता कम करने में सरकारी नीति और पैसे की विशेष भूमिका होती है। सस्ती शिक्षा, चिकित्सा सुविधा, शुद्ध पेयजल की उपलब्धता का इसमें अहम स्थान है।

गरीबी रेखा की रचना

भारत में गरीबी रेखा की रचना में इन उपायों को रखा गया है। पहला उपाय है वस्तुनिष्ठ आधार पर एक आदमी के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं का निर्धारण। न्यूनतम आवश्यकताओं को हम दो समूहों में, अर्थात् खाद्य और गैर–खाद्य श्रेणियों में बाँट सकते हैं। खाद्य संबंधी न्यूनतम आवश्यकता पोषाहार आवश्यकता को ध्यान में रखकर निर्धारित की जा सकती है मानव शरीर को कार्बोहाईड्रेड, वसा, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज जैसे पौषक तत्वों की आवश्यकता होती है। विभिन्न आयु वर्गों के स्त्री और पुरूषों को इन पोषक तत्वों को कितनी आवश्यकता है, इसका हिसाब भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् जैसी संस्थाओं ने लगाया है। खाने की जिन वस्तुओं से एक व्यक्ति की आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति होती है, वह एक व्यक्ति की खाद्य सम्बन्धी न्यूनतम आवश्यकता है। भारत में गरीबी रेखा की रचना केवल खाद्य वस्तुओं की खपत के आधार पर की जाती है। बाकी सभी आयामों को छोड़ा दिया जाता है। स्पष्ट है कि हमारे समाज में गरीबी की रेखा निश्चित करने के लिए यह काफी नहीं है। परन्तु यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि भारत जैसे विशाल देश में यह सूत्र व्यावहार्यता के काफी निकट है क्योंकि हम अपनी आय का बड़ा हिस्सा खाने–पीने पर खर्च करते हैं। दूसरा उपाय है मौजूदा बाजार भावों पर न्यूनतम खाद्य वस्तुओं की आवश्यकताओं की लागत का हिसाब लगाना। इसमें वे भाग लिए जाएँ जो उपभोक्ता को चुकाने पड़ते हैं ताकि हिसाब में ली गई लागत उतनी हो, जितना पैसा खाद्य वस्तुओं को खरीदने में खर्च होता है।

तीसरे उपाय में प्रति व्यक्ति आय स्तर का हिसाब लगाया जाता है। यह आय दूसरे उपाय में जिस लागत का हिसाब लगाया गया है, उसके बराबर होती है। यह आय स्तर ही गरीबी रेखा है और यह सामान्यतः "प्रति व्यक्ति प्रति मास" के आधार पर अभिव्यक्त की जाती है। तीसरा उपाय पूरा करने के लिए विभिन्न आय वर्ग के लोगों के उपभोक्ता खर्च का ब्यौरा होना जरूरी है।

आप देखेंगे कि गरीबी रेखा का हिसाब खाद्य वस्तुएँ खरीदने के लिए जरूरी पैसे के आधार पर लगाया जाता है। उपभोग की अल्प आवश्यकताओं की मात्रा के आधार पर निर्धारण नहीं किया गया है। बल्कि खाद्य वस्तुओं से भिन्न इन उपभोक्ता वस्तुओं पर वर्तमान उपभोक्ता खर्च को न्यूनतम आवश्यकता माना जाता है। स्पष्ट है कि यह एक अनुमान है, इसे मापदण्ड नहीं माना जा सकता। खाद्य से भिन्न वस्तुओं का वस्तुवार न्यूनतम स्तर निर्धारण करना कठिन है।

यह बात भी ध्यान में रखी जानी चाहिए कि पोषक तत्वों की आवश्यकता आमतौर पर कैलोरियों की खपत के बराबर मानी जाती है। योजना आयोग इस कार्यविधि को ही अपनाता है और गरीबी रेखा की परिभाषा प्रति व्यक्ति मासिक आय के उस स्तर के रूप में करता है जो एक व्यक्ति की कैलोरियों की न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त होती है। कुछ विशेषज्ञों

का मत है कि जब औसत भारतीय के खाने में पर्याप्त कैलोरियाँ होती हैं तो आम तौर पर प्रोटीन जैसे अन्य पोषक तत्व भी काफी मात्रा में होते है। अगर हम इस टिप्पणी को ध्यान में रखें तो कैलोरियों के आधार पर गरीबी रेखा निर्धारित करने में योजना आयोग के तरीके में अधिक त्रुटि नहीं है।

ग्रामीण निर्धनता के निर्धारक-तत्व

रोजगार आमदनी का साधन है। रोजगार कम हो तो गरीबी बढ़ेगी। अतः गरीबी के निदान के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसरों का होना बुनियादी आवश्यकता है। रोजगार कैसे पैदा होता है? रोजगार तब पैदा होता है जब मनुष्य उपलब्ध प्राकतिक संसाधनों के उपयोग के लिए अपना प्रयोग शारीरिक और बौद्धिक शक्ति का इस्तेमाल करता है। समय के साथ मनुष्य ने अपने कौशल का प्रयोग कर कत्रिम संसाधनों का विकास किया है। ये संसाधन है : उपकरण, साज–सामान, उपकरण–प्रणालियाँ आदि। इनसे वह प्राकतिक संसाधनों का दोहन करता है। कत्रिम संसाधनों के विकास से रोजगार के अवसर बढ़ते हैं और प्राकतिक संसाधनों के दोहन से रोजगार अधिक उत्पादन बनता है। आय स्तर उठाने के लिए दोनों महत्वपूर्ण हैं। यदि पर्याप्त रोजगार उपलब्ध नहीं हैं तो विद्यमान सीमित अवसर अधिक लोगों में बँट जाएंगे। इससे हर व्यक्ति का हिस्सा कम हो जाएगा और आय भी कम होगी। इस सिलसिले को अल्प–रोजगार या गुप्त बेरोजगार कहते है। यदि रोजगार को अधिक उत्पादनकारी बनाया जाता है तो नियोजित व्यक्ति की आय भी बढ़ेगी। इस प्रकार अगर सभी को उतना रोजगार देने के लिए हमारे पास पर्याप्त प्राकतिक और कत्रिम स्रोत नहीं होंगे, जिससे सभी जीवन–यापन कर सकें और विकास हो सके, तो कुछ लोग गरीबी रेखा ये नीचे चले जाएंगे।

ग्रामीण क्षेत्रों में जमीन और पानी प्रमुख प्राकतिक संसाधान है। यदि ये साधन इतनी मात्रा में उपलब्ध होते कि उनसे हर व्यक्ति को पर्याप्त आमदनी हो जाती तो कोई भी निर्धन नहीं होता। परन्तु समय के साथ–साथ जनसंख्या बढ़ती गई और प्राकतिक संसाधन उस अनुपान में नहीं बढ़े। इस कमी को पूरा करने के लिए मनुष्य ने कत्रिमता का सहारा लिया। उसने प्राकतिक संसाधनों का ज्यादा इस्तेमाल करने और उन्हें अधिक उत्पादन बनाने के लिए उर्वरकों, उन्नत बीजों आदि का विकास किया और नहरें तथा नलकूप (ट्यूबवैल) खुदवाए। परन्तु इन कृत्रिम संसाधनों का लाभ उठाने के लिए धन की आवश्यकता होती है। जिनकी पास पैसा नहीं है, वे कत्रिम संसाधनों का इस्तेमाल नहीं कर सकते और उनके अधिक गरीब होने की संभावना रहती है। इसी तरह अगर हमारे पास जमीन और पानी नहीं है तो हमारे गरीब रहने की संभावना अधिक हो जाती है।

भारत में जनसंख्या बढ़ती जा रही है और उसकी तुलना में प्राकतिक संसाधन लगातार कम होते जा रहे है। आज प्रति ग्रामीण परिवार औसतन एक हैक्टेयर से कुछ अधिक खेती योग्य है। उर्वरकों और अधिक उपज देने वाले बीजों के इस्तेमाल के लिए सिचाईं जरूरी है। परन्तु यहाँ पानी का वितरण समान नहीं है। ऐसी स्थिति में जमीन के समान वितरण से कुछ अल्पकालिक लाभ मिल सकते हैं। परन्तु आने वाले समय में जनसंख्या में वद्धि के कारण उपलब्ध जमीन और जनसंख्या के बीच संतुलन नहीं रह पाएगा।

आम तौर पर लोग दो तरह से काम करते हैं। एक तो अपना काम है, जिसे हम स्व–रोजगार कहते है। दूसरा, दूसरे लोगों का काम करना है, जिसके बदले मजदूरी या वेतन मिलता है। जो अपना काम करते है, उनके पास या तो जमीन होती है जिसमें वह खेती करते है या पैसा होता है जिससे वह व्यापार करते है अथवा साज–समान बनाते है या फिर सेवाएँ प्रदान करते है। जो मजदूरी कमाने के लिए खेती में काम करते हैं, उन्हें खेतिहर मजदूर कहते है। जिस परिवार के पास बहुत कम जमीन है, वह भी दूसरों की जमीन में मजदूरी पर कार्य कर अपनी आय बढ़ाता है। जो व्यापारी या कारीगर अपनी आमदनी बढ़ाना चाहते है, वे भी मजदूरी पर दूसरों का काम करते हैं। इस वर्ग की ग्रामीण जनता के आय के भिन्न–भिन्न साधन हैं क्योंकि उनको उनके मुख्य साधन से पर्याप्त आमदनी नहीं होती।

ग्रामीण इलाकों के सीमित संसाधनों पर जनसंख्या का दबाव कम करने का एक प्रमुख साधन यह हो सकता है कि देहात के लोग शहरों की तरफ आते रहें जिस हम प्रवजन कहते है। ग्रामीण इलाकों से कितना प्रवजन होता है, वह इस बात पर निर्भर करता है कि शहरों में उद्योगों, व्यापार और अन्य सेवाओं में कितने मजदूरों की जरूरत है। उनकी मांग किस हिसाब से बढ़ती है। भारत में देहातों से शहरों की और लगातार प्रवजन हो रहा है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ हद तक स्थिति सुधरी है। परन्तु ग्रामीण निर्धनता दूर नहीं हुई है। वस्तुतः इस समय जिस पैमाने पर लोग गाँवों से शहरों की और जा रहे हैं, उससे शहरी इलाकों में गरीबी बढ़ रही है। शहरीकरण की वर्तमान प्रक्रिया से काफी गम्भीर समस्या पैदा हो रही है। जिन राज्यों का कषि

आधार मजबूत है, वहाँ कम लोग शहरों की और जाते है। पंजाब इसका एक उदाहरण है। कषि के विकास और आधुनिकीकरण से शहरों की और पलायन रोका जा सकता है। इस प्रकार हम देखेंगे कि मजबूत और गतिशील कषि आधार ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में गरीबी कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

इस प्रकार आप देखेंगे कि गरीबी के कई कारण हैं। जनसंख्या की आवश्यकताओं के अनुसार प्राकतिक और कत्रिम संसाधनों की कमी और उनका असमान वितरण ही इसके बुनियादी कारण है। ग्रामीण इलाकों में, जहाँ जनसंख्या अधिक होती है, गरीबी का संबंध कत्रिम संसाधनों के इस्तेमाल की आवश्यकता है। इन संसाधनों के सही उपयोग के लिए वहाँ टैक्नोलॉजी का इस्तेमान करने की जरूरत भी है। इन संसाधनों का इतनी कुशलता से उपयोग होना चाहिए कि इनका लाभ अपेक्षाकत अधिक गरीब लोगों को मिले। इससे स्वरोजगार अधिक उत्पादक होगा तथा भूमिहीन मजदूरों को अधिक रोजगार मिलेगा और उनकी आमदनी बढ़ेगी। इसके साथ–साथ शहरी क्षेत्रों में भी आर्थिक कार्यकलापों में तेजी से वद्धि होनी चाहिए ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या का दबाव कम हो। ये दो बातें ऐसी हैं जिनका ग्रामीण अर्थव्यवस्था के फैलाव पर अतिरिक्त प्रभाव पड़ेगा। इससे उत्पादनकारी रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे।

निर्धनता-उन्मूलन के लिए कार्य-नीति और कार्यक्रम

गरीबी हटाने के लिए सरकार ने दोहरी नीति अपनाई है। पहली कार्य–नीति सामान्य विकास प्रक्रिया पर निर्भर रहने की है। इसमें कत्रिम अर्थात मानव–निर्मित संसाधनों का इस्तेमाल और प्राकतिक मानव संसाधनों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए टैक्नोलॉजी का इस्तेमाल शामिल है। दूसरी कार्य–नीति में गरीबों की सहायता के लिए विशेष कार्यक्रम अमल में लाना है। इससे संसाधनों के असमान वितरण में सुधार हेगा। योजना के आरम्भिक चरणों में, अर्थात् पाँचवें और छठे दशक के दौरान विकास प्रक्रिया और सामुदायिक विकास कार्यक्रम के माध्यम से संस्थाओं के निर्माण पर बल दिया गया ताकि विकास का लाभ गरीबों को मिल सके। योजनाओं का लक्ष्य प्रति व्यक्ति आय में 3 प्रतिशत की वार्षिक वद्धि रहा। आशा थी कि इससे गरीबों को भी लाभ होगा। परन्तु यह विकास–दर प्राप्त नहीं हुई। प्रति व्यक्ति आय में केवल 1.5 प्रतिशत की वद्धि हुई। कषि के क्षेत्र में और भी निराशा हुई। गरीबों तक पहुँचाने के लिए कुछ भी नहीं रहा और जैसा हमने पहले कहा है, कषि पर अधिक जोर दिया गया और संस्थाओं के निर्माण की अपेक्षा नई टैक्नोलॉजी पर अधिक बल दिया गया। इससे कषि–जगत में विकास का नया चरण आरम्भ हुआ, जिसे हम हरित–क्रान्ति कहते है।

कषि में संतुलन बनाए रखने के साथ–साथ गरीबों के लिए विशेष कार्यक्रम आरम्भ किए गए। इन कार्यक्रमों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। (a) क्षेत्र प्रधानः और (b) व्यक्ति प्रधान।

क्षेत्र प्रधान कार्यक्रम

इस वर्ग में जनजाति उप–योजनाएँ और सूखा–प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.) आते हैं। हमारी जनसंख्या का कुछ भाग दूर–दराज के आदिवासी इलाकों में रहता है। उन्हें देश की प्रगति का पूर्ण लाभ नहीं मिला और वे हमारी अर्थव्यवस्था की मुख्य धारा में शामिल नहीं हो पाए। हमारे समाज के सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़े इन लोगों के लिए सरकार ने जन–जाति उप–योजनाएँ तैयार की हैं। इनके लिए पंचवर्षीय योजना की स्कीम के अन्तर्गत अलग से धन निर्धारित किया गया है। सूखा–प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम का उद्देश्य आर्थिक रूप से पिछड़े उन क्षेत्रों में सूखे के प्रभाव को कम करना है, जहाँ बार–बार सूखा पड़ता है। इस कार्यक्रम का विशेष लक्ष्य छोटे और सीमान्त किसानों तथा खेतिहर मजदूरों की मदद करना है। आदिवासी और सूखा–प्रवण क्षेत्रों में बहुत बड़ी संख्या में गरीब लोग रहते हैं। इसलिए ये दो कार्यक्रम क्षेत्र प्रधान होते हुए भी अनिवार्यतः गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम ही हैं।

व्यक्ति प्रधान कार्यक्रम

पिछले दिनों कई व्यक्ति प्रधान लाभभोगी उन्मुख कार्यक्रम लागू किए गए। सबसे पुराना कार्यक्रम लघु किसान विकास एजेंसी था, जिसका उद्देश्य छोटे–छोटे किसानों का विकास करना था। दूसरा कार्यक्रम सीमान्त किसान और खेतिहर मजदूर विकास एजेन्सी था। काम के बदले अनाज कार्यक्रम सातवें दशक के आरम्भ किया गया था। इसका उद्देश्य सामुदायिक निर्माण कार्य करना था। जैसे गाँव में सड़क बनाना, लघु सिंचाई सुविधा प्रदान करना, स्कूल भवन बनाना। इससे वहाँ स्थाई परिसम्पत्तियों का निर्माण होता था और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार मिलता था। नौवें दशक में इस कार्यक्रम में फेर–बदल की गई और इसका नाम राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आई.ई.पी.) रखा गया। काम के बदले अनाज और एन.आर.ई.पी. दोनों का उद्देश्य

आधी मजदूरी अनाज के रूप में देना था ताकि अनाज के फालतू स्टॉक का इस्तेमाल हो सके और गरीबों पर भावों के उतार–चढ़ाव का असर भी न पड़े। इन कार्यक्रमों में गरीब मजदूरों को सीधे अनाज लेने का हक दिया गया। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत नौवें दशक के प्रति वर्ष 30 से 40 करोड़ दिन का अतिरिक्त रोजगार पैदा किया गया।

1983 में एक दूसरा कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.) लागू किया गया। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षत्रों में हर भूमिहीन परिवार के कम से कम एक सदस्य को प्रति वर्ष 100 दिन के रोजगार की गारंटी देना था। यह कार्यक्रम इस प्रकार बनाया गया कि जब खेती के लिए मजदूरों की जरूरत न हो तो उस समय खेतिहर मजदूरों की आय बढ़ाना भी था। फालतू श्रम है, उसका पूर्ण इस्तेमाल हो। इसका लक्ष्य इन मजदूरों की आय बढ़ाना भी था। 1989–90 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन मजदूर रोजगार गांरटी कार्यक्रम को मिलाकर एक नया कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना लागू किया गया है। यह सारे देश में लागू होगा और इसका 75 प्रतिशत खर्च केन्द्र सरकार वहन करेगी।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार (एन.आर.ई.पी.) और ग्रामीण भूमिहीन मजदूर रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.) का लक्ष्य देहाती गरीबों के उस वर्ग की मदद करना था जो मजदूरी करके अपनी आजीविका कमाते थे। परन्तु 1978 में लागू किया गया एकीकत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (स्व–नियोजकों) जैसे सीमान्त और छोटे किसान, ग्रामीण कारीगर की सहायता के लिए बनाया गया था। इसके अन्तर्गत उन्हें ऐसी उत्पादक परिसम्पत्ति का निर्माण करने के लिए कम ब्याज पर सहायता दी जाती है। जो स्व–रोजगार योजना के लिए जरूरी है। सातवीं योजना के दौरान आई.आर.पी. के टार्गेट ग्रुप ने उन परिवारों को शामिल किया, जिनकी वार्षिक आय 6,400 रूपये से कम थी और कार्यक्रम का लक्ष्य उन्हें गरीबी की रेखा से ऊपर उठाना था। छोटे किसानों को परिसम्पत्ति की पूंजीगत लागत में 25 प्रतिशत की छूट दी जाती थी और सीमान्त किसानों तथा भूमिहीनों को 33 प्रतिशत की। अनुसूचित जाति के परिवारों को 50 प्रतिशत छूट दी जाती हैं सातवीं योजना में एकीकत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए 2,463 करोड़ रूपये की व्यवस्था की गई थी।

छठी योजना में पूर्व रोजगार पैदा करने वाली योजनाएँ

तीसरी योजना के दौरान रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए ग्रामीण जनशक्ति कार्यक्रम (आर.एम.पी.) प्रारंभ किया गया, जिसमें 1964–65 के अंत तक 1000 सामुदायिक विकास खंडों को लिया गया।

चौथी योजना के दौरान सरकार ने रोजगार पैदा करने के लिए एक विशेष योजना प्रारंभ की जिसे त्वरित ग्रामीण रोजगार योजना (सी.एस.आइ.ई.) कहा गया। यह योजनेत्तर कार्यक्रम के रूप में शुरू की गई थी जिसमें शीघ्र और प्रत्यक्ष रोजगार करने के लिए 50 करोड़ रूपये का प्रावधान था। योजना के उद्देश्य निम्नलिखित थे –

प्रत्येक जिले में प्रति वर्ष औसतन 1000 लोगों के लिए रोजगार पैदा करना, तथा स्थानीय विकास योजनाओं के लिए टिकाऊ और उत्पादक परिसंपत्तियाँ उत्पन्न करना।

इस योजना में निर्माण कार्य शामिल थे, जिन्हें दो कार्य सत्रों में पूरा किया जा सकता था। 1972–73 तथा 1973–74 में प्रत्येक वर्ष के लिए 50 करोड़ रूपये के परिव्यय लागत से त्वरित ग्रामीण रोजगार योजना को चौथी पंचवर्षीय योजना में शामिल किया गया।

त्वरित ग्रामीण रोजगार योजना के एक भाग के रूप में एक प्रायोगिक गहन ग्राम रोजगार परियोजना (पी.आई.आर.ई.पी.) भी शुरू की गई। इस परियोजना का लक्ष्य ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को, जो काम करने को तैयार था, रोजगार प्रदान करने की योग्यता की दष्टि से त्वरित रोजगार योजना के विस्तार के संबध में आँकड़े एकत्रित करना। त्वरित ग्रामीण रोजगार योजना तीन वर्ष की अवधि तक कार्यान्वित की गई और पाँचवी योजना के पहले वर्ष तक चलती रही।

त्वरित ग्रामीण रोजगार योजना के अनुभवों से पता चलता है। कि संसाधन बड़ी परियोजनाओं तथा निर्माण कार्यों के बजाय बहुत सी छोटी परियोजनाओं तथा निर्माण कार्यों में थोड़ी मात्रा में लगे हैं। बहुत सा खर्च संचार पर ही हुआ जो इस योजना में करना पड़ता था।

1977 में काम के बदले अनाज (FFW) नाम का एक नया कार्यक्रम शुरू हुआ। इसका लक्ष्य आधारिक संरचना और स्थायी सामुदायिक परिसम्पत्ति का विकास करते हुए ग्रामीण निर्धनों को रोजगार प्रदान करता था और अधिशेष से खाद्य सामग्री का उपयोग मजदूरी भुगतान के रूप में करना था। यह एक योजनात्तर स्कीम थी जो राज्य सरकारों की निधियों को बढ़ाने के

लिए बनाई गई थी जिसमें छोटे–मोटे सिंचाई कार्य, मदा और जल संरक्षण, राज–मार्गों पर वक्षारोपण, नालियों के निर्माण आदि जैसे ग्रामीण लोक निर्माण कार्यों का अनुरक्षरण किया जाना था।

गरीबी निवारण योजनाएँ

भारत में नियोजिक विकास का एक प्रमुख उद्देश्य गरीबी उन्मूलन है। नियोजन युग के आरम्भ से ही इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर कार्यक्रम तथा नीतियां बनाई गई और आवश्यकतानुसार समय–समय पर उनमें परिवर्तन किया गया। 1980 में तत्कालीन प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी नें गाँवों में गरीबी पर सीधा प्रहार करने का उद्देश्य स्पष्ट रूप से सामने रखा। फलस्वरूप योजना में ग्रामीण समस्या पर अधिक ध्यान दिया गया जिसे सातवीं योजना में और अधिक सम्बल प्रदान किया गया। इस संदर्भ में कुछ विशिष्ट गरीबी निवारण कार्यक्रमों की समीक्षा करना उचित होगा।

1. **समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमः** यह संकल्पना 1976 में देश में चुने हुए बीस जिलों में प्रयोगात्मक आधार पर वास्वतिक प्रयोग में लायी गयी थी। इसे 1978–79 में 2,300 चुने हुए खंडों में कुछ संशोधनों के साथ आरम्भ किया गया था, जिनमें से 2,000 लघु किसान विकास एजेंसियां, सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.) और कमांड क्षेत्र विकास कार्यक्रम से जुड़े हुए थे। 1979–80 में 300 खंड शामिल किए गए जिससे 31 मार्च, 1980 तक देश में 2600 खंडों में कार्यक्रम शुरू हो सका। इसे 2 अक्तूबर, 1980 से देश में सभी खंडों में शुरू किया गया। इसके साथ–साथ लघु किसान विकास एजेंसियों को एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम में मिला दिया गया।

   इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन स्तर के लोगों को अभिचिन्हित करके उन्हें उत्पादक परिसम्पत्ति अथवा उपकरण खरीदने या स्वरोजगार के लिए उपयुक्त कौशल प्राप्त करने के लिए सहायता प्रदान की जाती है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अपनी आय में इतनी वद्धि कर सकता है कि वह विकास प्रक्रिया द्वारा गरीबी रेखा से ऊपर उठ जाये। छठी योजना में शुरू किये गये इस कार्यक्रम का इस योजना के अन्त में मूल्यांकन करने से अनुक कमियों का पता चला। इन कमियों तथा राज्य सरकारों से प्राप्त प्रतिपोषक सूचना के आधार पर सातवीं योजना में अनुकूल परिवर्तन किये गये। गरीबी रेखा का आधार 6,400 रू. था, लेकिन आई.डी.पी. कार्यक्रम के अन्तर्गन सहायता के लिए 5 व्यक्तियों की औसत वार्षिक आय का 4800 रू. या कम होना आवश्यक था। सातवीं योजना में 2 करोड़ परिवारों को आई.आर.डी.पी. के अन्तर्गत सहायता देने का लक्ष्य रखा गया था जिनमें एक करोड़ तो नये परिवार थे तथा एक करोड़ ऐसे पुराने हितग्राही थे जो गरीबी की रेखा पार नहीं कर सके थे तथा जिन्हें दोबारा लेने की आवश्कता थी।

   सावतीं योजना के दौरान इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 3316 करोड़ रू. की सहायता दी गई जो इसके 3000 करोड़ रू. के लक्ष्य से भी अधिक थी। यदि संस्थागत ऋणों को भी सम्मिलित कर लिया जाये तो कुल निवेश 8688 करोड़ रू. रहा। 2 करोड़ परिवारों के लक्ष्य की तुलना में इससे कुल 1.8 करोड़ जनसंख्या प्रभावित हुई, जो अब तक के संचयी लक्ष्य (1.6 करोड़ रू. परिवार) से अधिक था।

   समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन से पता चलता है कि यह कार्यक्रम गरीब परिवारों के लिये अतिरिक्त आय अर्जित करने की दष्टि से सफल रहा, यद्यपि निर्धनता रेखा के पार करने वाले परिवारों की संख्या कम ही रही। इसका आंशिक कारण आरंभ में किये गये निवेश की मात्रा में अपेक्षाकत कमी होना है। इस अवस्था में यह प्रत्याशा भी उचित प्रतीत नहीं होती कि बैंकों द्वारा हिताधिकारियों को दी जाने वाली सहायता में वद्धि की जाये, क्योंकि बैंकों द्वारा दिये गये गैर–चुकता ऋणों की मात्रा बहुत चिन्ताजनक स्थिति में पहुंच चुकी है।

2. **स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं के प्रशिक्षण (ट्राइसैम)** - अब यह कार्यक्रम स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं के प्रशिक्षण के उद्देश्यों, उसकी कार्यनीति, संगठनात्मक संरचना और संबधों को देखेंगे।

   स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं के प्रशिक्षण का उद्‌भव तथा उद्देश्यः 1979 में स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं के प्रशिक्षण (ट्राइसैम) देने के लिए एक पथक राष्ट्रीय योजना स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण शुरू की गई। इस कार्यक्रम को शुरू करने का प्रबल कारण यह था कि ग्रमीण युवकों में बेराजगारी और अल्पबेरोजगारी बहुत अधिक थी। प्रत्येक (विकास) खंड से 40 युवा–पुरूष और महिला, दोनों को चुना जाता था और उन्हें दक्षता विकास तथा उद्यमवत्ति, दोनों में प्रशिक्षित किया जाना था ताकि वे स्वरोजगार शुरू कर सकें। स्वरोजगार के अवसर प्रदान करने के अलावा, ट्राइमैस का एक अन्य लक्ष्य भी था। ऐसी आशा की गई थी कि ग्रामीण क्षेत्रों में आमदनी पैदा करने के कार्य सुलभ करने से युवकों का शहरी क्षत्रों की और जाना कम हो जाएगा। इसके अलावा, स्थानीय संसाधनों से स्थानीय

आवश्यकताएँ भी पूरी हो सकेंगी और इस प्रकार ग्राम विकास को बढ़ावा मिलेगा।

स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम का उद्देश्य गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों के ग्रामीण युवकों (18–35 वर्ष की आयु) को प्रशिक्षण और तकनीकी दक्षता प्रदान करना है ताकि वे कषि, उद्योग, सेवाओं और व्यापार कार्यों में स्वरोजगार शुरूकर सकें (1982–83 से मजदूरी पर रोजगार भी जोड़ा गया)। प्रशिक्षण, केवल भौतिक दक्षता के परिप्रेक्ष्य में ही नहीं बल्कि अभिवत्ति में परिवर्तन, मानवीय संबंधों में प्रेरणा और दक्षता की वद्धि आदि के संदर्भ में भी देखा गया है। ट्राइसैम के संदर्भ में स्वरोजगार की परिभाषा पूर्णकालिक आधार पर लाभप्रद रोजगार के रूप में की गई है, जिसके फलस्वरूप युवक के परिवार की इतनी आमदनी हो सके ताकि वे गरीबी की रेखा पार कर सकें। जिस रोजगार की स्थिति में उत्पादन के साधन स्वयं के हों, चाहे वे किराये पर हों या पट्टे (लीज़) पर हों, उन्हें स्वरोजगार की स्थिति माना जाता है।

जब 1979 में ट्राइमैस शुरू किया गया, देश के लगभग 2,300 खंडों में एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम चालू था। फिर भी चूंकि ग्रामीण युवाओं की समस्या बहुत महत्वपूर्ण समझी गई थी, इसलिए देश के सभी 5,000 खंडों में स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किया गया। जो पहले से ही एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम खंड थे, उनमें इस कार्यक्रम से धनराशि दी गई, जबकि गैर एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम खंडों को अलग से धनराशि दी गई। 1980 में, देश में सभी खंडों में एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम लागू किया गया और ट्राइसैम 'युवकों के लिए स्वरोजगार' एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम का घटक बन गया। वित्त वर्ष 1981–82 के शुरू से ट्राइसैम के लिए अलग धनराशि की व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया।

3. **राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमः** 1980 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम शुय किया गया जिसका ध्येय ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में रोजगार के अवसरों को बढ़ाना था। इस प्रक्रिया में ग्रामीण क्षेत्रों में आय और उपभोग को पुनः वितरित किया जाना था। ग्रामीण उन्मूलन की दिशा में इसे एक महत्वपूर्ण कदम समझा गया। 1981 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम में "काम के बदले अनाज" ने स्थान ले लिया और उसे छठी योजना में शामिल कर लिया गया।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) के उद्देश्य

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के उद्देश्य निम्नलिखित थे :–

- ग्रामीण क्षेत्रों में बेराजगार तथा अल्परोजगार वाले पुरूष और महिलाओं दानों के लिए अतिरिक्त लाभकारी रोजगार उत्पन्न करना;
- निर्धनों के लिए प्रत्यक्ष तथा सत्त लाभ के लिए उत्पादक सामुदायिक परिसम्पत्ति का निर्माण करना तथा ग्रामीण आर्थिक और सामाजिक आधारित संरचना को मजबूत करना, जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तत्काल वद्धि तथा ग्रामीण निर्धनों की आय में लगातार वद्धि हो; और
- ग्रामीण क्षेत्रों के जीवन स्तर में व्यापक सुधार;

इस प्रकार राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) के दो मुख्य उद्देश्य थे;

- ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगार तथा अल्परोजगार वाले लोगों के लिए प्रति वर्ष बड़ी मात्रा में श्रम दिवसों का सजन; तथा
- ग्रामीण क्षेत्रों की आधारिक संरचनात्मक सुविधाओं को मजबूत करने के लिए स्थायी सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सजन;
- एन.आर.ई.पी. के अन्तर्गत सभी निर्माण कार्यों में भूमिहीन मजदूरों को वरीयता दी गई। रोजगार प्रदान करने के लिए, बेरोजगार मजदूरों में से अनुसूचित जातियों और जनजातियों को वीरयता दी गई। इन.आर.ई.पी. के तहत निर्माण कार्य वर्ष में किसी भी समय किए जा सकते थे तथा ये सामुदायिक अथवा व्यक्तिगत किसी भी प्रकार के हो सकते थे। लेकिन वरीयता उन निर्माण कार्यों को दी गई जिनमें गरीबों को प्रत्यक्ष लाभ मिलने की संभावना थी। ये या तो समूह द्वारा परिसम्पत्ति के विभिन्न उपयोगों के लिए या परिसम्पत्ति द्वारा सजित सेवाओं की बिक्री के लिए लाभग्रहियों के स्वामित्व होते थे या उन्हें दिए जा सकते थे ताकि समूह के लिए आमदनी पैदा करनी सुनिश्चित हो सके।

अलग–अलग व्यक्तियों को लाभ पहुँचाने वाले निर्माण कार्य केवल अनुसूचित जातियों और जनजातियों तथा बंधुआ मजदूरों और भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित होने के कारण कई अधिशेष भूमि के आबंटतियों के लिए तय किये गये थे। एक मुख्य प्रावधान एन.आर.ई.पी. के अधीन निर्माण कार्यों से सम्बन्धित था जिसमें ठेकेदारों को काम पर लगाने की अनुभूति नहीं थी। बिचौलियों या मध्यस्थ एजेंसियों के न होने से यह सुनिश्चित किया गया कि मजदूरी का पूरा–पूरा लाभ वास्तविक लाभग्रहियों को ही मिले।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) का मूल्यांकन

एन.आर.ई.पी. का मिला–जुला इतिहास रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी को तथा अनाज के मूल्यों को स्थिर रखना, विभिन्न प्रकार की सामुदायिक परिसम्पत्तियाँ सजित करना, तथा ग्रामीण जनता के रहन–सहन का स्तर ऊँचा उठाना इसके मुख्य लाभ थे। इसके कुछ अन्य लाभ भी थे जैसे मजदूरी के कुछ भाग के रूप में अनाज देना और इस प्रकार वास्तविक मजदूरी में वद्धि। इसके अतिरिक्त इससे कर्मचारियों का न्यूनतम मजदूरी का भुगतान सुनिश्चित हो जाता था। इससे स्थायी सामुदायिक परिसम्पत्तियाँ स़जित करने में मदद मिली और इसके फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र की आधारिक संरचनात्मक का आधार दढ़ हुआ। योजना आयोग के कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (पी.ई.ओ.) ने 1981–82 और 1982–83 के एन.आर.आई.पी. का मूल्यांकन किया। इस अध्ययन में 9 राज्यों के 22 जिले, 44 खंड तथा 132 गांव शामिल थे अर्थात् जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, केरल, गुजरात, पंजाब, राजस्थान, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा राज्यों में भी कुछ मामलों के अध्ययन किए गए। अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित थे :

- एन.आर.ई.पी. के रोजगार सजित करने के लक्ष्य लगातार प्राप्त किए;
- चुने हुए लाभ भागियों में 44% खेतिहर मजदूर, 8% छोटे किसान तथा 6% सीमांत किसान थो। शेष 18% दूसरे व्यवसायों में लगे लोग थे। लगभग आधे लोग अनुसूचित जातियों/जनजातियों के थे तथा 1/5 अन्य पिछड़े वर्गों के थे और 7% महिलाएँ थीं;
- लाभ भोगियों में से 87% को गाँव में ही नौकरी के अवसर मिले;
- ग्रामीण परिवारों की कुल औसत मजदूरी से आय का 23% आय एन.आर.ई.पी. के अंतर्गत रोजगार प्राप्त होती थी;
- प्रति दश परिवारों में रोजगार के औसत अंश का 21.6% भाग एन.आर.ई.पी. कार्यों का था;
- एन.आर.ई.पी. के तहत रोजगार के लाभ उस सामाजिक वर्ग को मिल रहे थे जिनके लिए यह कार्यक्रम बनाया गया था। यही नहीं, एन.आर.ई.पी. के अंतर्गत मजदूरी राज्य प्रशासन द्वारा नियत न्यूनतम कषि मजदूरी दर के अनुरूप थे;
- एन.आर.ई.पी. के अंतर्गत सबसे सामान्य परियोजना ग्रामीण सड़कों का निर्माण था;

कार्यक्रम मूल्याकंन संगठन ने कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों की और ध्यान आकर्षित किया है वे निम्न है :

- राज्य स्तर पर समन्वय समितियों की बैठकें नहीं बुलाते थे;
- 1981–82 में जिन राज्यों का अध्ययन हुआ, उनमें केवल गुजरात, केरल, राजस्थान में ही परियोजना की सूची तैयार की गई थी;
- सांख्यिकीय आँकड़ो का आधार बहुत कमजोर था। जिला तथा राज्य स्तर पर उपलब्ध सांख्यिकीय आँकड़ो का योजना कार्यों के लिए उपयोग नहीं किया गया था;
- एन.आर.ई.पी. के अंतर्गत निर्माण कार्यों को निर्धारण करने की उचित प्राथमिकता नहीं दी गई थी;
- खंड विकास अधिकारियों तथा ग्राम स्तर कार्यकर्त्ताओं ने एन.आर.ई.पी. संबधी सूचना भली–भांति नहीं प्रदान की;
- कुछ राज्यों में अनाज बहुत घटिया किस्म के थे, कुछ मामलों में खुले बाजार में खाद्यान्नों की कीमतें कम थीं जिसके कारण कर्मचारी अनाज नहीं लेना चाहते थे;

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम

हमने एन.आर.ई.पी. की विवेचना विस्तार से की है। इसकी मुख्य विशेषता मजदूरी के कुछ भाग का भुगतान खाद्यान्न के रूप में करना था। आइए, अब हम रोजगार सजित करने वाले एक अन्य कार्यक्रम के बारे में जानें, अर्थात् भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी. जो 1983 में शुरू किया गया था।)

आर.एल.ई.जी.पी. के उद्देश्य

इस कार्यक्रम के तीन मूल उद्देश्य थे :

- रोजगार अवसरों में विस्तार तथा सुधार करना, विशेष रूप से ग्रामीण भूमिहीन मजदूरों को ध्यान में रखकर कि प्रत्येक भूमिहीन परिवार से कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 100 दिन तक रोजगार की गारंटी दी जा सके;
- गरीब वर्ग के लिए प्रत्यक्ष तथा लगातार होने वाले लाभों के लिए तथा ग्रामीण आर्थिक और सामाजिक आधारिक संरचना को मजबूत करने के लिए उत्पादक और स्थायी परिसम्पत्तियाँ सजित करना जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तेजी से वद्धि हो तथा रोजगार के अवसरों और निर्धनों के आमदनी के स्तरों में लगातार वद्धि हो;
- ग्रामीण क्षेत्रों के जीवन स्तर में सर्वांगीण सुधार करना।

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.) का निष्पादन

आइए, अब हम आर.एल.ई.जी.पी. के कार्य–निष्पादन पर विचार करें। सबसे मुख्य बात जो ध्यान में रखने योग्य है, वह यह है कि कार्यक्रम के गारंटी वाले भाग के मुख्य रूप से संसाधनों की कमी के कारण पूरे देश में लागू नहीं किया जा सका। जिन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में इस कार्यक्रम पर बल दिया गया था, उनमें इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों और मुक्त किए गए बंधुआ मजदूरों के लिए छोटी–छोटी आवास इकाइयाँ बनाना, सामाजिक और कषि वानिकी कार्य, दस लाख कुएँ खुदवाने की योजना के अंतर्गत कुओं के निर्माण तथा सिंचाई, मिट्टी और जल संरक्षण निर्माण कार्य, प्राथमिक स्कूलों के निर्माण, गाँव के तालाब, गाँवों को जोड़ने वाली सड़कों का निर्माण जैसे कार्य शामिल थे।

इंदिरा आवास योजना (आई.ए.वाई.) इस कार्यक्रम का एक मुख्य भाग थी। इसका लक्ष्य अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा मुक्त किए गए बंधुआ मजदूरों के लिए आवासी इकाइयाँ बनाना था। अब यह जवाहर रोजगार योजना के अंतर्गत आती है जिसके बारे में आप आगे खंड में पढ़ेंगे। इंदिरा आवास योजना 1985–86 में आरंभ की गई। सातवीं योजना में 10 लाख छोटी–छोटी आवास इकाइयाँ बनाई जानी थी। इस कार्यक्रम के लिए आबंटन वार्षिक आधार पर किए जाते हैं। 1985–86 में 100 करोड़ रूपये आबंटित किए गए। 1986–87 में यह आबंटन बढ़ाकर 124 करोड़ रूपये किए गए। 1988 तक 1988 तक 425 करोड़ रूपये की लागत से 4 लाख से अधिक आवासीय इकाइयों का निर्माण किया गया था।

सामाजिक वानिकी आर.एल.ई.पी. का एक दूसरा महत्वपूर्ण घटक है। 1985–86 में फंड की 20 करोड़ राशि इसी के लिए रखी गई थी। बाद के वर्षों में इसे बढ़ा कर 25 करोड़ कर दिया गया। 1988–89 में सामाजिक वानिकी के लिए 71 करोड़ रूपये मंजूर किए गये। 1987–88 में 88 करोड़ रूपयों के आबंटन के मुकाबले खर्च 100 करोड़ रूपये था।

आइए, अब हम आर.एल.ई.पी. के दूसरे घटक अर्थात् दस लाख कुएँ खुदवाने की योजना पर विचार करें। यह योजना 1988–89 में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के छोटे तथा सीमांत किसानों तथा मुक्त किए गए बंधुआ मजदूरों के लिए निःशुल्क सिंचाई सुविधाएँ प्रदान करने के लिए शुरू की गई थी। वर्ष के लिए 95,930 कुओं के निर्माण का लक्ष्य रखा गया जिसके लिए वर्ष भर में 154 करोड़ रूपयों का पूँजीकरण आवश्यक था।

1983 में जब आर.एल.ई.पी. आरंभ किया गया था तो केंद्र सरकार द्वारा 500 करोड़ रूपयों के परिव्यय का प्रावधान किया गया था। छठी योजना के दौरान केंद्रीय समिति ने 320 परियोजनाओं का अनुमोदन किया जिसकी लागत अनुमानतः 906.59 करोड़ रूपये थी। 1983 से 1985 तक के लिए रोजगार उत्न्न करने का लक्ष्य 3600 लाख श्रम दिवस था। वास्तिवक रूप में रोजगार के 2601.8 लाख श्रम दिवस ही उत्पन्न किए जा सके।

छठी योजना के कार्यक्रम के प्रचालन को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि स्थानीय आवश्यकताओं तथा भूमिहीनों के लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न करने की अपेक्षा विभागीय योजनाओं के आधार पर परिसम्पत्ति उत्पन्न करने पर ध्यान केन्द्रित करने की प्रवत्ति थी। सातवीं योजना में भूमिहीन मजदूरों को 80 से 100 दिन की सीमित गारंटी देने का सुझाव दिया गया। आर.एल.ई.पी. के लिए इस पंचवर्षीय योजना में 1,744 करोड़ रूपये के परिव्यय का प्रावधान किया गया। योजना में जैसा, 1984–85 में था 6.61 रूपये प्रतिदिन के अनुपात से मजदूरी की कल्पना की गई। मजदूरी व सामग्री मूल्य का अनुपात 50:50 रखकर इसमें आर.एल.ई.पी. में रोजगार के 10,130 लाख श्रम दिवस सजित करने का विचार किया गया।

सातवीं योजना के पहले चार वर्षों में आर.एल.ई.पी. की प्रगति तालिका 2 में दी गई है।

तालिका 2 : सातवीं योजना के दौरान आर.एल.ई.पी. के अंतर्गत सजित परिसंपत्ति

सेक्टर (1)	इकाई (2)	1985-86 (3)	1986-87 (4)	1987-88 (5)	1988-89 (6)
इंदिरा आवास योजना					
सामाजिक वानिकी	0.000	52	152	164	137
क) शामिल किया गया क्षेत्र	0.000	533	240	227	174
ख) वनरोपण वक्ष	मिलियन	27.6	37.3	129.6	147
ग्राम स्वच्छता	0.000		62	66	26
स्कूलों की इमारतें	0.000	8	7	5	3
ग्रामीण सडकें	.00 कि.मी.	120	152	133	6
मदा संरक्षण	0.000 है.	75	85	68	10
लघु सिंचाई	.000 है,	19	87	23	14
दस लाख कुएँ	.000				12

जवाहर रोज़गार योजना

हमने रोज़गार उत्पन्न करने वाले दो मुख्य कार्यक्रमों की चर्चा की। आइए, अब हम एक नए कार्यक्रम –जवाहर रोज़गार योजना के बारे में चर्चा करें। आप सोच रहे होंगे कि एन.आर.ई.पी. तथा आर.एल.ई.जी.पी. जैसे कार्यक्रमों के होते हुए भी, यह नया कार्यक्रम क्यों शुरू किया गया। स्मरण रखें कि एन.आर.ई.पी. वास्तव में, कार्य के बदले भोजन कार्यक्रम का ही एक संशोधि ात रूप था। मजदूरी का एक भाग अनाज के रूप में देना, इसकी एक मुख्य विशेषता थी। जहाँ तक आर.एल.ई.जी.पी. का प्रश्न है, इसका मुख्य बल भूमिहीन मजदूरों को रोजगार प्रदान पर था। प्रत्येक ग्रामीण मजदूर परिवार के कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 100 दिन तक रोजगार प्रदान करने की गांरटी देना इसका लक्ष्य था।

तथापि एक नए कार्यक्रम की योजना की आवश्यकता महसूस की गई जो पिछड़े क्षेत्रों में गहन रोजगार पर विशेष रूप से ध्यान दे। अतएव पिछड़े जिलों में गरीबी और बेरोजगारी कम करने पर जोर दिया गया।

जवाहर रोजगार योजना कार्यक्रम की पष्ठभूमि

1989–90 के बजट भाषण में तत्कालीन वित्तमंत्री ने एक नई स्कीम की घोषणा की जिसका लक्ष्य चिरकालिक गरीबी तथा बेरोजगारी वाले पिछड़े जिलों में रोजगार प्रदान करना था। 120 जिलों में इसे लागू करने का निश्चय किया गया और इसके लिए बजट में 500 करोड़ रूपयों का प्रावधान रखा गया। नई स्कीम के अंतर्गत आबंटित की गई धन राशि एन.आर.ई.पी. तथा आर.एल.ई.जी.पी. के अंतर्गत आबंटित धन राशि से अलग थी। इस नई स्कीम का नाम 'जवाहर रोजगार योजना' रखा गया। ऐसा भी कहा गया कि एन.आर.ई.पी. तथा आर.एल.ई.जी.पी. दोनों को मिलाकर एक कार्यक्रम बनायाजाएगा तथा केन्द्र में इसके प्रायोजित स्कीम के रूप में कार्यान्वित किया जाएगा। केंद्र तथा राज्यों के बीच 75:25 के अनुपात में फंडों की सांझेदारी होगी। बाद में पूरे मामले पर पुनः विचार किया गया। ऐसा निश्चय किया गया कि एन.आर.ई.पी. आर.एल.ई.जी.पी. तथा नई स्कीम जवाहर लाल नेहरू रोजगार योजना तीनों को मिलाकर जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.आई.) के नाम से एक ही कार्यक्रम होगा। केंद्र और राज्य इस कार्यक्रम पर 80:20 के आधार पर खर्च करेंगे। इस कार्यक्रम के अंतर्गत केंद्र का हिस्सा जिलों में

सीधे जिला ग्रामीण विकास एजंसियों को वितरित किया जाएगा। जिले को दिए गए हिस्से में से कम से कम 80:20 (केंद्र तथा राज्य द्वारा दिया गया हिस्सा) ग्राम पंचायतों को दिया जाएगा ।

आइए, अब हम इस कार्यक्रम पर कुछ विस्तार से विचार करें।

जवाहर रोजगार योजना की विशेषताएँ

इस कार्य का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगार तथा अल्परोजगार प्राप्त लोगों के लिए अतिरिक्त लाभकर रोजगार उत्पन्न करना है। गौण उद्देश्य है, सामुदायिक उत्पादक परिसम्पत्तियाँ सजित करना, जो गरीबों को लाभ पहुँचा सके तथा इस प्रकार ग्रामीण आधरिक संरचना मजबूत हो सकेगी। इसके परिणामस्वरूप, ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक सुधार होता दिखाई दिया है। दूसरा गौण उद्देश्य है, ग्रामीण क्षेत्रों के जीवन स्तर पर सर्वांगीण सुधार। इस कार्यक्रम का लक्ष्य समूह वे लोग थे जो गरीबी रेखा के नीचे रह रहे थे। इसके अतिरिक्त गरीबों मे से भी अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का वरीयता दी जाती है। इसके अतिरिक्त, यह भी सुनिश्चित करना जरूरी है कि कम से कम 30% लाभ भोगी महिलाएँ हों। वे सभी कार्य जिनसे स्थायी सामुदायिक परिसम्पत्तियाँ सजित होती है, उस कार्यक्रम में शामिल किए जा सकते है। उन कार्यो को वरीयता दी जानी चाहिए जिससे गरीबों को लाभ पहुँचे तथा जो परिसम्पत्ति के रूप में गरीबों को दिए जा सकें या उनके स्वामित्व में किए जा सकें। गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के अतंर्गत उन कार्यों को अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो आधारिक संरचना के रूप में जरूरी है। उन कार्यों के लिए कुछ विशष्टियाँ नियत की गई है जिनसे अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों को लाभ पहुँचता है, सामाजिक वानिकी के निर्माण कार्यो, इँदिरा आवास योजना के अधीन आवासों का निर्माण भी इसमें शामिल थे जो आर.एल.ई.जी.पी. का एक भाग है और जो जवाहर रोजगार योजना में भी शामिल था। इसके अतिरिक्त दस लाख कुएँ खोदने की स्कीम जो 1988–89 में शुरू की गई थी, अभी भी जारी रखी जा रही है। सामाजिक वालिकी के लिए गैर सरकारी संगठनों की भागीदारी की भी अपेक्षा की जाती है।

जवाहर रोजगार योजना के अंतर्गत मजदूरी का कुछ भाग नकद तथा कुछ भाग अनाज के रूप में अदा किया जा सकता है। इसके अलावा, अनाज के वितरण की दर 1.5 किलोग्राम प्रति श्रम दिवस से अधिक नहीं होनी चाहिए। मजदूरी जहाँ तक संभव हो, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार दिया जाना चाहिए। एन.आर.ई.पी. तथा आर.एल.ई.जी.पी. में जिन विशिष्टियों का उल्लेखनिय किया गया है, वहीं जवाहर रोजगार योजना पर भी लागू होती है। अनाज की इमादादी दर वही है जो एन.आर. ई.पी. के अधीन है। इसके अतिरिक्त जवाहर रोजगार योजना में ठेकेदारों को शामिल करने की अनुमति नहीं है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास

(डी.डब्ल्यू.सी.आर.ए.)

पिछली इकाई में आपने एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम जो मुख्य गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम है के बारे में पढ़ा है। जैसी हमने उस इकाई में चर्चा की, पहले कुछ वर्षो के बाद हमारे नियोकों ने महसूस किया कि महिलाएं उतना लाभ नहीं पा रहीं है, जितनी कि आशा की गई थी। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार करना आवश्यक समझा गया। इसके तर्क का आधार यह था कि व्यक्तियों को यदि न्यूनतम बुनियादी, पोषाहार मिलता है तो वे और अधिक बेहतर ढ़ंग से काम कर सकते है। परन्तु वे आधारिक पोषाहार तभी ले सकते है जब उनकी निश्चित न्यूनतम आमदनी हो। मूलतः ग्रामीण परिसम्पतियों को सुलभ बनाकर आमदनी पैदा की जा सकती है। इसके अलावा, महिलाएँ बेहतर कार्यकुशलता और प्रशिक्षण का उपयोग करेंगी तथा अपने कार्यो से बेहतर लाभ प्राप्त कर सकेंगी।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम के उद्देश्य तथा कार्यनीति

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को उत्पादनकारी आमदनी पैदा करने वाली परिसम्पत्तियाँ और आत्म–सम्मान प्रदान करना तथा उनकी कार्यकुशलता बढ़ाना है। यह प्रभावकारी संगठनात्मक सहायता ढाँचा प्रदान करने का प्रयत्न करता है ताकि महिलाएँ सामान के उत्पादन और सेवाओं में अधिक प्रभावी ढंग से सहायता प्राप्त कर सके। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम का लक्ष्य समूह भी वैसा ही है।, जैसा कि एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम का होता है अर्थात् वे परिवार जिनकी वार्षिक आय, 4,800 रूपये से कम हो। फिर भी, एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम से इसमें बुनियादी अंतर यह है कि डी.डब्ल्यु.सी.आर.ए. के अधीन सहायता अलग–अलग प्रत्येक परिवार को नहीं दी जाती है, बल्कि समूह को दी जाती है। डी.डब्ल्यु.सी.आर.ए. स्कीम में समूह बनाने की सकल्पना की गई है। प्रत्येक समूह में 15 से 20 महिलाएँ

होती हैं, तथा यह आशा की जाती है कि महिलाएँ एक साथ कार्य करेंगी जो उनके लिए सामूहिक तौर पर लाभदायक होगा। समूह के लिए उपलब्ध वित्तीय सहायता निम्न प्रकार है :

क) पुराने अनुदान के रूप में 15,000 रूपये, जो भारत सरकार, राज्य सरकार और यूनिसेफ द्वारा बराबर–बराबर दिया जाता है, जिनका उपयोग निम्न प्रकार किया जा सकता है :

- कच्चा माल प्राप्त करने और विपणन कार्यो के लिए कार्यशील पूंजी।
- एक वर्ष तक समूह संगठनकर्ताओं का मानदेय जो 50 प्रति मास से अधिक नहीं होता है।
- आमदनी पैदा करने वाले कार्यो के लिए आधारिक सहायता।
- शिशु देखभाल सुविधाएँ।

मूल्यांकनः सातवी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम के लिए 48.05 करोड़ रूपये का परित्याग था। इसमें से 20.30 करोड़ रूपये केन्द्र का हिस्सा था। यूनीसेफ का हिस्सा 27.75 करोड़ रूपये था। 1982 से, जब से ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम शुरू किया गया, दिसम्बर, 1988 तक लगभग गरीबी की रेखा से नीचे की 0.38 मिलियन महिलाओं का आमदनी पैदा करने वाले कार्य शुरू करने में सहायता की गई। उसी अवधि में महिलाओं के लगभग 22,000 समूह बनाए गए है।

तालिका 3: ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास के अधीन महिला समूह

वर्ष	समूहों की संख्या	सम्मिलित महिलाओं के लिए	
		लक्ष्य	उपलब्धियाँ
1983–84	1,035	536	8,785
1984–85	5,000	2,772	43,285
1985–86	5,000	6,038	1,00,966
1986–87	7,500	5,545	96,132
1987–88	7,500	4,959	82,265
1988–89	7,500	5,968	98,936
1989–90	7,500	5,551	90,294

स्रोत : ग्रामीण विकास विभाग, भारत सरकार

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम में कुछ बुनियादी कमियाँ और समस्याएँ है जिससे कार्यकरण में कठनाइयाँ पेश आती है। ये हैः प्रत्येक स्तर पर कर्मचारियों की भर्ती, आधारिक संरचना सुविधाओं और ऋण का अभाव, परियोजनाओं के चयन में समस्याएँ, समूहों की भूमिका के बारे में स्पष्ट निर्देशों का अभाव और समूहों के सदस्यों को प्रोत्साहन एवं प्रेरणा की कमी।

स्वनियोजित महिलायें और अनौपचारिक क्षेत्र में महिलाओं पर राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट (1988) में उल्लेख किया गया है कि पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों में डी.डब्ल्यु.सी.आर.ए. अच्छी कोटि की वस्तुओं का उत्पादन करने में पर्याप्त सफल रहा है। पंजाब में महिला आर्थिक विकास निगम को डी.डब्ल्यु.सी.आर.ए. से जोड़ा गया हैं और इसलिए वह सरकारी संविदाओं के माध्यम से उत्पादों के विपणन में सफल रहा है। फिर भी, अभी कुछ समस्याएँ विद्यमान है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास (डी.डब्ल्यू.सी.आर.ए.)

पिछली इकाई में आपने एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम जो मुख्य गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम है के बारे में पढ़ा है। जैसी हमने उस इकाई में चर्चा की, पहले कुछ वर्षो के बाद हमारे नियोजकों ने महसूस किया कि महिलाएं उतना लाभ नहीं पा रहीं है, जितनी कि आशा की गई थी। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार करना आवश्यक समझा गया। इसके तर्क का आधार यह था कि व्यक्तियों को यदि न्यूनतम बुनियादी, पोषाहार नहीं हुई है–सम्पूर्ण प्रशिक्षण में प्रबंधकीय दक्षता को महत्वपूर्ण अंग नहीं बनाया गया है। इसके अलावा, गरीबों में सबसे गरीब महिलाओं को अधिकतम लाभ प्राप्त नहीं हुए है। आमतौर पर गरीब महिलाओं में साधारणतया कम गरीब महिलाएँ है जिन्होंने समूह बनाए है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम के अधीन एक प्रावधान यह भी है कि डी.डब्ल्यु.सी.आर.ए. के सदस्य एकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम के अधीन ऋण आर्थिक सहायता प्राप्त कर सकते हैं। जैसा कि आपने पिछली इकाई में पढ़ा है कि सकीकत ग्राम विकास कार्यक्रम के अधीन लाभार्थियों की इकाई परिवार हैं। यहाँ महिलाओं को कतिपय समस्याओं का सामना करना पड़ता है। यद्यपि काफी महिलाएँ परिवार की मुखिया होती हैं, खास तौर पर जहाँ पुरूष शहरों में प्रवास करते हैं, ऐसी परिस्थिति में उन्हें ऋण लेने में कठिनाई होती है।

सुनिश्चित रोजगार योजना

अक्टूबर 1993 से 257 जिलों के 1752 खण्डों के ग्रामीण क्षेत्रों में सुनिश्चित रोजगार योजना कार्यान्वित की गई जहां पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण योजना चल रही है। इस योजना का उद्देश्य उन ग्रामीण गरीब लोगों, जिन्हें रोजगार की नितान्त आवश्यकता है और जो रोजगार की तलाश में हैं, की अकुशल स्वरूप के शारीरिक श्रम हेतु 100 दिनों का सुनिश्चित रोजगार उपलब्ध कराना 100 दिनों के रोजगार का आश्वासन 18 वर्ष से अधिक और 69 वर्ष से कम आयु के उन पुरूषों तथा महिलाओं का दिया जाता है जो आमतौर पर सुनिश्चित रोजगार योजना के तहत शामिल किये गये खण्डों के गांवों में निवास करते है। एक परिवार में अधिकतम दो बालिग व्यक्ति इस योजना में रोजगार पा सकेंगे।

उद्देश्य

सुनिश्चित रोजगार योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के उन सक्षम तथा सतर्थ शरीर वाले सभी बालिग लोगों को जो काम करने के इच्छुक है। और जिन्हें काम की जरूरत है लेकिन उन्हें कहीं काम नहीं मिल पा रहा है, को संबंधित जिलों के लिए राज्य सरकार द्वारा निर्धारित गैर–कषि मौसम के दौरान सामान्य योजना/गैर योजना वाले कार्यो पर अथवा फार्म या अन्य संबंधित रोजगार उपलब्ध कराना है। इस योजना का गौण–उद्देश्य लोगों के लिए सतत रोजगार तथा विकास हेतु आर्थिक आध ाारभूत ढांचे तथा सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सजन करना है।

प्राथमिकताएं

सुनिश्चित रोजगार योजना के तहत निम्नलिखित स्वरूप के कार्यो को प्राथमिकता दिये जाने का प्रावधान है :

(क) जन संभर वाटर शैड विकास के तहत जन संरक्षण, भूमि सुरक्षा, हरियाली संरक्षण, वन–रोपण, कषि–वानिकी, वन–चरागाह आदि के लिए तैयार की गई अभिक्रिया योजनाओं के आधार पर चुने गए कार्य।

(ख) लघु सिंचाई तालाबों, परिस्त्रवण टैंको, ग्रामीण तालाबों तथा नहरो से संबंधित कार्य।

(ग) गांवो को सड़कों से जोड़ने हेतु जिलों के लिए तैयार किए गए मास्टर प्लान के आधार पर चुने गये सम्पर्क मार्ग के कार्य।

(घ) जवाहर रोजगार योजना के तहत कार्यान्वित किये जा रहे आपरेशन लोक बोर्ड कार्यक्रम के पैटर्न पर प्राथमिक स्कूलों में भवन।

(ड.) आंगनवाड़ियों के लिए भवन।

मुख्य विशेषतायें

इस योजना की प्रमुख विशेषतायें निम्न है :

(क) इस योजना के अंतर्गत रोजगार के इच्छुक सभी मजदूरों को अपनी–अपनी पंचायत में अपना पंजीकरण करवाना होगा। काम के लिए पंजीकत सभी लोगों को एक परिवार पत्र दिया जायेगा जिसमें परिवार के सदस्यों का और उन्हें इस वर्ष उन्हें दिये गये रोजगार का विवरण दर्ज होगा।

(ख) यह योजना पंचायतों द्वारा जिला, प्रखण्ड और ग्राम स्तर पर कलेक्टर/उपायुक्त की देख–रेख, दिशा–निर्देशन और नियंत्रण में चलायी जाएगी।

(ग) इस योजना के अंतर्गत आने वाले प्रत्येक विकास प्रखण्ड के कलेक्टर/उपायुक्त के निर्देशन में परियोजनाओं की एक सूची तैयार की गई। सुनिश्चित रोजगार उपलब्ध कराने की इन परियोजनाओं में भूमि एवं जन संरक्षण कार्य, बागवानी, वनरोपण, रेशम उद्योग जैसी सामाजिक प्रक्रियाओं को शामिल किया गया।

प्रधानमन्त्री की रोजगार योजना

यह योजना 2 अक्टूबर, 1993 को प्रारम्भ की गई इसका उद्देश्य शिक्षित बेराजगार युवाओं को उद्योग सेवा और व्यापार के क्षेत्रों में अपना उद्योग शुरू करने के लिए अवसर प्रदान करना था। इस योजना को 1993–94 से शहरी क्षेत्रों में और 1994–95 से पूरे देश में लागू किया गया। इस योजना के अन्तर्गत व्यक्तिगत मामलों में एक लाख रूपये तक का ऋण उपलब्ध कराने का प्रावधान है। इस ऋण की मात्रा उद्योग की किस्म पर निर्भर करेगी। आय वाले परिवारों के 18 और 55 वर्ष के बीच की उम्र के युवा सहायता पाने के पात्र हैं 1998–99 में इस योजना के लिए 110 करोड़ रूपये निर्धारित किये गए थे।

जवाहर ग्राम समद्धि योजना

यह योजना जवाहर रोजगार योजना का पुनर्गठित एवं विस्तत रूप है। यह योजना 1 अप्रैल 1999 को शुरू की गई। यह ग्रामीण गरीबों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने और उनकी सहायता के लिए रोजगार उपलब्ध कराने के लिए रोजगार उपलब्ध कराने के लिए चलाई गई है। यह योजना सीधे ग्राम पंचायत स्तर पर लागू होती है। ग्राम पंचायत ही प्रत्यक्ष रूप से वार्षिक कार्य योजना ग्राम सभा की अनुमति को तैयार करती है और लागू करती है। इसमें 22.5 प्रतिशत धन अनुसूचित जाति व जन जातियों के लिए व्यक्तिगत रूप से मुनाफे के लिए प्रावधान किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत 15 प्रतिशत पैसा वस्तुओं की देख–रेख के लिए खर्च किया जाता है। इसके तहत ग्राम पंचायत बिना किसी अनुमति से 50000 रूपये तक खर्च कर सकती है और 50000 रूपये से अधिक के कार्य के लिए तकनीकि सहयोगियों की अनुमति लेनी पड़ती है।

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना

ग्रामीण क्षेत्र में गरीबो के स्वरोजगार के लिए ग्रामीण विकास मन्त्रालय द्वारा गरीबी उन्मूलन तथा ग्रामीण विकास के लिए 1 अप्रैल 1999 को स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना नामक कार्यक्रम चलाया गया, जिसके अन्दर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण कार्यक्रम, ग्रामीण मिस्त्रीयों के लिए नवीन औजार किटों का वितरण गंगा कल्याण योजना तथा दस लाख कुओं की योजना आदि को मिलाया गया। यह कार्यक्रम केन्द्र सरकार द्वारा संचालित है, जिसमें केन्द्र तथा राज्यों के द्वारा धन आबंटन की प्रतिशत 75.25 हैं यह योजना पंचायत समिति के माध्यम से जिला ग्रामीण विकास एजेंसी द्वारा लागू की जाती है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सामुहिक कार्य को प्राथमिकता दी जाती है और इसमें गरीबों के संगठन को जिसको स्वयं–सहायता समूह का नाम दिया गया है जिसमें महिलांए भी शामिल होगी द्वारा कार्य किया जाएगा। प्रत्येक पंचायत समिति में कम से कम आधे स्वयं–सहायता समूहों में महिलाएं होगी। इस योजना में लाभार्थियों की बजाय उनको स्वरोजगारी का नाम दिया गया है। इन व्यक्तिगत स्वरोजगारी योजनाओं के विकास अधिकारी या इसका प्रतिनिधि, बैंक कर्मचारी तथा सरपंच होते है।

1999–2000 के दौरान 1472.33 करोड़ रूपये इस कार्यक्रम के लिए निर्धारित किए गए, जो पिछले बकाया को मिलाकर तथा राज्यों का हिस्सा मिलाकर कुल 19.7.66 करोड़ था। जिसमें से खर्च 959.86 प्रतिशत था। 2000–2001 में यह प्रतिशत 73. 32 थी। 2001–2002 वित्तीय वर्ष में इस योजना के लिए कुल 774.50 करोड़ राशि है। 2003–2004 के बजट में इस योजना के लिए 800 करोड़ रूपये निर्धारित किए गए है। ,

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना

यह योजना सितम्बर 2001 को आरम्भ की गई इसमें सुनिश्चित रोजगार योजना तथा जवाहर ग्राम समद्धि योजना को मिलाया गया और सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना का नाम दिया गया। इस योजना के दोहरे उद्देश्य है, प्रथम ग्रामीण क्षेत्र में मजदूरी सम्बन्धित रोजगार मुहय्या करवाना तथा द्वितीय ग्रामीण गरीबों को अन्न प्रदान करना। इसके अन्तर्गत प्रत्येक कार्य दिवस में प्रत्येक मजदूर को 5 किलोग्राम अनाज मजदूरी के रूप में देना होता है। यह कार्यक्रम पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से लागू किया जाता है। इस कार्यक्रम में मजदूरी के रूप में दिया जाने वाला पैसा केन्द्र तथा राज्यों के द्वारा 75.25 प्रतिशत के अनुसार तथा अनाज की पूरी कीमत केन्द्र सरकार द्वारा दी जाती है। प्रथम बार इस योजना के लिए 4900 करोड़ रूपये आबंटित किए गये, जिसमें 4125 करोड़ रूपये लकद तथा 775 करोड़ रूपये अनाज के रूप में दिए गए।

निष्कर्ष

हम कह सकते है कि भारत सरकार ने समय–समय पर गरीबी उन्मूलन के अनेक कार्यक्रम आरम्भ किए है और उनके सकारात्मक नतीजे भी मिले हैं परन्तु भारत की जनसंख्या इतनी अधिक बढती जा रही है कि हर कार्यक्रम इसके लिए सक्षम साबित नहीं होता है। इसलिए जनसंख्या नियन्त्रण पर ही गरीबी के उन्मूलन कार्यक्रम सही कदम साबित हो सकते है अर्थात गरीबी को नियन्त्रित किया जा सकता है।

अध्याय-21
वस्तुनिष्ठ प्रश्न
(Objective Type Questions)

निम्न में से सही उत्तर का चयन कीजिए।

1. भारत में संविधान–सभा की मांग सबसे प्रथम बार किस वर्ष में की गई थी।

   (क) 1920 (ख) 1922

   (ग) 1930 (घ) 1946

2. ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के लिए संविधान–सभा की मांग को किस वर्ष में स्वीकृत किया था?

   (क) 1940 (ख) 1942

   (ग) 1946 (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. संविधान–सभा जिसने स्वतंत्र भारत के लिए संविधान निर्मित किया, किस वर्ष में बनी थी?

   (क) 1946 (ख) 1947

   (ग) 1949 (घ) 1950

4. भारत का संविधान किस वर्ष स्वीकृत किया गया?

   (क) 9 दिसम्बर, 1946 (ख) 15 अगस्त, 1949

   (ग) 25 नवम्बर, 1949 (घ) 26 जनवरी, 1950

5. निम्न दलों में से भारत क संविधान–सभा में किसको प्रतिनिधित्व नहीं मिला था?

   (क) अखिल भारतीय कांग्रेस (ख) हिन्दू महासभा

   (ग) अनुसूचित जाति संघ (घ) साम्यवादी दल

6. संविधान–सभा के स्थायी अध्यक्ष निम्न में से कौन थे?

   (क) डॉ. बी.आर. अम्बेडकर (ख) पं. जवाहरलाल नेहरू

   (ग) सरदार पटेल (घ) डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

7. संविधान–सभा में निम्न में से निर्णय लेने की किस प्रक्रिया को नहीं अपनाया गया था?

   (क) सहमति से निर्णय (ख) समायोजन का सिद्धांत

   (ग) सर्व–सम्मति से निर्णय (घ) बहुमत से निर्णय

8. निम्न में से संविधान–सभा में कौन–सा निर्णय सहमति द्वारा नहीं लिया गया था?

(क) संघीय ढाँचा (ख) भाषायी प्रावधान

(ग) अल्पसंख्यक विषय (घ) गणतन्त्रीय व्यवस्था

9. समायोजन के सिद्धांत के द्वारा संविधान–सभा में निम्न में से कौन–से विषय का निर्णय नहीं लिया गया था?

(क) संघात्मक और एकात्मक व्यवस्था के मध्य समन्वय

(ख) गणतन्त्रीय व्यवस्था के साथ राष्ट्रमण्डल की सदस्यता

(ग) केन्द्रीयकरण के साथ विकेन्द्रीयकरण की व्यवस्था

(घ) उपर्युक्त दिये गए सभी विषय

10. भारत का संविधान निर्मित किया गया।

(क) भारत की संविधान सभा द्वारा

(ख) भारतीय संसद द्वारा

(ग) ब्रिटिश संसद द्वारा

(घ) ब्रिटिश ताज द्वारा

11. भारत का संविधान एक

(क) मौलिक संविधान (ख) व्यावहारिक संविधान

(ग) आदर्शवादी संविधान (घ) समाजवादी संविधा है

12. भारत के संविधान पर निम्न में से किसका प्रभाव नहीं है :

(क) सोवियत संघ (ख) ग्रेट ब्रिटेन

(ग) संयुक्त राज्य अमेरिका (घ) कनाडा

13. ब्रिटेन के संविधान की निम्न में से कौन–सी संस्था भारत के संविधान में नहीं अपनाई गई है :

(क) संसदीय शासन (ख) कानून का शासन

(ग) एकात्मक शासन (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

14. भारतीय संविधान में कितने अनुच्छेद हैं?

(क) 395 (ख) 7

(ग) 246 (घ) 151

15. भारत में नेहरू रिपोर्ट का प्रकाशन कब हुआ था?

(क) 1927 (ख) 1928

(ग) 1930 (घ) 1932

16. भारतीय संविधान में 1993 तक कितने संशोधन हो चुके हैं?

(क) 50 (ख) 64

(ग) 62 (घ) 77

17. संविधान के अनुसार संघ राज्यों का विभाजन किस राज्य के संविधान के अनुसार हुआ है?

(क) अमेरिका (ख) स्विटजरलैण्ड

(ग) आस्ट्रेलिया (घ) कनाडा

18. "भारत का संविधान विश्व का सबसे विस्तत संविधान है।" यह कथन किसका है?

(क) सर आइवर जैनिंग्स (ख) डॉ. एम.पी. शर्मा

(ग) के.एम. मुन्शी (घ) के.सन्थानम

19. भारत के संविधान में कितने अनुच्छे हैं?

(क) 395 (ख) 404

(ग) 402 (घ) 174

20. निम्न में भारत के संविधान के आधार–भत सिद्धांत हैं :

(क) लोक–प्रभुसत्ता (ख) मौलिक अधिकार

(ग) संघीय शासन (घ) ऊपर के तीनों

21. भारत की प्रस्तावना द्वारा भारत को घोषित किया गया है :

(क) प्रभुत्तासम्पन्न, समाजवादी, गणराज्य

(ख) प्रभुत्तासम्पन्न, लोकतंत्रीय, गणराज्य

(ग) प्रभुत्तासम्पन्न, समाजवादी, धर्म–निरपेक्ष, लोकतंत्रीय गणराज्य

(घ) एक समाजवादी राज्य

22. भारत के संविाान की प्रस्तावना में उल्लेख है

(क) सामाजिक न्याय का (ख) आर्थिक न्याय का

(ग) राजनीतिक न्याय का (घ) ऊपर के तीनों का

23 भारत के संविधान की प्रस्तावना में उल्लेख नहीं है :

(क) न्याय का (ख) स्वतंत्रता का

(ग) समानता का (घ) लोक–कल्याणकारी राज्य का

24. भारत की संविधान–सभा ने संविधान को किस तिथि को स्वीकार किया?

(क) 15 अगस्त, 1947 को (ख) 26 नवम्बर, 1949 को

(ग) 26 जनवरी, 1950 को (घ) 1946 को

25. भारत के संविधान में कितने अनुच्छेद हैं?

(क) 395 (ख) 404

(ग) 402 (घ) 174

26. 1993 तक भारतीय संविधान में कितने संशोधन हो चुके हैं?

(क) 65 (ख) 70

(ग) 72 (घ) 77

27. भारत में 61वें संशोधन के अनुसार मतदान की आयु कितनी निश्चित की है?

(क) 18 वर्ष (ख) 20 वर्ष

(ग) 21 वर्ष (घ) 25 वर्ष

28. संसार में सबसे विस्तत संविधान किस राज्य का है?

(क) ग्रेट ब्रिटेन (ख) कनाडा

(ग) आस्ट्रेलिया (घ) भारत

29. भारत का संविधान एक :

(क) अलिखित संविधान है (ख) लिखित संविधान है

(ग) लिखित और निर्मित संविधान है (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

30. भारत में कौन–सी शासन–प्रणाली अपनाई गई है?

(क) संसदीय (ख) अध्यक्षात्मक

(ग) तानाशाही (घ) राजतंत्र

31. भारतीय संविधान में मताधिकार का आधार क्या है?

(क) करदेयता (ख) आयु

(ग) शिक्षा (घ) सम्पत्ति

32. भारत की राष्ट्र–भाषा कौनसी है?

(क) अंग्रेजी (ख) हिन्दी

(ग) बंगाली (घ) मराठी

33. भारतीय संविधान में कुल कितनी अनुसूचियाँ हैं?

(क) 7 (ख) 8

(ग) 9 (घ) 10

34. संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों का विचार निम्न देशों के संविधानों में से किस से लिया है?

(क) संयुक्त राज्य अमेरिका (ख) ग्रेट ब्रिटेन

(ग) फ्रांस (घ) सोवियत संघ

35. भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन किस भाग में किया गया है?

(क) पहले भाग में (ख) दूसरे भाग में

(ग) तीसरे भाग में (घ) चौथे भाग में

36. भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन कितने अनुच्छेदों में किया गया है?

(क) 20 (ख) 22

(ग) 23 (घ) 24

37. निम्न में से कौन–सा अधिकार मौलिक अधिकार नहीं है?

(क) समानता का अधिकार (ख) काम का अधिकार

(ग) स्वतंत्रता का अधिकार (घ) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

38. निम्नलिखित अधिकारों में से किस मौलिक अधिकार को डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने 'संविधान की आत्मा' का है?

(क) स्वतंत्रता का अधिकार

(ख) धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

(ग) सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

(घ) संवैधानिक उपचारों का अधिकार

39. शोषण के विरूद्ध अधिकार के दुर्बल वर्गों की रक्षा किस प्रकार करता है?

(क) सार्वजनिक हित में अनिवार्य सेवा

(ख) कर्मचारियों को न्यूनतम वेतन

(ग) मानव व्यापार तथा बेगार का निषेध

(घ) उपर्युक्त में कोई नहीं

40. निम्नलिखित आदेशों में से कौन–सा न्यायालय द्वारा गैर–कानूनी ढंग से नजरबन्द किए गए व्यक्ति को छोड़ने के लिए दिया जाता है?

(क) बन्दी प्रत्यक्षीकरण (ख) परमादेश

(ग) उत्प्रेषण लेख (घ) अधिकार पच्छा

41. निम्न में से किस आदेश के द्वारा किसी व्यक्ति को उस कार्यवाही को करने से रोक दिया जाता है, जिसके लिए वह कानूनी रूप से उपयुक्त नहीं है?

(क) परमादेश (ख) प्रतिषेध

(ग) उत्प्रेषण लेख (घ) अधिकार पच्छा

42. भारतीय संविधान के द्वारा नागरिकों के मौलिक अधिकारों के पीछे किसकी स्वीकृति हैं?

(क) स्वतंत्र न्यायपालिका (ख) संसद

(ग) जनमत (घ) संविधान

43. भारतीय संविधान के अनुसार मौलिक अधिकारों को कब स्थागित किया जा सकता है?

(क) लोकसभा के चुनावों के समय

(ख) राष्ट्रीय संकटकालीन स्थिति में

(ग) राज्य में संविधान के असफल होने पर

(घ) उपर्युक्त में से किसी में नहीं

44. भारत में मौलिक अधिकारों को स्थापित करने का आदेश किसके द्वारा दिया जाता है?

(क) संसद के प्रस्ताव द्वारा

(ख) संघीय मन्त्रि–परिषद् की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा

(ग) संसद की स्वीकृति पर राष्ट्रपति द्वारा

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

45. सम्पत्ति का अधिकार जो मूल संविधान द्वारा दिया गया था, वह किस संशोधन के अनुसार मौलिक अधिकार नहीं रहा।

(क) 42 वें (ख) 43 वें

(ग) 44 वें (घ) 45 वें

46. संविधान में 'स्वतंत्रता का अधिकार' का वर्णन किन धाराओं में किया गया है?

(क) 19 से 22 (ख) 14 से 18

(ग) 22 से 25 (घ) उपर्युक्त में से किसी में नहीं

47. संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों का वर्णन किन अनुच्छेदों में किया गया है?

(क) 50 (ख) 51

(ग) 51-A (घ) 52

48. संविधान में मौलिक कर्त्तव्य का उल्लेख किस भाग में है?

(क) 40 वें (ख) 41 वें

(ग) 42 वें (घ) 33 वें

49. संविधान में मौलिक कर्त्तव्य का उल्लेख किस भाग में है?

(क) पहले भाग में (ख) दूसरे भाग में

(ग) तीसरे भाग में (घ) चौथे भाग में

50. संविधान–निर्माताओं ने भारतीय संविधन में राजनीतिक के निर्देशक सिद्धांतों का किन विदेशी राज्य के अनुसार ग्रहण किया है?

(क) आयरिश गणतन्त्र राज्य (ख) संयुक्त राज्य अमेरिका

(ग) ग्रेट ब्रिटेन (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

51. भारतीय संविधान के निम्नलिखित में से किस भाग में राजनीति के निर्देशक सिद्धांतों का उल्लेख है?

(क) संविधान का दूसरा भाग (ख) संविधन का तीसरा भाग

(ग) संविधान का चौथा भाग (घ) संविधान का पांचवां भाग

52. राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों का संविधान की किन धाराओं में उल्लेख किया गया है?

(क) संविधान की धारा 2 से लेकर 16 तक

(ख) संविधान की धारा 17 से 35 तक

(ग) संविधान की धारा 36 से 51 तक

(घ) संविधान की धारा 51–।

53. निम्न में से किसने नीति–निर्देशक सिद्धांतों को संविधान की अनोखी विशेषता कहा है?

(क) श्री वी.एन. राय (ख) पंडित जवाहर लाल नेहरू

(ग) डॉ. अम्बेडकर (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

54. निम्न में से नीति–निर्देशक सिद्धांतों का उद्देश्य कौन सा है?

(क) पुलिस राज्य की स्थापना करना

(ख) सामाजिक तथा आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना।

(ग) राजनैतिक लोकतंत्र की स्थापना करना।

(घ) समाजवादी राज्य की स्थापना करना।

55. निम्नलखित में से कौन–सा सिद्धांत गांधीवादी सिद्धांत है?

(क) ग्रामीण पंचायतों और स्वशासन की स्थापना

(ख) स्त्री तथा पुरूषों को समान कार्य के लिए समान वेतन

(ग) देश के सभी नागरिकों के लिए आचार संहित

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

56. नीति–निर्देशक सिद्धांतों के पीछे निम्नलिखित में से कौन–सी शक्ति है?

(क) कानूनी शक्ति (ख) जनमत की शक्ति

(ग) न्यायालय की शक्ति (घ) उपर्युक्त में कोई नहीं

57. नीति–निर्देशक सिद्धांतों का लागू किया जाना, किस पर निर्भर करता है?

(क) स्वतंत्र न्यायपालिका पर

(ख) शासन की इच्छा पर

(ग) शासन के पास साधन होने पर

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

58. भारत में संघीय विधानपालिका को क्या नाम दिया गया है?

(क) संसद (ख) लोकसभा

(ग) राज्यसभा (घ) विधानसभा

59. भारत की संसद में किन को शामिल किया गया है?

(क) लोकसभा और राज्यसभा

(ख) राष्ट्रपति, लोकसभा और राज्यसभा

(ग) राष्ट्रपति, मन्त्रिपरिषद् और लोकसभा

(घ) उपर्युक्त में कोई नहीं

60. राज्यसभा में अधिक–से अधिक कितने सदस्य हो सकते हैं?

(क) 200 (ख) 230

(ग) 250 (घ) 300

61. भारत की राज्यसभा में राष्ट्रपति संसद के कितने सदस्यों को मनोनीत करता है?

(क) 2 (ख) 10

(ग) 12 (घ) 15

62. राज्यसभा के सदस्यों का कार्यकाल कितने वर्ष है?

(क) 2 वर्ष (ख) 4 वर्ष

(ग) 5 वर्ष (घ) 6 वर्ष

63. राज्यसभा में सबसे अधिक प्रतिनिधित्व किस राज्य का है?

(क) मध्यप्रदेश (ख) उत्तर प्रदेश

(ग) महाराष्ट्र (घ) तमिलनाडू

64. राज्यसभा के 1/3 सदस्य कितने वर्षों में अवकाश ग्रहण करते हैं?

(क) एक वर्ष में (ख) दो वर्ष में

(ग) तीन वर्ष में (घ) चार वर्ष में

65. राज्यसभा का सभापति कौन होता है?

(क) राज्यसभा का सदस्य अपना सभापति स्वयं निर्वाचित करते है।

(ख) भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है।

(ग) राष्ट्रपति मनोनीत करता है।

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं।

66. भारत की लोकसभा में निर्वाचित सदस्यों की संख्या अधिक–से–अधिक कितनी हो सकती है?

(क) 525 (ख) 545

(ग) 547 (घ) 550

67. लोकसभा के सदस्य होने के लिए कितनी अवस्था निश्चित की गई है?

(क) 25 वर्ष (ख) 30 वर्ष

(ग) 35 वर्ष (घ) 21 वर्ष

68. लोकसभा का सामान्य कार्यकाल क्या है?

(क) 4 वर्ष (ख) 5 वर्ष

(ग) 6 वर्ष (घ) 7 वर्ष

69. लोकसभा द्वारा प्राप्त किए गए धन सम्बन्धी विधेयक को राज्यसभा अधिक–से–अधिक कितने दिन रोक सकती है?

(क) 14 दिन (ख) 30 दिन

(ग) एक दिन (घ) 60 दिन

70. लोकसभा का अध्यक्ष किसके द्वारा निर्वाचित होता है?

(क) राष्ट्रपति द्वारा (ख) उपराष्ट्रपति द्वारा

(ग) प्रधानमंत्री द्वारा (घ) लोकसभा के सदस्यों द्वारा

71. संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता कौन करता है?

(क) राष्ट्रपति (ख) प्रधानमंत्री

(ग) लोकसभा अध्यक्ष (घ) उपराष्ट्रपति

72. वित्त विधेयक संसद के किस सदन में पहले पेश किया जाता है?

(क) लोकसभा में (ख) राज्यसभा में

(ग) दोनों सदनों में साथ–साथ (घ) उपर्युक्त में से किसी में नहीं

73. निम्न में से कौन–सा कार्य संसद का नहीं है?

(क) कानूनों का निर्माण करना (ख) बजट पास करना

(ग) संविधान में संशोधन करना (घ) शासन चलाना

74. वर्तमान समय में निम्न में से कौन राज्यसभा का सभापति है?

(क) शिवराज पाटिल (ख) के.आर. नारायनन

(ग) डॉ. नजमा हेपतुल्ला (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

75. लोकसभा में विपक्ष के किस नेता को विपक्ष के नेता के रूप में मान्यता प्राप्त है?

(क) लालकृष्ण आडवाणी (ख) अटल बिहारी वाजपेयी

(ग) विश्वनाथ प्रताप सिंह (घ) अजीत सिंह

76. लोकसभा के सदन की गणपूर्ति होती है

(क) 1/10 सदस्य (ख) 1/8 सदस्य

(ग) 1/2 सदस्य (घ) 1/3 सदस्य

77. लोकसभा के वर्ष में कम–से–कम कितने अधिवेशन अनिवार्य हैं?

(क) एक (ख) दो

(ग) तीन (घ) चार

78. लोकसभा के उपाध्यक्ष का चुनाव होता है –

(क) राष्ट्रपति द्वारा (ख) संसद द्वारा

(ग) जनता द्वारा (घ) लोकसभा के सदस्यों द्वारा

79. भारतीय संविधान में संसद का उल्लेख किस अनुच्छेद में किया गया है?

(क) 78 (ख) 79

(ग) 80 (घ) 81

80. लोकसभा में संघीय क्षेत्रों में अधिकतम प्रतिनिधि हो सकते हैं–

(क) 525 (ख) 530

(ग) 500 (घ) 520

81. लोकसभा में संघीय–क्षेत्रों में अधिकतम प्रतिनिधि हो सकते हैं –

(क) 20 (ख) 22

(ग) 25 (घ) 24

82. राज्यसभा के सदस्य के लिए निश्चित आयु सीमा हैं –

(क) 21 वर्ष (ख) 25 वर्ष

(ग) 30 वर्ष (घ) 35 वर्ष

83. भारत में निम्न में से कौन संघीय कार्यपालिका का अध्यक्ष है?

(क) राष्ट्रपति (ख) उप–राष्ट्रपति

(ग) प्रधानमंत्री (घ) भारत का मुख्य न्यायाधीश

84. भारत के राष्ट्रपति का चुनाव किस प्रकार होत है?

(क) राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक मंडल द्वारा होता है। जिसमें संसद के दोनों सदनों तथा राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं।

(ख) संसद द्वारा चुनाव

(ग) जनता द्वारा चुनाव

(घ) प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्ति

85. राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को कितने सदस्यों द्वारा प्रस्तावित किया जाना आवश्यक है।

(क) कम–से–कम दो, संसद सदस्य

(ख) निर्वाचक मंडल के 10 सदस्य

(ग) निर्वाचक मंडल के 20 सदस्य

(घ) प्रधानमंत्री द्वारा समर्थन

86. राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिये न्यूतम आयु कितनी निश्चित की गई है?

(क) 25 वर्ष (ख) 30 वर्ष

(ग) 35 वर्ष (घ) 40 वर्ष

87. भारत के राष्ट्रपति का चुनाव कितने वर्ष के लिये होता है?

(क) 4 वर्ष (ख) 5 वर्ष

(ग) 6 वर्ष (घ) जीवन भर के लिए

88. भारत के राष्ट्रपति को शपथ किस पदाधिकारी द्वारा दिलाई जाती है?

(क) भारत का मुख्य न्यायाधीश

(ख) भारत का उप–राष्ट्रपति

(ग) प्रधानमंत्री

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

89. भारत के राष्ट्रपति का चुनाव किस चुनाव प्रणाली के आधार पर किया जाता है?

(क) प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली

(ख) एकल संक्रमणीय मत पद्धति के आधार पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व चुनाव प्रणाली

(ग) सूची–प्रणाली

(घ) संचित मत प्रणाली

90. राष्ट्रपति के पद का चुनाव किसके द्वारा कराया जाता है?

(क) भारत के चुनाव आयोग द्वारा

(ख) भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा

(ग) लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

91. राष्ट्रपति को पद से हटाने का अधिकार किसके पास है?

(क) भारत का मुख्य न्यायाधीश

(ख) प्रधानमंत्री

(ग) संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित महाभियोग द्वारा

(घ) भारत का चुनाव आयोग

92. राष्ट्रपति के चुनाव से सम्बन्धी विवादों का निर्णय किसके द्वारा किया जाता है?

(क) उच्चतम न्यायालय द्वारा (ख) संसद द्वारा

(ग) चुनाव आयोग द्वारा (घ) लोकसभा द्वारा

93. भारत के राष्ट्रपति की क्या स्थिति है?

(क) वह भारत का संवैधानिक अध्यक्ष है

(ख) वह वास्तविक शासक है

(ग) वह बहुमत दल का नेता है, जो शासन चलाता है

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

94. राष्ट्रपति अध्यादेश किस प्रकार जारी करता है?

(क) संसद की पूर्व स्वीकृति से

(ख) स्वयं अपनी इच्छा से

(ग) मंत्रिपरिषद् की सलाह पर

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

95. राष्ट्रपति आपातकालीन घोषणा कब करता है?

(क) विदेशी आक्रमण के समय

(ख) किसी राज्य में दंगे–फसाद होने पर

(ग) राज्य में शासन ठीक प्रकार न चलने पर

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

96. राष्ट्रीय संकटकालीन घोषणा अब तक कितने बार हो चुकी है?

(क) एक बार (ख) दो बार

(ग) तीन बार (घ) चार बार

97. भारत के वर्तमान राष्ट्रपति हैं

(क) शिवराज पाटिल (ख) आर.वेंकट रमन

(ग) डॉ. शंकर दयाल शर्मा (घ) पी.वी. नरसिम्हाराव

98. भारत के नवें राष्ट्रपति ने किस तिथि को राष्ट्रपति पद ग्रहण किया?

(क) 25 जुलाई, 1992 (ख) 13 जुलाई 1993

(ग) 16 जुलाई, 1992 (घ) 28 जुलाई 1992

99. वर्तमान समय में राष्ट्रपति का मासिक वेतन हैं?

(क) 10,000 रुपये (ख) 15,000 रुपये

(ग) 11,000 रुपये (घ) 20,000 रुपये

100. भारत के राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों का उल्लेख है :

(क) 310 अनुच्छेद से 314 अनुच्छेद (ख) 342, 344, 346 अनुच्छेद

(ग) 79, 80 व 82 अनुच्छेद (घ) 352, 356

101. भारत के उपराष्ट्रपति का मासिक वेतन है –

(क) 7500 रुपये (ख) 2250 रुपये

(ग) 5000 रुपये (घ) 3000 रुपये

102. भारत के वर्तमान उप–राष्ट्रपति हैं –

(क) डॉ. शंकरदयाल शर्मा (ख) आर.के.नारायण

(ग) शिवराज पाटिल (घ) अर्जुन सिंह

103. भारत में राष्ट्रपति पद के लिए कितने चुनाव हो चुके हैं?

(क) आठ (ख) नौ

(ग) दस (घ) ग्यारह

104. भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे –

(क) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (ख) सी.गोपालाचार्य

(ग) डॉ. राधा कृष्णन (घ) डॉ. जाकिर हुसैन

105. भारत के प्रथम उप–राष्ट्रपति थे –

(क) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (ख) सी. राधाकृष्णन

(ग) डॉ. वी.वी. गिरि (घ) डॉ. जाकिर हुसैन

106. राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर उसे ग्रहण करता है –

(क) उपराष्ट्रपति (ख) सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश

(ग) प्रधानमंत्री (घ) गहमंत्री

107. उस राष्ट्रपति का नाम चयन कीजिए जो निर्विरोध राष्ट्रपति निर्वाचित हुए –

(क) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (ख) सी. राधाकृष्णन

(ग) नीलम संजीव रेड्डी (घ) ज्ञानी जैल सिंह

108. उस राष्ट्रपति का नाम चुनिए जो दूसरी पसन्दों के आधार पर चुने गए –

(क) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (ख) डॉ. वी.वी.गिरि

(ग) डॉ. राधाकृष्णन (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

109. भारत का राष्ट्रपति राज्यसभा में कितने सदस्यों को मनोनीत करता है?

(क) 2 (ख) 6

(ग) 10 (घ) 12

110. भारत में वास्तविक कार्यपालिका शक्ति किसमें निहित होती है?

(क) संसद (ख) राष्ट्रपति

(ग) मन्त्रिपरिषद् (घ) प्रधानमंत्री

111. भारत की संघीय मन्त्रिपरिषद् में निम्न में से कौन शामिल होते हैं?

(क) राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति

(ख) प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्री

(ग) राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

112. निम्न में से किस श्रेणी के मन्त्री महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं?

(क) कैबिनेट मंत्री (ख) राज्यमंत्री

(ग) उपमंत्री (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

113. भारत की संघीय मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों को किस प्रकार नियुक्त किया जाता है?

(क) राष्ट्रपति द्वारा (ख) प्रधानमंत्री द्वारा

(ग) संसद द्वारा (घ) प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा

114. भारत की संघीय मन्त्रिपरिषद् की अध्यक्षता कौन करता है?

(क) राष्ट्रपति (ख) उपराष्ट्रपति

(ग) प्रधानमंत्री (घ) लोकसभा का अध्यक्ष

115. भारत की संघीय मन्त्रिपरिषद् अपने पद पर किसके विश्वास पर रहती है?

(क) लोकसभा के विश्वास के आधार पर

(ख) संसद के सदनों के विश्वास के आधार पर

(ग) राष्ट्रपति इच्छा पर्यन्त

(घ) प्रधानमंत्री की इच्छा पर्यन्त

116. मंत्री, जो संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं है, वह कितने समय तक अपने पद पर रह सकता है?

(क) 3 महीने के लिए (ख) 6 महीने के लिए

(ग) 1 वर्ष के लिए (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

117. भारत की मन्त्रिपरिषद् निम्न में से कौनसा कार्य नहीं करती?

(क) राष्ट्रीय नीति निश्चित् करना

(ख) संसद के सदनों में बिलों का पेश करना

(ग) संसद के सदनों में बजट को पेश करना

(घ) बिलों की स्वीकृति देना

118. भारत का प्रधानमंत्री किस प्रकार नियुक्त होता है?

(क) राष्ट्रपति की इच्छानुसार (ख) संसद द्वारा निर्वाचित

(ग) लोकसभा द्वारा निर्वाचित (घ) लोकसभा के बहुमत नेता चुने जाने पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति

119. भारत की संघीय मन्त्रिपरिषद् का निम्न में से कौन नेता होता है?

(क) राष्ट्रपति (ख) उपराष्ट्रपति

(ग) प्रधानमंत्री (घ) लोकसभा का अध्यक्ष

120. भारत का प्रधानमंत्री कितने समय तक अपने पद पर रहता है?

(क) 5 वर्ष

(ख) राष्ट्रपति की इच्छा पर्यन्त

(ग) जब तक प्रधानमंत्री का संसद के सदनों में बहुमत है

(घ) जब तक प्रधानमंत्री का लोकसभा में बहुमत है

121. वर्तमान समय में भारत का निम्न में से कौन प्रधानमंत्री है?

(क) श्रीमती इन्दिरा गांधी (ख) श्री मोरारजी देसाई

(ग) श्री राजीव गांधी (घ) श्री नरसिम्हा राव

122. जनवरी 1980 के लोकसभा चुनाव में भारत का निम्न में से कौन प्रधानमंत्री बना?

(क) श्रीमती इन्दिरा गांधी (ख) श्री राजीव गांधी

(ग) श्री मोरारजी देसाई (घ) श्री लाल बहादुर शास्त्री

123. राष्ट्रपति श्री नीलम संजीव रेड्डी ने किस प्रधानमंत्री की सलाह पर 1979 में लोकसभा को भंग किया था?

(क) श्रीमती इन्दिर गांधी (ख) श्री मोरारजी देसाई

(ग) चौ. चरण सिंह (घ) श्री राजीव गांधी

124. प्रधानमंत्री निम्न में से किस का प्रधान है?

(क) संघ की सरकार

(ख) भारत राज्य का प्रधान

(ग) भारत राज्य और सरकार दोनों का प्रधान

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

125. भारत के सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था किसके द्वारा की गई है?

(क) संसद के द्वारा (ख) संविधान के द्वारा

(ग) राष्ट्रपति के आदेश के द्वारा (घ) उपर्युक्त में से किसी के द्वारा नहीं

126. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति कौन करता है?

(क) भारत का राष्ट्रपति (ख) उप–राष्ट्रपति

(ग) प्रधानमंत्री (घ) संसद के द्वारा चुनाव

127. वर्तमान समय में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या कितनी है?

(क) 11 (ख) 13

(ग) 17 (घ) 26

128. भारत के सर्वोच्च न्यायालय किस स्थान पर स्थित है?

(क) दिल्ली में (ख) नई दिल्ली में

(ग) चण्डीगढ़ में (घ) मद्रास में

129. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश कितनी आयु प्राप्त करने पर अवकाश ग्रहण करते हैं?

(क) 60 वर्ष (ख) 62 वर्ष

(ग) 65 वर्ष (घ) 58 वर्ष

130. वर्तमान समय में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का मासिक वेतन कितना है :

(क) 24,000 रुपये (ख) 25,000 रुपये

(ग) 29,000 रुपये (घ) 33,000 रुपये

131. सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायधीशों को मासिक वेतन कितना मिलता है?

(क) 24,000 रुपये (ख) 25,000 रुपये

(ग) 30,000 रुपये (घ) 32,000 रुपये

132. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को पद से किस प्रकार हटाया जा सकता है?

(क) राष्ट्रपति के आदेश द्वारा

(ख) प्रधानमंत्री की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा

(ग) सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा

(घ) संसद के दोनों सदनों के महाभियोग द्वारा

133. सर्वोच्च न्यायालय का निम्न में से कौन–सा क्षेत्राधिकार नहीं है?

(क) संविधान की व्याख्या करना

(ख) मौलिक अधिकारों की रक्षा करना

(ग) राष्ट्रपति को सलाह देना

(घ) राज्यपाल को सलाह देना

134. राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय से निम्न में से किस विषय पर परामर्श ले सकता है?

(क) भारत सरकार के कर्मचारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में

(ख) राज्य सूची के कानून के सम्बन्ध में

(ग) कानून की संवैधानिकता पर

(घ) उपर्युक्त में से किसी पर नहीं

135. कया राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई सलाह से बाध्य है?

(क) बाध्य है (ख) बाध्य नहीं है

(ग) सीमित रूप से बाध्य है (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

136. निम्न में से कौन भारत में सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय है?

(क) संसद (ख) राष्ट्रपति

(ग) सर्वोच्च न्यायालय (घ) सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय

137. भारत के सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनर्निरीक्षण को अधिकार किस विदेशी राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के अनुरूप है।

(क) ग्रेट ब्रिटेन (ख) संयुक्त राज्य अमेरिका

(ग) सोवियत संघ (घ) स्विटजरलैंड

138. न्यायिक पुनर्निरीक्षण का अर्थ है :

(क) कानूनों की संवैधानिकता के आधार पर जांच करना

(ख) कानूनों की व्याख्या करना

(ग) संघ तथा राज्यों के क्षेत्राधिकारों को निश्चित करना

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

139. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक पुनर्निरीक्षण के अधिकार का वर्णन संविधान के किस अनुच्छेद में किया गया है?

(क) 13 (2) (ख) 32

(ग) 131–132 (घ) 226

140. भारत में निम्न में से किस कानूनी न्यायिक प्रक्रिया की स्थापना की गई है?

(क) दो न्यायिक प्रणाली

(ख) कानून की उचित प्रक्रिया का सिद्धांत

(ग) कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

141. भारत में किन में से किसके द्वारा न्यायिक पुनर्निरीक्षण अधिकार का प्रयोग किया जाता है?

(क) संसद (ख) राष्ट्रपति

(ग) सर्वोच्च न्यायालय (घ) उच्च न्यायालय

142. सर्वोच्च न्यायालय को निम्न में से कौन सा अधिकार नहीं है?

(क) संविधान की व्याख्या

(ख) मौलिक अधिकारों की रक्षा करना

(ग) संघ और राज्यों के मध्य कोई झगड़ा

(घ) राज्यों के मध्य जल–सम्बन्धी विवाद

143. निम्न में सें किस मुकद्दमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद का मौलिक अधिकारों का संशोधन करने का अधिकार नहीं है?

(क) शंकरी प्रसाद, बनाम भारत, 1952

(ख) सज्जन सिंह बनाम राजस्थान, 1965

(ग) गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य मुकद्दमा, 1967

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

144. उच्च न्यायाधीश के न्यायालय की नियुक्ति करता है :

(क) राष्ट्रपति (ख) प्रधानमंत्री

(ग) संसद (घ) मुख्य न्यायाधीश

145. उच्च न्यायालय की न्यायाधीश अपने पद पर रहते हैं :

(क) राष्ट्रपति (ख) प्रधानमंत्री

(ग) संसद (घ) मुख्य न्यायाधीश

146. उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को वेतन मिलता है :

(क) 25,000 रुपये प्रति मास (ख) 28,000 रुपये प्रति मास

(ग) 30,000 रुपये प्रति मास (घ) 40,000 रुपये प्रति मास

147. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का मासिक वेतन है :

(क) 26,000 रुपये प्रति मास (ख) 24,000 रुपये प्रति मास

(ग) 29,000 रुपये प्रति मास (घ) 30,000 रुपये प्रति मास

148. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद से हटाये जा सकते है :

(क) राष्ट्रपति द्वारा (ख) प्रधानमंत्री द्वारा

(ग) संसद के महाभियोग द्वारा (घ) राज्यपाल द्वारा

149. सर्वोच्च न्यायालय का कौन–सा ऐसा न्यायाधीश था जिसके ऊपर लोक–सभा में 1993 में महाभियोग चलाया गया परन्तु वह पारित न हो सका?

(क) न्यायाधीश आर.रामास्वामी (ख) न्यायाधीश सीकरी

(ग) न्यायाधीश शैलेट (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

150. निम्न में से राज्य की कार्यपालिका का कौन अध्यक्ष होता है?

(क) राष्ट्रपति (ख) उप–राष्ट्रपति

(ग) प्रधानमंत्री (घ) राज्यपाल

151. राज्यपाल की नियुक्ति निम्नलिखित में से किसके द्वारा जाती है?

(क) राष्ट्रपति (ख) प्रधानमंत्री

(ग) संसद (घ) मुख्यमंत्री

152. राज्यपाल की नियुक्ति कितने वर्ष के लिए की जाती है?

(क) 3 वर्ष (ख) 4 वर्ष

(ग) 5 वर्ष (घ) 6 वर्ष

153. राज्यपाल को कितना मासिक वेतन मिलता है?

(क) 10,000 रुपये (ख) 11,000 रुपये

(ग) 5,000 रुपये (घ) 3,000 रुपये

154. राज्यपाल को पद से किसके द्वारा हटाया जाता है?

(क) राष्ट्रपति (ख) प्रधानमंत्री

(ग) राज्य के मुख्यमंत्री (घ) राज्य की विधान–सभा

155. राज्य के मुख्यमंत्री की नियुक्ति निम्न में से किसके द्वारा होती है?

(क) राष्ट्रपति (ख) राज्यपाल

(ग) राज्य की विधान–सभा (घ) प्रधानमंत्री

156. राज्यपाल निम्नलिखित में से किस व्यवस्था के अनुसार मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है?

(क) अपनी इच्छा के अनुसार (ख) जिसे विधान–सभा में बहुमत प्राप्त हो

(ग) प्रधानमंत्री की इच्छानुसार (घ) राष्ट्रपति की इच्छानुसार

157. राज्य की मन्त्रि–परिषद् निम्न में से किसके प्रति उत्तरदायी है?

(क) राज्यपाल (ख) मुख्यमंत्री

(ग) राज्य की विधान सभा (घ) संसद

158. क्या कोई व्यक्ति एक से अधिक राज्य का भी राज्यपाल हो सकता है?

(क) हाँ

(ख) नहीं

(ग) अधिक–से–अधिक तीन महीने के लिए

(घ) 6 महीने के लिए

159. राज्य का राज्यपाल किस स्थिति में अध्यादेश जारी कर सकता है?

(क) जब राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो

(ख) जब वह चाहे

(ग) जब राष्ट्रपति ऐसा करने के लिए आदेश दे

(घ) जब विधानसभा अधिवेशन में न हो और विशेष परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए कानून की आवश्यकता हो।

160. राज्यपाल किसकी सलाह पर अपने स्वविवेकी अधिकारों का प्रयोग करता है?

(क) अपने आप (ख) मुख्यमंत्री की सलाह पर

(ग) मन्त्रि–परिषद् की सलाह पर (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

161. राज्य में राष्ट्रपति शासन किसकी सिफारिश पर किया जाता है?

(क) मुख्यमंत्री की सिफारिश पर (ख) मन्त्रि–परिषद् की सिफारिश पर

(ग) राज्यपाल की सिफारिश पर (घ) राज्य की विधानपालिका द्वारा प्रस्ताव पास होने पर

162. मन्त्रि–परिषद् के विभिन्न विभाग निम्नलिखित में से किसके द्वारा बांटे जाते हैं?

(क) राज्य की इच्छानुसार (ख) मुख्यमंत्री द्वारा

(ग) सदस्यों की अपनी इच्छानुसार (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

163. चौधरी बंसीलाल को जून 1986 में किस राज्यपाल ने मुख्यमंत्री के पद की शपथ दिलाई थी?

(क) सैयद मुजफ्फर हुसैन बर्नी (ख) जी.डी.तपासे

(ग) चौ. भजनपाल (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

164. राज्य में वास्तविक कार्यपालिका निम्नलिखित में से किसमें निहित होती है?

(क) राज्यपाल (ख) मुख्यमंत्री

(ग) मन्त्रि–परिषद् (घ) राज्य की विधानपालिका

165. एक राज्य से दूसरे राज्य में राज्यपाल का तबादला किसके द्वारा किया जाता है?

(क) राष्ट्रपति (ख) प्रधानमंत्री

(ग) मुख्यमंत्री (घ) संसद

166. मन्त्रि–परिषद् के सदस्यों की संख्या निम्नलिखित में से किसके द्वारा निश्चित की जाती है?

(क) संविधान द्वारा (ख) संसद द्वारा

(ग) राज्य की विधानपालिका द्वारा (घ) मुख्यमंत्री द्वारा

167. भारत में निम्न में से किस प्रकार की दलीय–व्यवस्था है?

(क) एक–दलीय–व्यवस्था (ख) बहु–दलीय प्रणाली

(ग) दो–दलीय प्रणाली (घ) सुसंगठित दलीय प्रणाली

168. भारत में वर्तमान समय में संघ में कौन–सा दल सत्ता में है?

(क) कांग्रेस (आई) (ख) जनता दल

(ग) भारतीय जनता पार्टी (घ) लोकदल

169. 1952 के आम चुनाव में राष्ट्रीय स्तर के कितने दल थे?

(क) 14 (ख) 15

(ग) 16 (घ) 17

170. कांग्रेस दल की स्थापना किस वर्ष में हुई थी?

(क) 1978 (ख) 1885

(ग) 1907 (घ) 1924

171. भारत में साम्यवादी दल की स्थापना किस वर्ष में हुई थी?

(क) 1906 (ख) 1992

(ग) 1940 (घ) 1950

172. जनता पार्टी की स्थापना किस वर्ष में हुई थी?

(क) 1950 (ख) 1975

(ग) 1977 (घ) 1955

173. 1977 के लोकसभा चुनावों में केन्द्र में किस दल को सत्ता प्राप्त हुई थी?

(क) कांग्रेस (आई) (ख) लोकदल

(ग) जनता दल (घ) साम्यवादी दल

174. निम्न में से कौन–सा दल साम्प्रदायिक है?

(क) कांग्रेस (आई) (ख) जनता दल

(ग) जनता दल (एस) (घ) अकाली दल

175. वर्तमान समय में भारतीय जनता पार्टी की सरकार किस राज्य में है?

(क) आन्ध्र प्रदेश (ख) कभी नहीं

(ग) तमिलनाडू (घ) मिजोरम

176. भारतीय जनता पार्टी की स्थापना किस वर्ष में हुई थी?

(क) 1980 (ख) 1977

(ग) 1991 (घ) 1979

177. भारत में दल–बदल को समाप्त करने के लिए कौन–सा संशोधन पारित किया गया है?

(क) 50 वां (ख) 51 वां

(ग) 52 वां (घ) 54 वां

178. मई–जून 1991 में दसवीं लोकसभा के चुनाव में किस दल को सत्ता प्राप्त हुई है?

(क) कांग्रेस (आई) (ख) जनता दल

(ग) राष्ट्रीय मोर्चा (घ) भारतीय जनता पार्टी

179. दल–बदल कानून से सम्बन्धित विवाद का निर्णय करता है –

(क) सर्वोच्च न्यायालय (ख) राष्ट्रपति

(ग) सदन का अध्यक्ष (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

180. निम्न में से कौन–सा राजनीतिक दल संविधान के अनुच्छेद 370 जो जम्मू–कश्मीर से सम्बन्धित है, समाप्त करने का समर्थक है?

(क) कांग्रेस (आई) (ख) जनता दल

(ग) भारतीय जनता पार्टी (घ) साम्यवादी मार्क्सवादी दल

181. भारत में दलीय प्रणाली की विशेषता नहीं है –

(क) एक–दलीय (ख) बहु–दलीय प्रणाली

(ग) क्षेत्रीय दलों का होना (घ) साम्प्रदायिक दलों का होना

182. तमिलनाडू में कौन–सा दल सत्ता में है?

(क) कांग्रेस (आई) (ख) डी.एम.के

(ग) अन्ना डी.एम.के. (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

183. वर्तमान समय में तमिलनाडू में मुख्यमंत्री हैं –

(क) करुणानिधि (ख) कुमारी जयललिता

(ग) रामचन्द्रन (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

184. वर्तमान समय में कांग्रेस (आई) दल के अध्यक्ष है –

(क) पी.वी.नरसिम्हा राव (ख) अर्जुन सिंह

(ग) शरद पंवार (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

185. निम्न में से किस दल ने राम, रहीम, रोजी–रोटी का नारा 1991 के चुनाव घोषणा–पत्र में दिया ?

(क) भारतीय जनता पार्टी (ख) कांग्रेस (आई)

(ग) जनता दल (घ) जनता दल (एस)

186. निम्न में से किस दल के चुनाव घोषणा–पत्र 1991 में राष्ट्रवाद के साथ राम, रोटी और इन्साफ का नारा दिया।

(क) भारतीय जनता पार्टी (ख) कांग्रेस (आई)

(ग) साम्यवादी दल (घ) जनता दल

190. मई–जून 1991 के दसवीं लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस (आई) को कितने स्थान प्राप्त हुए?

(क) 199 (ख) 215

(ग) 224 (घ) 117

191. मई–जून 1991 के दसवीं लोकसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी को कितने स्थान प्राप्त हुए थे।

(क) 224 (ख) 115

(ग) 119 (घ) 120

192. भारत में निम्न में से कितनी भाषाएँ प्रचलित हैं?

(क) 179 (ख) 200

(ग) 220 (घ) 544

193. भारत के संविधान द्वारा कितनी भाषाओं को मान्यता दी गई है?

(क) 14 (ख) 18

(ग) 16 (घ) 17

194. राष्ट्रीय आन्दोलन के किस नेता ने प्रथम चार बार प्रान्तों का गठन भाषाओं के आधार पर करने का समर्थन किया था?

(क) महात्मा गांधी (ख) श्री बल्लभ भाई पटेल

(ग) श्री जवाहर लाल नेहरू (घ) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

195. भाषा के आधार पर राज्यों के गठन के लिए आयोग की नियुक्ति कब की गई थी?

(क) 1950 में (ख) 1955 में

(ग) 1956 में (घ) 1980 में

196. निम्न में से भारत की राष्ट्र–भाषा कौन सी है?

(क) हिन्दी (ख) अंग्रेजी

(ग) मराठी (घ) तेलगू

197. भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किस वर्ष किया गया था?

(क) 1950 में (ख) 1955 में

(ग) 1956 में (घ) 1958 में

198. हरियाणा राज्य की स्थापना किस वर्ष की गई थी?

(क) 1950 में (ख) 1952 में

(ग) 1956 में (घ) 1958 में

199. सबसे पहली बार किस दल ने भारत संघ से अलग होने की मांग की थी?

(क) अकाली दल (ख) द्रविड़ मुनेन्नकडगम्

(ग) नेशनल कान्फ्रेंस (घ) तेलगूदेशम

200. भारत में निम्न में से कौन–सा दल जाति पर आधारित है?

(क) भारतीय जनता पार्टी (ख) जनता दल

(ग) अकाली दल (घ) द्रविड़ मुनेन्नकडगम्

201. निम्न राज्यों में से किस राज्य में जाति का प्रभाव कम है?

(क) हिमाचल प्रदेश (ख) आन्ध्र प्रदेश

(ग) कर्नाटक (घ) तमिलनाडू

202. निम्न राज्यों में से किस राज्य में जाति का प्रभाव सबसे अधिक है?

(क) जम्मू–कश्मीर (ख) पंजाब

(ग) हरियाणा (घ) हिमाचल प्रदेश

203. जाति के आधार पर स्थान सुरक्षित करने से निम्न में से किस व्यवस्था का प्रोत्साहन मिला है?

(क) राजनैतिक दलो के निर्माण को (ख) राजनीति में भ्रष्टाचार को

(ग) राजनीतिक में जातिवाद को (घ) उपर्युक्त में से किसी को नहीं

204. 'Caste in Indian Politics' पुस्तक के लेखक के नाम का चयन करो।

(क) मौरिस जोंन्स (ख) रजनी कोठारी

(ग) रूडोल्फ (घ) ग्रेनविल आस्टिन

205. डॉ. रजनी कोठारी ने जाति व्यवस्था और राजनीति में अन्तःक्रिया के सन्दर्भ में जाति–प्रथा के किस रूप का वर्णन नहीं किया है?

(क) जाति–व्यवस्था का मौलिक रूप (ख) जाति–व्यवस्था का एकीकरण रूप

(ग) जाति–व्यवस्था का चैतन्य रूप (घ) राजनैतिक दलों का जातीय आधार

206. निम्न में से कौन–सी जाति राजनीतिकरण की विशेषता नहीं है?

(क) व्यक्ति का बांधने वाली कड़ी है (ख) एकीकरण की प्रवत्ति बढ़ी है

(ग) जातियों को सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं (घ) भ्रष्टाचार में वद्धि हुई है?

207. निम्न में में कौन–सी भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में जाति की भूमिका नहीं है?

(क) चुनाव में उम्मीदवारों का चयन (ख) चुनाव प्रचार

(ग) निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका (घ) प्रधानमंत्री का चयन

208. निम्न में से किस राज्य में ब्राह्मण और अब्राह्मण के मध्य संघर्ष रहा है?

(क) तमिलनाडू (ख) आन्ध्र प्रदेश

(ग) कर्नाटक (घ) केरल

209. निम्नलिखित में से कौन–सा तत्व सम्प्रदायवाद के लिए उत्तरदायी नहीं है?

(क) कांग्रेस दल (ख) जनता दल

(ग) साम्यवादी दल (घ) मुस्लिम लीग

210. निम्नलिखित में कौन–सा तत्व सम्प्रदायवाद के लिए उत्तरदायी नहीं है?

(क) संविधान

(ख) औपनिवेशिक विरासत

(ग) राष्ट्रीय आन्दोलन की नकारात्मक विरासत

(घ) मुसलमानों से अलग रहने की भावना

211. भारत में क्षेत्रीयतावाद की समस्या को निम्नलिखित में से किसके द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है?

(क) भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन से

(ख) धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार से

(ग) संघ और राज्यों के सम्बन्ध से

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

212. राष्ट्रीय एकीकरण परिषद् की स्थापना किस वर्ष की गई थी?

(क) 1950 में (ख) 1955 में

(ग) 1956 में (घ) 1968 में

213. भारत में निम्नलिखित में से कौन–सा साम्प्रदायिकता का कारण नहीं है?

(क) यह ब्रिटिश शासन की नकारात्मक विरासत है

(ख) मुस्लिम लीग की स्थापना से साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिला

(ग) मुसलमानों में अलग रहने की भावना

(घ) संविधान की व्यवस्थाएँ

अध्याय-22
लघुत्तरीय प्रश्न
(Short Answer Questions)

प्रश्न 1. भारतीय संविधान को किसने बनाया?
उत्तरः भारतीय संविधान को संविधान सभा ने बनाया।

प्रश्न 2. संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन कब और किसकी अध्यक्षता में हुआ?
उत्तरः संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन 9 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा के सबसे वयोवद्ध सदस्य श्री सच्चिदानन्द सिन्हा की अध्यक्षता में हुआ।

प्रश्न 3. संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष कौन था?
उत्तरः डा० राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष थे।

प्रश्न 4. भारतीय संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए मसौदा समिति की स्थापना कब और किसकी अध्यक्षता में की गई थी?
उत्तरः मसौदा समिति की स्थापना 29 अगस्त 1947 को डा० बी० आर० अम्बेडकर की अध्यक्षता में की गई।

प्रश्न 5. ग्रानविल आस्टिन (Granville Austin) के अनुसार भारत के संविधान के निर्माण में कौन–सी दो प्रक्रियाएं अपनाई गई?
उत्तरः (i) सहमति से निर्णय, (ii) समायोजन का सिद्धान्त।

प्रश्न 6. भारतीय संविधान के स्रोतों की मुख्य दो श्रेणी कौन–सी हैं?
उत्तरः (i) जन्म सम्बन्धी स्रोत, (ii) विकासवादी स्रोत।

प्रश्न 7. किस भारत सरकार अधिनियम की जन्म सम्बन्धी स्रोत में मुख्य भूमिका रही?
उत्तरः भारत सरकार अधिनियम, 1935।

प्रश्न 8. राज्य–नीति के निर्देशक सिद्धान्त किस देश के संविधान से लिए गए?
उत्तरः आयरलैण्ड के संविधान से।

प्रश्न 9. भारतीय सुप्रीम कोर्ट का कार्य तथा दर्जा किस देश के सुप्रीम कोर्ट जैसा है?
उत्तरः अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट जैसा।

प्रश्न 10. भारतीय संसदीय प्रणाली किस देश के संगठन से प्रभावित होकर ग्रहण की गई?
उत्तरः इंग्लैण्ड के संगठन से प्रभावित होकर।

प्रश्न 11. क्या प्रस्तावना भारतीय संविधान का भाग है?
उत्तरः नह, प्रस्तावना भारतीय संविधान का भाग नह है।

प्रश्न 12. भारतीय संविधान के दो मुख्य लक्षण कौन से हैं?
उत्तरः (i) संघीय लक्षण, (ii) एकात्मक लक्षण।

प्रश्न 13. भारतीय संविधान में संघ और राज्यों के बीच शक्तियों के बंटवारें कितनी सूचियों में किए गए हैं?
उत्तरः तीन सूचियों में– (i) संघ सूची, (ii) राज्य सूची, (iii) समवर्ती सूची।

प्रश्न 14. भारतीय संविधान की प्रस्तावना का विचार किस देश के संविधान से लिया गया?
उत्तरः प्रस्तावना का विचार अमेरिका के संविधान से लिया गया।

प्रश्न 15. प्रस्तावना में 42वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत क्या बदलाव किया गया?
उत्तरः 42वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत प्रस्तावना में दो नए शब्द 'समाजवादी तथा धर्मनिरपेक्ष' जोड़े गए।

प्रश्न 16. मौलिक अधिकार क्या हैं?
उत्तरः ये वो अधिकार हैं जो एक व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक माने जाते हैं और यह अनुभव किया जाता है कि इन अधिकारों को प्रयोग किए बिना कोई व्यक्ति अपना पूर्ण विकास नह कर सकता।

प्रश्न 17. भारतीय संविधान के किस भाग में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है?
उत्तरः भारतीय संविधान में इन अधिकारों का वर्णन तीसरे भाग तथा अनुच्छेद 12 से 35 में किया गया है।

प्रश्न 18. आरम्भ में संविधान में कुल कितने मौलिक अधिकारों को शामिल किया गया था?
उत्तरः आरम्भ में संविधान में कुल 7 मौलिक अधिकारों को शामिल किया गया था तथा 44वें संविधान संशोधन में सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों से निकालने के बाद इनकी संख्या छः रह गई।

प्रश्न 19. किस स्थिति में मौलिक अधिकारों का निलम्बन हो सकता है?
उत्तरः संकट काल के दौरान मौलिक अधिकारों को निलम्बित किया जा सकता है।

प्रश्न 20. किस अनुच्छेद के अन्तर्गत संवैधानिक उपचारों का अधिकार दिया गया है?
उत्तरः भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 में संवैधानिक उपचारों का अधिकार दिया गया है।

प्रश्न 21. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों का क्या उद्देश्य है?
उत्तरः इनका उद्देश्य हमारे देश में कल्याणकारी राज्य स्थापित करना है।

प्रश्न 22. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्त संविधान के किस भाग में उल्लेखित हैं?
उत्तरः इन सिद्धान्तों का वर्णन संविधान के चौथे भाग में किया गया है।

प्रश्न 23. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों तथा मौलिक अधिकारों में क्या अन्तर है?
उत्तरः राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों को न्यायपालिका द्वारा सुरक्षा प्रदान नह की गई है, परन्तु मौलिक अधिकार न्यायपालिका द्वारा सुरक्षित किए गए हैं।

प्रश्न 24. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों को हम किन श्रेणियों में बांट सकते हैं?
उत्तरः (i) समाजवादी तथा आर्थिक सिद्धान्त
(ii) गांधीवादी सिद्धान्त
(iii) उदारवादी सिद्धान्त
(iv) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों सम्बन्धी सिद्धान्त।

प्रश्न 25. कौन से निर्देशक सिद्धान्तों में भारतीय विदेश–नीति के कुछ मूल आधार मिलते हैं?
उत्तरः अनुच्छेद 51 में अंकित निर्देशक सिद्धान्त में।

प्रश्न 26. राष्ट्रपति बनने के लिए कोई दो योग्यताएं लिखें।
उत्तरः (i) वह भारत का नागरिक हो।
(ii) वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

प्रश्न 27. राष्ट्रपति की चुनाव–प्रणाली के दो दोष लिखें।
उत्तरः (i) राष्ट्रपति की चुनाव–प्रणाली अप्रजातन्त्रात्मक है क्योंकि राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष जनता द्वारा नह होता।
(ii) यह प्रणाली बड़ी जटिल है।

प्रश्न 28. भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति का नाम लिखो।
उत्तरः भारतीय गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद थे।

प्रश्न 29. भारत में राष्ट्रपति के चुनाव–मण्डल की रचना बताइए।

उत्तरः भारत के राष्ट्रपति का चुनाव एक चुनाव–मण्डल द्वारा होता है जिसमें लोकसभा और राज्यसभा के निर्वाचित सदस्य तथा राज्य की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं।

प्रश्न 30. राष्ट्रपति को कितने प्रकार की संकटकालीन शक्तियाँ प्राप्त हैं? उनमें से किसी एक प्रकार की शक्ति लिखें।

उत्तरः राष्ट्रपति को तीन प्रकार की संकटकालीन शक्तियाँ प्राप्त हैं। धारा 352 के अनुसार वह युद्ध, विदेशी आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से उत्पन्न संकट के समय संकटकाल की घोषणा कर सकता है।

प्रश्न 31. राष्ट्रपति की कोई दो वैधानिक शक्तियाँ लिखें।

उत्तरः (i) राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों का अधिवेशन बुलाता है।
(ii) राष्ट्रपति संसद द्वारा पास किए गए बिलों को स्वीकृति प्रदान करता है।

प्रश्न 32. राष्ट्रपति राज्य का शासन कब हाथ में ले सकता है?

उत्तरः जब किसी राज्य में संवैधानिक मशीनरी असफल हो जाए तो राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत संवैधानिक संकट की घोषणा करके उस राज्य का शासन अपने हाथ में ले सकता हैं

प्रश्न 33. राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों के दो दोष बताइए।

उत्तरः (i) राष्ट्रपति नागरिकों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को स्थगित कर सकता है।
(ii) संकटकाल की घोषणा के समय संघीय ढाँचा एकात्मक में बदल जाता है।

प्रश्न 34. राष्ट्रपति के चुनाव में कौन–कौन भाग लेता है?

उत्तरः (i) राज्य विधानसभाओं के चुने हुए सदस्य।
(ii) संसद के चुने हुए सदस्य।

प्रश्न 35. राष्ट्रपति की दो कार्यपालिका शक्तियाँ बताइए।

उत्तरः (i) देश की सभी महत्त्वपूर्ण नियुक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा की जाती हैं।
(ii) राष्ट्रपति राष्ट्र की जल, स्थल और वायु सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति है।

प्रश्न 36. केन्द्रीय विधानपालिका का नाम क्या है?

उत्तरः संसद।

प्रश्न 37. भारतीय संसद में कितने सदन हैं?

उत्तरः भारतीय संसद में दो सदन हैं, (i) लोकसभा (निम्न सदन), (ii) राज्यसभा (उच्च सदन)।

प्रश्न 38. संविधान के अनुसार उच्च सदन की गणपूर्ति कितनी है?

उत्तरः संविधान के अनुसार उच्च सदन की गणपूर्ति कुल सदस्यों का 1/10 भाग निश्चित किया गया है।

प्रश्न 39. क्या भारत के राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा को भंग किया जा सकता है?

उत्तरः नह, अनुच्छेद 83 के अनुसार राज्यसभा को भंग नह किया जा सकता है।

प्रश्न 40. राज्यसभा के लिए कितने सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं?

उत्तरः 12 सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाता है, जो साहित्य, कला, विज्ञान तथा समाज सेवा आदि के कारण प्रसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न 41. लोकसभा में अध्यक्ष को क्या कहा जाता है?

उत्तरः स्पीकर।

प्रश्न 42. संसद में धन बिल किसके द्वारा पेश किया जाता है।

उत्तरः वित्त मंत्री द्वारा।

प्रश्न 43. स्पीकर को कितना मासिक वेतन मिलता है?

उत्तरः 40000 रुपये।

प्रश्न 44. मन्त्रिमण्डल के कोई दो कार्य लिखो।

उत्तरः (i) मन्त्रिमण्डल राष्ट्रीय तथा विदेश–नीति का निर्माण करता है।

(ii) मन्त्रिमण्डल देश का प्रशासन चलाता है।

प्रश्न 45. मन्त्रिपरिषद् तथा मन्त्रिमण्डल में दो अन्तर बताइए।

उत्तरः (i) मन्त्रिमण्डल मन्त्रिपरिषद् का भाग है।

(ii) मन्त्रिपरिषद् में सभी मन्त्री होते हैं, जबकि मन्त्रिमण्डल में केवल महत्त्वपूर्ण मन्त्री होते हैं।

प्रश्न 46. मन्त्रियों की नियुक्ति कौन करता है?

उत्तरः राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की सलाह पर मन्त्रियों को नियुक्त करता है।

प्रश्न 47. भारतीय मन्त्रिमण्डल की कोई दो विशेषताएं बताइए।

उत्तरः (i) राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष है, जबकि प्रधानमन्त्री सरकार का वास्तविक मुखिया है।

(ii) संसद तथा मन्त्रिमण्डल में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

प्रश्न 48. प्रधानमन्त्री के मन्त्रिमण्डल के नेता के रूप में दो कार्य बताइए।

उत्तरः (i) राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री के परामर्श से मन्त्रि–परिषद् के अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है।

(ii) प्रधानमन्त्री मन्त्रियों में विभागों का वितरण करता है।

प्रश्न 49. प्रधानमन्त्री किसका मुख्य सलाहकार होता है?

उत्तरः प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार होता है।

प्रश्न 50. "यदि हमारे संविधान में किसी अधिकारी की तुलना अमेरिका के राष्ट्रपति से की जा सकती है तो वह हमारे देश के प्रधानमन्त्री हैं, राष्ट्रपति नह" यह कथन किसका है?

उत्तरः यह कथन डॉ० अम्बेडकर का है।

प्रश्न 51. केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के कोई दो कारण बताइये।

उत्तरः (i) देश की विभिन्न समस्याओं का समाधान करके,

(ii) देश में राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता कायम करके।

प्रश्न 52. सरकारी आयोग की नियुक्ति का क्या उद्देश्य था?

उत्तरः सरकारी आयोग की नियुक्ति का उद्देश्य केन्द्र व राज्यों के सम्बन्धों को सुधारने के लिए सिफारिशें करना था।

प्रश्न 53. संघ और राज्य के बीच सम्बन्धों को कितने भागों में बाँटा गया है?

उत्तरः संघ और राज्यों के बीच सम्बन्धों को वैधानिक, प्रशासकीय तथा वित्तीय तीन भागों में बाँटा गया है।

प्रश्न 54. किसी एक परिस्थिति का वर्णन करें जब केन्द्र सरकार राज्य सूची पर भी कानून बना सकती है?

उत्तरः राज्यसभा दो–तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास करके राज्य सूची के किसी भी विषय को राष्ट्रीय महत्त्व का मुद्दा घोषित करके कानून बनाने की शक्ति संसद को दे सकती है।

प्रश्न 55. संघ सूची में कितने विषय हैं?

उत्तरः संघ सूची में मूल रूप से 97 विषय हैं।

प्रश्न 56. भारत में सबसे उच्च न्यायालय कौन–सा है?

उत्तरः भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124 में सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) को सबसे बड़े न्यायालय का दर्जा दिया गया है।

प्रश्न 57. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या कितनी हैं?

उत्तरः सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या एक मुख्य न्यायाधीश तथा 25 अन्य न्यायाधीश (कुल 26) हैं।

प्रश्न 58. सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए किन–किन योग्यताओं की जरूरत हैं?

उत्तरः (i) वह भारत का नागरिक हो।

(ii) वह किसी उच्च न्यायालय या दो या दो से अधिक उच्च न्यायालयों में पाँच वर्ष तक न्यायाधीश रह चुका हो।
(iii) वह किसी उच्च न्यायालय या दो या दो से अधिक उच्च न्यायालयों में 10 वर्ष तक एडवोकेट रह चुका हो।
अथवा

राष्ट्रपति के विचार में एक प्रसिद्ध विधिवेत्ता हो।

प्रश्न 59. क्या सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश सेवा निवत्ति के पश्चात् वकालत कर सकते हैं?
उत्तरः नह।

प्रश्न 60. सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों का मासिक वेतन कितना है?
उत्तरः सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को मासिक वेतन 33,000 रुपये तथा अन्य न्यायाधीशों को मासिक वेतन 30,000 रुपये मिलता है।

प्रश्न 61. किन्ह तीन मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दलों के नाम बताइए।
उत्तरः (i) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
(ii) भारतीय जनता पार्टी
(iii) जनता दल

प्रश्न 62. अप्रैल 1998 में हुए लोकसभा चुनावों में चुनाव आयोग ने कितने राष्ट्रीय दलों को मान्यता प्रदान की थी?
उत्तरः 7 राजनीतिक दलों को।

प्रश्न 63. भारतीय जनता पार्टी किस दल से तथा कब गठित की गई?
उत्तरः भारतीय जनता पार्टी श्री अटल बिहारी वाजपेयी की अध्यक्षता में जनता पार्टी से 16 अप्रैल 1980 को गठित की गई।

प्रश्न 64. सन् 1998 में हुए लोकसभा चुनावों में कांग्रेस के घोषणा पत्र की दो विशेषताएं बताइए।
उत्तरः (i) अनुच्छेद् 370 को बनाए रखा जाएगा।
(ii) अनुच्छेद् के मुद्दे पर पार्टी उच्चतम न्यायालय के निर्णय को मानेगी।

प्रश्न 65. समता पार्टी की स्थापना कब और किस दल के विभाजन पर हुई?
उत्तरः समता पार्टी की स्थापना सन् 1994 में जनता दल के चौथे विभाजन के परिणामस्वरूप हुई।

प्रश्न 66. मुख्य चुनाव आयुक्त व अन्य चुनाव आयुक्त किस संवैधानिक अनुच्छेद व किसके द्वारा नियुक्त किए जाते हैं?
उत्तरः मुख्य चुनाव आयुक्त व अन्य चुनाव आयुक्त संविधान के अनुच्छेद 324(2) में राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।

प्रश्न 67. मुख्य चुनाव आयुक्त को कैसे पद मुक्त किया जाता है?
उत्तरः मुख्य चुनाव आयुक्त को उसी तरीके से हटाया जा सकता है जैसे सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है।

प्रश्न 68. चुनाव आयोग के दो कार्यों का वर्णन कीजिए।
उत्तरः (i) राष्ट्रीय दलों का पंजीकरण करना।
(ii) शान्तिपूर्ण चुनाव कराना।

प्रश्न 69. सबसे पहले चुनाव सुधार के बारे में किस समिति का गठन किया गया?
उत्तरः तारकण्डे समिति का।

प्रश्न 70. भारतीय संविधान के किस संविधान संशोधन के अन्तर्गत मतदान का अधिकार 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष किया गया?
उत्तरः 61वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत।

प्रश्न 71. ऐसे तीन क्षेत्रीय दलों के नाम बताइए, जो जाति के आधार पर गठित हैं।
उत्तरः (i) तमिलनाडु में डी० एम० के० तथा ए० आई० डी० एम० के०
(ii) पंजाब में अकाली दल
(iii) उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी।

प्रश्न 72. प्रो० रजनी कोठारी के अनुसार जाति व्यवस्था और राजनीति में अन्तःक्रिया के तीन रूप कौन–से प्रस्तुत किए हैं?

उत्तरः (i) लौकिक रूप
(ii) एकीकरण रूप
(iii) चैतन्य रूप

प्रश्न 73. जाति के राजनीतिकरण की दो विशेषताएं बताएं।

उत्तरः (i) जाति और राजनीति के सम्बन्ध स्थैतिक न होकर गतिशील हैं।
(ii) स्थानीय और राज्य राजनीति में जाति की भूमिका अहम् होना।

प्रश्न 74. जाति के आधार पर स्थान सुरक्षित करने से किस व्यवस्था को प्रोत्साहन मिला है?

उत्तरः राजनीति में जातिवाद को।

प्रश्न 75. राज्य राजनीति के अध्ययन कर्त्ताओं के अनुसार जातिवाद का पहला स्वरूप कहां मिलता है?

उत्तरः जातिवाद का पहला स्वरूप दक्षिणी भारत और विशेषकर तमिलनाडु में मिलता है।

प्रश्न 76. अंग्रेज़ी शासनकाल में साम्प्रदायिक भावनाओं को राजनीतिक रूप मिलने का क्या कारण था?

उत्तरः अंग्रेज़ी शासनकाल में साम्प्रदायिक भावनाओं को राजनीतिक रूप मिलने का एक कारण यहां प्रतिनिधि या निर्वाचित संस्थाओं की स्थापना थी।

प्रश्न 77. स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी भारत में साम्प्रदायिकता के तत्त्व दिखाई देने के कोई तीन कारण बताओ।

उत्तरः (i) मुसलमानों में पथक्करण की भावना
(ii) मुसलमानों का आर्थिक दष्टि से पिछड़ापन
(iii) संकुचित हिन्दू राष्ट्रवाद।

प्रश्न 78. साम्प्रदायिकता के तीन दुष्परिणाम बताओ।

उत्तरः (i) आपसी द्वेष
(ii) राजनीतिक अस्थिरता
(iii) राष्ट्रीय एकता में बाधा।

प्रश्न 79. धर्म और पंथ निरपेक्ष संविधान अपनाए जाने के बाद भी भारतीय राजनीति के स्वरूप को कौन–से दो ढंग प्रभावित करते हैं?

उत्तरः (i) धर्म और राजनीतिक दल
(ii) धर्म और निर्वाचन।

प्रश्न 80. साम्प्रदायिकता को दूर करने के दो सुझाव बताइए।

उत्तरः (i) शिक्षण में आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश किया जाए।
(ii) सरकार द्वारा कोई ऐसा कार्य नह किया जाना चाहिए जिससे साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिले।

प्रश्न 81. अगस्त 1992 में हुए 71वें संविधान संशोधन के अनुसार कौन–सी भाषाओं को स्वीकार किया गया हैं?

उत्तरः (i) कोंकणी, (ii) मणिपुर, (iii) नेपाली।

प्रश्न 82. आज संविधान में कुल कितनी भाषाओं को स्वीकार किया गया है?

उत्तरः 18 भाषाएं।

प्रश्न 83. भारत की राजनीति में भाषा से जुड़ी हुई दो राजनीतिक समस्याओं का वर्णन कीजिए।

उत्तरः (i) भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन।
(ii) भाषा के आधार पर उत्तर और दक्षिण भारत की संकुचित भावनाएं।

प्रश्न 84. भौगोलिक दष्टि से भारत के पूर्वी तट की भाषाएं कौन–सी हैं?

उत्तरः (i) तमिल, (ii) तेलुगू, (iii) उड़िया और (iv) बंगला।

प्रश्न 85. भौगोलिक दष्टि से भारत में पश्चिमी तट की भाषाएं कौन–सी हैं?
उत्तरः (i) मलयालम, (ii) कन्नड़, (iii) मराठी, (iv) गुजराती।

प्रश्न 86. भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयवाद के दो कारण बताओ।
उत्तरः (i) सांस्कृतिक कारण, (ii) आर्थिक कारण।

प्रश्न 87. 1987 में किन राज्यों को पूर्ण राज्यों का दर्जा दिया गया?
उत्तरः (i) मिज़ोरम, (ii) अरूणाचल प्रदेश, (iii) गोआ।

प्रश्न 88. भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयवाद की चर्चा किन शीर्षकों के आधार पर की जा सकती है? कोई दो उदाहरण दीजिए।
उत्तरः (i) क्षेत्रीयवाद और पथक् राज्यों की मांग, (ii) क्षेत्रीयवाद और केन्द्र–राज्य संघर्ष।

प्रश्न 89. क्षेत्रीयवाद के कारण भारतीय संघ से पथक होने की प्रवत्ति के दो उदाहरण दीजिए।
उत्तरः (i) खालिस्तान की मांग, (ii) पथक् तेलंगाना आन्दोलन।

प्रश्न 90. क्षेत्रीयवाद के दुष्परिणामों के दो उदाहरण दीजिए।
उत्तरः (i) विभिन्न क्षेत्रों के बीच संघर्ष और तनाव।
(ii) राष्ट्रीय एकता को चुनौती।

प्रश्न 91. गरीबी उन्मूलन के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम कब शुरू किया गया?
उत्तरः राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम 1980 में शुरू किया गया।

प्रश्न 92. ग्रामीण भूमिहीन रोज़गार गारंटी कार्यक्रम को कब आरम्भ किया गया था?
उत्तरः यह कार्यक्रम 1983 में शुरू किया गया।

प्रश्न 93. राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोज़गार गारंटी कार्यक्रम में कोई दो समानताएं बताइए।
उत्तरः (i) दोनों ही निर्धन ग्रामीणों के लिए थे।
(ii) दोनों ही मज़दूरी का कुछ भाग अनाज के रूप में अदा करते थे।

प्रश्न 94. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोज़गार योजना को कब आरम्भ किया गया?
उत्तरः यह योजना 1 अप्रैल, 1999 को शुरू की गई।

प्रश्न 95. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोज़गार योजना में केन्द्र व राज्यों का कितना योगदान है?
उत्तरः इस योजना में केन्द्र का 75 प्रतिशत व राज्यों का 25 प्रतिशत योगदान होता है।

प्रश्न 96. हरियाणा में कितने प्रतिशत ग्रामीण गरीब है?
उत्तरः 1999–2000 के आकड़ों के अनुसार यहां पर 41.2 प्रतिशत गरीब हैं।

प्रश्न 97. संम्पूर्ण ग्रामीण रोज़गार योजना को कब शुरू किया गया?
उत्तरः इस योजना को सितम्बर 2001 में शुरू किया गया।

प्रश्न 98. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोज़गार योजना के लिए 2003–2004 के बजट में कितना पैसा निर्धारित किया गया है?
उत्तरः इस योजना के लिए बजट 2003–04 में 800 करोड़ रुपया निर्धारित किया गया है।